मिथिला-मिहिर

(मिथिलाङ्क)



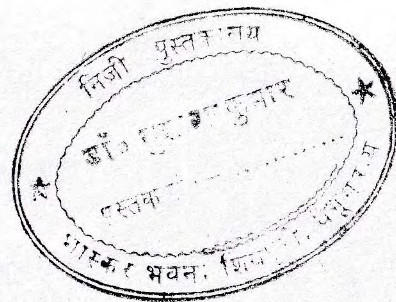
श्री ५ मान् मिथिलेश द्वारा संरक्षित

(साप्ताहिक)

वसन्त पञ्चमी १९३६

सम्पादक
श्री सुरेन्द्र झा साहित्याचार्य

मूल्य



विषय-सूची

[हिन्दी]

[मैथिली]

संदेश

लोक नायक

[श्र]ीमान् एम०एस०अणे—

[आ]पने अपने पत्र के विशेषाङ्क के [लि]ये जो मुझ से सन्देश माँगा है, [उस]के लिये धन्यवाद देता हूँ और [सा]थ ही मैं जो स्वतन्त्र लेख न लिख [सक]ा उसके लिये खेद प्रकट करता [हूँ।] हिन्दुस्तान एक राष्ट्र है, राष्ट्र का [अभ्]युदय प्रत्येक अङ्ग के समन्वित [अभ्]युदय पर निर्भर है। प्रत्येक [भार]तीय का यह प्रधान कर्तव्य है [कि] वह अपनी मातृभूमि की निर्भय [हो]कर सच्ची भावना से सेवा करे। [औ]र पूर्ण ध्येय पर पहुँचने के लिये [सर्व]स्व निछावर करे। मैं ईश्वर से [प्रार्थ]ना करता हूँ कि वह हमें अपने [कर्त]व्य-पथ पर आरूढ होने के [लि]ये बल और ज्ञान दे। यही मेरा [स]न्देश है।

* * *

पत्रकार-जगत् के गौरव

श्रीमान् सच्चिदानन्द सिंह—

अपनी विशिष्ट संस्कृति और प्राचीन दर्शन-साहित्य के कारण मिथिला का राष्ट्र में एक खास स्थान है। 'मिथिलाङ्क' द्वारा उसके परिचय का यत्न इस दृष्टि से उपयोगी होगा। मिथिला अपनी साधना द्वारा राष्ट्र-हित में योग दान दे, यह मेरी कामना है।

'मिथिला-मिहिर' के इस उद्योग की हृदय से सफलता चाहता हूँ।

* * *

हिन्दू संगठन के अन्यतम प्रवर्तक

श्रीमान् भाई परमानन्द—

मैथिलों का एक ऊँचा कुल है, लेकिन समय नहीं रहा कि अपने कुलों या जातों को ही उठाएँ। इस समय तो मुख्य कार्य एक ही है, हिन्दू जातिका संगठन। यदि हिन्दू जाति संगठित नहीं होती तो इन कुलों का कुछ पता नहीं चलेगा। ब्राह्मण का, चाहे वह किसी कुलसे सम्बन्ध रखता हो, सीधा धर्म एक ही है कि वह अपनी समस्त जाति को अज्ञान के अन्धेरेमें से निकाल कर सच्चा रास्ता दिखलाए। जहाँ कहीं जाति पर किसी ओरसे कष्ट आ रहा हो, वह आगे बढ़कर उसके लिये ढाल का काम दे। मैं तो हिन्दुओं से यही प्रार्थना करूँगा कि वे अपने को सुधार करते हुए हिन्दू-संगठन के महायज्ञ में भाग लेने के लिये तैयार करें।

* * *



गिरिजा--पूजन के पथ पर श्री मैथिली



श्री५मान् मिथिलेश द्वारा संरक्षित साप्ताहिक पत्र

सम्पादक—सुरेन्द्र झा 'सुमन' साहित्याचार्य

वर्ष २९ | मार्गशीर्ष, विक्रम-संवत् १९९२ | मिथिलाङ्क

'सत्यश्रमाभ्यां सकलार्थसिद्धि'-
रितीयमादौ मिहिर-प्रतिज्ञा ।
तामेव धृत्वा हृदये स्वकीये
वर्धस्व देशं विमलीकुरुष्व ॥

श्रीगङ्गानाथ झा

स्वभावादेवास्मिञ्जनकविषये स्नेहमधिकं,
दधाना वैदेही मिहिरजमहीभृत्कुलवधूः ।
तदुत्कर्षव्यक्तेरनुपममुपायं परमिमं,
दयादृष्ट्या शश्वन्मिहिर 'मिथिलाऽङ्कं' कलयतात् ॥

श्रीबदरीनाथ झा





रात भर गई रुलाई ओस।
विहग के किये गये मुंह बन्द ॥
बने बहु विवश धरा के लोग।
गले में पड़े आसुरी फन्द ॥
हुए घट-घट में तम अंधेर।
छिना रजनी का सारा साज ॥
सहसकर से तारकचय लुटे।
गया रजनी-रंजन का राज ॥

'हरिऔध'

सीते सीते सीते!
अब तो कृपा-कोर हो जननी, जीवन के दिन बीते!
तेरी शक्ति सुधा पी पी कर अजर अमर हैं जीते!
मर ही सकते कहीं मर्त्य हम पद-रस पीते पीते!

मैथिलीशरण गुप्त,

मैथिली भाषा और संस्कृति

डा० श्रीयुत सुनीति कुमार चटर्जी एम्० ए०, डी० लिट्०

कवि श्रेष्ठ रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारतवर्ष की संस्कृति को किसी जगह एक कमल का फूल कहा है और उसकी पत्तियों को भिन्न भिन्न प्रान्तों की भाषाओं और साहित्यों में आबद्ध प्रान्तीय संस्कृतियाँ कहा है। यह उपमा बहुत ठीक है और यदि इस को कुछ दूर तक और बढ़ाया जा सके तो यह कह सकते हैं कि इन सब के अंतराल में एक ही भारतीयता की अदृश्य शक्ति निहित है, जो भिन्न भिन्न भाषा क्षेत्रों में रहनेवालों के भौतिक और आध्यात्मिक जीवन के भिन्न भिन्न विभागों में प्रत्यक्ष हो रही है। यह भारतीयता सब जगह एक रूप में प्रत्यक्ष नहीं, प्रत्युत अनेकता में ही प्रत्यक्ष होती है।

बंगीय समाज और जीवन तथा उस के साहित्य और विचारों में जो संस्कृति प्रत्यक्ष होती है, वह भारतीय है; उसी प्रकार महाराष्ट्र, पंजाब, तामिल, नाडू और आंध्र देशों की संस्कृतियाँ भी भारतीय ही हैं, किन्तु तौ भी बंगीय संस्कृति अन्यान्य प्रान्तों की संस्कृतियों से कुछ भिन्न और विशेष है, उसी प्रकार अन्य प्रान्तों की संस्कृतियाँ भी एक दूसरी संस्कृतियों से भिन्न और विशेष हैं। इनकी समष्टि ही इस फूल की एकता और सुन्दरता है। इस फूल की किसी पत्ती को दूसरी पत्तियों से प्रधान बनाने के लिये यदि किसी एक भी पत्ती को तोड़ डाला जाय तो सारे फूल की सुन्दरता नष्ट हो जायगी। यदि बंगाल का कीर्त्तन, महाराष्ट्र का पवादा गान, मिथिला का पदावली-गान, राजपुताने की हस्तकला, या केरल की नाट्यकला का प्रवाह रोक दिया जाय तो क्या यह संस्कृति अत्यन्त कुरूप नहीं हो जायगी?

मैं हिन्दी को तमाम भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा बनाकर राष्ट्रीय एकता लाने का प्रबल पक्षपाती हूँ, तौ भी प्रान्तीय भाषा और इनके साहित्यों को भारतवर्ष की जीती जागती संस्कृति समझता हूँ, इसलिये राष्ट्रभाषा के साथ ही साथ प्रान्तीय भाषाओं और साहित्यों को यथोचित विकाश का मौका देना भी भारतवर्ष की उन्नति के लिये वैसा ही अनिवार्य्य समझता हूँ। भारतीय एकता की धुन में हम लोगों को इस के भिन्न

भिन्न भाषा-क्षेत्रों की जनता में प्रवाहित होनेवाली संस्कृति-निर्झरिणियों को अवरुद्ध नहीं कर देना चाहिये। प्रत्येक विचारवान् भारतीय का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह हिन्दी सीखे, किन्तु साथ ही साथ उस का यह भी कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह अपनी मातृभाषा की भी उन्नति करे, यदि वह हिन्दी से भिन्न हो और यदि उस ने एक विशेष संस्कृति का विकास किया है। कोई व्यक्ति एक उत्तम बंगाली, पंजाबी, तामीली या राजस्थानी होकर भी भलीभांति भारतीय हो सकता है। छोटे छोटे क्षेत्रों का समावेश बड़े क्षेत्रों में होगा और सभी छोटे क्षेत्र उस बड़े क्षेत्र को सबल बनाने में अपनी अपनी शक्तियों का योग-दान देंगे। यह निस्संदेह कुछ विचित्र होगा; किन्तु हम लोगों को स्मरण रखना चाहिये कि हम ३५ करोड़ हैं। यदि हम लोग कोई एक ही बृहत्काय फूल नहीं बन सकते, तो कम से कम रंग-विरंगे फूलों का गुलदस्ता होने में क्या झगड़ा है? इस में से किसी भी फूल को—जो स्वतंत्र रूप से विकसित और सुर-भित है-हटाना मेरे विचार में दण्डनीय नहीं तो कम से कम मूर्खता अवश्य है।

यदि भारतीय संस्कृति इसी प्रकार का एक गुल-दस्ता है तो मैथिली कविता उसी का एक सुन्दर फूल है। यह जिस वृक्ष में विकसित हुआ है, वही मैथिली भाषा है। यह किसी ऊसर खेत में उत्पन्न नहीं हुआ है; प्रत्युत शुद्ध और स्वतंत्र वायु में उत्पन्न

हुआ है तथा इस की जड़ अपने क्षेत्र में बहुत दूर तक पहुंची हुई है। यह एक करोड़ से भी अधिक लोगों की भाषा है जो संख्या में यूरोप के अनेक स्वतंत्र राष्ट्रों के भाषा भाषियों से कहीं अधिक है। मैं उन मैथिलों के तर्क को नहीं समझ सकता जो किसी बड़े हित के विचार से इसको दबाना चाहते हैं। भारत माता की भलाई की धुन में क्या कोई अपनी जननी को भी भूल सकता है?

भारतीय भाषाओं में मैथिली का स्थान क्या है, इस के विषय में भारी भ्रम फैला हुआ है, जिस के कारण मिथिला की स्थिति ऐसी विचित्र हो गई है। अर्थात् भारतवर्ष की प्रधान भाषा होने पर भी मैथिली को अपने घर में कोई स्थान नहीं है। यह भूल से हिन्दी की बोली मान ली जाती है। साहित्यिक हिन्दी कल की भाषा है, इस की प्रधानता केवल गत शताब्दी में हुई है। यद्यपि कई कारणों से आज यही भाषा भारत की प्रतिनिधि भाषा हो गई है; किन्तु मैथिली कम से कम ६०० वर्षों से संभवतः इस से भी अधिक से सञ्चित होती आयी है। मैथिली कविताओं का प्रभाव अपने पड़ोस की पूर्वी बहिनों पर अर्थात् बंगला, आसामी और कुछ दूर तक उड़िया भाषाओं पर बहुत पड़ा। आधुनिक भारतीय साहित्य में विद्यापति सब से बड़े कवियों में गिने जाते हैं। ये उस श्रेणी के प्रतिभाशाली कवि थे, जिन को बंगाली अपना कवि मानते हैं और वे अपने प्रान्तीय कवियों की भांति उन का आदर करते हैं। किसी कवि का दो

दो साहित्यों में ऐसा प्रमुख स्थान पाना अपूर्व प्रतिष्ठा की बात है। मैथिली कविता का बीज वंगभूमि में एक नये वृक्ष के ही रूप में परिणत हो गया, जो व्रज बोली साहित्य के नाम से अभिहित हुआ। यह मैथिली और वंगभाषा के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुआ और इसी भाषा में बंगाल के सब से उत्तम शृंगारिक भक्त कवि ३०० वर्षों से भी पहले से अपनी कविता करते आ रहे हैं। यह शैली कवीन्द्र रवीन्द्र के समय तक जारी रही है और इस का प्रवाह हमलोगों के समय तक भी अक्षुण्ण और निर्दोष है।

मैथिली को अन्यान्य भाषाओं की भांति अपनी खास लिपि भी है, जो हिन्दी से एकदम स्वतंत्र और कई प्रकार से भिन्न भी है। यद्यपि मैथिली को जान बूझ कर मिटा डाला जाय और केवल हिन्दी की ही शिक्षा दी जाय तो भी मैं नहीं सोचता, कितने वर्षों में मैथिलीभाषी जनता को हिन्दी भाषी बनाया जा सकता है। मैं तो यही सोचता हूँ कि कई शताब्दियाँ इस काम में लगेंगी; किन्तु इस कार्य्य में मैथिली भाषाओं की कुल स्वाभाविक साहित्यिक प्रगति अव-रुद्ध हो जायगी। इस से केवल मैथिलों की हानि नहीं होगी, वरन् भारतीय साहित्य और संस्कृति की भी हानि होगी।

मैं समझता हूँ, मैथिली भाषियों में इस बात की प्रबल अभिलाषा है कि वे अपनी भाषा को अपने प्रान्त में पुराने आसन पर प्रतिष्ठित देखें। अर्थात् वे चाहते हैं कि मैथिली उनके पठन-पाठन और सार्व-जनिक कार्य्यों की भाषा हो। यह अभिलाषा उचित और न्याय्य भी है। प्रान्त के विश्वविद्यालय और शिक्षा विभाग के अधिकारियों को उचित है कि मैथिली के मार्ग की कुल बाधाओं को हटा कर इस अभिलाषा की परीक्षा करें। बिहार में मैथिली भाषियों की ही संख्या सब से अधिक है। किन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि मैथिली ही अनादृत है। मिथिला में ऐसे लोगों का अभाव नहीं है जो बड़े शिक्षाविशारद हैं; विचारों के प्रवर्तक हैं और सार्व-जनिक हित के कार्य्यों में लगे हैं; इस लिये उनकी मातृभाषा को उचित स्थान मिलना ही चाहिये।

मैं मैथिली को हिन्दी के विरुद्ध प्रचार करना नहीं चाहता। मैं हिन्दी को भीतर की सब भाषाओं से प्रधान भाषा मानता हूँ और इसी भाषा को तमाम भारत की राष्ट्रभाषा बनने का हकदार समझता हूँ। किन्तु मैं चाहता हूँ कि किसी भी वस्तु का विचार निष्पक्ष और उचित रीति से होना चाहिये। मैथिली को स्थान देने से मिथिला के हिन्दी क्षेत्र में कुछ परिवर्तन अवश्य होगा; किन्तु मैं साहस पूर्वक कह सकता हूँ कि इस थोड़ी सी बाधा से वह लाभ अत्य-धिक होगा जो मैथिली की उन्नति से मैथिली भाषी के द्वारा बिहार को प्राप्त होगा। इस से मैथिली को पुनः जागृति का नवयुग भी आ सकता है। और

इस से भारतीय और भी धनी बन सकता है। मिथिला में हिन्दी का वही स्थान होगा जो भारत के अन्य प्रान्तों में है और इस की समस्या वहाँ के लिये भी उसी प्रकार हल होगी, जैसे अन्य प्रान्तों में होगी।

मैं चाहता हूँ कि सभी बंगाली अपनी मातृ-भाषा के अतिरिक्त हिन्दी सीखें। जब तक मैं शिक्षा विभाग के किसी उचित कक्षा में हिन्दी को दूसरी अनिवार्य भाषा बनाने में अक्षम हूँ, तब तक मैं इस ध्येय को शक्ति भर प्रचार, प्रेरणा, प्रोत्साहन और प्रवृत्ति के द्वारा प्राप्त करने का यत्न करूंगा। यही बात मैं उन सब प्रान्तों के बारे में भी सोचता हूँ, जहां की मातृभाषा हिन्दी या उस की कोई बोली नहीं है, जैसे उड़ीसा, मिथिला, महाराष्ट्र, और दक्षिण के द्राविड़ प्रान्त।

मैं भारतीय [illegible] के द्वारा [illegible] को समाप्त करता हूँ—

"मिथिला [illegible] उचित स्थान [illegible] में अन्यान्य भाषा-भाषियों के समान [illegible] होकर [illegible] हिन्दी [illegible]।"

[खास 'मिथिलाङ्क' के लिये लिखित लेखक के अँग्रेजी लेख का हिन्दी रूपान्तर।—सं०]



कवि

श्रीयुत 'दिनकर'

ऊषा थी द्रुम से खड़ी, लिये
प्राची में सोने का पानी;
सर में मृणाल-तूलिका, तटी में
विस्तृत दूर्वा-पट धानी।

खींचता चित्र पर कौन? छेड़ती-
राका की मुसकान किसे?
बिम्बित होते सुख-दुख ऐसा
अन्तर था मुकुर-समान किसे?

[illegible] की छवि पर
था कौन लुब्ध होनेवाला?
[illegible]
[illegible]।

अलि की जड़-सुप्त शिराओं को
थी [illegible] विकल उसकाने को
आकुल थी मधु-वेदना विश्व की
मधुर गीत बन जाने को।

थी व्यथा किसे प्रिय? कौन मोल-
करता आँखों के पानी का?
नयनों को था अज्ञात अर्थ
तब तक नयनों की बानी का।

उर के क्षत का शीतल प्रलेप
कुसुमों का था मकरन्द नहीं;
विहँगों के आँसू देख फूटते
थे मनुजों के छन्द नहीं।

मृगदृगी वन्य-कन्या कर पायी
थी मृगियों से प्यार नहीं;
हाँ, प्रकृति-पुरुष तबतक मिल हो
पाये थे एकाकार नहीं।

शैथिल्य देख कलियाँ रोईं
अन्तर से सुरभित आह उठी;
ऊसर ने छोड़ी साँस, एक दिन
धरणी विकल कराह उठी।

प्राणों में कम्पन हुआ, विश्व की
सिहर उठी प्रत्येक शिरा;
तुम से कुछ कहने लगी स्वयं
मृदु-दृग में हो साकार गिरा।

यों विधि-विधान को दुखी देख
वाणी का आनन म्लान हुआ
उर को स्पन्दित करनेवाले
कवि के अभाव का ज्ञान हुआ।

कवि ! पारिजात के छिन्न कुसुम
तुम स्वर्ग छोड़ भू-पर आये,
उर-पद्म-कोष में छिपा दिव्य
नन्दन-वन का सौरभ लाये।

जिस दिन तमसा-तट पर तुमने
दी फूँक बाँसुरी अनजाने,
शैलों की श्रुतियाँ खुलीं, लगे
नीड़ों में खग उठ उठ गाने।

फूलों को वाणी मिली, चेतना
पा हरियाली डोल गई,
पुलकातिरेक में कली भ्रमर से
व्यथा हृदय की बोल गई।

निर्झर मुख पर चढ़ गया रंग
सुनहरी उषा के पानी का
उग गया चित्र हिम-बिन्दु पूर्ण
किसलय पर प्रणय-कहानी का।

अंकुरित हुआ नव-प्रेम, कण्टकित
काँप उठी युवती-वसुधा;
मधु-पूर्ण हुआ उर-कोष दृगों में
छलक पड़ी सौन्दर्य-सुधा।

कवि ! तुम अनंग बन कर आये
फूलों के मृदु शर-चाप लिये;
चिर-दुखी विश्व के लिये प्रेम का
एक और सन्ताप लिये।

सीखा जगती ने जलन, प्रेम पर
जब से बलि होना सीखा;
कलियों ने बाहर हँसी, और
भीतर-भीतर रोना सीखा।

उच्छ्वासों से गल मोम हुई--
ऊसर की पाषाणी कारा,
सींचने चली संसार, तुम्हारे
उर की सुधा-मधुर धारा।

तुमने जो सुर में भरा, शिशिर--
क्रन्दन में भी आनन्द मिला;
रसवती हुई वेदना, आँसुओं
में जग को मकरन्द मिला।

मेघों पर जाकर प्रिया-पास
प्रेमी की व्याकुल आह चली;
वन-वन दमयन्ती विकल खोजती
निर्मोही की राह चली।

कवि ! स्वर्ग-दूत या चरम स्वप्न
विधि का तुमको सुकुमार कहें ?
नन्दन-कानन का पुष्प, व्यथा जग
का या राजकुमार कहें ?

आये तुम भू-पर जलन, दर्द के
नये मधुर उपहार लिये।
संसार बीच अन्तर में अपना
एक अलग संसार लिये।

विधि ने भूतल पर स्वर्ग-लोक
गढ़ने का दे सामान तुम्हें,
अपनी त्रुटि को पूरी करने का
दिया दिव्य वरदान तुम्हें।

सब कुछ देकर भी चिर नवीन
चिर ज्वलित व्यथा का रोग दिया
फूलों से रचकर गात, भाग्य में
लिख शूलों का भोग दिया।

जीवन का रस-पीयूष नित्य
जग को करना है दान तुम्हें;
हे नीलकण्ठ ! सन्तोष करो
था लिखा गरल का पान तुम्हें।

कितना जीवन-रस पिला-पिला
पा ली तुमने कविता प्यारी ?
कवि ! गिनो, घाव कितने बोलो
उर बीच उगे बारी-बारी।

सूने में रो-रो बहा चुके
जग का कितना उपहास कहो ?
दुनिया कहती है गीत जिन्हें
उन गीतों का इतिहास कहो।

(मिथिलाङ्क)

दायें कर से जल को उछाल
तट पर बैठे क्यों मौन हरे!
बायें कर से मुँह ढाँक लिया,
चिन्ता जागी यह कौन अरे!

किरणें लहरों से खेल रहीं
मेरे कवि! आह, नयन खोलो।
क्यों सिसक-सिसक रो रहे हाय,
हे देव-दूत, यह क्या बोलो?

'आँखों से पूछो, स्यात् आँसुओं
में गीतों का भेद मिले?
मुझ को इतना भर ज्ञात, व्यथा जब
हरी हुई, सब वेद मिले!

पाली मैं ने जो आग, लगा
उस को युग का जादू-टोना;
फूटती नहीं, हाँ जला रही
चुप के उर का कोना-कोना।

आँखें जो कुछ हैं देख रही
उन का कहना भी पाप मुझे।
'क्या से क्या होगा विश्व" यही
चिन्ता, विस्मय, सन्ताप मुझे।

मुझ को न याद किस दिन मैं ने
किस अमर-व्यथा का पान किया:
दुनिया कहती है गीत, रुदनकर
मैं ने साँझ-विहान किया।"

आँसू पर देता विश्व हृदय
का कोहनूर उपहार नहीं;
रोओ कवि! दैवी व्यथा विश्व में
पा सकती उपचार नहीं।

रोओ, रोना वरदान यहाँ
प्राणों का आठों याम हुआ।
रोओ, धरणी का मथित हलाहल
पीकर ही नभ श्याम हुआ।

खारी लहरों पर स्यात् कहीं
आशा का बहता कोक मिले,
रोओ कवि! आँसू-बीच स्यात्
जगती को नव आलोक मिले।



स्व० महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर
के० सी० आइ० ई० (दरभङ्गा)

बौद्ध नैयायिक

त्रिपिटकाचार्य श्रीयुत भदन्त राहुल सांकृत्यायन

[१]

मैथिल नैयायिक

न्याय-शास्त्र और वाद-विवाद से बहुत सम्बन्ध है। यदि बौद्ध, ब्राह्मण तथा दूसरे सम्प्रदायों का पूर्वकाल में आपस का वह विचार-संघर्ष और शास्त्रार्थ न होता रहता, तो भारतीय न्यायशास्त्र में इतनी उन्नति न हुई होती। वाद या विचारों के शाब्दिक संघर्ष की प्रथा के आरम्भ होते ही वादी–प्रतिवादी के भाषण आदि के नियम बनने लगते हैं। भारत में ऐसे शास्त्रों का उल्लेख हम सर्व-प्रथम ब्राह्मण-ग्रंथों के उपनिषद्-भाग में पाते हैं।

वेद का संहिताभाग मंत्र और ऋचाओं के रूप में होने से, वहाँ भिन्न-भिन्न ऋषियों के विवादों का वैसा उल्लेख नहीं हो सकता, तो भी वशिष्ठ और विश्वामित्र का आरम्भिक विवाद ही इसका कारण हो सकता है, जो कि वशिष्ठ के वंशज, विश्वामित्र और उनकी संतान के बनाए ऋग्वेद के भाग को पढ़ना निषिद्ध समझते थे और वही बात विश्वामित्र के वंशज वशिष्ठ से सम्बन्ध रखने वाले मंत्र-भाग के साथ करते थे। ये बतलाते हैं कि मंत्र-काल और उसकी क्रीडा-भूमि सप्त-सिन्धु (पंजाब) में भी इसी प्रकार के वाद हुआ करते होंगे। उन वादों में भी कुछ नियम वर्ते जाते होंगे और उन्हीं नियमों को भारतीय न्याय या तर्क शास्त्र का बीज कह सकते हैं।

तब कितनी ही शताब्दियों तक आर्य लोगों में यज्ञ और कर्मकाण्डों की प्रधानता रही, युक्ति और तर्क की श्रुति के सामने उतनी चलती न थी। उस समय में भी कुछ लोग स्वतन्त्र विचार रखते थे और उनका कर्मकाण्डियों के साथ विचार-संघर्ष होता था, इसी विचार-संघर्ष का मुख्य फल हम उपनिषद् के रूप में पाते हैं। उपनिषद्-काल में तो नियमानुसार परिषदें थीं, जहाँ बड़े बड़े विद्वान् विवाद करते थे। इन परिषदों के स्थापक राजा होते थे, और वाद में विजय पानेवाले को उनकी ओर से उपहार भी मिलता था। विदेहों (तिर्हुत) की परिषद् में इसी प्रकार याज्ञवल्क्य को हम विजयी होते हुए पाते हैं और जनक उन्हें हजार गौवें प्रदान करते हैं।

सप्तसिन्धु से इस वादप्रथा को तिर्हुत तक पहुँचने में उसे पंचाल (द्वाबा और रुहेल खंड) और फिर काशी देश (बनारस, जौनपुर, मिर्जापुर, आजमगढ़ के जिले) से होकर आना पड़ा था। इस प्रकार प्राचीन ढंग की तर्क-प्रणाली सब से पीछे तिर्हुत में पहुँचती है। (यद्यपि आज कल मिथिला को तिर्हुत का पर्यायवाची शब्द मानते हैं, जैसे कि काशी, बनारस का, किन्तु प्राचीन समय में 'मिथिला' एक नगर थी, जो विदेह देश की राजधानी थी। उसी तरह काशी देश का नाम था, नगर का नहीं नगर तो वाराणसी थी, जिसका ही बिगड़ा रूप बनारस है।)

यद्यपि तिर्हुत में वादप्रथा वैदिक युग के अन्त में (६०० ईसा पूर्व के आस पास) पहुँची, किन्तु आगे कुछ परिस्थितियाँ ऐसी उत्पन्न हुईं कि भारतीय न्यायशास्त्र के निर्माण में तिर्हुत ने प्रधान भाग लिया। और बौद्ध न्याय-शास्त्र के जन्म एवं विकास की भूमि यदि मगध को कहा जा सकता है, तो ब्राह्मण-न्याय के बारे में वही श्रेय तिर्हुत को प्राप्त है।

अक्षपाद, वात्स्यायन, और उद्योतकर की जन्म-भूमि और कार्यभूमि तिर्हुत थी, यद्यपि इसका कोई उतना पुष्ट-प्रमाण

नहीं मिलता, किन्तु जब हम विचार करते हैं कि ब्राह्मण न्याय का निर्माण वेद और उसकी मान्यताओं की रक्षा के लिये मुख्य रूप से हुआ है। वेद तथा उसकी मान्यताओं पर प्रचण्ड प्रहार करने में मगध प्रधान केन्द्र बन रहा था, साथ ही जब उपनिषद् के तत्वज्ञान की अन्तिम निर्माणभूमि विदेह के होने पर भी ख्याल करते हैं तो यह बात स्पष्ट सी जान पड़ने लगती है कि ब्राह्मण न्याय शास्त्र की जन्मभूमि गंगा के उत्तर तरफ की भूमि तिर्हुत ही होनी चाहिये, जिसके कि दक्षिण तरफ मगध के बौद्ध केन्द्र थे।

"वादन्याय" की टीका में आचार्य शांतरक्षित (७४०-८४० ई०) ने अविद्धकर्ण श्रीतिचंद (१) दो नैयायिकों के नाम उद्धृत किए हैं। जिन में प्रथम ने वात्स्यायनभाष्य पर टीका लिखी थी। ये दोनों ही ग्रंथकार वाचस्पति मिश्र (८४१ ई०) से पहले के हैं किन्तु उद्योतकर भारद्वाज से पहले के नहीं जान पड़ते। इनकी जन्म-भूमि के बारे में भी हम निश्चय-पूर्वक कुछ नहीं कह सकते, किन्तु प्रतिद्वंद्विता-केन्द्र नालंदा होने से बहुत कुछ सम्भावना उनके तिर्हुत के ही होने की होती है।

वाचस्पति मिश्र के बाद तो ब्राह्मण-न्यायशास्त्र पर तिर्हुत का एकच्छत्र राज्य हो जाता है। वह उदयन और वर्द्धमान जैसे प्राचीन न्याय के आचार्यों को पैदा करता है, और गङ्गेश उपाध्याय के रूप में तो उस नव्य-न्याय की सृष्टि करता है, जो आगे चल कर इतना विद्वत्प्रिय हो जाता है कि प्राचीन न्याय शास्त्र की पठन-प्रणाली ही को एक तरह से उठा देता है। यद्यपि नव्य-न्याय के विकास में नवद्वीप (बंगाल) का भी हाथ है, तो भी हम यह निस्संकोच कह सकते हैं कि वाचस्पति मिश्र (८४१ ई०) के बाद से मिथिला (देश के अर्थ में) न्याय-शास्त्र (प्राचीन और नव्य दोनों ही) का केन्द्र बन जाती है, और हर एक काल में भारत के श्रेष्ठ नैयायिक बनने का सौभाग्य किसी मैथिल ही को मिलता है।

[२]

बौद्ध नैयायिक

ब्राह्मण न्यायशास्त्र के बारे में इतने संक्षिप्त कथन के बाद हम अब अपने मुख्य विषय "बौद्ध-नैयायिक" पर आते हैं। बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध का जीवन ईसापूर्व ५६३ सन में, और निर्वाण ४८३ में हुआ था। बुद्ध के उपदेशों के संग्रह को 'त्रिपिटक' कहा जाता है। यह पाली भाषा में अब भी मिलते हैं। यह विशाल साहित्य अप्रत्यक्षरूपेण ईसा पूर्व पांचवी छठी (कुछ स्थानों पर तीसरी तक) शताब्दी के उत्तर भारत के परिचय कराने में अनमोल सहायता प्रदान करते हैं।

इनके देखने से मालूम होता है, कि उस समय 'तक्की' (तार्किक) "वीमंसी" (मीमांसक) लोगों का बड़ा जोर था। विचार-स्वातंत्र्य उस काल की एक बड़ी विशेषता था। हर एक पुरुष अपने विचारों को खुले तौर से प्रचार कर सकता था। न उसमें राज्य की ओर से कोई बाधा थी और न समाज कोई रुकावट डालता था। परलोक मानने वाले ईश्वर-अनीश्वर-वादी ही नहीं, जड़वादी (उच्छेदवादी, देह के अंत के साथ जीवन का अंत मानने वाले) तक भी अपने मत का प्रचार करते राजा-प्रजा में खूब सम्मानित होते थे। यही नहीं पायासी जैसे कोशल के सामन्त राजा को तो अपने जड़वाद को छोड़ने में लोक-लज्जा का भय खाते भी पाते हैं। बुद्ध के समकालीन ६ आचार्यों में मक्खली गोसाल इसी मत के मानने वाले थे। शास्त्रार्थ की प्रथा तो उस समय इतनी जबर्दस्त थी कि पुरुषों की तो बात ही क्या, स्त्रियाँ तक जम्बू द्वीप में अपनी प्रतिभा की विजय-ध्वजा फहराती सी जम्बू-वृक्ष की शाखा लिये शास्त्रार्थ करने के वास्ते देश में विचरण किया करती थीं। 'त्रिपिटक' में कितने ही ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिन में बुद्ध से वाद करने की घटनाओं का उल्लेख है।

कितने ही सिंहनाद सूत्र तो इन्हीं वादों के सम्बन्ध के हैं। वहीं पहलेपहल हमें निग्रह-स्थान की झलक मिलती है और यद्यपि पीछे बौद्धनैयायिक (दिङ्नाग, धर्मकीर्ति आदि) पंचावयव वाक्य को न मान प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण-तीन ही अवयवों को मानते हैं, किन्तु सूत्रपिटक (त्रिपिटक का एक भाग) में हम कम से कम उपनय का साफ प्रयोग देखते हैं। इस प्रकार ईसापूर्व छठी शताब्दी में चतुरवयव और निग्रहस्थान से हम बौद्धन्याय का आरम्भ होते देखते हैं। ईसापूर्व तीसरी शताब्दी का ग्रन्थ ('कथा-वत्थु' (अभिधर्मपिटक) उसी प्राचीन शैली का एक वाद ग्रन्थ है। उसके बाद "मिलिन्द-प्रश्न" में भी न्याय के कुछ पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख आता है और नीति के नाम से न्याय का भी नाम आता है। 'मिलिन्दप्रश्न' का मूल रूप चाहे सागल (स्यालकोट) के यवन राजा मिनादर के समय (ई० पू० दूसरी शताब्दी) में आरम्भ हुआ हो, किन्तु जिस रूप में वह हमें मिलता है, उससे वह ईसवी पहिली दूसरी शताब्दी में परिवर्द्धित हुआ मालूम होता है। ईसवी चौथी शताब्दी में चीन-भाषा में उसका अनुवाद होने से वह उससे पीछे तो नहीं लाया जा सकता।

ईसा की पहली शताब्दी में कनिष्क के समकालीन साकेतक (अयोध्याजन्मा) आर्य सुवर्णाक्षीपुत्र भदन्त अश्वघोष के रूप में एक अद्भुत प्रतिभाशाली बौद्ध विद्वान् को पाते हैं। अश्वघोषके बुद्धचरित और कुछ टीकाओं में तथा थोड़े से छोटे छोटे अन्य ग्रन्थ तिब्बती और चीनी भाषा में अनुवादित हुये मिलते हैं। किन्तु उनके सारे ग्रन्थों को अनुवाद होने की बात तो अलग, हमें उनके बहुत से ग्रन्थों का नाम भी नहीं मालूम है। मध्यएसिया की बालुकाभूमि से ईसवी दूसरी शताब्दी का लिखा अश्वघोष का 'सारिपुत्र-प्रकरण' नाटक मिला है। 'सौन्दरानन्द' काव्य का चीनी या तिब्बती भाषा में अनुवाद नहीं हुआ था, किन्तु सौभाग्य से वह हमें संस्कृत में मिल गया। वादन्याय की टीका में आचार्य शांतरक्षित ने अश्वघोष की एक दूसरी कृति 'राष्ट्र-पाल नाटक' का जिक्र किया था। अश्वघोष महान् कवि ही न थे, बल्कि बौद्ध-दर्शन की अपूर्वता ने उन्हें ब्राह्मणधर्म से बौद्धधर्म की ओर खींचा था। उनके ग्रन्थों में यद्यपि न्याय पर कोई नहीं मिला है, किन्तु उनमें अन्य सांख्य आदि दर्शनों का नाम ही नहीं, बल्कि विवाद से रोपा गया है और उससे अनुमान होता है, कि अश्वघोष ने कोई खंड-नात्मक दर्शन ग्रन्थ जरूर लिखा होगा। ईसा की दूसरी शताब्दी के अक्षपाद के न्याय सूत्रों में हम आत्मा, शब्द प्रमाण, अवयवी आदि पर बौद्धों की ओर से किये आक्षेपों का उत्तर दिया जाते देखते हैं, उससे भी उससे पहले किसी ऐसे आचार्य का होना जरूरी मालूम होता है।

नागार्जुन

बौद्ध न्याय पर सब से पुराने जो ग्रन्थ मिलते हैं, नागार्जुन के ही हैं। नागार्जुन का जन्म बरार (विदर्भ) में हुआ था, किन्तु वह अधिकतर आन्ध्रदेश के धान्यकटक और श्रीपर्वत स्थानों में रहते थे। वह बौद्धों के माध्यमिक दर्शन (शून्यता या सापेक्षतावाद) के आचार्य थे। उनके तीन छोटे-छोटे न्याय निबन्ध अब चीनी भाषा ही में मिलते हैं, जिन में से एक का अनुवाद तिब्बती भाषा में भी है। वात्स्यायन-भाष्य में कितनी ही जगहों पर हम स्पष्ट बौद्धों के आक्षेपों के खंडन पाते हैं। वात्स्यायन के पूर्व किस बौद्ध ने ये आक्षेप किये होंगे? नागार्जुन के उपलभ्य ग्रन्थों को यदि मिलाकर पढ़ा जाय तो सम्भव है वहाँ से इस विषय पर विशेष रोशनी पड़े। लेकिन ऐसे आक्षेपों के पता लगाने के लिये उनके न्याय ग्रन्थों को ही ढूंढने की जरूरत नहीं है। अपने दर्शन के ग्रन्थों में भी वह दूसरे दर्शनों का खंडन किया करते हैं। अक्षपाद का न्यायदर्शन भी सिर्फ न्याय या प्रमाण शास्त्र पर विस्तृत ग्रन्थ लिखने वाले आचार्य दिङ्नाग हैं इसीलिये उन्हें

मध्यकालीन भारतीय तर्कशास्त्र का पिता कहा जाता है। जैसे, गंगेशोपाध्याय की तत्त्वचिन्तामणि न्यायशास्त्र में एक नये युग का आरंभ करती है, जो कि अब तक चला जा रहा है, उसी प्रकार दिङ्नाग का "प्रमाणसमुच्चय" एक नया युग आरंभ करता है, जो कि गंगेश के काल (१२०० ई०) तक रहता है।

वसुबन्धु

नागार्जुन के बाद की डेढ़ शताब्दियों में भी बौद्ध नैयायिक हुये होंगे, किन्तु उनकी कृतियों का हमें कोई पता नहीं। अन्त में हम वसुबन्धु (४०० ई०) को 'वादविधि' या "वादविधान" लिखते पाते हैं। यह ग्रंथ अब तक न संस्कृत ही में मिला है, और न इसका चीनी या तिब्बती भाषाओं में ही अनुवाद हुआ था। किन्तु इस ग्रंथ का नाम धर्मकीर्ति (६०० ई०) के 'वादन्याय' ग्रन्थ में मिलता है। "वादन्यायः परहितरतैरेष सद्भिः प्रणीतः" पर व्याख्या करते शान्त रक्षित (७४०-८४० ई०) ने लिखा है—"अयं वादन्यायमार्गः सकललोकनिबन्धनबन्धुना **वादविधानादौ** आर्यवसुबन्धुना महाराजपथीकृतः। क्षुण्णश्च तदनुमहत्यां न्यायपरीक्षायां। कुमतिमतमत्त मातङ्ग-शिरःपीठपाटनपटुभिराचार्यदिङ्नागपादैः।" इस वाक्य से मालूम होता है, कि वसुबंधु ने न्यायशास्त्र पर **वादविधान** नामक ग्रंथ लिखा था। न्यायवार्त्तिककार* उद्योतकर भारद्वाज ने भी कितनी ही जगहों पर इस ग्रन्थ का नामोल्लेख किया है, और कितनी ही जगहों पर विना नाम दिये भी खण्डन किया है, किन्तु वहाँ व्याख्या करते वाचस्पति मिश्र (८४१ ई०) ने नाम दिया है –

"यद्यपि वादविधौ साध्याभिधानं प्रतिज्ञेति प्रतिज्ञा लक्षणमुक्तं, तदप्युभयथा दोषान्न युक्तम्।"

"यदपि वादविधान टीकायां साधयतीति शब्दस्य स्वयंपरेण च तुल्यत्वात् स्वयमिति विशेषणम्।"

(न्या० वा० पृ० ११७)

पिछले उदाहरण में 'वादविधान' नाम समानार्थक होने से वह 'वाद विधि' के लिये ही प्रयुक्त हुआ मालूम होता है। वाद विधान की जिस टीका का यहां जिक्र आया है, उसके रचियता शायद दिङ्नाग थे। क्योंकि दिङ्नाग वसुबन्धु के शिष्य थे, और होसकता है, जिसे शान्तरक्षित ने, ऊपर के जिस उद्धरण में "तदनु महत्यां न्यायपरीक्षायां" लिखा है, वह न्यायपरीक्षा वसुबन्धु के वादविधान की टीका हो अथवा उसी का कोई पोषक ग्रन्थ हो।

न्यायवार्त्तिक के निम्न उद्धरणों में यद्यपि वादविधि का नाम नहीं आया है, किन्तु वे वसुबन्धु के इसी प्रसिद्ध ग्रन्थ के मालूम होते हैं।

"अपरे पुनर्वर्णयन्ति ततोऽर्थाद्विज्ञानं प्रत्यक्षमिति।"

(पृ० ४०)

इस पर टीका करते हुये वाचस्पति मिश्र ने लिखा है—

"तदेवं प्रत्यक्षलक्षणं समर्थ्य वासुबन्धवं तत्प्रत्यक्ष लक्षणं विकल्पयितुमुपन्यस्यति। अपरे पुनरिति।"

"एतेन साध्यत्वेनेप्सितः पक्ष इति प्रत्युक्तम्,

(न्याय वा० ११६)

इस पर वाचस्पति कहते हैं।

"अत्रापि च वसुबन्धुलक्षणे विरुद्धार्थनिराकृतग्रहणं न कर्त्तव्यम्।"

(ता० टी० पृ० २७३)

एक जगह उद्योतकर ने वसुबन्धु के वादलक्षण को इस प्रकार उद्धृत किया है—

"अपरेतु स्वपरपक्षयोः सिद्ध्यसिद्ध्यर्थं वचनं वाद इति वाद लक्षणं वर्णयन्ति।"

(न्या० वा० १५०)

* चौखम्भासंस्कृतसीरीज, बनारस १९१६ ई०।

यहाँ पर टीका* करते वाचस्पति ने पूर्वपक्षी का नाम वसुबन्धु दिया है—

"तदेवं स्वाभिमतवादलक्षणं व्याख्याय वासुबन्धवं लक्षणं दूषयितुमुपन्यस्यति। अपरेत्विति।"

(ता० टी० ३१७)

इन उद्धरणों से यह भी मालूम होता है कि वसुबन्धु ने अपने ग्रन्थ में प्रत्यक्ष आदि के लक्षण भी लिखे थे और वह धर्मकीर्ति के वाद न्याय की भाँति सिर्फ निग्रह स्थान ही पर नहीं लिखा गया था।

वसुबन्धु का एक ग्रन्थ तर्क शास्त्र का चीनी भाषा में परमार्थ (५५० ई०) ने अनुवाद किया था। तर्क शास्त्र ग्रन्थ का नाम न हो, पर विषय का नाम मालूम होता है।

वसुबन्धु के समय के वारे में बहुत मतभेद हैं, कितने ही पंडित उन्हें तीसरी शताब्दी में ले जाना चाहते हैं और जापान के विद्वान् डा० तकाकुसु ५०० ई० में लाना चाहते हैं। डा० तकाकुसु ने वसुबन्धु का समय निर्धारण करने में बहुत परिश्रम किया है, किन्तु उनके समय के मानने में बहुत सी कठिनाइयाँ दीख पड़ती हैं। (१) वसुबन्धु के ज्येष्ठ सहोदर असँग के ग्रन्थों का धर्मरक्षा ने चीनी भाषा में अनुवाद किया था। धर्मरक्षा ४०० ई० में चीन में थे। (२) वसुबन्धु के शिष्य दिङ्नाग का नाम कालिदास ने "मेघदूत" के प्रसिद्ध श्लोक 'दिङ्नागानां पथि परिहरन्' में किया है। वहां 'दिङ्नागानां' से बौद्ध विद्वान् दिङ्नाग से ही अभिप्राय है, इस की पुष्टि मल्लिनाथ की टीका ही नहीं करती; बल्कि प्राचीन टीकाकार दक्षिणावर्त्तनाथ भी वही लिखते हैं। कुमारगुप्त (४१५-५५ ई०) और स्कन्द गुप्त (४५५-६७ ई०) के समकालीन कालिदास से पूर्व दिङ्नाग का होना मानने पर वसुबन्धु का समय ४०० ई० के पास हो सकता है।

(३) चीनी भाषा में अनुवादित परमार्थ-कृत वसुबन्धु की जीवनी में वसुबन्धु को अयोध्या के राजा का गुरु कहा है। उधर वसुबन्धु के नाम से उद्धृत एक श्लोक "सोऽयं सम्प्रति चन्द्रगुप्ततनयः चन्द्रप्रकाशो युवा" को मिलाने पर जान पड़ता है कि वसुबन्धु चन्द्रगुप्त द्वितीय (३८०-४१२ ई०) के समकालीन थे।

(४) ३१९ ई० से ४९५ ई० तक का गुप्त काल उत्तरी भारत में बहुत ही महत्त्वपूर्ण समय है। इस समय की पत्थर की मूर्त्तियां भारतीय मूर्ति-कला की अत्यन्त सुन्दर नमूने समझी जाती हैं। अजन्ता और बाग् की कितनी ही इस काल के चित्र उस समय की चित्रकला को उन्नति के शिखर पर पहुँची प्रदर्शित करते हैं। समुद्रगुप्त (३४०-३७५ ई०) के प्रयाग वाले अशोक स्तम्भ पर खुदे श्लोक संगीत और काव्य के कौशल की सूचना ही नहीं देते हैं, बल्कि कविकुलगुरु कालिदास की कवितायें बतलाती हैं कि वह संस्कृत-कविता का मध्याह्न काल था। समुद्र गुप्त (३४०-७५ ई०) चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (३८०-४१५ ई०) कुमार गुप्त (४१५-५५ ई०) और स्कन्दगुप्त (४५५-६७ ई०) जैसे पराक्रमी शासकों को लगातार चार पीढ़ियों तक पैदा करते रहना भी उस काल की खास महत्ता ही को प्रदर्शित नहीं करता है, बल्कि यह भी बतलाता है, कि उस काल में राष्ट्रीय प्रगति सर्वतोमुखीन थी, और ऐसे समय में दर्शन शास्त्र की ओर भी कितनी ही नई विभूतियाँ जरूर हुई होंगी और वसुबन्धु और दिङ्नाग को हम इन्हीं विभूतियों में समझते हैं। और इस तरह से भी वसुबन्धु का समय ४०० ई० ठीक जँचता है।

दिङ्नाग

दिङ्नाग (४२५ ई०) वसुबंधु के शिष्य थे, यह तिब्बत की परम्परा से मालूम होता है। और तिब्बत में

* न्याय वार्तिक तात्पर्य टीका, 'चौखम्भासंस्कृत सीरीज बनारस (१९२५ ई०)

इस सम्बन्ध की यह परम्परायें आठवीं शताब्दी में भारत से गई थीं, इसलिये इन्हें भारतीय परम्परा ही कहनी चाहिए। यद्यपि चीन की परम्परा में दिङ्नाग को वसुबन्धु का शिष्य होना नहीं लिखा है, तौ भी वहाँ इसके विरुद्ध भी कुछ नहीं पाया जाता। दिङ्नाग का काल वसुबन्धु और कालिदास के बीच में हो सकता है, और इस प्रकार उन्हें ४२५ ई० के आस पास माना जा सकता है। दिङ्नाग का मुख्य ग्रन्थ प्रमाणसमुच्चय है, जो सिर्फ तिब्बती भाषा ही में मिलता है। उसी भाषा में प्रमाणसमुच्चय पर महावैयाकरणकाशिका-विवरण पञ्जिका (न्यास) के कर्त्ता जिनेन्द्र बुद्धि (७०० ई०) की टीका भी अनूदित मिलती है। दिङ्नाग भारत के अद्भुत प्रतिभाशाली नैयायिकों में थे, इसमें तो सन्देह ही नहीं।

चीनी परम्परा से मालूम होता है, कि शङ्कर स्वामी दिङ्नाग के शिष्य थे। इस विषय में तिब्बती परम्परा चुप है। हां तिब्बती परम्परा हमें बतलाती है कि दिङ्नाग के एक शिष्य ईश्वरसेन थे, जो कि धर्मकीर्ति के गुरु थे किन्तु यहां तिब्बती परम्परामें कुछ भूल मालूम होती है, जैसा कि हम आगे बतलायेंगे। शङ्कर स्वामी का न्याय पर एक ग्रन्थ 'न्याय प्रवेश' मिलता है, किन्तु तिब्बती अनुवाद में इसे दिङ्नाग का ग्रन्थ बतलाया गया है। धर्मकीर्ति ६२५ तिब्बती परम्परा ने ईश्वरसेन को धर्मकीर्ति का न्याय में गुरु माना है, और इस में सन्देह का कोई कारण नहीं मालूम होता किन्तु वहीं ईश्वरसेन को दिङ्नाग का शिष्य कहा गया है। आगे हम बतलायेंगे कि धर्मकीर्ति ६२५ ई० के आस पास थे। ऐसी हालत में धर्मकीर्ति और दिङ्नाग के बीच के दो सौ वर्षों में सिर्फ एक व्यक्ति नहीं हो सकता। अक्सर परम्परा में अप्रधान व्यक्ति छोड़ दिये जाते हैं। मालूम होता है यहां भी दिङ्नाग और ईश्वरसेन के बीच की परम्परा छूट गयी है। ईश्वरसेन का कोई ग्रन्थ किसी भाषा में नहीं मिलता किन्तु उनकी कुछ बातों का खण्डन धर्मकीर्ति ने प्रमाणवार्तिक के प्रथम परिच्छेद में किया है। दुर्वेकमिश्र (११०० ई०) ने भी अपने हेतु विन्दुकी धर्माकरदत्तीय टीका पर व्याख्या करते हुए ईश्वरसेन के मत को उद्धृत किया है इससे मालूम होता है कि ईश्वरसेन ने कोई ग्रन्थ लिखा था।

तिब्बती परम्परा बतलाती है, कि धर्मकीर्ति ने जब ईश्वरसेन के पास दिङ्नाग के प्रमाणसमुच्चय को पढ़ा तो कितने ही स्थल उनके गुरु को भी स्पष्ट न लगते थे। इसके बाद धर्मकीर्ति ने स्वयं दूसरी बार उसे अपने आप पढ़ा, और जब उन्हों ने अपने अर्थ को अपने गुरु को सुनाया तो उन्हों ने शावाशी दी, और प्रमाणसमुच्चय के अर्थ समझने में धर्मकीर्ति को उन्होंने दिङ्नाग के बराबर बतलाया। फिर धर्मकीर्ति ने तीसरी बार पढ़ा और उन्हें उस में त्रुटियां मालूम हुईं। इसी लिये धर्मकीर्ति ने दिङ्नाग के ग्रन्थों की टीका लिखने की अपेक्षा न्याय पर अपने सात स्वतंत्र निबन्ध लिखे, जिनमें प्रमाणवार्तिक उनका मुख्य ग्रन्थ है।

धर्मकीर्ति

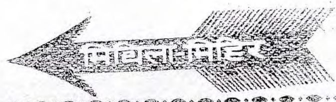
धर्मकीर्त्ति का काल (६३० ई०)। चीनी पर्यटक इत्सिङ् ने धर्मकीर्त्ति का वर्णन अपने ग्रन्थ में किया है। इसलिये धर्मकीर्त्ति ६७१ ई० से पहले हुए। किन्तु, ह्यून्-साङ् ने धर्मकीर्त्ति का नाम नहीं लिया है, इसलिये ऐतिहासिकों का अनुमान है कि ६३५ ई० में जब ह्यून्-साङ् नालंदा पहुँचे, धर्मकीर्त्ति की आयु कम रही होगी, इसलिये धर्मकीर्त्ति का काल ६३५-५० ई० माना है। लेकिन ह्यूनसाङ् के मतसे धर्मकीर्त्ति को पीछे लाना ठीक नहीं जँचता। हमारी समझ में धर्मकीर्त्ति ह्यून्-साङ् से पहले ही नालंदा में थे, क्योंकि -(१) धर्मकीर्त्ति नालंदा के प्रधान आचार्य धर्मपाल के शिष्य थे। ह्यूनसाङ् के समय (६३५ ई०) धर्मपाल के शिष्य शीलभद्र नालंदा

के प्रधान आचार्य थे जिनकी आयु उस समय १०६ वर्ष की थी। ऐसी अवस्था में धर्मपाल शिष्य धर्मकीर्त्ति ६३५ ई० में बच्चे नहीं हो सकते थे। धर्मकीर्त्ति सुदूर दक्षिण त्रिमलय (द्रविड़ देश) के प्रतिभाशाली ब्राह्मण थे। ब्राह्मण शास्त्रों को उन्हों ने खूब पढ़ा था, और पीछे बौद्ध सिद्धान्तों को अपनी स्वतन्त्र बुद्धि के अधिक अनुकूल पा वह बौद्ध हुए थे।

इस प्रकार नालंदा के प्रधान आचार्य के शिष्य होते समय वह बच्चे नहीं हो सकते थे। नालंदा के विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लिये द्वार-पण्डितों की कितनी कठिन परीक्षा से विद्यार्थियों को गुजरना पड़ता था, यह हमें मालूम है; इससे भी धर्मकीर्त्ति काफी पढ़े लिखे होने पर ही प्रवेश के अधिकारी हो सकते थे। शीलभद्र के प्रधान आचार्य होने से पूर्व ही धर्मकीर्त्ति विद्या समाप्त कर चुके थे, अन्यथा छोटे होने पर उन्हें शीलभद्र के पास भी पढ़ना पड़ता। और वैसा कोई उल्लेख नहीं है। इन सब बातों पर विचार करने से धर्मकीर्त्ति की आयु कितनी भी कम मानते ६३५ ई० में हम उसे ३०, ३५ वर्ष से कम नहीं मान सकते? फिर धर्मकीर्त्ति की प्रतिभा बौद्ध दार्शनिकों में अद्वितीय मानी जाती है, बल्कि उनके प्रतिद्वंद्वी ब्राह्मण नैयायिक जयन्त आदि भी उन्हें धीमान् धर्मकीर्त्ति कह कर सम्मानित करते हैं। ऐसा अद्भुत प्रतिभा-शाली पुरुष २५ वर्ष की उम्र में भी नालंदा में विना ख्याति पाये नहीं रह सकता। ह्यून्-साङ की चुप्पी का अर्थ हो सकता है (१) ह्यून्-साङ् के नालंदा निवास के समय से पूर्व ही धर्मकीर्त्ति का देहान्त हो चुका था और न्याय पर अधिक अनुराग न होने के कारण धर्मकीर्त्ति की कृतियों और व्यक्तित्व के प्रति उतना सम्मान भाव न होनेसे उन्होंने उनका जिक्र नहीं किया। ह्यूनसाङ् न्याय के विशेष पण्डित न थे। यह तो इसी से मालूम होता है कि उन्हों ने दिङ्नाग के प्रमाणसमुच्चय जैसे प्रौढ़ और महत्वपूर्ण ग्रन्थ का चीनी अनुवाद न कर असंग, वसुबंधु और शंकर स्वामी (? दिङ्नाग) के तीन छोटे २ न्याय ग्रन्थों का ही अनुवाद कर सन्तोष कर लिया।

(२) यह कहा जा सकता है कि ह्यूनसाङ् की जीवनी के सम्पादक उनके शिष्यों ने जान बूझ कर धर्मकीर्त्ति का जिक्र नहीं आने दिया है। ह्यूनसाङ् बड़े विद्वान् थे, इसमें सन्देह नहीं किन्तु कितनी ही जगहों पर जीवनी-लेखक बहुत अतिशयोक्ति से काम लेते हैं। उदाहरणार्थ, यदि उड़ीसा में कोई अबौद्ध पण्डित बौद्धों को शास्त्रार्थ करने के लिये ललकारता है, और उसका सन्देश नालंदा आता है, तो नालंदा ह्यून्-साङ् को अपना प्रतिनिधि चुनकर भेजता है। आजकल के पंडितों के शास्त्रार्थ की भाँति सातवीं सदी में भी शास्त्रार्थ संस्कृत में हुआ करते थे। और आजकल की भाँति उस समय भी वादी प्रतिवादी खूब कठिन दार्शनिक संस्कृत का प्रयोग करते थे। संस्कृत भाषा का व्याकरण ऐसे भी जटिल है और फिर उक्त प्रकार की संस्कृत में शास्त्रार्थ आसान काम न था। ह्यून्-साङ् प्रौढ़ अवस्था में भारत आये थे। पढ़ते पढ़ते दार्शनिक संस्कृत का समझना इनके लिये आसान हो सकता था किन्तु उतनी दक्षता प्राप्त करना संभव न था। इस जगह पर अत्युक्ति से काम लिया गया है। और ऐसी हालत में यदि धर्मकीर्त्ति ह्यून्-साङ् के समय मौजूद थे तो उन्हें चित्र पर चित्रित करना हानिकारक था। और इसलिये उन्हें जान बूझकर आने नहीं दिया गया हम दूसरे पक्ष पर विश्वास नहीं करते। हमारी समझ में धर्मकीर्त्ति ह्यून्-साङ् के नालन्दा पहुँचने से पूर्व ही गुजर चुके थे।

धर्मकीर्त्तिकी शिष्य-परम्परा तिब्बती ग्रन्थों में इस प्रकार मिलती है—



धर्मकीर्ति की शिष्य-परम्परा

१ धर्मकीर्त्ति (६२५ ई०) २ देवेन्द्रमति (६५० ई०), ३ शाक्यमति (६७५ ई०) ४ प्रज्ञाकर गुप्त (७०० ई०) ५ धर्मोत्तर (७२५ ई०) ६ यमारि [७५० ई०] ७ विनीत देव [७७५ ई०], ८ शंकरानन्द [८०० ई०], ९ बंकु पण्डित [११५० ई०], १० शाक्य श्रीभद्र [११२७-[१२२५ ई०]। शाक्य श्रीभद्र विक्रमशिला विहार (भागलपुर) के अन्तिम प्रधान आचार्य थे। विक्रम-शिला के तुर्कों द्वारा जलाये जाने पर १२०४ ई, में वह विभूतिचन्द्र (जगत्तला बंगाल), दानशील, संघश्री (नेपाल) आदि बौद्ध पंडितों के साथ तिब्बत गये। शाक्य श्रीभद्र के भोटवासी शिष्य स स्क्य पण् -छेन् आनन्दध्वज अपने ग्रन्थ में अपने गुरु की परंपरा देते हैं, जिस में बंकु पण्डित को शंकरानन्द का शिष्य बतलाया गया है। यहाँ भी जान पड़ता है, बीच के कितने ही अप्रधान व्यक्तियों को छोड़ दिया गया है। शाक्य श्रीभद्र का काल (जन्म ११२७ ई., मृत्यु १२२५ ई०) ही में निश्चित है।

इन के अतिरिक्त जिनेन्द्रबुद्धि, (७०० ई०) धर्माकरदत्त (७०० ई०) कल्याणरक्षित (७०० ई०), रविगुप्ति) ७२५ ई०), अर्चट (८२५ ई०) शांतरक्षित (७४०-८४० ई०), कमलशील (८५० ई०), जिनमित्र (८५० ई०), जयानन्त (९५० ई०) आदि कितने ही और विद्वानों ने न्याय पर अपने ग्रन्थ लिखे हैं। जिनेन्द्रबुद्धि वही हैं, जिन्होंने काशिकाविवरणपंजिका या न्यास को लिखा है। शांतरक्षित के तत्त्वसंग्रह (संस्कृत मूल) के प्रकाशित हो जाने से वह और उनके शिष्य कमल शिष्य (तत्त्व संग्रह-पंजिकाकार) विद्वानों के सामने आ चुके हैं।

—:***:—

असफल

र
च
यि
ता

पथिकाकुल इस राज-मार्ग के
पास बैठ एकाकी।
गाई तूने सकल दिवस
अविराम गीति भिक्षा की॥
किया, जहाँ तक हो सकता था
मधुर स्व-कण्ठ स्वर को।
किन्तु न रोक सका, क्षण भर तक
भिक्षु! एक भी नर को॥
मिली न जग के क्षार-सिन्धु में
कण्ठ-माधुरी तेरी।

ओ विषादघन! व्यर्थ हुई
युग युग की दैनिक फेरी॥
मिली तुझे थी जो केवल
क्रीड़ा की मुरली कर में।
दूर, सुदूर-चले आये
हो मुग्ध उसी के स्वर में॥
किन्तु, अहर्निश उन रन्ध्रों में
फूँक मधुर मुख-वायु।
पा न सकोगे इस म्रियमाण
जगत में उज्ज्वल आयु॥

साहित्याचार्य
श्रीजयकिशोर नारायण सिंह

सती-सीमन्तिनी सीता का चरित्रोत्कर्ष

श्रीयुत शिवपूजनसहाय जी

मिथिला-महोदधि-मणि मैथिली की महिमा मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र से स्वयं देवर्षि नारद ने कही है—

जगतामादिभूता या सा माया गृहिणी तव।
त्वत्सन्निकर्षाज्जायन्ते तस्यां ब्रह्मादयः प्रजाः॥११॥

❀ ❀ ❀

लोकत्रयमहागेहे गृहस्थस्त्वमुदाहृतः॥१२॥
त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मीः, शिवस्त्वं जानकी शिवा।
ब्रह्मा त्वं जानकी वाणी सूर्यस्त्वं जानकी प्रभा॥१३॥
भवान् शशाङ्कः सीता तु रोहिणी शुभलक्षणा।
शक्रस्त्वमेव पौलोमी सीता स्वाहाऽनलोभवान्॥१४॥
लोके स्त्रीवाचकं यावत्तत्सर्वं जानकी शुभा।
पुन्नामवाचकं यावत्तत्सर्वं त्वं हि राघव॥१८॥
तस्माल्लोकत्रये देव युवाभ्यां नास्ति किञ्चन॥

—अध्यात्म०, अयोध्या०, स० १

राम-सीता का विवाह हो जाने के पश्चात् राजर्षि मिथिलेश जनक ने भी रवि-कुल-गुरु वसिष्ठ और विश्वामित्र मुनि से कहा है—"एक बार नारद मुनि आकर मुझ से कह गये थे कि——

योगमायाऽपि सीतेति जाता वै तव वेश्मनि।
अतस्त्वं राघवायैव देहि सीतां प्रयत्नतः॥६५॥
नान्येभ्यः पूर्वभार्येषा रामस्य परमात्मनः॥६६॥

इसी लिए—

तदारभ्य मया सीता विष्णोर्लक्ष्मीर्विभाव्यते॥६७॥"

जनक जी ने रामचन्द्रजी से भी विवाह-काल में कहा——

अद्य मे सफलं जन्म राम त्वां सह सीतया।
एकासनस्थं पश्यामि भ्राजमानं रविं यथा॥७२॥

—अध्यात्म०, बाल०, सर्ग ६

जिस समय ब्रह्मा देवताओं के साथ भगवान् विष्णु के पास गये हैं, उस समय दुखड़े का पचड़ा सुनाकर स्तुति आदि के अनन्तर कहते हैं——

अतस्त्वं मानुषोभूत्वा जहि देवरिपुं प्रभो। २५।

—बाल०, सर्ग २

भगवान् विष्णु ने ब्रह्माजी को बतलाया है कि हम अपनी विभूतियों के साथ अयोध्याधिपति दशरथ के गृह में जन्म लेंगे, और——

योगमायापि सीतेति जनकस्य गृहे तदा।
उत्पत्स्यते तया सार्धं सर्वं सम्पादयाम्यहम्॥

—बाल०, सर्ग २, श्लोक २८

इस प्रकार मैथिली की महिमा प्रत्यक्ष है। राम और सीता की अभिन्नता ही सर्वोपरि प्रमाण है। अयोध्याकांड के छठे सर्ग (अध्यात्म रामायण) में आदिकवि वाल्मीकि मुनि ने भगवान् रामचन्द्र जी को वासस्थान बतलाते समय सीता का भी साथ ही स्मरण किया है। एक ही श्लोक पर्याप्त होगा——

"धर्माधर्मान्परित्यज्य त्वामेव भजतोऽनिशम्॥
सीतया सह ते राम तस्य हृत्सुखमंदिरम्॥५५॥"

ऋषि-मुनियों की बात जाने दीजिये। रावण ने जब भरी सभा में विभीषण का तिरस्कार किया तब अपने मंत्रियों के साथ आकाश-मार्ग में जाकर विभीषण क्या बोले? अभी वे रामजी की शरण में नहीं पहुँचे थे, तभी रावण को चेतावनी देते हैं—

कालो राघवरूपेण जातो दशरथालये।
काली सीताभिधानेन जाता जनकनन्दिनी॥३५॥

—अध्या०, युद्धकांड, सर्ग २

विभीषण परम भागवत थे। इसलिए उनकी बात भी छोड़िये। स्वयं रावण के मुख से सुनिये। मेघनाद-वध के बाद वह यज्ञ करने लगा। मंत्रानुष्ठान के समय वानरी सेना पहुँच गई। यज्ञ-विध्वंस हुआ। मन्दोदरी का घोर अपमान हुआ। वह राम-महिमा कह कर पति को समझाने लगी। तब रावण ने स्पष्ट कहा——

जानामि राघवं विष्णुं लक्ष्मीं जानामि जानकीम्॥
ज्ञात्वैव जानकी सीता मया नीता वनाद्बलात्॥ २१॥

अध्यात्म०, युद्ध०, सर्ग ११

इस के बाद उसने एक बहुत ही सुन्दर श्लोक कहा है। अप्रासङ्गिक होने पर भी "मिथिला-मिहिर" के संस्कृतज्ञ पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जा रहा है——

क्लेशादिपञ्चकतरङ्गयुगं भ्रमाढ्यं
दारात्मजाप्तधनबन्धुझषाभियुक्तम्।
और्वानलाभनिजरोषमनङ्गजालं
संसारसागरमतीत्य हरिं व्रजामि॥ ६१॥

युद्ध०, स० ११

भूभार-भंजन में भगवान् रामचन्द्र की सहायिका होने की बात स्वयं महारानी सीता ने कही है। वन-यात्रा के समय जब रामजी ने उन से वन के क्लेशों का वर्णन करते हुए भय दिखलाया और अयोध्या में ही रहने का आदेश दिया, तब उन्हों ने चूडान्त सतीत्व प्रदर्शित किया और कहा——

त्वत्समीपे स्थितां राम को वा मां धर्षयेद्वने?
फलमूलादिकं यद्यत्तव भुक्तावशेषितम्॥
तदेवामृततुल्यं मे तेन तुष्टा रमाम्यहम्।
त्वया सह चरन्त्या मे कुशकाशाश्च कण्टकाः॥
पुष्पास्तरणतुल्या मे भविष्यन्ति न संशयः।
अहं त्वां क्लेशये नैव भवेयं कार्यसाधिनी॥

—अध्या०, अयो०, स०४, श्लो० ७२–७५

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि सीताजी योग माया का अवतार थीं और सती-शिरोमणि भी। तब उन के चरित्रोत्कर्ष का वर्णन करना उपहासास्पद प्रयत्न है। जब वह योगमाया और लक्ष्मी तथा आदि-शक्ति और जगदम्बा थीं, तब उनके चरित्र का उत्कर्ष क्या दिखाया जाय? अपनी एक-दो बात के चमत्कार से ही उन्हों ने अपनी पतिभक्ति की पराकाष्ठा भी प्रकट कर दी, तब फिर ऐसी जगतीतल-धन्यकारिणी त्रिभुवन-तारिणी साध्वी का चरित्रोत्कर्ष क्या दिखाया जाय?

फिर भी, लौकिक दृष्टि से, सती देवियों का चरित्र तो कसौटी पर चढ़ाया ही जाता है। भगवती सीता का चरित्र लौकिक कसौटी पर भी खरा उतरा है।

एक ही उदाहरण देना अभीष्ट है। (देखिये वाल्मीकीय रामायण के सुन्दरकांड का ३८ वाँ सर्ग) अशोक-वन में हनुमानजी सीताजी से कहते हैं कि मेरी पीठ पर चढ़कर रामजी के यहाँ चलिये। यथा—

अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव सराक्षसात्।
अस्माद्दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते॥ २१॥
त्वां तु पृष्ठगतां कृत्वा सन्तरिष्यामि सागरम्।
शक्तिरस्ति हि मे वोढुं लंकामपि सरावणाम्॥२२॥
पृष्ठमारोह मे देवि मा विकांक्षस्व शोभने॥ २६॥

इत्यादि·····

तब सीताजी हनुमानजी से पूछती हैं——

कथं चाल्पशरीरस्त्वं मामितो नेतुमिच्छसि।
सकाशं राघवेन्द्रस्य भर्तुर्मे प्लवगर्षभ॥ ३२॥

यह सुनकर हनुमानजी पर्वताकार शरीर दिखलाते हैं। तब विश्वास-पूर्वक सीताजी कहती हैं—

तव सत्त्वं बलं चैव विजानामि महाकपे!
वायोरिव गतिश्चापि तेजश्चाग्नेरिवाद्भुतम्॥ ४२॥
अयुक्तं तु कपिश्रेष्ठ! मया गंतुं त्वया सह॥४५॥
कामं त्वमपि पर्याप्तो निहन्तुं सर्वराक्षसान्।
राघवस्य यशो हीयेत्त्वया शस्तैस्तु राक्षसैः॥५७॥
भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम॥६२॥
यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात्।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती॥६३॥
यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम्।
मामितो गृह्य गच्छेत तत्तस्य सदृशं भवेत्॥६४॥

वाल्मीकीय रामायण की तरह अध्यात्म-रामायण में भी वही बात है। सुन्दरकांड के पञ्चम सर्ग में देखिये। कन्धे पर ले चलने के लिये हनुमानजी प्रस्ताव करते हैं तो महारानी सीता उसे अस्वीकृत करके दृढता के साथ कहती हैं——

रामः सागरमाशोष्य बद्ध्वा वा शरपंजरैः।
आगत्य वानरैः सार्धं हत्वा रावणमाहवे॥७॥
मां नयेद्यदि रामस्य कीर्त्तिर्भवति शाश्वती।
अतो गच्छ कथं चापि प्राणान्संधारयाम्यहम्॥८॥

इतना ऊँचा आदर्श—ऐसा विस्मय-विमुग्ध-कर चरित्रोत्कर्ष—क्या भूमण्डल के किसी साहित्य में मिलेगा? नारी-हृदय की यह दृढता और गम्भीरता—यह सहिष्णुता और धीरता—भारत के सिवा और कहाँ मिलेगी? इसी लिए ललना-ललाम-भूता मैथिली विश्ववन्द्य सती-शिरोमणि हैं। तभी तो भगवान् रामचन्द्र ने हनुमान जी के द्वारा मुद्रिका के साथ महारानी सीता को यह सन्देश भेजा था–

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा।
जानत प्रिया एक मन मोरा॥
सोमन रहत सदा तोहि पाहीं।
जानु प्रीति-रस इतनेहि माहीं॥

—'रामचरित मानस'

—※※※—

खँड़हर की रानी

बिहँस रहा लावण्य तुम्हारे वन-कुसुमों की लाली में,
लहराती साकार कल्पना धानों की हरियाली में।
मिट्टी में है छिपी वास अब भी अतीत के फूलों की,
मैं साजूँगा आज अर्चना खँडहर की इन धूलों की।
फटो अरी मिथिला की वसुधा, खोलो हृदय, दिखाओ तो,
कहाँ छिपी जानकी दुलारी मुझ को आज बताओ तो।
पूछूँ इन अति जटिल वटों से, पूछूँ पता तथागत का,
मां टँग रहा चित्र मानस में आज युवा योगीव्रत का।
मैं न कहूँगा, बोल गण्डकी! तू विद्यापति की बानी,
सोते सदियाँ गईं आज तो जागो खँड़हर की रानी!

—श्रीकपिलदेव नारायण सिंह
"सुहृद"

वररुचि और हलायुध मैथिल थे ?

राजपण्डित श्रीयुत बलदेव मिश्र जी

शायद ही कोई ऐसा भारतवर्ष में मिले, जो महाराज विक्रमादित्य की सभा के नव रत्नों से अपरिचित हो। हम नहीं समझते कि संस्कृत भाषा से, जिसे अणुमात्र भी सम्पर्क होगा, उस की जिह्वा पर 'रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य' वाला श्लोक नहीं नाचता होगा ?

वररुचि का नाम सभी ने सुना है, उन की विद्वत्ता का लोहा लोगों ने माना है, किन्तु ये विक्रम-सदोरत्न महापण्डित वररुचि कहाँ के रहनेवाले थे !—यह प्रश्न अभी तक यों ही बिना हल किया हुआ पड़ा है। आइये वाचक, जरा इन की जन्म-भूमि के विषय में कुछ प्रमाण ढूढें।

मैथिलपण्डित पद्मनाभ मिश्र का व्याकरण शास्त्र पर एक ग्रन्थ उपलब्ध है, जो व्याकरणादर्श नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ में अपने वंश के परिचय में उन्हों ने कुछ पद्य लिखे हैं। पाठक उन्हें जरा गौर से पढ़ें—

"चञ्चलाऽप्यचला लक्ष्मीर्वाणी यस्य गृहे गृहे।
विष्णुवन्तमहं वन्दे विक्रमो यत्र भूपतिः॥
कालिदासादयोऽप्यन्ये संख्यावन्तः सहस्रशः।
तेषामेको वररुचिः सर्वशास्त्रविशारदः॥
तत्सुतो न्यासदत्तश्च फणिभाष्यार्थतत्त्ववित्।
जयादित्यस्तत्सुतो मीमांसाशास्त्रपारगः।
श्रीपति स्तत्सुतश्च सांख्यशास्त्रविशारदः॥
× × ×
दामोदरस्तत्सुतश्च काव्यालङ्कारकारकः
तत्सुतः पद्मनाभोऽहं मयैवैतन्निरूप्यते॥"

ऊपर के श्लोकों में विक्रमादित्य वही हैं जो शकारि थे, जिन के नाम के साथ संवत् चला है। वही कविकुलगुरु कालिदास भी हैं और साथ ही आचार्य वररुचि हैं—जो सब शास्त्रों में विशारद कहे गये हैं। फिर उन का वंश चला। न्यासदत्त आये, जयादित्य हुए, और उनसे सातवीं पीढ़ी में चल कर काव्यालङ्कार के निर्माता दामोदर उत्पन्न हुए, जिन के पुत्र यही पद्मनाभ मिश्र हैं, जिन का उल्लेख व्याकरणादर्शकार के रूप में ऊपर आ चुका है।

पद्मनाभ मिश्र मिथिला के हैं। इन के वंशज सुरेश्वर मिश्र ने सोदरपुर ग्राम का उपार्जन कर सोदरपुरीय (प्रसिद्ध 'सोदरपुरिये') वंश को चलाया, जो अत्युच्च गिना जाता है और जिन के मूल में श्रोत्रिय और योग्य ही पड़ते हैं। इस का स्पष्ट उल्लेख पञ्जीप्रबन्ध में है।

अब देखना यह है कि यह पञ्जीप्रबन्ध जो ऐतिहासिक शिलालेख, दुर्लभ तालपत्र से कम नहीं प्रामाणिक है, जिस का सिलसिला आज तक अटूट चला आ रहा है, जो मिथिला की सामाजिकता की मूल भित्ति है उस में पद्मनाभ की सन्तान सुरेश्वर को स्पष्ट शब्दों में सोदरपुरिये मूल का प्रथम प्रजापति मानते हैं, और वहीं पद्मनाभ अपने को वररुचि के वंश का अंकुर बतलाते हैं, फिर वररुचि के मैथिलत्व का प्रमाण इस से बढ़ कर और हो क्या सकता है ? कहने की आवश्यकता नहीं कि वंशावली का गणनाक्रम जो

अपने प्रामाणिक व्याकरणादर्श में उन्हों ने दिया है, वह दिन की तरह स्पष्ट है। पुष्ट प्रमाण पाये-बिना उल्लिखित बीजी पुरुषों के कोई भी वंशावली की गणना नहीं कर सकता। फिर पद्मनाभ को मैथिल नाम से पुकारने वाला संसार वररुचि को मैथिल की पगड़ी क्यों न पिन्हाएगा ?

यहाँ दूसरे तीसरे वररुचि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। श्लोक साफ कह रहे हैं कि वही विक्रम की सभा-खान का हीरा, कालिदास का योग्य साथी आचार्य वररुचि वही थे, जो दूसरी जगह के नहीं-गौतम और याज्ञवल्क्य की मिथिला के थे*।

वररुचि का लिखा 'लिङ्गवृत्ति' नाम का एक ग्रन्थ मिलता है, जिस के अन्त में लिखा है 'इत्याचार्यवररुचि-कृता लिङ्गवृत्तिः समाप्ता'।

कहना नहीं होगा कि वररुचि उस विद्या के लिये स्वर्ण युग विक्रम काल में, चोटी के विद्वान् थे। तभी तो जौहरी विक्रम ने इस गुदड़ी के लाल को अपनी सभा में ला जड़ा। इन के बनाये और भी ग्रन्थ होंगे, जो हमारे दुर्भाग्य से अभी मिलते नहीं।

वररुचि को एक महान् गौरव प्राप्त है, जो शायद ही किसी विद्वान् के भाग्य में बदा हो। इस आचार्य के कुल में ऐसे ऐसे विद्वान् हुए, जिन के नाम देश के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अङ्कित हैं। इन का एक-एक वंशधर ऐसा हुआ, जो अकेला ही किसी कुल को अमर बना सकता है। सच है—"आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः ?"

वररुचि की वंशावली पद्मनाभ तक इस क्रम से चली है—

(१) न्यासदत्त (पातञ्जलवेत्ता)
(२) जयादित्य (मीमांसक)
(३) श्रीपति (सांख्य शास्त्री)
(४) गणेश्वर (काव्यकोविद)
(५) भानु मिश्र (प्रसिद्ध कवि)
(६) हलायुध (विख्यात विद्वान्)
(७) श्रीदत्त (धर्मशास्त्री)
(८) भवदत्त (वेदान्ती)
(९) दामोदर (काव्यालङ्कारकार)
(१०) पद्मनाभ (व्याकरणादर्शकार)

इन में गणेश्वर बड़े नामी कवि हुए। इन्हीं के पुत्र भानु मिश्र थे, जिन्हों ने रसमञ्जरी आदि अनेक रीति ग्रंथ लिखे। आपने स्वरचित रसमञ्जरी में "तातो यस्य गणेश्वरः कविकुलालङ्कार चूड़ामणिः" कह कर अपने पिता का उल्लेख किया है।

× × × ×

अब 'व्याकरणादर्श' में हलायुध का नाम आता है:— "भानुदत्तस्तत्सुतो रसमञ्जरिकाकरः।
हलायुधस्तत्सुतश्च वेदशास्त्रार्थतत्त्ववित्॥"

* प्रसिद्ध है कि जिस समय बौद्धमत का प्राबल्य मिथिला की पड़ोस नेपाल में ही रहा था, वीरतीर्थ प्रभञ्जो नामक बौद्ध सन्यासी ने विरौल गाँव में पाठशाला स्थापित की। (जिस स्थान को अब भी सन्यासी डीह कहते हैं।) उस समय दिर्घोदय वंश के आचार्य वररुचि विक्रम सभा में थे। पर उनके पौत्र नवयुवक धर्मदत्त से न रहा गया, शास्त्रार्थ में जा जुड़े। विजय पाई और विक्रमादित्य से उन्हें जयादित्य की उपाधि और पारितोषिक भी मिले। अब भी उस गाँव में विक्रम के नाम पर अनेक जलाशय मिलते हैं जो इस किंवदन्ती को पुष्ट करते हैं। ले०

इस 'वेदशास्त्रार्थतत्त्ववित्' हलायुध का नाम कोषकार के रूप में प्रसिद्ध है। अमरकोष के बाद मल्लिनाथ से लेकर इधर के सभी टीकाकार हलायुध को प्रमाण रूप में उद्धृत करते हैं, और इस तरह शब्द विद्या के आसन पर प्रधान आचार्य के रूप में हम इन्हें अधिष्ठित पाते हैं। फिर भी इनकी वेद-शास्त्रज्ञता इनके सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'ब्राह्मण सर्वस्व' से मिलता है, जिसे इन्हों ने बंगाल के सेन-वंशीय राजा के आश्रय में लिखा था। और जिसके कारण से ही लोगों को इन्हें बंगाली मानने का भ्रम हुआ है।

किन्तु निष्पक्ष भाव से यदि विचार किया जाय तो आप इस मिथिला के ही लाल सिद्ध होते हैं। मैथिल पद्मनाभ के वृद्ध प्रपितामह और सुप्रसिद्ध साहित्य महारथी भानु मिश्र के पुत्र होने से इस विषय में कुछ सन्देह नहीं रह जाता है। आप अपने पूर्वजों की भाँति बंगाल नरेशों के सम्मान-भाजन बने। पितामह गणेश्वर का नाम पञ्जीप्रबन्ध में 'ढाका गणपति' कह कर आया है। जिससे उनका ढाका-राजकवि होना सिद्ध है। अगर आप अपने पूर्वजों की भाँति बंग-नरेश के आश्रित रहे तो इससे आपका मैथिलत्व नहीं छीना जा सकता। इसके अतिरिक्त इनके 'ब्राह्मण-सर्वस्व' ग्रंथ की परिपाटी मैथिल निबन्धकारों से एकदम मिलती-जुलती है। कर्मकाण्ड की पद्धति जो मिथिला में प्रचलित है उसका स्पष्ट उल्लेख 'ब्राह्मण-सर्वस्व' में हमें मिलता है। और भी अनेक प्रमाण हैं जिनसे संस्कृत-साहित्य के इस ज्योतिष्मान् नक्षत्र हलायुध का उदय इसी विद्याभूमि मिथिला में सिद्ध होता है!

मिथिला की विद्वत्परम्परा सनातन संस्कृति के साथ ही अटूट रहती आई है! उपनिषत्काल, पौराणिक युग और फिर दर्शन के समय में भी हम किसी न किसी मैथिल विद्वान् को अग्रगण्य होते पाते हैं। जिनमें वररुचि और हलायुध की भी गणना गर्व के साथ की जायगी! हलायुध स्वयं अपने विषय में 'ब्राह्मण-सर्वस्व' में लिखते हैं—

"बाल्ये ख्यापितराजवल्लभपदं शीतांशु बिम्बोज्ज्वल-
च्छत्रोत्क्षिप्त-महामहत्तक-पदं दत्त्वा नवे यौवने।
यस्मै यौवनशेषयोग्यमखिलं क्ष्मापालनारायणः
श्रीमान् लक्ष्मणसेननामनृपतिर्धर्माधिकारं ददौ॥"

× × × ×

अन्त में हम म० म० सुधाकर के 'स्मृति सुधाकर' नामक ग्रंथ से कुछ श्लोक उद्धृत करते हैं,

"श्रुतदेवादधि गतवानखिलकलां यत्र लाङ्गली रामः।
नृपतिर्यत्र विदेहो यस्य सुता विश्रुता सीता॥
गोतमोऽजनि च यत्र मुनीनामग्रणी गुणगणोरुमणीनाम्।
यः स्वतन्त्रमकरोत्किल सौत्रं तर्कतन्त्रमुदितं श्रुतितन्त्रम्।
जन्मतः प्रभृति यत्र समस्तब्राह्मणेषु निगमाभिनिवेशः।
जन्मकर्मकुलगोत्रविवेकः स्वस्वधर्मपतनव्यतिरेकः॥
यत्र व्यासतनूजो जनकादुपगत्य तत्त्वविज्ञनकात्।
आचष्ट यत्र धर्मानखिलानथ योगियाज्ञवल्क्योऽपि॥
यत्र पराशरनामा मुनिरकरोद्धर्मसंहिताः सुहिताः।
क्षेत्राणि यस्य सन्ति प्रथितान्यद्यापि सस्यानाम्॥
ऋष्यशृङ्गमहर्षि यत्रकुरङ्गीसुतोऽप्यासीत्।
यस्य चरोरुपभोगात्काममवातीतरद्रामः॥"

समय मिला और जननी मैथिली की कृपा हुई तो धूलिगर्भरत्न के समान मिथिला के वरपुत्र विद्वानों के परिचय से तुच्छलेखनी को पवित्र करने का प्रयत्न करूंगा।

प्राचीन मिथिला

मिथिला-मिहिर

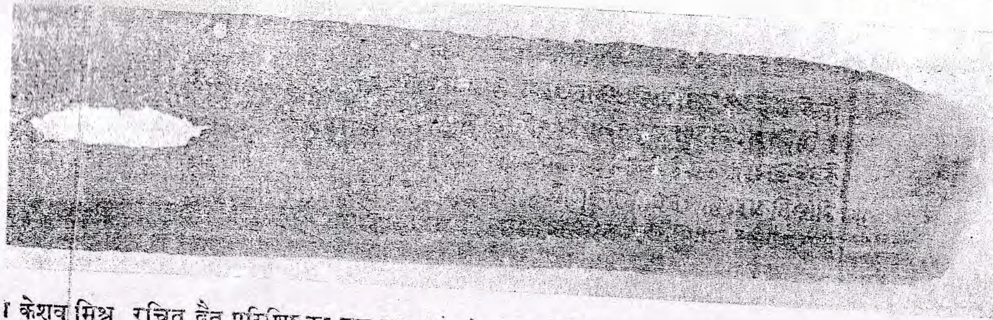
अभिनव पण्डितराज शंकर मिश्र की हस्त लिपि केशव

लोचन कवि की हस्त लिपि

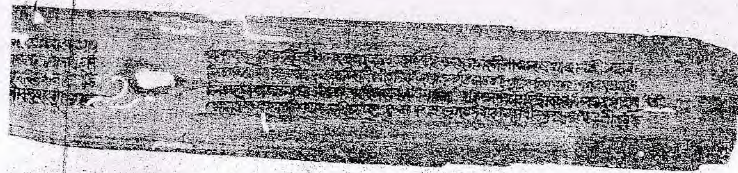


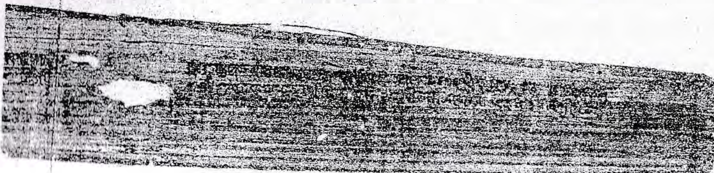
इस 'वेदशास्त्रार्थतत्त्ववित्' हलायुध का नाम कोषकार के रूप में प्रसिद्ध है। अमरकोष के बाद मल्लिनाथ से लेकर इधर के सभी टीकाकार हलायुध [illegible]

मिथिला की विद्वत्परम्परा सनातन संस्कृति के साथ ही अटूट रहती आई है! उपनिषत्काल, पौराणिक युग और फिर दर्शन के समय में भी हम [illegible]



केशव मिश्र रचित द्वैत परिशिष्टका एक पृष्ठ ल० सं० ५१३ (वि० सं० १६७८)





लिपि (ताल पत्र पर लिखे 'नैषधीय चरित' के दो पृष्ठ)

प्राचीन मिथिला

प० श्रीयुत गौरीनाथ झा जी व्याकरणतीर्थ

[प्रस्तुत लेख में विद्वान् लेखक ने मिथिला के प्राचीन इतिहास पर अच्छा प्रकाश डाला है। प्राग्वैदिक काल [illegible] मिथिला की स्थिति का पता पाठकों को इस निबन्ध में मिलेगा। —सम्पादक]

रामायण आदि में निमिवंश अथवा जनकवंश के पुरोहित गौतम अर्थात् गोतम रहूगण माने गये हैं। गोतम रहूगण अत्यन्त प्राचीन ऋषि हैं। वे ऋग्वेद, शुक्ल यजुर्वेद और सामवेद के अनेक मन्त्रों के स्मर्त्ता वा कर्त्ता हैं। शतपथ ब्राह्मण (१.४.१.१० से १७) में उल्लेख है कि अपने पुरोहित गौतम रहूगण को लेकर माथव (मिथि वा जनक) राजा उत्तर बिहार में यज्ञ करने और वहाँ उपनिवेश स्थापित करने की इच्छा से, सरस्वतीतट से, सदानीरा (मि० वेबर के मतसे गण्डक) के तीर पर पहुँचे। कोसल की पूर्वी सीमा यही गण्डक नदी थी।

उन दिनों कोई ब्राह्मण आजकल "कर्मनाशा" नदी के समान, गण्डक का जल नहीं छूता था; न गण्डक से पूर्व की ओर जाता ही था। सर्व-प्रथम इन्हीं माथव राजा ने गण्डक तट पर यज्ञ किया और वैश्वानर अग्नि का आशीर्वाद लेकर गण्डक को पार किया। माथव ने अपने नामानुसार मिथिला-राज्य की स्थापना की और कोसल तथा मिथिला (विदेह) की सीमा गण्डक मानी गयी। शतपथ से हमें इतनी ही बातें मालूम होती हैं। तैत्तिरीय-ब्राह्मण (३.१०.९.९) में 'जनक को विदेह' का पुत्र माना गया है—"जनको वैदेहः।"

महाभारत (शान्तिपर्व, ३६० अध्याय) में उल्लेख है कि याज्ञवल्क्य ने अपने मामा (वैशम्पायन) से यजुर्वेद (तैत्तिरीयसंहिता) पढ़ी थी; परन्तु गुरुदेव के कोप-भाजन हो जाने के कारण उन्होंने तैत्तिरीय को उगल दिया अथवा [illegible] गये। अनन्तर सूर्य की तपस्या करने के कारण याज्ञवल्क्य को शुक्ल यजुर्वेद (वाजसनेय) और शतपथ-ब्राह्मण प्राप्त हुए अथवा ऐतिहासिकों की दृष्टि में, इन दोनों वैदिक [illegible] को याज्ञवल्क्य ने बनाया।

अधिकांश विद्वानों का मत है कि [illegible] यजुर्वेद-संहिता का विभाग वेद-व्यास का किया हुआ नहीं और व्यासजी के द्वारा विभक्त, संगृहीत अथवा [illegible] वेदों पर ही सायणाचार्य ने अपना भाष्य किया है। [illegible] सायण ने शुक्ल यजुर्वेद पर भाष्य नहीं किया है। [illegible] आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थों के मत से ऋषि याज्ञवल्क्य ने ही शुक्ल-यजुर्वेद और शतपथ-ब्राह्मण को मिथिला में बैठकर [illegible] के यज्ञ में स्मरण किया अथवा बनाया है। यह भी [illegible] में रखने की बात है कि, शुक्ल-यजुर्वेद को छोड़ कर [illegible] किसी भी वेद के मन्त्रों के स्मर्त्ता वा कर्त्ता याज्ञवल्क्य नहीं थे।

बम्बई के प्रसिद्ध विद्वान् रायबहादुर प्रो० [illegible] शुक्ल यजुर्वेदीय ब्राह्मण हैं। उन्होंने इस वेद के और मिथिला राज्य के सम्बन्ध में वर्षों तक बहुत कुछ छान-बीन की है। उन के मत का निष्कर्ष यह है कि, "मिथिला में बहुत [illegible] अन्नदाता (वाजसेनी) देवरात नाम के ऋषि रहते थे, उन्हीं के पुत्र याज्ञवल्क्य थे। याज्ञवल्क्य ने अपने मामा वैशम्पायन से वेद पढ़ा था और उद्दालक आरुणि से वेदान्त पढ़ा था (बृहदारण्यकोपनिषद् देखिये)। वेदान्त के पा[illegible]

गामी विद्वान् होने के कारण ही याज्ञवल्क्य राजर्षि जनक के पूज्य और पुरोहित थे। याज्ञवल्क्य की ही मैत्रेयी और कात्यायनी नाम की दो ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ थीं। याज्ञवल्क्य योगीश्वर थे। उनकी बनायी स्मृति भी है।

पूने के प्रथित-यशा इतिहासज्ञ और "भारत इतिहास संशोधक-मण्डल" (पूना) के सर्वस्व रावबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य ने बहुत खोज-ढूँढ़ कर के निश्चय किया है कि ऋग्वेद के निर्माण के समय आर्यों को सदानीरा (गण्डक) और मिथिला का पता नहीं था; क्योंकि ऋग्वेद में इन दोनों का कहीं भी नामोल्लेख तक नहीं है। ऋग्वेद के समय आर्य लोग सरयू तक गये थे; क्योंकि सरयू का उल्लेख ऋग्वेद (४. ३०. १८. ५. ५३. और १०. ६४. ९) में है। फलतः उत्तर वैदिक काल में आर्यलोग विदेह या मिथिला गये थे। विख्यात ऐतिहासिक बा० काशीप्रसाद जायसवाल की भी यही सम्मति है।

कहते हैं कि, शुक्ल यजुर्वेद, शतपथ-ब्राह्मण आदि जिन वैदिक ग्रन्थों में विदेह, मिथिला, जनक, सदानीरा आदि का उल्लेख मिलता है, वे भाषा और विषय की दृष्टि से उत्तर वैदिक काल के ग्रन्थ हैं। शतपथ-ब्राह्मण में तो अर्हत, श्रमण, प्रतिबुद्ध आदि जैनों और बौद्धों के अत्यन्त प्रिय शब्द भी हैं। किन्तु अंग्रेज वेदज्ञ मैक्डानल साहब आदि की यह राय सर्व-प्रसिद्ध है कि, शतपथ से ही जैनों और बौद्धों ने इन शब्दों को अपनाया है।

ऐसी अनेक बातों की भली-भांति समीक्षा करके वैद्यजी ने निश्चित किया है कि, शुक्ल यजुर्वेद और शतपथ को बने ५००० वर्ष हुए और मिथिला-राज्य की स्थापना भी इसी समय हुई थी। परन्तु हमारी छोटी बुद्धि में यह बात नहीं आती कि जब कि ऋग्वेद (मण्डल-३१ और ३८ सूक्त) के अनेक मन्त्रों के कर्त्ता रहूगण को लेकर "माथव" राजा मिथिला गये थे; तब मिथिला-राज्य का प्रारम्भ प्राग्वैदिक काल अथवा ऋग्वेदीय काल (वैद्यजी के मत से लगभग ७ हजार वर्ष) क्यों न माना जाय? और फिर, जब कि ऋग्वेद आदि का काल भी अबतक निश्चित नहीं हुआ है, तब मिथिला-राज्य अगणित काल का राज्य क्यों न माना जाय?

पुराणों में ऐतिहासिकों की दृष्टि में विष्णुपुराण सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता है। प्रो० एच० एच० विल्सन की विष्णुपुराण पर अंग्रेजी में टीका भी है। विष्णुपुराण (४र्थ अंश, १ म परिच्छेद) में लिखा है कि वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु के दूसरे पुत्र का नाम निमि था। निमि ने एक दीर्घ काल व्यापी यज्ञ कराना चाहा और उस में पुरोहित बनाना चाहा वशिष्ठ को। परन्तु इसके पहले ही वशिष्ठ ने इन्द्र यज्ञ में जाना स्वीकार कर लिया था। वशिष्ठ ने निमि का निमन्त्रण तो स्वीकार कर लिया, परन्तु इन्द्र-यज्ञ के अनन्तर के लिये। इधर निमि ने बीच ही में गौतम ऋषि से अपना यज्ञ कराना प्रारम्भ कर दिया।

इन्द्र के यहां से लौटने पर वशिष्ठ ने यह सब देखकर निमि को शाप दिया—"तुम्हारी देह न रहे, तुम विदेह हो जाओ। फलतः निमि का, यज्ञ में ही देहान्त हो गया। यज्ञान्त में महर्षि ने निमि को, तपोबल से जीवित कर दिया। परन्तु निमि ने ऋषियों से कहा कि, मैं अब जीना नहीं चाहता। यदि वर देना हो तो, मुझे यही वर दीजिये कि, मैं सदा मनुष्यों के पलकों पर निवास करूं। 'ऋषियों ने यही वर दिया। अनन्तर ऋषियों ने राजा के लिये, निमि का शरीर मथ डाला; क्योंकि अराजक राज्य का चलना असम्भव था। मथने से एक तेजस्वी पुरुष उत्पन्न हुए। स्वयं उत्पन्न होने के कारण उनका नाम "जनक" पड़ा। मथने से उत्पन्न होने के कारण दूसरा नाम मिथि, मिथिल वा माथव हुआ और देह से उत्पन्न होने के कारण तीसरा नाम विदेह वा वैदेह पड़ा। "आईने-तिरहुत" नाम की किताब में लिखा है कि पिता के समान प्रजा-पालन करने के कारण 'जनक' (पिता) नाम पड़ा था। जनक की ही बसायी हुई पुरी का नाम मिथिलापुरी पड़ा। वाल्मीकि-रामायण के मतानुसार निमि की पुरी का नाम "वैजयन्त" था। यह गौतमाश्रम के पास थी; वही विख्यात मिथिला पुरी थी।

इससे विदित होता है कि, निमि और जनक दोनों का ही राजधानी बनाने में हाथ था। ऐतिहासिकों की राय में नेपाल का जनकपुर ही मिथिला की राजधानी अथवा वैजयन्त था। भविष्यपुराण और श्रीमद्भागवत भी विष्णुपुराण की बातों का अनुमोदन करते हैं।

पुराणों से यह भी पता चलता है कि, इस जनक के वंश में जनक नाम के कई राजा होगये हैं और मूल जनक का एक नाम सीरध्वज भी था। सीरध्वज के भाई कुशध्वज ने मथुरा के पास "साङ्काश्या" नाम की राजधानी बसायी थी। सीरध्वज ही सीता के पिता थे। उनके तीन नामों पर सीता के भी तीन नाम प्रसिद्ध हैं---जानकी, मैथिली और वैदेही।

पुराणों में लिखा है कि निमि के बड़े भाई विकुक्षि से रघुवंश चला था, जिसमें रामचन्द्र हुए थे। भगवान् रामचन्द्र जब मिथिला आये थे, तब मार्ग में उन्हें "विशाला" नाम की नगरी मिली थी, जहां के राजा सुमति थे। श्रीयुत दुर्गादास लाहिड़ी का मत है कि इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम "विशाल" था और उन्हों ने अपने नाम पर विशाला वा वैशाली नाम की पुरी बनायी थी। विशाला का ही वर्तमान नाम बसाढ़ (मुजफ्फरपुर जिले में) है। महाभारत (भीष्मपर्व) में लिखा है कि विदेहराज ने महाभारत में कौरवों की ओर से युद्ध किया था। पाण्डवों ने भी एक वार मिथिला पर चढ़ाई कर के विदेहराज को पराजित किया था।

संस्कृत-साहित्य में मिथिला-राज्य और उसके संस्थापकों तथा शासकों के सम्बन्ध में जितनी बातें मिलती हैं, उन सब का सार हम ने ऊपर दे दिया है। इस से विदित होता है कि मिथिला राज्य इतना प्राचीन है कि उसकी ठीक मिति नहीं जानी जा सकती। वह राज्य यज्ञमय था तथा यहाँ के शासक महा विद्वान् धर्म-परायण और प्रजा के पितृवत् पालक थे।

हाँ, मिथिला-राज्य की सीमा के सम्बन्ध में भी संस्कृत के अनेक ग्रन्थों में उल्लेख है। "शक्ति सङ्गम तन्त्र" में लिखा है।

> गण्डकी तीरमारभ्य चम्पारण्यान्तरं शिवे।
> विदेहभूः समाख्याता तैरभुक्ताभिधातु सा॥

मतलब यह कि, तीरभुक्ति कही जानेवाली विदेह भू (जनक-राज्य) गण्डकी (गण्डक) के तीर से लेकर चम्पारन† (मोतिहारी जिले) की अन्तिम सीमा तक फैली हुई है। वृहद् विष्णुपुराण का मत है कि—

> "कौशकीन्तु समारभ्य गण्डकीमधिगम्य वै।
> योजनानि चतुर्विंशद् व्यायामः परिकीर्त्तितः।
> गङ्गा-प्रवाहमारभ्य यावद्धैमवतं वनम्।
> विस्तारः षोडश प्रोक्तो देशस्य कुरुनन्दन।
> मिथिला नाम नगरी तत्रास्ते लोक-विश्रुता।" आदि

अर्थात् कौशकी नदी से लेकर गण्डकी तक मिथिला-राज्य की पूर्वी-पश्चिमी लंबाई २४ योजन (९६ कोस), और गङ्गा से लेकर हैमवतवन (हिमालय) तक चौड़ाई १६ योजन (६४ कोस) है। इसी देशमें लोक-विख्यात मिथिला नाम की नगरी है।

संस्कृत के कई ग्रन्थों में इसी तरह के अन्य कितने ही कथन मिलते हैं। भविष्यपुराण का "तैरभुक्तस्य पार्श्वतो" वचन अतीव प्रचलित है। तीरभुक्ति शब्द अनेक पुस्तकों में आया है। नदी तट की भूमि को तीरभुक्ति कहा जाता है। तीरभुक्ति का हिन्दी में तद्भव तिरहुत है।

† किसी के मत में चम्पारण्य से चम्पानगर (पुर्णिया जिले का स्थान) है। —सम्पा०

ऊपर के प्रमाणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि मिथिलाराज्य एक विशाल राज्य था। उस में वर्तमान समस्त तिरहुत डिवीजन और नेपाल-राज्य की तराई आदि थे। कई ऐतिहासिकों के मत से उस में सारा पुर्निया जिला भी सम्मिलित था। विदेह-राज्य को "देश" भी कहते थे। मिथिला-देशकी एक अखण्ड राष्ट्र-भावना थी। राजधानी का नाम मिथिला (वर्तमान जनकपुर) था। मिथिलापुरी लोक-विश्रुत थी। मिथिलाराज्य के अन्तर्गत विशाला नगरी और उसका राज्य भी था। "मथ्यन्ते शत्रवो यस्यां सा मिथिला" (मथ् + इलच्) निर्वचन से यह भी विदित होता है कि यहाँ के शासकों के प्रचण्ड भुजदण्डों में प्रबल प्रताप था।

सातवीं शताब्दी में प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसांग वैशाली और मिथिला गया था। बनारस से वह पहले "चेंचु" गया। "चेंचु" शब्द का अर्थ "युद्धनाथ" है। "चेंचु" से चीनी यात्री का मतलब गाजीपुर (बनारस कमिश्नरी) से था। गाजीपुर का असली नाम "गर्जनपुर" वा "गर्जनपति" था। "गर्जनपुर" का हिन्दी में तद्भव गाजीपुर है। उस यात्री ने गाजीपुर की परिधि ३३३ मील लिखी है और गाजीपुर से वैशाली को १०३ मील बताया है।

हुएनसांग ने लिखा है कि वैशाली ब्रिजियों की राजधानी थी। वहांसे वह जनकपुर गया था। उसने जनकपुर का नाम "चेंशुना" लिखा है। कनिंघम साहब और बाबू काशीप्रसाद जायसवाल का सिद्धान्त है कि पाणिनि ने जिन वृजियों की बात लिखी है, उनके दो भेद हैं---लिच्छवी और वैदेह। वे दोनों ही एक जाति वा राष्ट्र के शाखा-रूप थे। वृजियों को ही पाली में "वज्जि" कहा गया है। थारू लोग चम्पारन के आर्यों को आज तक "बजी" कहते हैं। कनिंघम की सम्मति है कि वैशाली वाले लिच्छवी और मिथिला वाले वैदेह हैं तथा विदेह-राज्य सारन जिले से पुर्निया जिले तक फैला हुआ था।

वैदिक साहित्य और बौद्धों के जातकों से पता चलता है कि विदेहों वा वैदेहों में राजतन्त्र शासन प्रणाली थी, परन्तु पीछे प्रजातन्त्र शासन प्रणाली प्रचलित हो गयी। महर्षि पतञ्जलि ने भी विदेहों को प्रजातन्त्री कहा है। लिच्छवियों में ही जैन तीर्थङ्कर महावीर का मातृकुल था और इनसे बुद्ध का भी सम्बन्ध था। विदेहों और लिच्छवियों का राज्य उन्नति के शिखर पर आसीन था। किसी भी राजा को इन दोनों के साथ लोहा लेने का साहस नहीं होता था। एकबार मगध राज्य के महामन्त्री बुद्ध भगवान् से पूछने गये कि लिच्छवियों और विदेहों पर आक्रमण करना चाहिये वा नहीं?

बुद्ध ने अपने प्रधान शिष्य आनन्द को सम्बोधन करके उत्तर दिया कि, "आनन्द, (१) जबतक वज्जि (लिच्छवी और विदेह) पूरी-पूरी और जल्दी-जल्दी सभाएँ करते हैं, (२) जबतक वे एक मत होकर सारा कार्य करते हैं, (३) जबतक वे प्राचीन नियमों का उल्लङ्घन नहीं करते, (४) जबतक वे वृद्धों की प्रतिष्ठा करते हैं, (५) जबतक वे स्त्रियों और बालिकाओं को नहीं भगाते, (६) जब तक वे अपने चैत्यों की भक्ति करते हुए धर्म में दृढ़ रहते हैं और (७) जब तक वे अपने अर्हतों (साधुओं) का पालन करते हैं, तब तक उनके (वज्जियों के) पतन की शङ्का नहीं की जा सकती, बल्कि उनके उन्नत और सम्पन्न होने की आशा करनी चाहिये। इन बातों को सुनकर महामन्त्री ने धीरे से कहा-"तबतो मगध के महाराज वज्जियों पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते!"

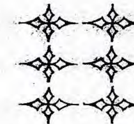
उपर्युक्त अवतरण से जाना जाता कि 'जनक,--वंश' कितना संघटित, प्रतापी, प्राचीन मर्यादा का रक्षक, वृद्धों और स्त्रियों का सम्मान करनेवाला, धर्म पर दृढ़ और साधु-रक्षक था। ५६ पीढ़ियों तक अकण्टक राज्य करने के बाद महापराक्रमी जनक-वंश समाप्त हुआ। इस समुज्ज्वल वंश के पुरोहित गौतम थे जिनका बनाया न्याय-शास्त्र है।

यह बात लिखने की कदाचित् आवश्यकता नहीं कि न्याय के महा विद्वान् वासुदेव सार्वभौम तथा रघुनाथ शिरोमणि और स्मार्त्त रघुनन्दन आदि वङ्गीय विद्वान् मिथिला के ही शिष्य थे। अबतक मिथिला में गौतमाश्रम अवस्थित है। गौतम की अहल्या का आश्रम भी है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जनक-वंश के अवसान के पश्चात् हजारों वर्षों तक मिथिला का इतिहास तमसावृत्त है। एकाएक हमें बहुत नीचे उतर आना पड़ता है और १०८९ ई० में हम न्यायदेव वा नान्यदेव नामक क्षत्रिय राजा को तिरहुत मिथिला के शासक के रूप में पाते हैं।

नेपाल में इनका एक शिलालेख भी मिला है। इन्हों ने सीतामढ़ी के पास अपनी राजधानी बनायी थी। इनके वंश में ६ राजा हुए, जिन में अन्तिम राजा हरिसिंहदेव १३२४ ई० में राज्य छोड़कर पर्वत-वासी हो गये। इन्ही के सभापण्डित कामेश्वर झा ने, दिल्ली के बादशाह मुहम्मद तुगलक से उसी साल तिरहुत का पट्टा अपने नाम लिखा लिया और अपने बड़े लड़के भवसिंह देव को राज्य सौंप दिया। १५४८ ई० तक इस वंश ने राज्य किया।

सम्राट् अकबर से महेश ठाकुर के हाथ किस प्रकार यह राज्य आया, रघुनन्दन राय का शिष्यभाव कितनी उच्चकोटि का था और खण्डवला-कुल-भास्कर महेश ठाकुर तथा उनके वंशज (दरभंगा-राजवंश) ने कैसे मिथिला-राज्य को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया, ये सब बातें हमलोगों के लिये हस्तामलकवत् हैं, इन्हें लिख कर हम पाठकों का समय नहीं लेना चाहते। दिव्य और भव्य "प्राचीन मिथिला" की थोड़ी सी चर्चा यहाँ कर के अपनी लेखनी और हृदय को पवित्र बनाना ही हमारा मतलब था। वह पूरा हो गया, बस।

इस वंश के अन्तिम राजा कंसनारायण के पश्चात् उन के कायस्थ कर्मचारी (मजुमदार), मजलिस खां और बिहार के राजपूतों का मिथिला या तिरहुत पर राज्य रहा। बीच बीच में गयासुद्दीन तुगलक, इसलाम शमसुद्दीन बाँगड़, नसरत खां आदि ने तिरहुत और मिथिला राज्य पर कई बार आक्रमण भी किया था। अन्त को यह विस्तृत विदेह राज्य मुसलमानों के हाथ में चला गया।



मिथिला में दर्शन

प० श्रीयुत जटेश्वर झा जी, मी० न्या० वे० का० तीर्थ

मिथिला में दर्शन का विकाश कबसे है, इसका ठीक ठीक पता लगाना कठिन ही नहीं असम्भव है। क्यों कि जब उपनिषदों में दर्शन विद्या का प्रकाश मिथिला में कहा गया है, तब इसी से सिद्ध होता है कि उससे पहले ही से दर्शन विद्या का प्राधान्य मिथिला में था, जैसा कि—बृहदारण्यकोपनिषत् के ३ रे अध्याय की "जनकोह वैदेहः" इत्यादि आख्यायिका से स्पष्ट प्रतीत होताहै कि राजर्षि जनकजी के यहां दूर देश से आध्यात्मिक विद्या में वार्तालाप करने लोग आया करते थे। उसी बृहदारण्यक से साफ साफ जानपड़ता है कि मुनियों में सब से बढ़कर याज्ञवल्क्यमुनि आध्यात्मिक विद्या में निपुण थे। मिथिला के परमर्षि याज्ञवल्क्य का योगीश्वर शब्द से परिचय देना साबित करता है कि वे योगदर्शन (योगाभ्यास) में भी सब से अग्रगण्य थे, जैसा कि—"योगीश्वरंयाज्ञवल्क्यं संपूज्य मुनयोऽब्रुवन्" याज्ञवल्क्यस्मृति के इस पहले श्लोक से सिद्ध होता है।

आस्तिक दर्शन छः माने गए हैं (१) पूर्व मीमांसा (२) उत्तर मीमांसा (वेदान्त) (३) सांख्य, (४) योग (५) वैशेषिक (प्राचीनन्याय) (६) न्याय। इनमें मीमांसा, वेदान्त, न्याय, तीन प्रधान माने गए हैं। सांख्य, योग, और वैशेषिक किसी न किसी प्रकार से यथासंभव उनतीनों के उपकारक हैं। इसीलिए आजतक भी मीमांसा, वेदान्त, न्याय, का ही प्रचार विशेष रूपसे चला आरहा है, और जिनके विकाश करनेवाले मीमांसक, वेदान्ती, नैयायिक, नामसे ज्यादे प्रसिद्ध हैं।

मिथिला में इन दर्शनोंका कितना विकाश पहले से चला आरहा है, यह नीचे लिखे वृत्तान्त से पाठक लोग स्वयं समझेंगे—जब शंकराचार्य्य अद्वैत वेदान्त को सबसे प्रधान बनाने के लिये दिग्विजय करते हुए मिथिला आए, तब मण्डन मिश्र का पता लगाने लगे, किसी से पूछने पर उत्तर मिला—

> " स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं
> शुकाङ्गना यत्र विचारयन्ति ।
> शिष्योपशिष्यैरुपगीयमान-
> मवेहि तन्मण्डन मिश्रधाम "

अर्थात् जहाँपर स्वतःप्रमाण (मीमांसा-वेदान्त) परतः प्रमाण (न्याय आदि) दर्शनोंका अध्ययन शिष्यों के उपशिष्यों से इतना होता है कि पिजड़े में रहने वाली शुकी भी रटा करती है, उसी को मण्डन मिश्र का घर समझिए। 'शंकर दिग्विजय' में ऐसा परिचय किसी का नहीं है। इसी से सिद्ध होता है कि मिथिला में और देशों की अपेक्षा अधिक ही दर्शन विद्या का प्रचार चला आरहा है। षड्दर्शन में पारङ्गत होनेपर भी मण्डन मिश्र इसलिए मीमांसक उपाधि से प्रसिद्ध हुए कि उन्होंने मीमांसा में "विधिविवेक" "भावनाविवेक" आदि ग्रन्थ बनाये, जिन का आदर आज समस्त भारतवर्ष में

होता है। वेदान्त में केवल "ब्रह्मसिद्धि" नाम का मण्डन मिश्रका ग्रन्थ है, जिसकी "ब्रह्मतत्त्व समीक्षा" नामकी टीका आचार्य्य वाचस्पति मिश्र ने की है।

मिथिला में कबसे दर्शन विद्या का प्रकाश है, उसका कुछ परिचय यथामति देता हूँ। न्याय शास्त्रके प्रवर्तक महर्षि गौतम मिथिलाके थे, इस में सन्देह नहीं। मुण्डकोपनिषत् में "न्यायो, मीमांसा, धर्मशास्त्राणि" इत्यादि श्रुति में न्याय का उल्लेख होनेसे, और न्याय सूत्र पर महामुनि वात्स्यायन के भाष्य होने से, जब न्याय विद्या बहुत प्राचीन है, तब उसके प्रवर्तक महर्षि गौतम और प्राचीन हुए, न्यायदर्शनकार गौतम के विषय में चीन के भिक्षुक ने भारत-भ्रमण में लिखा है—"शाक्यबुद्धका जन्म खृष्टाब्द (इस्वी) से पहले करीब ४८७ वर्ष हुआ था," "भारतवर्ष में सबसे पहले न्यायशास्त्रकर्ता "मक-सक" नाम का ब्राह्मण था। उस भाषा में "मक" का अर्थ अक्ष (चक्षु) 'सक' का अर्थ पाद (पैर) मिलाकर अक्षपाद है" जो गौतम का नाम आजतक प्रसिद्ध है।

शाक्यबुद्ध ने न्याय शास्त्र की आलोचना की थी, जिस से सिद्ध है कि खृष्टाब्द से बहुत पहले बुद्धदेव का जन्म और उसके पहले ही गौतम रचित न्याय दर्शन का मिथिला में प्रचार था। वैशेषिक दर्शनकर्ता कणाद मुनि भी मिथिला के थे इसको काशी राजकीय पुस्तकालयाध्यक्ष पं० विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदीने सिद्ध किया है। जगद्गुरु शंकराचार्य्य से मण्डन मिश्र के शास्त्रार्थ से सिद्ध होता है कि दार्शनिक मण्डन मिश्र शंकराचार्य्य के समकालिक थे। शंकराचार्य्य का जन्म ८४५ विक्रम संवत् में हुआ था, इसलिए आज से लगभग ११०० सौ वर्ष पहले मण्डन मिश्र मिथिला में दर्शन का अध्यापन करते थे।

इनके बाद आचार्य वाचस्पति मिश्र हुए, जो दर्शनों पर टीका कर भारतवर्ष में महान् टीकाकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। इनके बनाये ग्रन्थ (मीमांसा में) मण्डनमिश्र कृत 'विधिविवेक' की टीका "न्यायकणिका", (वेदान्त में) मण्डन कृत ब्रह्मसिद्धि की टीका "ब्रह्मतत्त्व समीक्षा" और ब्रह्म सूत्रशांकर भाष्य की टीका "भामती" (सांख्य में) सांख्यकारिका की टीका "सांख्यतत्त्व कौमुदी" न्याय में न्याय वार्तिक की टीका "न्याय वार्तिक तात्पर्य्य" और 'तत्वविन्दु" "न्याय सूची निबन्ध" योग में योगदर्शन की टीका "तत्व वैशारदी" आदि आज समस्त भारत में समादृत हैं। न्याय सूची निबन्ध में इन्होंने लिखा है—"न्याय सूची निबन्धो सावकारि सुधियां मुदे। श्री वाचस्पति मिश्रे णवस्वङ्क वसु वत्सरे॥" इसलेख से पता लगता है कि वाचस्पति मिश्र ८९८ शाके में थे। वाचस्पति मिश्र उदयनाचार्य्य और रामानुजाचार्य्य, खाद्य-खण्डन कर्ता श्री हर्ष से प्राचीन थे। क्योंकि रामानुजाचार्य्य ने १०१२ शाके में स्वरचित 'श्रीभाष्य' में खाद्य खण्डन के श्लोक का उल्लेख किया है। श्री हर्ष ने खाद्य खण्डन में उदयनाचार्य्य के मत का खण्डन किया है। और उदयनाचार्य्य ने वाचस्पति मिश्रकृत न्याय वार्तिक तात्पर्य्य की 'परि शुद्धि' नामकी टीका की है, उदयनाचार्य्य ९०६ शाके में थे, यह आगे स्पष्ट होगा। मिथिला में तीन वाचस्पति मिश्र प्रसिद्ध थे, जिन में दो दार्शनिक और एक धर्मशास्त्री। दार्शनिक नवीन वाचस्पति मिश्र

श्रीहर्ष से नवीन थे इन्होंने खाद्य खण्डन पर खण्डनोद्धार टीका और न्याय सूत्र पर न्याय सूत्रोद्धार नामकी टीका की है। इनका समय न्याय सूत्रोद्धार के आदि "श्री वाचस्पति मिश्रेण मिथिलेश्वर सूरिणा। लिख्यते मुनिमूर्धन्यश्री-गौतम-मतं महत्" और अन्त के "शिवेनारसि धृतौ पादौ नत्वा पवर्गदौ। व्यलेखि न्यायसूत्राख्यं चैवे वस्वतिवासवे,' लेख से १४२८ संवत् और इनके सुधामधु नामक ग्रन्थ में १३०३ शाके लेख से दोनों को मिलाने से १२९० शाके के लगभग प्रतीत होता है। तीसरे वाचस्पति मिश्र धर्मशास्त्री, जिन के बनाये तीर्थ चिन्तामणि, विवाद चिन्तामणि, श्राद्ध चिन्तामणि, आदि ग्रन्थ हैं।

नास्तिक मत के खण्डन करने वाले शंकराचार्य्य के बाद। जब फिर नास्तिक मत का प्रचार हुआ तब मिथिला देश में आस्तिक शिरोमणि दार्शनिक उदयनाचार्य्य हुए, जिन्होंने शास्त्रार्थ से नास्तिक को परास्त किया। उदयनाचार्य्य का समय उनके रचित प्राचीन न्याय के लक्षणावली ग्रन्थ के "तर्काम्बराङ्क प्रमितेष्वतीतेषुशकान्ततः। वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधांलक्षणावलीम्" श्लोक से ९०६ शाके सिद्ध होता है, ये श्रीहर्ष से प्राचीन थे क्योंकि नैषध के टीकाकार मैथिल भगीरथ ठाकुर ने अपनी टीका मे उदयनाचार्य्य का शास्त्रार्थ श्रीहर्ष के पिता हीरक पण्डित से लिखा है। और श्रीहर्षने 'खण्डन खाद्य' ग्रन्थ में उदयनाचार्य्य के मत का खण्डन किया है। उदयनाचार्य्य के बनाये किरणावली, लक्षणावली, कुसुमाञ्जलि, न्यायपरिशिष्ट, न्यायवार्तिक तात्पर्य्य परिशुद्धि, आत्मतत्त्वविवेक, आदि दार्शनिक ग्रन्थ आज भी सारे भारत में आदर से देखे जाते हैं। इनका विशेष परिचय अन्यत्र देखिये।

जिस 'तत्त्वचिन्तामणि' को लेकर आज कई शताब्दी से समस्त भारतवर्ष में न्याय शास्त्र का प्रचार है, उसके कर्ता गङ्गेशोपाध्याय मैथिल ही थे, इन्होंने अपने तत्त्व चिन्तामणि ग्रन्थ में 'खाद्य खण्डन' मत का खण्डन किया है, इसलिए श्रीहर्ष से कुछ नवीन और टीकाकार वाचस्पति मिश्र से बहुत नवीन हैं। इनका समय अन्दाज से १२९० शाके साबित होता है; इनके बनाए तत्त्व-चिन्तामणि पर पक्षधर मिश्रका 'आलोक' बङ्गालके प्रसिद्ध नैयायिक रघुनाथ शिरोमणि और मथुरा-नाथ तर्क वागीश के क्रमशः 'दीधिति' और 'प्रकाश' नाम से टीका ग्रन्थ हैं। रघुनाथ कृत दीधिति पर जगदीश की तर्कालंकार और गदाधर भट्टाचार्य्य की जागदीशी, तथा गादाधरी टीका भारतवर्ष में न्याय कह कर प्रसिद्ध है।

पक्षधर मिश्र, शंकर मिश्र अद्वितीय दार्शनिक थे। पक्षधर मिश्र के विषय में किसी विद्वान् ने कहा है—"शंकर वाचस्पत्योः शंकर वाचस्पती सदृशौ। पक्षधर प्रति पक्षीलक्षी भूतो न चकापि" अर्थात् शंकर मिश्र और वाचस्पति मिश्र के समान शंकर महादेव और बृहस्पति हैं परन्तु पक्षधर मिश्र के बराबर कोई कहीं नहीं देखा जाता।

उस समय न्याय पढ़ने के लिए दूसरे देश से लोग आया करते थे, गङ्गेश उपाध्याय के 'तत्त्व-चिन्तामणि' की पक्षधर मिश्र की 'आलोक' नाम की टीका ही का अध्ययन अध्यापन था। कहना अतिशयोक्ति न होगा कि मिथिला ही से न्याय विद्या का प्रचार बङ्गाल में, और फिर बङ्गाल से सारे भारत



स्व० महाराजाधिराज सर रमेश्वर सिंह जी बहादुर
के० सी० आइ० ई०, जी० सी० आइ० ई०,
के० बी० ई०, डि० लिट्०, धर्मरत्नाकर

और नेपाल में हो रहा है। पत्तधर मिश्र के सहाध्यायी वासुदेव सार्वभौम जब पढ़कर बङ्गाल गए, तब कुछ दिन के बाद वासुदेव सार्व भौम के शिष्य रघुनाथ शिरोमणि पत्तधर मिश्र से पढ़ने आए। पढ़ कर देश जाने पर इनके द्वारा बङ्गाल में न्याय का प्रचार हुआ। पत्तधर मिश्र का समय १२६० के बाद १३१० शाके के भीतर सिद्ध होता है। शंकर मिश्र ने खाद्य खण्डन पर टीका की है। वर्द्धमान उपाध्याय गङ्गेश उपाध्याय के पुत्र और शिष्य थे। यह विषय, वर्द्धमान उपाध्याय के बनाये कुसुमाञ्जलि प्रकाश के आदि के "न्यायाम्भोज पतङ्गाय मीमांसापारदृश्वने। गङ्गेश्वराय गुरवे पित्रेचवऽभऽतेनमः" इस लेख से सिद्ध होता है। इन का रचित। 'कुसुमाञ्जलि प्रकाश' जो वर्द्धमान कह कर प्रसिद्ध है और न्याय निबन्ध प्रकाशग्रन्थ है, पत्तधर मिश्र के सहाध्यायी होने से पत्तधर मिश्र के समकालीन थे। रुचिदत्त मिश्र के बनाये वर्द्धमान के-ऊपर 'मकरन्द' नाम के ग्रन्थ से पता चलता है कि वर्द्धमान उपाध्याय से नवीन रुचिदत्त थे।

मैथिली कोकिल विद्यापति ठाकुर ने पत्तधर मिश्र के चाचा हरी मिश्र से शास्त्राध्ययन १३२२ शाके में किया था। हरि मिश्र का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

मिथिला राज्योपार्जक दार्शनिक महेश ठाकुर का समय—

"आसीत् पण्डित मण्डलाग्रगणितो भूमण्डलाखण्डलो
जातः खण्डवलाकुले गिरिसुता भक्तो महेशः कृती।
शाके रन्ध्रतुरंगमश्रुति मही संलक्षिते हायने
वाग्देवी कृपयाऽशुघेन मिथिला देशः स मस्तोऽर्जितः।"

इस लेख से १४७८ शाके सिद्ध होता है। महेश ठाकुर के बड़े भाई भगीरथ ठाकुर (मेघ ठाकुर) ने पत्तधर मिश्र से दर्शन पढ़कर 'किरणावली प्रकाश प्रकाशिका' नाम की टीका की है। भगीरथ ठाकुर २० वर्ष की अवस्था में ही दुर्धर्ष तार्किक हुए, यह उनके टीकारम्भ के—

विशाब्दे जयदेव पण्डित कवेस्तर्काब्धि पारङ्गतः।
श्रीमानेष भगीरथः समजनि श्री चन्द्रपत्यात्मजः॥
श्री धीरातनयेन तेनरचिता श्री मन्महेशाग्रजः।
श्री दामोदर पूर्वजेन जयताऽचन्द्र मेघाकृतिः॥'

इस लेख से सिद्ध होता है।

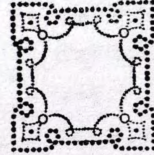
और भी कितने दुर्धर्ष दार्शनिक बराबर मिथिला में होते आए हैं, जिनका परिचय देना अल्प समय और अल्प लेख से कठिन है, यहाँ दिग्दर्शन मात्र कराया है। मीमांसा में बढ़कर कुमारिल भट्ट की प्रसिद्धि है।

आनन्दगिरि कृत 'शंकर दिग्विजय' से पता चलता है कि कुमारिल भट्ट मैथिल थे। अस्तु, कुमारिल भट्ट के श्लोक वार्तिक को मैथिल पार्थसारथि मिश्र ने टीका कर सहल किया है। खासकर पार्थसारथि मिश्र की बनाई 'शास्त्रदीपिका' आज भारत में प्रधान बनी है। पार्थसारथि मिश्र के बनाये "शास्त्रदीपिका" "न्याय रत्नमाला" "न्यायरत्नाकर" ग्रन्थ सब जगह प्रचलित हैं। पार्थसारथि मिश्र, माधवाचार्य्य और रामानुजाचार्य्य से प्राचीन थे, क्योंकि पार्थसारथि मिश्र के मत का उल्लेख माधवाचार्य्य ने "सर्वदर्शन संग्रह" में किया है, और रामानुजाचार्य्य ने तो

खास कर न्यायरत्न माला की 'नायकरत्न' नाम की टीका की है।

मिथिला देश में जैसे बराबर न्याय का प्रचार चला आया है। वैसाही मीमांसा का प्रचार बराबर से है। महाराज शिव सिंह के यज्ञ में सैकड़ों मैथिल मीमांसकों का रहना इसको पुष्ट करता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मिथिला दर्शन की जन्मभूमि रही है। दर्शन के दिग्गज आचार्यों ने इसी भूमि पर अपनी अलौकिक प्रतिभा से संसार को चमत्कृत कर विश्व का महान् उपकार किया है। यद्यपि प्राचीन काल की तुलना में—दर्शन के विषय में-मिथिला अब वहाँ नहीं है; फिर भी आज भी यहाँ ऐसे दार्शनिक विद्वान् हैं; जिनके कारण इसका मस्तक अब भी ऊँचा है। तथास्तु !



"साद्या शक्तिर्विमलमिथिलाधाम्नि कङ्कालिकेति-
ख्याता सीता जनकतनया सच्चिदानन्दरूपा।
शैवं चापं त्रिभुवनमदत्रातहृत्कं विधाय,
पूर्णानन्दं दशरथसुतं रामचन्द्रं निनाय ॥"



आदिकाल की मिथिला

श्री अच्युतानन्द दत्त जी

अति प्राचीन काल में आर्यों की आदि भूमि 'प्रत्नस्यौक' के नाम से प्रसिद्ध थी। उसको पुराणौक' भी कहते थे। संसार के सब से प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद ने इसी स्थान को सृष्टि की आदिस्थली बतलाया है। श्रद्धालु हिन्दू मनीषियों की राय से सृष्टि की आदि सभ्यता वैदिक सभ्यता ही है। यह सभ्यता कम से कम प्रलय पयोधि के अनन्तर जब सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है, तभी से चली है। सर डाक्टर टेले ने भी वैज्ञानिक दृष्टि से सिद्ध किया है कि सृष्टि की उत्पत्ति पहले-पहल भारतवर्ष में ही हुई थी। कर्नल टाड ने भी लिखा है कि भारतवर्ष के अतिरिक्त किसी दूसरे देश में सृष्टिकी प्राथमिक उत्पत्ति का पता नहीं चलता।

आर्यों के आदि वास-स्थान के विषय में भी बड़ा-मत भेद है। कोई बतलाता है कि आर्य पहले मध्य एशिया में रहते थे। एक दूसरे विद्वान् की राय है कि वे लोग यूरोप के किसी स्थान में रहते थे। उनकी विचित्र दलील भी सुन लीजिये। वे कहते हैं कि सृष्टि के आदि प्रजापति कश्यप ऋषि का जहाँ आश्रम था, वहीं पर आज 'कैस्पियन' सागर है ! लोकमान्य तिलक ने भी बड़े बड़े प्रमाणों द्वारा उत्तरी ध्रुव के पास आर्यों का आदि वासस्थान बतलाया है। स्वामी दयानन्द की राय थी कि आर्य लोग पहले त्रिविष्टप् अर्थात् तिब्बत में रहते थे, पीछे वे दक्षिण

की ओर बढ़कर भारत में चले आये।

ऋग्वेद के कुछ मंत्र इस बात के साक्षी हो रहे हैं कि आर्यलोग पहले 'प्रत्नस्यौक' वा 'पुराणौक' में रहते थे। यथा—

'अनुप्रत्स्नयौकसो हुवे ।
पुराणमोकं सख्यं शिवं वा युवोर्नरा द्रविणं जह्वाज्याम्'

उक्त मंत्र से ज्ञान पड़ता है कि वह प्रत्नस्यौक जाह्नवी का मूलप्रदेश है। मार्कण्डेय पुराण की राय में यह स्थान लम्पक (लम्बैटिया और ओरस (अर्सा) के बीच काश्मीर में है।

इस प्रत्नस्यौक वा पुराणौक का विस्तार कितना था, वह भी ऋक् के इस मंत्र से ज्ञात हो जाता है-

"मावो रसाऽनित भाकुभाक्रुनुर्मावः सिन्धुर्निरीरमत्।
मावः परिष्ठात् सरयूः पुरीषिण्यस्मे इत् सुम्नमस्तुवः ॥"

अर्थात् उत्तर में रसा (खुरासान में बहनेवाली एक नदी) ' पश्चिम में कुभा (काबुल नदी) दक्षिण में सिन्धु नदी का संगम और पूर्व में सरयू से पुरीषिणी (इरावती) तक इस प्रत्नस्यौक का विस्तार है।

इसी प्रत्नस्यौक वा पुराणौक को मनुने आर्यावर्त कहा है। उनका कहना है—

'आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥'

मनुस्मृति के दो प्रसिद्ध व्याख्याकार हुए हैं—कुल्लू

क भट्ट और मेधातिथि। इस श्लोक के आर्यावर्त्त शब्द पर कुल्लूक यह लिखते हैं—

'आर्या अत्रावर्त्तन्ते पुनः पुनरुद्भवन्तीति आर्यावर्त्तः।'

अर्थात् उनकी राय में जब जब सृष्टि होती है तब तब आर्य लोग इसी स्थान में उत्पन्न होते और फैलते हैं। मेधातिथि लिखते हैं—

'आपूर्वसमुद्रादापश्चिम समुद्राद्योऽन्तरालवर्ती देशस्तथा तयोरेव पर्वतयोर्हिमविन्ध्ययोर्यदन्तरं मध्यं स आर्यावर्त्तो बुधैः शिष्टैः उच्यते।' अर्थात् पूर्व समुद्र, पश्चिम समुद्र, विन्ध्याचल और हिमालय के बीच की भूमि 'आर्यावर्त्त' कहलाती है। आज कल भी आर्यावर्त्त इसी भूखण्ड को कहते हैं।

पूर्वोक्त ऋक्मन्त्र से ज्ञात होता है, कि पहले पूर्व में आर्यों का विस्तार सरयू नदी ही तक था, परन्तु उस मंत्र के रचना-काल में ही—अर्थात् उसी प्राचीन समय में ही—इरावती नदी तक हो गया था। इसी लिये मनु ने आर्यावर्त्त की पूर्वीय सीमा भी समुद्र ही ठहरा दी।

इस बात को पुष्टि शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित एक गाथा से भलीभाँति होती है। उसमें लिखा है—
"विदेह माथव ने मुख में अग्नि को छिपा रक्खा था। गोतम रहूगण उनके पुरोहित थे। एक बार गोतम ने माथव को पुकारा। मुख में अग्नि रहने से वह बोल नहीं सके। तब 'वीति होत्र' इत्यादि मंत्र से बुलाया। फिर भी कुछ उत्तर न मिला। तदनन्तर पुरोहित ने 'तंत्वा घृतस्नवी-महे' इत्यादि मंत्र पढ़ा। घृत के नाम से अग्निदेव माथव के मुख में नहीं रह सके, निकल पड़े। इसके बाद अपनी ज्वालामयी जिह्वा लपलपाते हुए अग्नि-देव ने पूर्व की ओर प्रस्थान किया। माथव और रहूगण अग्निदेव के पीछे-पीछे चले। नदियों ने उधर की भूमि को दलदल बना रक्खा था। अग्नि-देव ने नदियों को सुखाकर भूमि को कठोर बनाया। केवल सदानीरा जो कोशल की पूर्वीय सीमा पर बहती थी, जल पूर्ण रह सकी। अग्निदेव के कहने से माथव और रहूगण सदानीरा के पूर्व की भूमि में आ बसे, जिसका नाम 'विदेह' वा 'तीरभुक्ति' था।'

इस आख्यायिका से आलंकारिक भाग निकाल देने पर इतना स्पष्ट हो जाता है कि उस वैदिक काल में ही आर्यों ने सरयू-पार होकर पूर्व की ओर प्रस्थान कर दिया था। वहाँ की भूमि नदियों की बहुलता के कारण दलदल थी। इस लिये ऋषियों ने होम कर-कर के जमीन को सुखा डाला और वह बसने लायक बन गई। ऋषियों ने नदियों के किनारे असंख्य होम किये, जिस से इसका नाम 'तीरभुक्ति' वा 'तीरहुत' पड़ गया। 'मिथिला' और 'विदेह' नाम तो उसके पश्चात् हुए हैं।

भविष्य-पुराण में लिखा है कि अयोध्या के मनु-पुत्र निमि उस यज्ञभूमि में आये और उनके पुत्र मिथि ने भुजबल से अपने नाम पर तीरहुत के पार्श्व में नगर बसाया, जिसका नाम 'मिथिला, पड़ा और पुरी-निर्माता होने से उनका नाम 'जनक' भी पड़ गया ❋।

'निमेः पुत्रस्तु तत्रैव मिथिर्नाम महान् स्मृतः।
प्रथमं भुजबलैर्येन तैरहूतस्य पार्श्वतः॥'

❋ 'आईने-तिरहुत' में लिखा है; मिथिला के राजागण प्रजा पालक होने से ही 'जनक' कहलाते थे।

निर्मितं स्वीय नाम्ना च मिथिलापुरमुत्तमम्।
पुरीजनन-सामर्थ्याज्जनकः स च कीर्त्तितः॥
(भविष्य०)

आदि-कवि वाल्मीकि भी इसी बात को पुष्ट कर गये हैं। हाँ, वे कहते हैं कि मिथि के पुत्र का नाम जनक था—

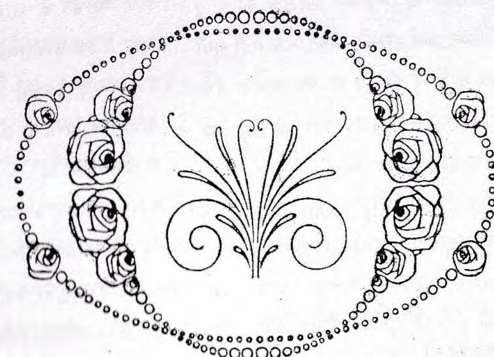
निमिःपरम धर्मात्मा सर्वतत्त्ववतां वरः।
तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनको मिथिपुत्रकः॥

व्याकरणाचार्य्य पाणिनि लिखते हैं—'मिथिला-दयश्च। उण् १।५८। मथ् इल् च। मथ्यन्ते शत्रवो अस्याम्।' जहाँ शत्रु मर्दित किये जायँ, उसका नाम 'मिथिला' है। मिथि ने अयोध्या ही के समा-नार्थक मिलते-जुलते नाम पर इस नगर का निर्माण किया होगा।

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि मिथिला तीर-हुत के पार्श्व में एक नगर था। पीछे सारा प्रान्त ही 'मिथिला' के नाम में सम्बोधित किया जाने लगा।

इस बात का प्रमाण चीनी पर्यटक यूनचवंग के भी लेखों में मिलता है। उसने लिखा है कि गङ्गा का उत्तर भाग तीन भागों में बँटा था—विशाला (वैशाली), तीरभुक्ति और वृज्जि। वृज्जि का दूसरा नाम 'मिथादि' भी है। यही प्राचीन काल का मिथिला जनपद रहा होगा।

इससे प्रमाणित हो जाता है कि मिथिला की उत्पत्ति भी उसी प्राचीन काल में हुई, जब वैदिक युग में—सृष्टि के आरंभ के कुछ ही बाद—आर्य-सभ्यता का प्रसार हो रहा था।



कविराज गोविन्द दास झा

श्री नरेन्द्रनाथ दास जी

कविता-कामिनी--कान्त कविराज गोविन्द दास की रचना से हिन्दी संसार अपरिचित-सा है। उनका काव्य-कौशल, उनका वर्णन विन्यास, उनका अनुपमेय सुमधुर शब्द समूहों का संगीत इतना अलौकिक है, इतना मनो-मुग्धकर है कि काव्य रसिकों का मन सहसा आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता!

कविराज गोविन्द दास उत्कृष्ट कोटि के कविरत्न हैं, जिनकी काव्यगरिमा से संसार का कोई भी साहित्य गौरवान्वित हो सकता है। मेरी ऐसी धारणा है कि साधारणतः सुमधुर कविता की सृष्टि करने में एवं विशेषतः अनुप्रासमय पद लिखने में भारतीय भाषा साहित्य (Indian Varnacular Literature) में वे बेमिसाल हैं।

मैथिली साहित्य से एकान्त अपरिचित व्यक्ति की यह धारणा है कि मैथिली साहित्य में एकमात्र विद्यापति ही कवि हो गये हैं। वस्तुतः मैथिली एकमात्र विद्यापति को प्रादुर्भाव कर बाँझ नहीं हो गई; मैथिली साहित्य की खान एकमात्र विद्यापति रूपी कोहेनूर को देकर भथ नहीं गयी है। प्राचीन मैथिली साहित्य में एक से एक अमोल रत्न छिपे पड़े हैं, जिनकी अवस्था देखकर कविवर **Greey** का यह वचन सहसा स्मरण हो आता है:—

"Full many a gem of purestray sereve the dark unfathomed caves of ocean bear"

मिथिला के आज एक ऐसे ही रत्न का परिचय हम 'मिथिला मिहिर' के पाठकों को देना चाहते है।

कविराज गोविन्द दास का जन्म कहाँ, एवं किस समय में हुआ था; ये प्रश्न विवाद-ग्रस्त थे। अधिकांश बङ्गीय समा-लोचक उन्हें बङ्गाली कवि मानते हैं; परन्तु यथार्थ में वे मैथिल कवि थे; और उनका पूरा नाम महामहोपाध्याय कविराज गोविन्द दास झा था। विद्यापति पदावली के संग्रह की धुन में श्रीयुत नगेन्द्र नाथ गुप्त जब मिथिला के गाँवों में घूम रहे थे। तो उन्हें गोविन्द दास के पद भी मिले थे।

स्वर्गीय चन्दा झा ने अपनी "रामायण" की भूमिका में एवं स्वर्गीय चेतनाथ झा ने "पारिजात हरण नाटक" की भूमिका में इस बात का साफ उल्लेख किया है कि गोविन्द दास मैथिल कवि थे। श्रीयुत गुप्त महोदय ने उन प्राचीन हस्त लिखित गीतों के आधार पर बङ्गला की पत्र-पत्रिकाओं में यह उद्घोषित किया कि गोविन्द दास मैथिल थे। उन की इस घोषणा से बङ्गीय साहित्य समाज में तहलका मच गया।

श्रीयुत नगेन्द्रनाथ गुप्त अपने देशवासियों के कोप और आक्षेप के भाजन बने। वे सत्य खोज पर दृढ़ थे, भला वे डिगने क्यों लगे? नहीं, उन्हें तो मिथिला में गोविन्द दास का ऐसा प्रकृष्ट प्रमाण हाथ लग गया था कि जिस के बूते पर वे किसी से लोहा ले सकते थे। इस वाद-विवाद के सिलसिले में त्रिपुरा के किसी सज्जन ने श्रीयुत गुप्त महोदय को उक्त पदावली छपा देने का वचन देकर उन वह प्राचीन प्रति मँगाली और बाद को उन्हें यह लिख भेजा कि वह ग्रन्थ भुला गया।

जिस प्रकार बङ्गालियों ने विद्यापति को भ्रमवश बङ्गाली बना लिया था, उनके बङ्गाली पिता माता की भी सृष्टि कर ली थी, उनके जन्म स्थान का भी पता बङ्गाल में लगा लिया गया था, यहाँ तक कि विद्यापति के आश्रय—दाता ओइ-

नवार--वंशकुल--तिलक शिवसिंह भी एक बङ्गाली जमींदार बना लिये गये थे, उसी प्रकार गोविन्द दास की जीवनी से सम्बन्ध रखने वाली सारी की सारी बातें बङ्गला साहित्य में गढ़ ली गई।

जिस प्रकार आज सत्य का उपासक समस्त संसार स्वर्गीय राजकृष्ण मुखोपाध्याय का कृतज्ञ है, जिन्होंने १८७५ ई० के "बङ्ग दर्शन" मासिक पत्रिका में सर्व्व प्रथम यह प्रमाणित किया कि विद्यापति मैथिल कवि थे, उसी प्रकार वह श्री युत नगेन्द्र नाथ गुप्त जी का आभारी है, जिन्हों ने सर्व प्रथम यह एलान किया कि गोविन्द दास बङ्गाली नहीं; वरन् मैथिल थे।

गोविन्ददास के प्रसंग में कुछ और लिखने के पूर्व मैं यह निवेदन कर देना चाहता हूँ कि विद्यापति एवं गोविन्द दास के प्रसंग में जो सब मनगढ़न्त बातें बङ्गाल में प्रचरित हैं, वे प्रायः जान बूझ कर नहीं किये गये। पूर्व्व में जब बङ्गाल से विद्यार्थी की टोलियाँ न्याय एवं स्मृति की शिक्षा पाने मिथिला में आती थीं, तो वे विद्यापति एवं प्रायः उनके पूर्व्ववर्ती और परवर्ती कवियों के गान अपने साथ बङ्गाल ले जाया करती थी। जैसा कि श्रीयुत सुनीति-कुमार चटर्जी अपने "Origin and Development of Bengali language and literature" नाम के ग्रन्थ में लिखा है।

बङ्गाल में वे गान अपनी नैसर्गिक माधुरी के कारण अत्यन्त लोक-प्रिय हो गये और कालान्तर में उन पदों को बङ्गला पद-संग्रह ग्रन्थों में स्थान दिये गये। उस समय पुरातत्वान्वेषण की परिपाटी इस प्रकार परिवर्द्धित न थी। मिथिला और बङ्गाल में बहुत अधिक भेद न था। दूसरे, उस समय मिथिला की विद्वन्मण्डली ने मैथिली रचनाओं को आदर की दृष्टि से देखा ही नहीं, इस लिये विद्यापति और गोविन्द दास के गीतों को बङ्गला पद संग्रह ग्रन्थों में पाकर, बङ्गालियों को सहसा विश्वास होगया कि वे बङ्गाली कवि की रचनायें हैं, जो सर्व्वथा स्वाभाविक ही था।

जो कुछ भी हो, मैथिलों को अपने पड़ोसी बङ्गाली भाइयों का ऋणी रहना चाहिये। क्योंकि अगर आज गुणज्ञ बङ्गाली गण विद्यापति और गोविन्द दास जी के पद-संग्रह कर बङ्गाल न ले गये होते, उन्हें अपने पद-संग्रह ग्रन्थों में स्थान न दिये होते, तो आज संसार को विद्यापति और गोविन्द दास जैसे अमूल्य रत्नों से प्रायः हाथ धो बैठना पड़ता। और उनके सुमधुर गीतों की कोमल झंकार से साहित्य संसार वंचित हो जाता।

क्योंकि उस समय मिथिला की पण्डित-मण्डली अपनी संस्कृत-भाषा की विद्वत्ता में इतनी अहम्मन्य बनी हुई थी कि उस की समझ में भाषा साहित्य का कुछ मूल्य ही न था। मैथिली में कविता करने वाले उपहास की दृष्टि से देखे जाते थे। मैथिल पण्डितों की यह अहम्मन्यता + आज भी कम नहीं हुई है। मैथिली में कविता करनेवालों को वे उतने आदर की दृष्टि से नहीं देखते, और उनके काव्य को 'भाखा कविता' 'भाखा कविता' कह कर मखौल उड़ाते हैं।

इसे हम मुक्तकण्ठ से स्वीकार करेंगे कि प्राचीन समय में बङ्गाल भले ही मिथिला का ऋणी रहा हो (जिसे बङ्गाली गण स्वयं खुले दिल स्वीकार करते हैं) परन्तु अर्व्वाचीन काल में मिथिला बङ्गाल की ऋणी है।

आज बङ्गालियों ने ही विद्यापति और गोविन्द दास की रक्षा की है आज बङ्गालियों ने ही वर्णन रत्नाकर जैसा

+ इस समय संस्कृत विद्वानों की रुचि मैथिली के प्रति जैसी देखी जाती है, उसे देखते हुए हम लेखक महोदय के अहम्मन्यता शब्दारोप से सहमत नहीं हैं।—सम्पा०

प्राचीन मैथिली गद्य-ग्रन्थ को खोज निकाला है, आज बङ्गालियों ने ही नेपाल से अनेकानेक मैथिली साहित्य के अनमोल रत्नों को ढूंढ ढूंढ़--कर साहित्य संसार को उन की सूचना दी है।

मेरा यह अनुमान है कि जिस तरह अंग्रेजी साहित्य में एक ओर कविकुल-कुमुद-कलाधर शेक्सपीयर अस्ताचलगामी हो रहे थे, तो दूसरी ओर मिल्टन–मार्तण्ड उदयाचल की ओर अग्रसर हो रहे थे, उसी प्रकार जब एक ओर विद्यापति का अवसान हो रहा था तो दूसरी ओर गोविन्द की उदय लालिमा मैथिली साहित्य के क्षितिज पर छिटक रही थी।

यह कहना अप्रासङ्गिक न होगा कि जिस प्रकार ग्रीस देश के लिये Augustan age, इङ्गलैण्ड के लिये Elizabethian काल, फ्राँस के लिये Louis काल एवं हिन्दुस्तान के लिये विक्रमादित्य या भोज का काल तत्तत् देश की उन्नति का चरमोत्कर्ष माना जाता है, उसी प्रकार ओइनवार वंशीय राजाओं का समय मैथिली साहित्य एवं मिथिला के लिये उत्कर्ष का समय था। सचमुच ओइनवार वंशीय राजाओं के समय को हम मैथिली के लिये Augustan age मान सकते हैं।

वस्तुतः संसार के इतिहास में राजा और कवि का सम्बन्ध बराबर देखते आये हैं। राजाश्रय (Royal patronage) उपलब्ध कर ही प्राचीन कविताएँ खिल सकी हैं, और साहित्य का आश्रय लेकर ही राजाओं की ख्याति अमर हो सकी है। यदि मिथिला के ओइनवार वंशीय राजगण विद्यापति, गोविन्द दास आदि कवि–कोविदों को आश्रय नहीं प्रदान किये होते तो उन सभी की रचनाएँ इस आमोद से पूर्ण न हो सकतीं। और अगर उन कवि–कोविदों ने उन राजाओं के नामों का उल्लेख न किये होते तो आज उन की कीर्ति इस रूप में कौन जान सकता।

गोविन्द दास ने अपने पदों में कुछ ऐसे व्यक्तियों के नाम उल्लेख किये हैं, जिन से उन की जातीयता का तथ्य निर्णय करने में बहुत मदद मिलती है, यथाः—

कमलाललित चरण कमल मधु पावय सोइ सुजान।
राजा नरसिंह रूपनरायण गोविन्द दास अनुमान॥

× × ×

हृदय अनन्दन मारुतनन्दन चरण कमल करु सेवा।
गोविन्द दास हृदय अवधारल हरिनारायण देवा॥

× × ×

गोविन्द दास भन रसिक रसायन।
रसयतु भूपति रूपनरायण॥

इन गीतों के अतिरिक्त और कुछ ऐसे गीत हैं, जिन में विद्यापति, राय सन्तोष, राय वसन्त, प्रताप आदित्य आदि के भी नामों का उल्लेख गोविन्ददास ने किया है। वङ्गीय समालोचक इन व्यक्तियों को बङ्गाली मानते हैं। मैथिल साहित्यज्ञ भी उन्हीं नामों को प्रामाणिक मान, गोविन्द दास को मैथिल बतलाते हैं।

मिथिला के इतिहास से जिस किसी को भी कुछ परिचय है, आसानी से कह सकता है कि ऊपर उद्धृत गीतों में जो नाम आये हैं, वे ओइनवार वंशीय राजाओं के हैं। इस विषय का वादविवाद बहुत विस्तृत है; जिस पर मैं ने खूब अच्छी तरह अपने "गोविन्द गीतामृत" ग्रन्थ में प्रकाश डाला है। स्थान के अभाव से उन को यहां उल्लेख करना असम्भव है। इसके अतिरिक्त गोविन्द दास को मैथिल प्रमाणित करने में एक प्रमाण जो और उपलब्ध हुआ है, उसके सामने किसी प्रकार की शंका करने की गुञ्जाइश ही नहीं रह जाती। महाराज महिनाथ ठाकुर के राजत्व काल में जो सत्रहवीं शताब्दी का मध्य भाग माना जाता है, लोचनशर्मा ने "रागतरंगिणी" ❀ ग्रन्थ का निर्म्माण किया; जिस में मिथिला

❀ अत्यन्त परिश्रम से उसकी एक प्राचीन प्रति प्राप्त कर राजप्रेस दरभङ्गा से पं० बलदेव मिश्र के सम्पादकत्व में प्रकाशित की गई है। —सम्पादक

के करीब चालीस कवियों की कविताओं का उल्लेख है। उस ग्रन्थ में गोविन्द दास का एक पद निम्नप्रकार का प्राप्त हुआ है।

अगर उगारि गारि मृगमद रस,
कए अनुलेपन देह।
चललि तिमिरमिलि, निमिषें अलष भेलि,
काचक सनि मसि रेह।
हे माधव!
हेरह हरषि धनि, चान उगल जनि,
भ हतलें मेटि कलङ्क।
घर गुरुजन हेरि, पलटति कत बेरि,
ससिमुखि परम ससंक।
तुअ गुनगन कहि, आनिलिअ साहिटारि,
दैए सुमुखि बिसवास।
तैं परि पराइअ, जें पुनु पाबिअ,
परधन बिनु परयास।
जपल जनम सत, मदनमहामत,
बिहि सुफलित करु आज।
दास गोविन्द भन, कंसनरायन,
सोरम देवि समाज।

इस पद के अन्तिम चरण में कंस नारायण का उल्लेख है। कंस नारायण, राजा नरसिंह, हरिनारायण, रूपनारायण के वंशधर एवं ओइनवार वंशीय अन्तिम मैथिल राजा थे। इन राजाओं के मैथिलत्व के आधार पर क्या गोविन्द दास मैथिल नहीं प्रमाणित होते? भ्रमवश श्रीयुत नगेन्द्र नाथ गुप्त ने इस गीत को विद्यापति रचित मान अपनी 'विद्यापति की पदावली' में स्थान दिया। यथार्थतः यह पद गोविन्द दास का है जैसा कि हस्त-लिखित प्रति से स्पष्ट है। बङ्गाली समालोचकों का भी मत है कि अभिसार–विषयक पद लिखने में गोविन्द दास बहुत सिद्धहस्त कवि थे, इस पद में भी अभिसार का ही सुन्दर वर्णन है।

× × ×

वैसे तो नव कवि जयदेव विद्यापति की कविता बहुत सुमधुर मानी जाती है परन्तु जहाँ तक भाषा की माधुरी एवं उस के सौन्दर्य्य का प्रश्न है निस्संकोच कहा जा सकता है कि गोविन्द दास ने इस क्षेत्र में अपने काव्य-गुरु विद्यापति से बाजी मार ली है। वैसे तो आप जो गीत उनकी पदावली से उठा लें, उसे मधुरता से सराबोर पायेंगे ही, परन्तु बानगी के रूप में उन का एक पद पेश किया जाता है।

कुञ्चित केसिनि निरुपम वेशिनि,
रस आवेसिनि भंगिनि रे।
अधर सुरङ्गिनि अङ्ग तरंगिनि,
सङ्गिनि नव नव रंगिनि रे।
सुन्दरि राधे आबए बनी।
ब्रज रमणी गण मुकुट मनी। ध्रुव०॥
कुञ्जर गामिनि मोतिम दामिनि,
दामिनि चमक निहारिनि रे।
अभरण धारिणि नव अनुरागिनि,
श्यामक हृदय विहारिणि रे।
नवअनुरागिनि अखिल सोहागिनि,
पञ्चम रागिनि मोहिनि रे।
रास विलासिनि हास विकासिनि,
गोविन्द दास चित चोरिनि रे।

सचमुच इस पद से माधुरी टपकती सी मालूम पड़ती है। ऐसा कौन साहित्य-रसिक होगा जो इस स्वर्गीय मधु का रसास्वादन कर गोविन्द दास के मधुकोष पर लुब्ध न हो उठे। एक दूसरा पद लीजियेः—

कुन्दन कनक कलित कर कङ्कण,
कालिन्दि कूल विहारी।
कुञ्चित कच केसर कुसुमाकुल,

कुल कामिनि कर धारी ।
जय जय जग जीवन यदुवीर ।
जलधर जीति जोति जसु जोहिते,
युवतिक यूथ अधीर ॥
पदुमिनि पानि परस पुलकायित,
परिजन प्रेम पसार ।
पहिरन पीत पतनि पतिताञ्चल,
पद पङ्कज परचार ॥
रमणी रमन रतन रुचिरानन,
रञ्जित रति रस रास ।
रसना रोचन रसिक रसायन,
रचयति गोविन्द दास ॥

ये पद भी कम मधुर नहीं। शब्दों का सौन्दर्य्य, अनुप्रास की छटा तथा संगीत का झंकार कितना मनोमुग्धकर है ! गोविन्द दास ने इस पद के अन्तिम चरण में अपनी सुमधुर रचना की जो आत्म-प्रशंसा की है, सर्वथा सत्य है। गोविन्द दास अनुप्रास लिखने में तो अपना सानी नहीं रखते।

गोविन्द दास मैथिली भाषा के आचार्य्य थे, उनको अपनी मातृ-भाषा पर असाधारण आधिपत्य था। शब्द, मानो उनके क्रीत दास थे। कल्पना के मंत्र से वह शब्दों को नचा सकते थे। उन्हें जहाँ पर जैसे शब्दों की आवश्यकता हुई, अनायास वैसे शब्द आ उपस्थित हुए। यह पद पढ़िये:—

पदमिनि पुन परबोधआ तोए ।
पीताम्बर पद पङ्कज परिहरि,
पामरि पाँतर रोय ॥
पुछइत पहिने पानि पलटायसि,
परिजन पर करि मान ।
पिय परिवाद परसि परिहारसि,
पुर पाइुन पचवान ॥
पिरतिक पाँति पाठे परिहाससि,
पहु परिणत नहि मान ।
पाहन पुतलि परखि पय पेखल,
पर पीड़न नहि जान ॥
पुरुषोत्तमक प्रेम परिरम्भन,
पुणवति पावय कोई ।
प्राण पियारि पदवि परिपालह,
गोविन्द दास कह तोहि ॥

हिन्दी साहित्य संसार पद्माकर के आनुप्रासिक कवित[्त] पर लट्टू है, उनकी इस विषयक प्रशंसा के पुल बाँधे जा[ते] हैं, परन्तु मेरी दृष्टि से तो पद्माकर गोविन्द दास [के] साथ चलते नहीं, बहुत पीछे रह जाते हैं।

अंग्रेजी साहित्य में अनुप्रास का एक उत्कृष्ट उदाहर[ण] इन दोनो पंक्तियों में मिलते है:—

'Bigot by buture by Bishop bread
How high his high ness holds his Lauty head
(Shakespeare)

परन्तु गोविन्द दास के पकारादि पूर्ण आठ चरणों [के] पद के सामने उन दो चरणों का क्या बिसात !

हिन्दी संसार को गोविन्द दास से परिचय कराने का श्रेय श्रीयुत मथुराप्रसाद दीक्षितजी को है। पुस्तक भण्डार से प्रकाशित गोविन्दगीतावली का उन्हों[ने] सम्पादन किया है। पर मेरा अनुमान है कि उक्त संस्करण को संस्कृत होने की अभी आवश्यकता है। प्रसङ्गवश कुछ उदाहरण उपस्थित करते हैं।

गोविन्द दास को उक्त आनुप्रासिक पद श्रीयुत दीक्षित जी के संस्करण में यों छपा है:—

पदुमिनि पुन परबोधह तोय !
पीताम्बर पद पंकज परिहरि कामिनि कातर रोय
पूछइते पहिने पानि उलटायसि परिजन परकरि मान

यह गोविन्द दास का आनुप्रासिक पद वर्णान्तर का पाठ चिन्तनीय है, 'पुर पाहुन पचवान' के स्थान में "पुरे [भ]ावलि पंचवान" 'पाहन पुतलि' के स्थान में "पाहुन पुतलि" "परखि पय पेखल" के स्थान में "परखि परे पेखल" आदि के पाठ असुन्दर हैं।

कविराज गोविन्द दास "न" अक्षर के अनुप्रास में निम्न प्रकार का गीत रचा है:—

नीरद नील नयन निन्दि नीरज
नीके निहारस छन्द ।
निरखित निअरे नितम्बिनि नीचल,
निकसत नीबि निबन्ध ।
नाचत नन्द नन्दन नटराज ।
नागरि नारि नगर नव नागर,
निरुपम नटनि समाज ।
नलिनि नाह नन्दिनि नदि नीकट,
नीप निकुञ्ज निवासी ।
नित नव यौवनि निधुवन नन्दित,
निभृत निनादन बाँसी ।
नामहिं नारि निकेतने नारहु,
नूतन नेह विलास ।
निन्दहुँ निज निज नाह न हेरथ,
निरमित गोविन्ददास ।

अब जरा उक्त संस्करण का पाठ अवलोकन करें:—

नीरद नील नयन निर निन्दित,
वंक निहारनि छंद ।
निरखति निअर नितम्बिनि,
नीचल निकसत निवि निबि बन्ध ।
नाचत नन्द नन्दन नटराज ।
नागरि नारि नगरि नव नागरि,
निरुपम नटनि समाज ।
नागरि नाह नन्दिनि नदि निकटे,
नीप निकुञ्ज निवासी ।
नित नव यौवन निधुवनालंकृत,
निभृत निनाद निवासी ।
नामहि नारि निकेत नै रहु,
नूतन नेह विलास ।
निन्दहि निज जन नाहन हेरय,
निरमित गोविन्द दास ।

इसी प्रकार के असङ्गत पाठ-भेद ग्रन्थ में भरे पड़े है। इस पद में "नागरि नाह नन्दिनि नदि निकटे" का कुछ भी अर्थ नहीं; परन्तु प्रथम पद के "नलिनि नाह नन्दिनि नदि नीकट" का अर्थ है सूर्य्य की बेटी यमुना नदी के किनारे।

गोविन्द दास का एक पद श्रीयुत दीक्षित जी के संस्करण में निम्न प्रकार का है:—

"कृपण कृपाकर कलि कलुषांकुश कह कविदास गोविन्द"

इस पद में "कृपण" शब्द की व्याख्या करते हुये श्रीयुत दीक्षित जी लिखते हैं 'कृपण'–इस शब्द का प्रयोग यहाँ पर अखड़ता है। भावार्थ में दुर्गमता उत्पन्न होती है। कृपण के स्थान पर यदि "कृष्ण" शब्द का प्रयोग हो तो पाठ स्पष्ट और सरल होगा।"

आइये, उक्त पदमें "कृपण" शब्द पर विचार करें। मेरी क्षुद्र समझ में तो उक्त प्रयोग बड़ा ही मार्मिक है। कृपण शब्द का अर्थ है (विपत्ति में पड़ा हुआ) दीन व्यक्ति। यह वन्दना का पद है। गोविन्द दास कहते हैं कि विपत्ति में पड़ा हुआ दीन जन पर आप कृपा करते हैं। कलिकाल के पाप रूपी विपत्ति में मैं पड़ा हुआ हूँ, आप उस पाप का नाश कीजिये। गोविन्द दास कोई साधारण पण्डित न थे कि बिना समझे बूझे शब्द-प्रयोग करते। कृपण का यह सुन्दर अर्थ उन्हें रामायण में मिला था यथा "महद्वा व्यसनं प्राप्तो दीनः कृपण उच्यते"

आशा है दीक्षित जी अगले संस्करण में इन बातों पर ध्यान रखेंगे।

गोविन्द दास शब्दों को किस प्रकार कलम की नोक पर नचा सकते थे, एक प्रकार का उदाहरण और उपस्थित है:—

झर झर जलधरधार, झंझा पवन विथार ॥
झलकत दामिनि माला, झामरि भए गेलि बाला ॥
झूठ कि कहब कन्हाई, झूरत तुअ बिनु राई ॥
झन झन बजर निसान, झाँपि रहय दुहुँ कान ॥
झिल्ली झनकए राति, झंक सहल नहिं जाति ॥
झूमरि दादुर बोल, झूलत मदन हिलोल ॥
झटकि चलह धनि पास, झगड़त गोविन्द दास ॥

इस पद में "झ" की झंकार कितनी सुन्दर है। साथ ही साथ विरह की व्याकुलता, किस खूबी से प्रदर्शित है। इस प्रकार के अनेक पद गोविन्द दास ने रचे हैं।

अब गोविन्द दास की भाव गरिमा की माप करें। कविराज का एक पद सौन्दर्य्य वर्णन में निम्न प्रकार का है। यथा:—

ए भज कामिनि तो बड़ि सयानि,
छले बले बाँधलि गिरिधर पानि ॥
चिकुर चोरायसि चामर काँति,
दशन चोरायसि मोतिम पाँति ॥
अधर चोरायसि सुरङ्ग पङार,
वदने चोरायसि कुङ्कुम भार ॥
कनक कलस दुइ रस भरि तार,
हृदये चोरायसि आँचरे छपाई ॥
तजि अति मन्थर चरण संचार,
कोन तेजब तोहि बिबहि विचार ॥
सुबल लेह तुहुँ गोरस दान,
राइ करब अब कुञ्ज पयान ॥
जहँ बैसत मनमथ महराज,
गोविन्द दास कह पड़ल अकाज ॥

इसी भाव का कुछ कुछ आभास अंग्रेजी कविता के अग्रगण्य कवि के Sonnets में मिलता है:—

The lily I condemn for thy hand
And buds of margoram has stolen thy hair
The roses fearfully on thorns did stand
One blushing shame another white despair
A third nor red nor white h d stolen of both
And to his robbery had annexed thy breadth
More flowers I noted yet I none could see
But sweet or colour it had Stolen for thee

(Shakespeare's Sonnets)

गोविन्द दास का अभिसार-वर्णन साहित्य संसार में अपना एक विशिष्टस्थान रखता है। इस क्षेत्र में वे किसी भी भाषा के कवि से लोहा ले सकते हैं। इस प्रसंग की इतनी कवितायें और ऐसी भावपूर्ण कवितायें उन्होंने लिखीं, जिन पर इस लेख में प्रकाश नहीं डाला जा सकता। सिर्फ मुलाहिजे के तौर पर एक दो पद नीचे दर्ज हैं।

कण्टक गाड़ि कमल सम पदतल,
मञ्जिर चीरहिं झाँपि।
गगरि वारि ढारि करि पिच्छड़,
चलतहिं अंगुरि चाँपि ॥
माधव तुअ अभिसारक लागि।
दूतर पन्थ गमन धनि साधय,
मन्दिर यामिनि जागि।
कर युग नयन मूँदि चलु भामिनि,
तिमिर पयानक आसे।
कर कङ्कण पण फणिमुखबन्धन।
सिखइ भुजग गुरु पासे।
गुरुजन वचन बधिर सम मानइ,
आन सुनत कह आन।
परिजन वचन मुगुधि सम हासइ,
गोविन्द दास परमान।

घर में काँटे रोप कर, उस पर चलना, घड़े का पानी ढहेल जमीन को फिसली बना उस पर अंगुली दबा दबा कर चलना, हाथों से आँखें बन्द कर चलना, गारुड़िक से सर्प के मुखबन्ध की विधि कङ्कण देकर सीखना-आदि कितना चमत्कारक है। पाठक इस पद की सुन्दरता का मनन करें। राधा की लगन का अनुमान करें। श्री कृष्ण से मिलने की कितनी उत्कंठा है। आह! संयोग सिद्धि के लिये कितनी कठिन तपस्या है?

परन्तु अभिसार का अभ्यास-मात्र कर वह उसके लिये प्रस्थान नहीं कर सकती। एक ओर उसे मिलने की तीव्र आकांक्षा, दूसरी ओर लोकापवाद का भय। गौरांगी राधा को बड़ा डर होरहा है कि उसके शरीर की ज्योति से कहीं अमावस्या की अँधियाली में भी प्रकाश न हो उठे। गौराङ्गी श्यामाङ्गी किस प्रकार बनती है देखिये।

नीलम मृगमद तनु अनुलेपल
नीलम हार उजोर।
नील वलय गन भुजयुग मण्डित
पहिरलि नील निचोल।
सुन्दरि हरि अभिसारक लागि।
नव अनुरागे गोरि भेलि साम्मरि
दुहु यामिनि भए लागि।
नील अलकाकुल अलिक हिलोलित
नील तिमिरे चलु गोइ।
नील नलिनि जनु श्याम सिन्धुरस
लखइ न पारइ कोइ।
नील भ्रमर गन परिमले धावइ।
चौदिक करत झंकार।
गोविन्द दास घतघ अनुमानल।
राइ चललि अभिसार ॥

नायिका का अभिनव विन्यास दर्शनीय है। इस प्रकार श्यामाङ्गी बनी राधा कैसी प्रतीत होती है, मानो नील समुद्र में नीला कमल भासता जाता हो, जिसे कोई देख भी नहीं सकता।

एक कृष्णाभिसारिका नायिका का वर्णन करते हुए हिन्दी भाषा के 'सुन्दर' कवि की रचना पर भी दृष्टिपात करें:—

"कारी घन घटा भारी पहिर कै कारी
सारी आंखिन में देख तेरे कारी कजरारी है।
कारोई बुरङ्ग सारु घसि कै लगाउ अंग
कारे चोआ कञ्चुकी सु भले ही भिजाई है।
करि पाट सुन्दर गुहाये सब आभूषण
कारी बेनी पीठ पर छोरि दै सुहाई है।
ऐसे समय ऐसी होई जाइ मिलि कान्हा सों
आजुही तो किगरी कराई काजु आई है॥"

गोविन्द और सुन्दर में बहुत बड़ा अन्तर है; जिसे कोई भी काव्य-मर्मज्ञ अनुमान कर सकता है। चोआ में कंचुकी भिगा कर पहनने से ऐसा भान होता है कि सुन्दर की नायिका को काली कंचुकी एक भी न थी। गोविन्द दास ने एक सम्पत्तिशाली उच्चकुल की राधा का वर्णन किया है, परन्तु सुन्दर ने एक साधारण कुल की कामिनी का।

गोविन्द दास की राधा इस प्रकार विन्यास-पूर्ण साज से अपने घर से निकली है। समय बरसात का है। पानी बरस रहा है, बिजली चमक रही है। सर्प इधर उधर घूम रहे हैं। परन्तु एक मात्र श्रीकृष्ण से मिलने की उत्कंठा से वह सुन्दरी किस प्रकार उन बाधाओं को अतिक्रमण करती हुई प्रेम-पथ पर बढ़ती चली जाती है।

मेघ यामिनि चललि कामिनि,
पहिरि नील निचोल रे।

संग नायक कुसुम-सायक,
छोड़ि मंजिर लोल रे ।
गरुअ कुच भरे चलिते पदतले,
पीन जघनक भार रे ।
हेरि दामिनि फटिक तरु जनि,
धमकि धरु निरधार रे ।
देखि फणि मणि दीप जनु जानि,
वाम कर देइ झांपि रे ।
जानि युवती विषम अहि-पति,
सघन तन उठ कांपि रे ।
प्राण वल्लभ भेटल दुर्लभ,
पुरल मनमथ आस रे ।
ऐसन जसु नेह सुफल तसु देह,
भनत गोविन्द दास रे ।

रास्ता पिच्छल रहने के कारण राधिका के पांव बार बार फिसल जाते हैं । साधन मार्ग में पूर्व्व जन्म के कर्म के बोझ से फिसल फिसल पड़ना स्वाभाविक ही है । इस असहायावस्था में जब हाथों हाथ नही सूझ रहा है— वारंवार फिसलती हुई वह नायिका दामिनी के छिटकने से नीर की धारा को स्फटिक का वृक्ष समझ कर पकड़ना चाहती है, परन्तु निराधार को पकड़ने से जो गति होती है, वही गति राधा की भी होती है । अर्थात् वह जमीन पर गिर पड़ती है । जमीन पर यदि वह सर्प की मणि को देखती है तो उसे ऐसा भान होता है कि दीपक जल रहा है । प्रकाश के डर के मारे वह झट बायें हाथ से, (बुताने के ख्याल से) उसे ढाँप देती है । परन्तु जब उसे प्रतीत होता है कि वह दीपक नहीं सर्प है, डर के मारे वह अत्यन्त कांपने लगती !

ओह ! प्रियतम से संयोग की सिद्धि के लिये कितनी घोर तपश्चर्य्या है ! कवि का यह कथन "ऐसन जसु नेह सुफल तसु देह" अर्थात् जिसका प्रेम इतना प्रगाढ़ है उसका जीवन धन्य है, अक्षरशः सत्य है । प्रेम साधना की कठिनता का क्या खांका कविने खींचा है और कितना सुन्दर दार्शनिक भाव प्रगट किया है, पाठक अनुमान करें ।

इसी भाव से मिलता जुलता महाकवि देव ने भी एक कवित्त लिखा है । यथा:—

घटा घहराति विज्जु छटा छहराति अधिराति,
हहराति काटि कीट रवि सञ्जलौं ।
हूकत उलूक, वन हूकत फिरत फेरु,
भूकत जु भैरों भूत गावै अलि गुञ्जलौं ।
झिल्ली मुख मूँदि तहाँ बीच्छीगन मून्दि बिषे,
व्यालनिको रून्दि के मृणालनिकै कुञ्जलौं ।
जाई वृष भानु की कन्हाई के प्रेम वश,
आई उठि ऐसे में अकेली केलि कुञ्जलौं ।

देव जीका कवित्त भी सुन्दर है, परन्तु यहां पर देवजी ने रात्रि की भयंकरता का ही विशेष वर्णन किया है । जो घोर तपश्चर्य्या गोविन्द दास की नायिका करती है उसका दशमांश भी देव की नायिका नहीं । गोविन्द दास की कविता में दार्शनिक अनुभूति है, परन्तु देवकी कविता में वह कहां ?

जिस हेतु श्री राधा का यह उत्कृष्ट प्रेम भाव है इसलिये उसका प्रियतम से सम्मिलन का आदर्श भी अत्यन्त ऊँचा है ।

जहां दरसने तनु पुलकहिं भरई ।
जहां कर करषने टूटत वलई ॥
जहां परिरम्भणे अम्बर खलई ।
जहां घन चुम्बने वदन न टलई ॥
ए सखि मानिय हरि सञ्यो भेलि ।
जब होए ऐसन मनोभव केलि ॥
जहा किंकिणि मणि कङ्कण बजई ।
जहां नख विलिखने मण्डन मजई ॥

जहां मणि नूपुर तरलित कलई ।
जहां नव चन्दन श्रम जले गहई ॥
जहां नहि ऐसन रस निरवहई ।
तहां परिवाद गोविन्द दास कहई ॥

"रस मञ्जरी" कार भानुदत्त ने निम्न लिखित श्लोक में कुछ इसी प्रकार का भाव व्यक्त किया है । यथा:—

शङ्काश्रृङ्खलितेन यत्र नयन प्रान्तेन न प्रेक्ष्यते ।
केयूर-ध्वनि-भूरि-भीति-चकितं नो यत्र वाऽश्लिष्यते ॥
नो वा यत्र शनैरलग्नदशनं बिम्बाधरः पीयते ।
नो वा यत्र विधीयते च मणितं तत् किं रतं कामिनोः ॥

भानुदत्त का "रतं कामिनोः" से गोविन्द का 'हरि सञ्यो भेलि' सुन्दर है । कुछ इसी प्रकार का भाव अङ्ग्रेजी कवियों के मुकुट शेक्सपियर ने भी व्यक्त किया है । यथा:—

If thou rememberest not the slightest folly
That ever love did make thee run into
Thou hast not loved.
Or if thou hast not sat as I do now
Wearing they hearer in my mistries praise
Thou hast not loved.
Or if thou hast not broke from company
Abruptly as my passion now makes me
Thou hast not loved.

[Shakespeare]

राधा प्रेम-भक्तिभाव-पूर्ण वाणी में अभिलाषा करती है:—

जहँ पहु अरुण चरण चलि जात,
तहँ तहँ धरणि होउ मझु गात ॥
जे सरोवरे पहु नित नित नाह,
हम भरि सलिल होइ तहि माह ॥
जे दरपने पहु निज मुख चाह,
मझु अंग ज्योति होइ तहिं माँह ॥
जे बीजने पहु बीजइ गात,
मझु अंग ताहि होइ मृदु वात ॥
जहँ पहु भरमइ जलधर श्याम,
मझु अंग गगन होइ तसु ठाम ॥
ए सखि विरह मरन निरदन्द,
ऐसन मिलब जब गोकुल चन्द ॥
गोविन्द दास कह काञ्चन गोरि,
से मरकत तनु तोहें की छोड़ि ॥

श्री राधा की यह लालसा कि जहाँ जहाँ कृष्णचन्द्र जी चलें, वहाँ वहाँ मेरा शरीर पृथ्वी होता चले । जिस पोखरे में श्री कृष्णचन्द्र जी स्नान करें उस में मैं ही पानी बन जाऊं । जिस ऐनक में वह मुख देखें, वह ऐनक हमारे ही बिम्ब से प्रतिबिम्बित रहे । जिस पंखे से वह हवा करें, उस में हमारा ही अंग वायु बन जाय । जहाँ जहाँ वह भ्रमण करें वहाँ वहाँ हमारा अंग आकाश बनता चले । हे सखी, विरहावस्था में मरण को मैं तभी निर्द्वन्द्व मानूंगी; जब इस प्रकार सतत श्री कृष्णचन्द जी से सम्मिलन होता रहे ।

इस पद में प्रेम की पराकाष्ठा है। इस से बढ़कर क्या अभिलाषा हो सकती है ! प्रेम-भाव का कैसा उच्च आदर्श है !

यद्यपि इस भाव का मूल अमरुक के इस श्लोक से लिया गया है—

पञ्चत्वं तनुरेति भूत-निवहाः स्वांशे विशन्तु स्फुटं
धातारं प्रणिपत्य हन्त शिरसा तत्रापि याचे वरम् ।
तद्वापीषु पयस्तदीय-मुकुरे ज्योतिस्तदीयाङ्गने
व्योम्नि व्योम तदीयवर्त्मनि धरा तत्तालवृन्तेनिलः ॥

तथापि अमरुक का भाव गोविन्द दास के हाथों से और परिमार्जित हो गया है ।

अंग्रेजी के एक कवि ने कुछ इसी प्रकार का भाव व्यक्त किया है यथा:—

Were you the Earth and I the sky
My love should shine on you like to the sun

× × ×

Where so'er I am below or else above you
Where So'er you are my heart shall truly love you.

J. Sylvestor

मैथिली भाषा--भाषी जनता अपने ऐसे महान् उत्कृष्ट एवं प्रचण्ड प्रतिभाशाली कवि को जिस अवहेलना की दृष्टि से देख रही है, वह अत्यन्त लज्जा का विषय है। गोविन्द दास के टक्कर का शाब्दिक सौन्दर्य्य का कवि भारत के अन्य उन्नत भाषाओं में भी एक आध ही शायद हो। परन्तु मैथिली भाषा--भाषी जनता ने आजतक उनकी कविता का एक छोटा सा भी संस्करण संसार के सामने नहीं रख सका। मैथिली के उपेक्षित साहित्य में एक से एक अनमोल हीरे पड़े हैं, परन्तु उनकी कोई खोज खबर लेने वाला नहीं। मिथिला में विद्यापति और गोविन्द दास ही महान् कवि नहीं हो गये हैं। प्राचीन समय में मैथिली में जितने लेखक कवि, एवं नाटक-कार हो गये हैं। उनके पुस्तबल पर कोई भी साहित्य गौरवान्वित हो सकता है। ‡

---

‡ इस लेख के उत्साही लेखक ने गोविन्द दास के पदों का बड़ी खोज के साथ सङ्कलन 'गोविन्द गीतामृत' नाम से किया है। जो अभी अप्रकाशित है। इसका प्रकाशन इस दिशा में साहित्यानुरागियों का मनोरञ्जन करेगा। —सम्पा०

卐

Maithili is an important language of Eastern India, spoken by considerably over one crore of people, and its early literature is of great importance, the greatest poet of Maithili, Vidyapati being unquestionably one of the greatest writers in the History of Indian literature."

S. K. Chatterji.



मिथिला के प्रति

श्री जयनारायण झा जी ' विनीत '

१

तू निगमागम की तत्त्वमयी,
तू दर्शन की उद्गम-स्थली ।
तू माया-ब्रह्म महत्त्व मयी,
वरविज्ञों की उत्तम-स्थली ।

२

निगमागम--कोविद नृप विदेह,
गौतम कपिलादिक की जननी ।
तू सती शक्ति सीता की मा,
तू थी त्रिदेव की पूज्य बनी ।

३

तू महती महिमा का निकेत,
क्यों बनी हुई है मंद म्लान ?
तू सत्य सनातन सुयश-स्वेत,
उठ, अपने को पहचान, जान ।

४

तेरे ही घर में है कमला,
सुरसरि है स्नेह उलीच रही ।
रखने को हरी भरी ही माँ,
गंडक अविरल है सीच रही ।

५

ले संस्मृतियां तीनों युग की,
त्रियुगा है तुझ में राजरही ।
शिशु संजीवन जीवन वाली,
जीवछ है तुझ में आज रही ।

६

कौशिकी तपस्या कौशिक की,
जिनने तप बल से रची सृष्टि ।
निरवधि है पांव पलोट रही,
यह भाग्य किसे ? माँ ! खोल दृष्टि ।

७

दिन रात द्वारपर सजग खड़ा
पहरा देता है शैल राज ।
कितना तेरा ऐश्वर्य बड़ा !
कैसा तेरा साम्राज्य-साज ।

८

नव युग नभ में आत्मोदय का;
अरुणोदय लख, दृग खोल खोल ।
तू महाशक्ति माँ ! स्वत्व हीन,
क्यों मूक बनी है ? बोल बोल ।

९

नवयुग के जीवन--रण में आ,
अयि सिंहवाहिनी सेव्य-सदा ।
आज्ञा दे ? सिंह दहाड़ उठे,
तुझ को ही है ध्रुव विजय बदा ।

१०

अवलोक अमर संतान आज,
कंकाल बनी है तड़प रही ।
ललनाओं की लुट रही लाज,
रह गई इन्हें इनकी न मही ।

११

यह अनाचार यह लूट पाट,
यह सभ्य दस्यु-दल क्षिति सपाट ।
यह रक्तिम वंचकता विराट,
बचने की पायँ न कहीं बाट ।

मिथिला के संस्कृत साहित्य महारथियों

की

तालिका।

प्रो० पण्डित श्रीयुत बदरी नाथ झा जी 'कविशेखर'

तिरयन्ती कविचेतस्तमः सचेतश्चकोरनिकुरम्बम्।
मदयन्ती नकन्दिवमन्तर्मे कौमुदी स्फुरतु ॥

गौतम-याज्ञवल्क्य-मण्डन-वाचस्पति--गङ्गेश और कुमारिल आदि महानुभावों की निवास-कुटी, राजर्षि जनक के छत्र-छाँह से शीतल, जगज्जननी जानकी जी की जन्मभूमि, यज्ञस्थली यह पुण्य मिथिला केवल दर्शन-स्मृति की ही जन्मभूमि नहीं है, साहित्य कुसुम का मनोहर उद्यान भी मुक्त-कण्ठ से इसे कह सकते हैं। क्योंकि साहित्य का विकास भी यहाँ कहीं से कम नहीं; प्रत्युत अधिक हुआ है। आज यह क्षुद्र लेखनी उन्हीं मिथिला के सपूतों की खोज में चली है, जिन्होंने अपनी मातृ-भूमि के नाम को अमर करने के लिये अवर्णनीय अध्यवसाय से संस्कृत साहित्य की असीम सेवा की है।

एक तो प्राचीन संस्कृत विद्वानों का क्रम-बद्ध पूरा इतिहास का पता कहीं नहीं चलता, दूसरा समय भी पर्याप्त नहीं था, इस अवस्था में 'अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः' इसी मार्ग का अवलम्बन कर जो कुछ इधर उधर मिला, उसे लिखते हैं, आशा करते हैं कि विज्ञ पाठक गण अपनी स्वाभाविक दयालुता से त्रुटियों का संशोधन स्वयम् अवश्य करलेंगे।

१० वीं शताब्दी में—

म० म० गोवर्धनाचार्य १

आपका जन्म मिथिला के प्रसिद्ध 'करियौन' ग्राम में पण्डित कवि नीलाम्बर[२] से हुआ था। आपने पिता ही से पूर्ण विद्वत्ता प्राप्त कर गौडेश्वर महाराज लक्ष्मण सेन[३] की सभा को कवि जयदेव आदि के साथ विभूषित किया। विश्व विख्यात 'आर्या सप्तशती' आपही का प्रगाढ़ पाण्डित्य सूचित कर रही है। आपके उदयनाचार्य शिष्य[४] और बलभद्राचार्य कनिष्ठ सोदर थे। जयदेव कवि ने गीत-गोविन्द में,-'श्रृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्य गोवर्धन-स्पर्धी कोऽपि न' कह कर आप ही का परिचय दिया है। उदयनाचार्य[५] के अध्यापक और लक्ष्मण सेन के सदस्य होने के कारण आपका समय ईसा की दशम शताब्दी ऐतिहासिक लोग मानते हैं।

१ इसमें मिथिला की किंवदन्ती और उदयन की वहीं स्थिति प्रमाण है।

२ 'यं गणयन्ति गुरोरनु यस्यास्ते धर्म कर्म संकुचितम्। कविमहमुशनसमिव तं तातं नीलाम्बरं वन्दे ॥' आर्यासप्तशती ॥

३ 'गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः। कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च ॥' शिलालेख।

४ 'उदयन-बलभद्राभ्यां सप्तशती शिष्यसोदराभ्यां मे। द्यौरिव रविचन्द्राभ्यां प्रकाशिता निर्मलीकृत्य ॥' आ० स० ॥

५ उदयनाचार्य ने अपना समय लक्षणावली के अन्त में लिखा है—'तर्काम्बराङ्क (९०६) प्रमितेष्वतीतेषु शकान्ततः ॥ वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधां लक्षणावलीम् ॥' शाकाब्द ९०६, ई० ९८४ होता है।

१२ वीं शताब्दी में—

श्री धर ठाकुर तर्काचार्य २

आप ने मम्मट भट्ट विरिचित काव्य प्रकाश की 'काव्यप्रकाशविवेक' नाम की टीका लिखी। जिसकी प्रतिलिपि राज-पण्डित विद्यापति ठाकुर की आज्ञा से ल० सं० २९१ गजरथपुर[१] में की गई। ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में रहने वाले मम्मट भट्ट के ग्रन्थ की टीका करना, और पन्द्रहवीं शताब्दी में उसकी प्रतिलिपि का होना ही आपका समय १२ वीं श० से १३ श० पर्यन्त सूचित करते हैं।

१३ वीं शताब्दी में—

प० प्रज्ञाकर मिश्र ३

आपके पिता प० विद्याकर मिश्र और पितामह प० आनन्दकर मिश्र थे। आनन्दकर मिश्र की 'आनन्दकरी' नामक तालाब 'सरिसव' गाम में अभीतक वर्तमान है। नलोदय काव्य की सुबोधिनी' टीका आप की कृति है।

१४ वीं शताब्दी में—

कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर ४

आप प० विद्यापति ठाकुर के पूर्वज थे। आपने १४ वीं शताब्दी में मिथिलेश हरि सिंह देव के आश्रित होकर उनकी यवन-विजय के अवसर में 'धूर्त समागम' प्रबन्ध निर्माण किया। जिसका उल्लेख पुरुष परीक्षा में है। धू० स० नेपाल राज-पुस्तकालय में हस्त लिखित मिला है।

प० दामोदर मिश्र ५

आप का दिघवय[३] मूलक मैथिल ब्राह्मण कुल में जन्म था। राज प० कामेश्वर ठाकुर के पौत्र राजा कीर्ति सिंह के सभा पण्डित होकर आपने 'वाणी भूषण' छन्दोग्रन्थ बनाया; जो निर्णय सागर में छपा है। वि० सं० १९५७ में प० लक्ष्मीनाथ ने प्राकृत पिङ्गलसूत्र में वा० भू० का उल्लेख किया है, अतः उस से पूर्व रा० कीर्ति सिंह के अनुसार आप का समय १४ वीं श० के अवसान से १५ वीं श० के प्रारम्भ पर्यन्त माना जाता है।

म० म० शङ्कर मिश्र ६

आप सोदरपुर सरिसव मूल के श्रोत्रिय-कुल भूषण म० म० भवनाथ प्रसिद्ध 'अयाची' मिश्र के पुत्र थे। आपका निवास सरिसव गाम में था। आप ने शैशव काल ही में किसी राजा के पूछने पर—

१ उसका अन्तिम लेख यों है—'इति तर्काचार्य ठक्कुर श्री श्रीधर विरचिते काव्यप्रकाशविवेके दशम उल्लासः। शुभमस्तु, समस्त विरुदावली (क) महाराजाधिराज श्रीमच्छिवसिंहदेव-सम्भुज्यमान तीरभुक्तौ श्रीगजरथपुरे सप्रक्रिय सदुपाध्याय ठक्कुर श्री विद्यापतीनामाज्ञया (खौवालसं श्री प्रभाकरेण लिखितैषा। ल० सं० २९१ कार्तिक वदि १० ॥'

२ उसी का नामान्तर शिवसिंहपुर था, जो लहेरियासराय रेलवे ष्टेशन के पास देवकुली (देकुली) गाम के निकट वाग्वती तीर में महाराज शिवसिंह की राजधानी थी, पीछे यवनों के आक्रमण से उजाड़ दी गई।

३ आप वाणीभूषण में लिखते हैं—'दीर्घघोषकुलोत्पन्नो दामोदर इतिश्रुतः' 'इति मैथिल दीर्घघोषकुलोद्भव दामोदर मिश्र विरचितं वाणीभूषणं समाप्तम्।'

४ वा० भू० कुण्डलिका छन्द के उदाहरण में लिखते हैं—'कीर्तिसिंह! नृप! जीव यावदमृतद्युतितरणी,

'बालोऽहं जगदानन्द न मे बाला सरस्वती ॥
अपूर्णे पञ्चमे वर्षे वर्णयामि जगत्त्रयम् ॥'

इत्यादि अनेक अपनी कविता सुनाते हुए अप्रतिम प्रतिभा का परिचय दिया। मनोभव-पराभव नाटक १ गौरीदिगम्बर प्रहसन २ रसार्णव ३ आदि आप की साहित्य रचना है। समय १४ वीं श० निश्चित है।

कविचूड़ामणि गणेश्वर मिश्र ७

आप म० म० शङ्कर मिश्र के भतीजा थे। आप का नामान्तर 'गणपति' और गणनाथ' भी पाया जाता है। आप के 'महामोद' प्रभृति मौलिक ग्रन्थों के अनुपलब्ध रहने पर भी 'रस पारिजात' में जगह जगह उद्धृत श्लोकों, तथा—
'तातो यस्य गणेश्वरः कविकुलालङ्कारचूड़ामणिः'
(रसमञ्जरी)
'यथा गणपतेः काव्यं काव्यं भानुकवेस्तथा।
उभयोः सङ्गमः श्लाघ्यः शर्कराक्षीरयोरिव ॥'
(रसपारिजात)

इत्यादि उक्तियों से ही पूर्ण काव्यकौशल का परिचय होता है।

प० वटेश्वर झा ८

आप १५ वीं श० में विद्यमान 'द्वैतनिर्णय' स्मृतिनिबन्धकार नरहरि उपाध्याय के वृद्ध प्रपितामह थे, अतः आपका समय १४ वीं श० माना जाता है। आपने मुद्राराक्षस नाटक की टीका की।

प० पद्मनाभ मिश्र ९[1]

आपका सुपद्म[2] व्याकरण बङ्गाल में प्रसिद्ध है। आप वाणीभूषण कर्त्ता पं० दामोदर मिश्र के पुत्र थे। आनन्दलहरी टीका १ शिशुपाल-वध-टीका २ छन्दोरत्न ३ गोपाल चरित ४ आदि आपकी साहित्य में रचनाएँ हैं। समय १४ श० का अन्त कहा जाता है।

म० म० विद्यापति ठाकुर (अभिनवजयदेव) १०

सूक्ष्म रूप से आपका परिचय यही है कि आप विसइवारविशपी मूलक मैथिल-कुल-कमल मार्त्तण्ड प० गणपति ठाकुर के पुत्र थे। ओइनवार राजकुल का प्रधान पण्डित पद आप ही से अलंकृत था। आप ने साहित्य में राजा कीर्तिसिंह की आज्ञा से 'कीर्तिलता' १ राजा शिव सिंह की आज्ञा से 'पुरुष परीक्षा' २ और उनके मित्र राजा बनौली[3] के अधिपति दोनवार राजा पुरादित्य की आज्ञा से लिखनावली लिखी। आपका समय १४ वीं श० का पूर्वार्ध पर्यन्त माना गया है।

मिथिलेश म० म० महेश ठाकुर ११

आप के पिता प० चन्द्रपति ठाकुर खण्डवला मूलक श्रोत्रिय कुल भूषण थे। आपही ने तात्कालिक दिल्लीश्वर अकबर शाह को अपनी अद्वितीय विद्वत्ता से प्रसन्न कर मिथिला-राज्योपार्जन किया। पण्डित राज रघुनन्दनराय आपही के छात्र थे। आप की साहित्य-रचना 'सर्व देश वृत्तान्त' संग्रह है। समय १४ वीं श० के अवसान से १५ वीं का पूर्वभाग तक है।

१ बङ्गाली लोग इनके नाम में 'दत्त' जोड़ कर इन्हे बङ्गाली कहते हैं। वस्तुतः ये मैथिल थे।
२ सुपद्मव्याकरण की समाप्ति में आप ने वंश परिचय दिया है।
३ राजाबनौली जनकपुर के निकट नेपाल सप्तरी परगना में है।

म० म० पक्षधर मिश्र १२

गङ्गेशोपाध्याय के चिन्तामणि पर आलोक लिखने वाले आप ही हैं। आपका वास्तविक नाम 'जयदेव' था, शास्त्रार्थ विचार में प्रबल पक्ष के धारण से 'पक्षधर' और 'पीयूषवर्ष' शब्द युक्त चन्द्रालोक का 'उच्चैरस्यति मन्दताम्' इत्यादि श्लोक के बनाने से भवभूति के समान 'पीयूषवर्ष' नाम पीछे पड़ा। शाण्डिल्य-गोत्रीय प० महादेव मिश्र इनके पिता थे। प्रसन्नराघव नाटक में 'कवीन्द्रः कौण्डिन्यः' यह पाठ प्रामादिक माना जाता है। प्रसन्नराघव नाटक और चन्द्रालोक आप का साहित्य प्रबन्ध प्रसिद्ध है। बङ्गाल के प० रघुनाथ शिरोमणि' भट्टाचार्य ने मिथिला आकर आप ही से न्याय शास्त्र का अध्ययन किया था। आपके भतीजा और छात्र प० वासुदेव मिश्र चिन्तामणि की टीका के आदि में—

'जयदेवगुरोर्वाचि ये केचिद्दोषदर्शिनः ॥
प्रबोधाय मया तेषां दीप्तिभूर्योऽभिदीप्यते ॥

और अन्त में—'इति श्री न्यायसिद्धान्त साराभिज्ञ मिश्र पीयूषवर्ष पक्षधर मिश्र और भ्रातृ-पुत्र न्यायसिद्धान्त साराभिज्ञ वासुदेव मिश्र विरचितायां चिन्तामणिटीकायाम्' इत्यादि लिखते हैं। वृद्ध विद्यापति ठाकुर के 'प्राघुणो घुणवत् कोणे सूक्ष्मत्वान्नैव लक्ष्यते' कहने पर 'नहि स्थूलधियः पुंसःसूक्ष्मे दृष्टिः प्रजायते' उत्तर आपने दिया था, इसलिये १५ वीं शताब्दी का प्रारम्भ आपका समय कहा जाता है। आपके गुरु माण्डर कुल पुण्डरीकमार्तण्ड यज्ञपति उपाध्याय थे।

१५ वीं शताब्दी में—

महाकवि भानुदत्त मिश्र १३

पण्डित गणेश्वर मिश्र के पुत्र प० भानुदत्त मिश्र ने तो अपनी अद्भुत काव्यकल्पना शक्ति से केवल सोदरपुर वंश का ही नहीं, किन्तु समस्त मैथिल का मस्तक गौरवोन्नत कर दिया। आज हम जिन रसमञ्जरी १, रसतरङ्गिणी २, रस पारिजात ३, गीतगौरीपति ४, कुमारभार्गवीय ५, अलङ्कार तिलक ६ और शृङ्गार-दीपिका ७ प्रभृति ग्रन्थरत्नों को लेकर किसी की स्पर्धा करने में तनिक भी नहीं हिचकते हैं, वे आप ही के उर्वर मस्तिष्क के प्रशस्त सस्य हैं। आप पन्द्रहवीं श० में निजाम राजा कृष्ण शाह के आश्रित थे, यह रस पारिजात के पर्यालोचन से स्पष्ट होता है।

म० म० गोविन्द ठाकुर १४

आप म० म० केशव ठाकुर के पुत्र थे। आप का मूल घुसौतय और निवास भटसीमरि गाँव में था। काव्य प्रकाश की टीका काव्य प्रदीप और उदाहरण-दीपिका[1] आप का साहित्य ग्रन्थ है। आप कहीं के राजा भवानन्दराय[2] के आश्रित थे। आपके

१ काव्यप्रदीप का अन्त में आप यों लिखते है—
'दीपिकाद्वितयं कन्ये प्रदीपद्वितयं सुतौ ॥
स्वमतौ सम्यगुत्पाद्य गोविन्दः शर्म विन्दति ॥'
२ पूजा-प्रदीप के आदि में—
'नश्लाघन्ते त्रिदशगुरवे यस्य विद्या विदन्ते, ना सेवन्ते जलधितनयां यस्यदृष्टाः कृपाऽऽर्द्रम् ॥
ना काङ्क्षन्ति क्वचिदपि सुधां यस्य काव्यं पिवन्तः सन्तः सोऽयं जगति जयति श्री भवानन्दरायः ॥
श्रीमत्केशवतनयो गोविन्दस्तन्निदेशमनुवर्ती ॥ प्रकटयति धर्मपदवीं पूजाकर्मप्रदीपेन ॥

वंशज अब भी धर्मपुर समौल मेंहसीमरि आदि ग्राम में हैं। आपका समय १५ श० है।

प० हर्ष ठाकुर १५

आप पण्डित गोविन्द ठाकुर के छोटे भाई थे। आप के विषय में उनका काव्यप्रदीप के अन्त में यों लेख है—

'ज्येष्ठे सर्वगुणैः कनीयसि वयोमात्रेण पात्रे धियां,
गात्रेण स्मरगर्वखर्वणपरे निष्ठा प्रतिष्ठाऽऽश्रये "
श्रीहर्षे'..........

आपका कोई प्रबन्ध नहीं मिलता है। किन्तु काव्यप्रदीप विरोधालङ्कार के उदाहरण में—'यथा मद्भ्रातुः श्रीहर्षस्य—

'कान्तः पुरत एव दृश्यते पात्रतां न पुनरेति चक्षुषोः।
हन्त लोऽपि भुजयोर्न भाजनं कोऽयमालि! वनमालिनः क्रमः'॥

गोविन्द ठाकुर ने लिखा है।

प० जगद्धर ठाकुर १६

आप सुरगणय मूल के पराशरगोत्रीय प० रत्नेश्वर ठाकुर के पुत्र थे। आपने १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मिथिलेश धीर सिंह के धर्माधिकारी रहते हुए मालती-माधव, मेघदूत, वासवदत्ता, वेणी-संहार और गीतगोविन्द आदि की टीकाएँ लिखीं। वेणी संहार की टीका में अपना परिचय लिखते हैं-

'येनापाठि कठोर-गौतममतं वैशेषिकं खण्डनं,
येनाश्रावि सकाव्य कोष निवहं तत्पाणिनीयं श्रुतम् ॥
छन्दोऽलङ्करणं च शुद्धभरतं येनाध्यगायि स्थिरं
तेनानेन जगद्धरेण कविना टीका कृता मर्मदा ॥'

बाणकवि १७

आप कादम्बरीकार बाण भट्ट से भिन्न थे। आपका मूल भण्डारि-समय और निवास मनीगाछी रेलवे स्टेशन के समीप भण्डारिसम गाँव में था। उस गाँव में आप की स्थापित भगवती श्री १०८ वागेश्वरी अबतक विराजमान हैं। आपका समय १५ वीं श० और साहित्य-प्रबन्ध 'पार्वती परिणय' है। आप ही के परलोक चले जाने पर यह वाचस्पति मिश्र का श्लोक है—

'ध्वस्तः काव्योरुमेरुः कविविपणि महारत्न राशि र्विशीर्णः,
शुष्कः शब्दौघसिन्धुः प्रलयमुपगतो वाक्यमाणिक्य-कोषः॥
दिव्योक्तीनां निधानं निधनमुपगतं हा! हता दिव्य-वाणी,
बाणे दूरप्रयाणे प्रतिहतविधिना प्रापिते दीर्घ-निद्राम् ॥,

तर्क-पञ्चानन देवनाथ ठाकुर १८

आप ने पूज्य पिता प० गोविन्द ठाकुर के काव्य-प्रदीप पर कुछ विपक्षियों का आक्षेप सुनकर काव्य कौमुदी नाम की काव्य-प्रकाश की टीका लिखी। जिसके आदि में यों लिखते हैं—

'विन्यस्तं दूषणं येन गौरवीषु निरुक्तिषु।
विन्यस्यत्यस्य शिरसि तर्क-पञ्चाननः पदम्॥" इत्यादि।

सोमभट्ट आपके मीमांसाऽध्यापक थे, इसलिये अधिकरण कौमुदी में आपने लिखा है—

'सोमभटोपदिष्टेन पथा सञ्चरतोऽधुना॥
मीमांसा-विषयारण्ये शरणं मम भारती॥'

प० अच्युत ठाकुर १६

आपने महाराज शिव सिंह के मन्त्री होकर काव्य-प्रकाश की टीका लिखी। जिसका उल्लेख भीमसेन दीक्षित ने अपनी का० प्र० टीका में किया है। शिवसिंह के अनुसार आपका समय १५ वीं श० है।

प० रत्नपाणि ठाकुर २०

काव्य-प्रकाश की टीका काव्यदर्पण में आप अपना परिचय लिखते हैं—

'शिवसिंहान्मिथिलेशादवाप यो मन्त्रितां विबुधः॥
तस्याच्युतस्य सूनुर्बभूव भुवि रत्नपाणिरयम्॥'

म० प० रुचिपत्युपाध्याय २१

आप के पिता प० विश्वनाथ उपाध्याय थे। मूल खौआरय बेजौली और निवास बेजौली गाँव में था। आपने १५ वीं शताब्दी में मिथिलेश भैरव सिंह की आज्ञा पाकर अनर्घराघव की टीका लिखी। श्राद्धदर्पणकार प० धनपत्युपाध्याय आप के पुत्र और मन्त्र-प्रदीप कर्ता आगमाचार्य प० हर-पत्युपाध्याय पौत्र थे। अनर्घराघव के आदि में भैरव सिंह का वर्णन करके—

'खौवाल वंशजातस्तस्यादेशान्महीशस्य॥
श्रीरुचिपतिरतिगूढाः स्पष्टीकुरुते मुरारिकविवाचः॥'

और १ अङ्क के अन्त में—'इति समस्त प्रक्रिया विराजमान-रिपुकंसनारायण भवभक्तिपरायण-श्री हरिनारायणपदसमलङ्कृत-महाराजाधिराज श्रीमद्भैरव सिंह देव प्रोत्साहित-बेजौली ग्राम वास्तव्य खौवाल वंश प्रभव श्री रुचिपति-महोपाध्याय विरचितायामनर्घराघवटीकायां प्रथमोऽङ्कः।' लिखते हैं।

१६ शताब्दी में—

कविराज गङ्गानन्द मिश्र २२

आप प० भानु मिश्र के पौत्री-पुत्र और प० रघुनन्दन राय के भतीजे थे। आपने १६ वीं शताब्दी में बीकानेर नरेश कर्ण सिंह का आश्रय पाकर कर्णभूषण १ काव्यडाकिनी २, शृङ्गारवनमाला ३, और भृङ्गदूत ४ बनाये। शृङ्गारवनमाला में लिखा है—

'भानु-पौत्रीतनूजेन मिथिलादेशवासिना॥
शृङ्गारवनमालेयं गङ्गानन्देन तन्यते॥'

प० रवि ठाकुर २३

आप के पिता पूर्वोक्त प० रत्नपाणि ठाकुर थे। काव्य-प्रकाश पर 'मधुमती' नाम की टीका आप ही की है, जिसका उल्लेख भीमसेन दीक्षित ने 'सुधा-सागर' में किया है।

प० दुर्गादत्त मिश्र २४

आपका छन्दोग्रन्थ वृत्तमुक्तावली है। औफ्रेट महाशय लिखते हैं कि आपका समय १६ वीं श० के बाद नहीं है।

प० केशव मिश्र २५

आपने मुलतान प्रान्तीय कोट काँगड़ा-नरेश माणिक्यचन्द्र के आदेश से १६ वीं शताब्दी में अलङ्कारशेखर लिखा। अ० शे० के आदि में—'ग्रन्थाः काव्यकृतां हिताय विहिता ये मम पूर्वमया' इत्यादि श्लोक से सात ग्रन्थ और आपके लिखे ज्ञात होते हैं, किन्तु 'अलङ्कार सर्वस्व' और 'काव्य रत्न' ये दो ही ग्रन्थ उन में से अलङ्कारशेखर में उल्लिखित हैं, अवशिष्ट का पता नहीं लगता है।

म० म० नरसिंह ठाकुर २६

आप प्रदीपकार के चचेरे भाई प० [illegible] ठाकुर के प्रपौत्र प० गदाधर ठाकुर के पुत्र थे। काव्य प्रकाश की टीका 'नरसिंह मनीषा' आप ही की है। भीमसेन दीक्षित ने 'तर्कविद्यावागीश' शब्द से आपका उपादान किया है। नरसिंह मनीषा में—

'नानाविधं बहुविधैर्विबुधैर्निबद्धं
व्याख्यानमत्र न तथा मुदमातनोति॥'
'दोष-प्रदानपटवो बहवोपि धूर्ता,
मूका भवन्ति कठिने सरले प्रगल्भाः॥' इत्यादि

उक्ति आपका पण्डित्य-प्रकर्ष सूचित करती है।

कवि देवानन्द शर्मा २७

आपका संस्कृत मैथिली–मिश्रित प्राचीन उषा-हरण नाटक है, जो प० कवि चन्दा झा के लेख से ज्ञात होता है। आपका समय १६ वीं श० माना गया है।

१७ शताब्दी में—

प० वंशमणि शर्मा २८

आप के पिता प० रामचन्द्र शर्मा थे। नेपाल के राजा प्रताप मल्ल देव के आश्रित होकर आपने गीत-दिगम्बर काव्य बनाया। समय १७ वीं शताब्दी कहा जाता है।

म० म० उमापति उपाध्याय २९

आपका निवास कोइलख ग्राम में था और साहित्य–रचना पारिजातहरण नाटक है। डा० ग्रियर्सन के मत से आप १४ वीं श० में राजा हरिसिंह देव के सभा-पण्डित थे। किन्तु मिथिला की प्रसिद्धि आपको मिथिलेश राघव सिंह के सम–सामयिक भवटियाही रेलवे स्टेशन के निकट नेपाल सप्तरी परगना में मकमानी के राजा हरिहरदेव के आश्रित बताती है। आपने भी पारिजातहरण में लिखा है—

'सू०–आदिष्टोऽस्मि यवनवनच्छेदन कराल करवालेन हिन्दू पति श्री हरिहर देवेन·······' इत्यादि। यह भी जनश्रुति है कि किसी धार्मिक सभा का आह्वान पत्र पाकर आपने लिखा—

'एकठा नाव नदी मरखाहि,
हम अति बूढ़ चढ़ब नहि ताहि ॥
गोकुल नाथ कहै छथि जैह,
हमरो सम्मति जानब सैह ॥'

इससे भी गोकुलनाथ उपाध्याय के समय १७ वीं शताब्दी में आपका रहना प्रमाणित होता है।

प० रघुदेव (मिश्र) सरस्वती ३०

आप मिथिलेश कुमार अच्युत ठाकुर के दौहित्र और हरियम्मय मूलक वत्सगोत्रीय विश्वेश्वर मिश्र के पुत्र थे। दिल्लीश्वर शाहजहाँ के दरबार में पहुँच कर विरुदावली आपने बनाई थी। विरुदावली में अपना परिचय यों लिखते हैं—

'श्री विश्वेश्वर मिश्रतः कुमुदिनी देवी कुमारं कुला-
लङ्कारं समवाप यं गणपतिं गौरी गिरीशादिव ॥
दौहित्रोच्युतठक्कुरस्य कृतिनः श्री हारिताम्रान्वयः।
श्रेष्ठोऽसौ रघुदेव बालक कविर्वैदेह भूमण्डनः ॥'

लोचन कवि ३१

मिथिलेश महिनाथ ठाकुर के अनुज कु० नरपति ठाकुर की आज्ञा पाकर १७ वीं शताब्दी में आप ने रागतरङ्गिणी बनाई। रा० त० में आपने लिखा है--

'यो जागर्ति महीतले निरुपमः सर्वासु पुंसां कला-
स्वासन्नेषु च कल्पपादपवदानन्दाय यो नित्यशः ॥
तस्य श्रीनृपसुन्दरात्मज-महीनाथानुजस्याज्ञया,
विप्रःकोऽपि सुवंशजो नरपतेः कीर्तिं तनोति प्रियाम् ॥
किञ्चित् समाहृत्य कुतश्चिदन्यत् स्वयंच सम्पाद्य पदप्रबन्धान् ॥
वितन्यते लोचननामधेय-द्विजेन सा रागतरङ्गिणीयम् ॥' इत्यादि।

क० प० रामदास झा ३२

आप कुजिलवार मूलक कात्यायन गोत्रीय प० कृष्ण दास झा के पुत्र थे। १७ वीं श० के मध्य में विद्यमान महाराज सुन्दर ठाकुर के आदेश से आनन्द विजय नाटिका की रचना आप ने ही की। उसके आरम्भ में लिखते हैं—

सू०—आदिष्टोऽस्मि मिथिला-मही-महेन्द्रेण श्री सुन्दर नरेशेन यथा कात्यायनगोत्रसम्भवेन कुजौलीकुलनन्दनेन श्री रामदासोपाध्यायेन···इत्यादि।

प० गोविन्ददास झा ३३

आप प० रामदास झा के भाई थे। नल-चरित १, कृष्ण-चरित २, संस्कृत में, और पदावली मैथिली में आप की रचना है। पदावली मात्र अभी प्रकाशित है।

१८ शताब्दी में—

म० म० गोकुलनाथ झा ३४

आप मङ्गरौनी ग्राम निवासी फन्नावार मूलक मैथिल कुलभूषण प० पीताम्बर झा के पुत्र थे। आप कुछ दिन गढ़वाल नरेश फतेशाह के आश्रित थे। आपके अनुज जगन्नाथ उपाध्याय, पुत्र रघुनाथ उपाध्याय और कन्या कादम्बरी का पता लगता है। आप के रचित तेईस निबन्ध हैं, जिन में काव्यप्रकाश–विवरण १, अमृतोदयनाटक २, रसमहा–र्णव ३, शिवस्तुति ४, कादम्बरी–कीर्ति-श्लोक ५ साहित्य के ग्रन्थ हैं। मिथिलेश म० राघव सिंह के समानकालिक होने के कारण आप का समय १७ वीं श० के अन्त से १८ वीं श० के आरम्भ पर्यन्त माना गया है।

प० हरिहरोपाध्याय ३५

आप के करमहय मूलक वत्सगोत्रीय प० हृषीकेशोपाध्याय पितामह, प० राघवोपाध्याय पिता, प० नीलकण्ठोपाध्याय अनुज और प० मदन उपाध्याय चचेरे भाई थे। आप म० म० देवनाथ ठाकुर कृत ग्रन्थ की टीका मुक्तावली में लिखते हैं—

'प्रादुर्भूय पुरोगिरेरिव हृषीकेशात् कृती राघवो,
यस्तिग्मद्युतिवद्दिवाकरमहाकाशे दिदीपे द्विजः ॥
या लक्ष्मीरिव मैथिलादुदभवद् विद्यावदातास्मन–
स्ताभ्यामुद्भवमापतुः कुशलवप्रख्यात गोत्रौ सुतौ ॥'

8

एवां तयोः प्रथमजेन निजानुजात-
श्री नीलकण्ठ कविकण्ठविभूषणाय ॥
गोविन्द-सूनु गुण गुम्फ निषक्त सूक्ति-
मुक्तावली हरिहरेण चिरेण चीर्णा ॥'

आप की साहित्यरचना भर्तृहरि निर्वेद और मुक्तावली है। १८ वीं शताब्दी आपका समय माना जाता है।

प० वैद्यनाथ कवि ३६

आप औफ्रेट महाशय के मत से मैथिल कवि थे और १८ वीं श० में मुलतान के राजा केशवदेव की आज्ञा से केशवचरित काव्य के रचयिता थे।

कवि पण्डित वेणीदत्त झा ३७

आप मिथिलेश महाराज माधव सिंह के मामा और करमहय मूलक श्रोत्रिय कुलभूषण प० जगन्नाथ झा के पुत्र थे। आप का समय १८ वीं शताब्दी का अन्त और निवास स्थान विष्टो ग्राम था। आपके वंशज अभी हाटी गाँव में बसते हैं। आप की रचना रसकौस्तुभ है, जिसका अन्तिम श्लोक यह है—

'आसीद्यस्तीरभुक्तौ ललितकर महा वंशजश्चारुकर्मा
चक्रच्छास्त्राब्ज भानुः प्रथितवरयशाः श्रीजगन्नाथ शर्मा ॥
चक्रे तस्यात्मजन्मा मुरहर चरणाम्भोरुहासक्तचित्तो,
वेणीदत्तः प्रयत्नादतिरुचिरतरं कौस्तुभं सद्रसानाम् ॥'

प० भीष्म उपाध्याय ३८

गीतशङ्कर काव्य १, कुमार सम्भव की टीका २ और वृत्तदर्पण ३ आप की रचना है। आप का समय अनुमान से १८ वीं श० बताया जाता है। औफ्रेट महाशय ने आप को मैथिल माना है।

बालकवि कृष्णदत्तोपाध्याय ३९

आप का निवास उजान ग्राम में था। वहीं पर

श्री १०८ छिन्नमस्ता देवी की उपासना से आप सिद्ध हुए। आप के बड़े भाई षट्शास्त्री पुरन्दरोपाध्याय आदि थे। आप की रचना गीत गोपीपति १, चण्डिका चरित-चन्द्रिका २ और शशिलेखा ३, काव्य है। १९ वीं शताब्दी में रहनेवाले प० हर्षनाथ झा के आप सम्बन्धी थे, जो उन्हों ने गीत गोपीपति की टीका में कहा है—'स्वमातृ मातामह मातुलेन कृतं बन्धं विशदीकरोति' इत्यादि। अतः आप नियमतः १८ वीं श० में थे।

प० नरपति झा ४०

आप तरौनी वासी म० म० परमेश्वर झा के पूर्वज थे। मि० महाराज राघव सिंह के दरबार में रह कर आप ने राघव कीर्तिशतक और गोपीवल्लभ काव्य बनाया।

प० विष्णुदत्त झा ४१

आप प० नरपति झा के भतीजा और महाराज प्रताप सिंह के आश्रित थे। अनर्घराघव की टीका आप की रचना है।

प० चित्रधर उपाध्याय ४२

आप फनावार कुल के दौहित्र थे। आप का निवास मङ्गरौनी ग्राम में था। साहित्य में आप की रचना शृङ्गारसारिणी और वीरसारिणी है। समय १८ वीं श० कहा जाता है।

प० लालकवि ४३

आप का संस्कृत मैथिली-मिश्रित गौरीस्वयंवर नाटक है। आप ज्यौतिषी थे। मङ्गरौनी वासी भाषा कवि लाल दूसरे थे। आपका समय १८ वीं शताब्दी है।

प० रमापतिउपाध्याय ४४

आप पलिवार मूलक वत्सगोत्रीय प० कृष्णपतिउपाध्याय के पुत्र थे। महाराज नरेन्द्र सिंह की आज्ञा से रुक्मिणी हरण नाटक आपने लिखा। जिस के आदि में लिखा है—

'आदिष्टोऽस्मि निखिल... महाराज श्री ३ मन्नरेन्द्र सिंह देवदेवेन... यत् पूर्ववल्ली कुल प्रवर्तनैक कमलासनावतार... कवि कुलालङ्कार श्रीकृष्णपत्युपाध्याय तनूजन्मना वत्सगोत्रेण श्रीमद्रमापति शर्मणा...' इत्यादि। आपका समय १८ वीं शताब्दी है।

प० मच्छ उपाध्याय ४५

आप मङ्गरौनी वासी प० अचल उपाध्याय के भाई थे। 'शतरञ्ज प्रबन्ध' आपका ग्रन्थ है और १८ वीं श० समय माना जाता है।

म० म० सचल मिश्र ४६

आप हरियमय मूलक वत्सगोत्र पाही टोल (सरिसव) निवासी प० रघुदेव मिश्र के पुत्र थे। आप के तर्क विद्यागुरु थे म० म० गोकुलनाथ के पौत्र म० चित्रकर उपाध्याय। गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती पर एक विस्तृत गम्भीर टीका आप ने लिखी थी, जो आप के प्रपौत्र प० केशी मिश्र बी० ए०, से अभी प्रकाशित की गई है। आप ने पूना जाकर पेशवा श्री मन्त महाराज से पूर्ण सत्कार के साथ दो ग्राम जब्बलपुर प्रान्त में पाये। आप का समय १८ वीं श० का अन्त है। आ० स० की टीका के आदि में आप परिचय लिखते हैं—

'सर्वज्ञादिव लब्धाप्य श्रीचित्रकर शर्मणः ॥
रम्या मान्वीक्षिकीं नौमि वाचं लम्बोदरं हरिम् ॥'
'सत्तर्कोदयभूमिरुज्ज्वलमना मीमांसयाऽलङ्कृतो,
जातः श्री रघुदेव शर्म कृतिनो रम्भाऽऽख्यदेवीसुतः ।
हरिमय कुलजातः श्रोत्रियेषूत्तमेषु,
सचल इति जनायं भारतीया वदन्ति ॥
स रसिकजन चेतोहारिणीं भावहृद्यां,
विकृतिमिह भवानीनाथ-नामा करोति ॥'

प० मोहन मिश्र ४७

आप म० म० सचल मिश्र के छोटे भाई थे। आप ने राधानयन द्विशती काव्य बनाया, जिसको आप के प्रपौत्र श्री गङ्गानाथ मिश्र ने छपाया है।

१९ वीं शताब्दी में—

प० श्री हृदयनाथ मिश्र ४८

आप सोदरपुर दिगौन मूलक शाण्डिल्य गोत्रीय श्रोत्रिय कुलभूषण १९ वीं श० में थे। आप का निवास पहले सरिसव गाँव में था, पीछे बदुरी गाँव में हुआ। आप ने अन्धे हो जाने पर सूर्यस्तुति (काव्य) की रचना की, जिस को आप के वंशज बा० वीरभद्र मिश्र ने छपाया है।

प० दुर्गादत्त झा ४९

आप बुधवारय महिसी मूलक वत्सगोत्र के थे। आप का वाताह्वान काव्य अत्यन्त मनोहर है और निवास भराम ग्राम में था। अब आप के वंशज तरौनी में बसते हैं। वाताह्वान को प० सुरेश मिश्र ने छपाया। आप का समय १९ वीं शताब्दी का आरम्भ माना जाता है।

प० चन्द्रदत्त झा ५०

आप मधुवनी के निकट हरिनगर ग्राम में रहते थे। आप की रचना 'संस्कृत भक्तमाला १' कर्ण गीतमाला २, भगवती स्तोत्र ३, काशी शिवस्तोत्र ४, और कृष्ण विरुदावली ५, है। आप का समय १९ वीं श० का प्रारम्भ कहा जाता है।

प० जीवनाथ प्र० आँखी झा ५१

आपने अपने चाचा प० चन्द्रदत्त झा से समस्त शास्त्र पढ़कर महिसी में श्री १०८ उग्रतारा से सिद्धि पाई। आप की रचना कृष्ण पञ्चाशिका अति मनोहर है। इस को प० सुरेश मिश्र ने मैथिल पद्यावली में प्रकाशित किया है।

प० श्रीकृष्ण झा ५२

आप शकराढ़ी मूलक मैथिल ब्राह्मण थे। आप ने कुमार सम्भव और रघुवंश की अन्वय-लापिका टीका लिखी। समय १९ वीं शताब्दी है।

कविरत्न खगेश शर्मा ५३

आप ने १९ वीं शताब्दी में राजा पुरादित्य के वंशज नरहन नरेश के आश्रित रहकर काशीशिवस्तुति और काश्यभिलाषाष्टक काव्य बनाया। वागीश उपाध्याय इन के गुरु थे और निवास टभका गाँव में था।

प० वसन्त मिश्र ५४

आप टभका-निवासी थे। महाराज काशी नरेश के आश्रित होकर १९ वीं शताब्दी में आप ने छन्दोलता बनाई। जिस के आदि में लिखते हैं—

'सर्वेभ्योऽप्यधिकं प्राप्तुमेकत्रैवार्थमुत्तमम् ॥
क्रियते गद्य पद्याभ्यां बसन्तेनैष संग्रहः ॥'
'तान्नौमि पिङ्गल—हलायुध सूरिवर्गान्
यत्सूत्र-वृत्ति-सुमनः परिकल्पयन्ती ॥
छन्दोलताऽद्य निज मूललताच्छदान्मे,
संसर्गतः स्फुरति सूरिमनोऽलिरत्यै ॥'

म० म० हर्षनाथ झा ५५

आप शकराढ़ी-मूलक श्रोत्रिय कुलभूषण थे। आप का निवास उजान गाँव में था। आप के पुत्र प० श्री ऋद्धिनाथ झा और जामाता म० म० डा०

श्री गङ्गानाथ झा विद्यमान हैं। आप १६ वीं शताब्दी के मध्य से अन्त तक मिथिलेश महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह के आश्रित थे। आप की साहित्य-रचना माधवानन्द नाटक १, उषाहरण नाटक (नवीन) २, और गीत गोपीपति की टीका ३ है। गी० गो० की टीका में आप ने लिखा है—

'चण्डीपदाम्भोजयुगं प्रणम्य श्री हर्षनाथो लघुभिर्वचोभिः ॥
स्वमातृमातामहमातुलेन कृतं प्रबन्धं विशदीकरोति ॥'

प० मधुसूदन झा ५६

आप शतलखा वासी उचितवार मूलक प० पद्मनाभ झा के पुत्र थे। १७ वीं श० का उत्तरार्ध आप का समय है और काव्यमाला में प्रकाशित अन्यापदेश शतक आपकी रचना है, जिस के अन्त में आप अपना परिचय लिखते हैं—

'लेभे यं शुभदा तपोभिरमलैः श्रीपद्मनाभात् सुतं,
यद्देशो मिथिलाऽखिलावनितलालङ्कारचूडामणिः ॥
तेनेदं मधुसूदनेन कविना विद्यावता निर्मितं
श्लोकानां शतकं मुदे सुकृतिनामन्यापदेशाह्वयम् ॥'
'निरवद्यपद्य शतमेतदभिप्रकटार्थ वर्णपद संवलितम् ॥
उजथीकुलाम्बुजवनीरविणा मधुसूदनेन कविना रचितम् ॥'

प० गौरीनाथ झा ५७

आप सरिसव निवासी खौआरय सिसर वार मूलक श्रोत्रिय मोदनाथ झा के पुत्र थे। १६ वीं शताब्दी का अवसान आप का समय है। आप ने विद्या-गुरु स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती के चरित-वर्णन में यतीन्द्र-चरित प्रकाशिका (यमकमय-काव्य) लिखी, जो छप गई है।

प० भानुनाथ प्र० भाना झा ५८

आप खौआरय मूलक पिलखवार वासी म० म० दीनबन्धु प्र० नेनन उपाध्याय के पुत्र और म० म० वबुजन उपाध्याय के अग्रज थे। आप ने मिथिलेश महाराज महेश्वर सिंह के मनोरञ्जन के लिये १६वीं श० में प्रभावती हरण (नवीन) नाटक लिखा।

प० केदारनाथ झा ५६

आप कटैया वासी प० हरिहर झा के पुत्र थे। आप का मिथिला वर्णन काव्य है। समय १६ वीं श० का मध्य माना जाता है।

२०वीं शताब्दी में—

प० चन्दा झा (चन्द्रकवि) ६०

मैथिली की असीम सेवा के प्रसाद से आप को कौन नहीं जानता है। आप का मूल मड़ड़य और निवास-स्थान पहले पिण्डारुछ पीछे ठाढ़ी गाँव था। आप १६ वीं शताब्दी में मि० महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह तथा २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मि० महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह के आश्रित थे। आप की संस्कृत रचना लक्ष्मीश्वर विलास है।

म० म० कृष्ण सिंह ठाकुर धर्मधुरीण ६१

आप खण्डवलाकुलभूषण और वासी बा० जगत सिंह ठाकुर के पुत्र थे। आप की विद्वत्ता सुशीलता और धार्मिकता मिथिला के घर घर में प्रसिद्ध है। स्व० म० म० शशिनाथ झा आप ही के पट्टशिष्य थे। आप ने खण्डवलाकुल दीपिका (काव्य) लिखी, जो प्रकाशित है।

म० म० परमेश्वर झा वैयाकरण केसरी ६२

आपका मूल वलियासय सकुरी गोत्र काश्यप और निवास तरौनी गाँव में था। आप २०वीं श० के प्रथम भाग तक मि० म० रमेश्वर सिंह के राज पण्डित थे। आप का ऋतु वर्णन और यक्षसमागम काव्य मुद्रित है।

सर्वतन्त्र स्वतन्त्र धर्मदत्त प्र० प० बचा झा ६३

आप नवानी निवासी प० रत्नपाणि झा के पौत्र और प० दुर्गादत्त झा के पुत्र थे। आप २०वीं श० के प्रथम भाग में मुजफ्फरपुर गवर्नमेण्ट संस्कृत कौलेज के अध्यक्ष थे। सुलोचनामाधव चम्पू और प्रस्तार विचार आप की साहित्य रचना है।

प० जीवन झा ६४

समस्तीपुर के समीप हरिपुर बढ़ेता ग्राम वासी डोबाई झा के आप पुत्र थे। काशीनरेश म० प्रभु-नारायण सिंह के आश्रित होकर आपने प्रभुचरित काव्य बनाया। आप का समय २० वीं श० का प्रारम्भ है।

आशुकवि प० सुरेश मिश्र ६५

आप की आशुकविता भारत विख्यात है। आप विष्णुपुर वासी प० वसन्त मिश्र के पुत्र और नैया० उमेश मिश्र के अग्रज थे। २० श० के प्रथम भाग में मि० म० रमेश्वर सिंह के आश्रित होकर आप ने रमेश्वरनिदेश, रमेश्वरलताऽभिनन्दन और मैथिल महासभोक्ति काव्य बना कर प्रकाशित किया।

प० यदुनाथ मिश्र ६६

आप सोदरपुर सरिसव मूलक शाण्डिल्यगोत्रीय श्रोत्रिय-रत्न प० जयनाथ मिश्र के पुत्र थे। आप ने २० वीं श० के प्रारम्भ में व्यञ्जनावाद साहित्य निबन्ध बनाया।

प० चक्रधर झा ६७

आप सागरपुर वासी नरोन वंशावतंस प० शत्रुघ्न झा के पुत्र और म० म० चित्रधर मिश्र के शिष्य थे। आप ने रघुदेव सरस्वती की विरुदावली की विबुधराजिरञ्जिनी टीका लिखी थी। आप का समय २०वीं शताब्दी का प्रथम भाग है।

प० देवीकान्त ठाकुर ६८

आप अथरी निवासी खड़ोड़य मूलक प० जीवनाथ ठाकुर के पुत्र और मुजफ्फरपुर ग० संस्कृत कौलेज में सांख्ययोगाध्यापक थे। आप की रचना देवीस्तुति और महिषासुर वध काव्य है।

प० बुद्धिनाथ झा ७६

आप पडुआमहेन्द्र मूलक रामभद्रपुर निवासी प० पञ्चरथ झा के पुत्र और मुजफ्फरपुर सं० कौ० में ज्यौतिषाध्यापक थे। आपकी रचना तारालहरी १, प्रियालापकलाप २ और भ्रातृ विलाप है।

म० म० प० श्री मुकुन्द झा बख्शी ७०

आप कामदाकुल भूषण हरिपुर निवासी बख्शी नन्दलाल झा के पुत्र हैं। सम्प्रति मुजफ्फरपुर संस्कृत कौलेज से अवकाश (पेन्सन) ग्रहण कर काशीवास करते हैं। आप की साहित्य रचना में अमृतोदय टीका और भर्तृहरिनिर्वेद टीका अत्युत्तम है।

प० श्री रविनाथ झा व्या० प्रधानाचार्य ७१

आप ठाढ़ी निवासी मड़रय मूलक बाबूदत्त झा के पुत्र और मुजफ्फरपुर संस्कृत कौलेज में व्याकरण के प्रधानाध्यापक हैं। आप की साहित्य-रचना अर्घ्यलम्बोदर नाटक है।

प० श्री बालकृष्ण मिश्र ७२

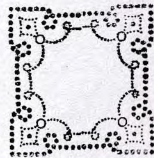
आप नवटोल (सरिसव) निवासी सोदरपुर-दिगौन मूलक श्रोत्रिय कुलभूषण गोसाञि मिश्र के पुत्ररत्न हैं। कुछ दिन दरभङ्गा म० रमेश्वरलता विद्यालय में तथा मुजफ्फरपुर संस्कृत कौलेज में न्यायाध्यापक पद पर रह कर सम्प्रति हिन्दू विश्वविद्यालय में हैं। आप की रचना लक्ष्मीश्वरी चरित गद्यकाव्य है।

प० श्री दीनबन्धु झा ७३

आप के पिता ईसहपुर निवासी मड़ड़य मूलक श्रोत्रियवंशावतंस फेकू झा थे। आप सम्प्रति सरिसव गाँव में महारानी श्री ३ लक्ष्मीवती विद्यालय में प्रधानाध्यापक हैं। आप ने रमेश्वर प्रतापोदय और रसिक मनोरञ्जिनी की रचना की, जो मुद्रित है।

प० श्री बालबोध मिश्र ७४

आपका निवास चोरौत स्थान के समीप कोकन गाँव में है। आप सम्प्रति काशी के क्वीन्स कौलेज में मीमांसाऽध्यापक हैं। आप ने उक्त स्थानाधिपति महन्थ श्री रामलषण दास की आज्ञा से 'रामलषण चरित' काव्य बनाया।



प० श्री वागीश झा ७५

आप अकौर ग्रामवासी हैं। काशी नरेश म० प्रभु नारायण सिंह के आश्रित होकर आपने चकोर-दूत की रचना की।

प० श्री [illegible]नाथ झा ७६

आपके पिता सौभाग्य सिमरवार मूलक काश्यप गोत्रीय श्रोत्रियकुल भूषण गोपीनाथ झा थे। आप ने वर्षाहर्ष काव्य बना कर रस कौस्तुभ के साथ छपाया। सम्प्रति आप वर्तमान मिथिलेश महाराजाधिराज श्रीप्रकामेश्वर सिंह के आश्रित हैं।

प० मुरारि मिश्र, प० कालि दास मिश्र, प० श्री निवास मिश्र और प० यशोधरोपाध्याय आदि कवियों के मैथिलत्व तथा इतिहास के सन्दिग्ध होने के कारण इस लेख में उल्लेख नहीं है; एवं दशवीं शताब्दी से पहले का साहित्य सम्बन्धी इतिहास भी तिमिराच्छन्न है। अतः उसपर प्रकाश डालने की चेष्टा नहीं की गई। अन्त में विज्ञपाठकों से प्रार्थना है कि यहां यदि किसी साहित्य ग्रंथकार मैथिल का नाम छूट गया हो, तो परिचय के साथ सूचित करने की कृपा करें।

मिथिला की निजी विशेषताएँ

श्रीयुत मथुराप्रसाद जी दीक्षित

यद्यपि उपलब्ध इतिहास के अङ्कित पृष्ठों में मिथिला की राजनीतिक चर्चाओं को कोई महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त नहीं है, तथापि सामाजिक, आध्यात्मिक तथा मानसिक विचारों की रक्षा और प्रचार में मिथिला का सदा से महत्त्व-पूर्ण स्थान रहा है, यह प्रायः सर्व्वसम्मत सिद्धान्त है। जिस समय बौद्धधर्म का प्रचार इस के बगल की वैशाली और गङ्गा पार मगध में खूब जोरों का रहा है, उस समय के बौद्ध कालीन ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि बौद्ध वाद का आदर मिथिला ने उस उत्साह के साथ नहीं किया; जिस उत्साह के साथ कोशल, काशी, मगध अथवा वैशाली आदि प्रान्तों ने किया था।

यद्यपि मिथिला लिच्छवी संघ में कुछ दिनों तक शामिल थी, यद्यपि इसके राज्यवंश का सम्बन्ध बौद्ध युग में लिच्छवियों तथा मगध के अजातशत्रु और प्रसन्नजित के वंश से था, तथापि इस बात का कहीं से भी प्रमाण प्राप्त नहीं है कि मैथिलों ने उसी उत्साह और श्रद्धा के साथ बौद्धवाद को अपनाया जिस प्रकार—भारत अथवा इसके बाहर के अन्य देशों ने अपनाया था। सच तो यह है कि इस परिवर्त्तनशील सृष्टि में अपरिवर्त्तित रूप से डटा रहना मिथिला की सदा से एक खास खूबी रही है। और इस खूबी का प्रचुर-प्रमाण आज भी मिथिला के गाँवों में अनेक अंशों में प्राप्त है।

मुसलमानों के आक्रमणों ने भी मिथिला के इस एकनिष्ठता के अजेय दुर्ग को ध्वंस करने में अपने को असमर्थ पाया। यद्यपि मुसलमान शासकों के प्रभाव में आकर इस के कतिपय गाँवों की नीच जातियों ने इस्लाम मत को स्वीकार कर लिया, दो-एक बड़े लोग भी राज्य की लालच में आकर मुसलमान बन गये। पर कहना नहीं होगा कि उनकी संख्या परम तुच्छ रही है, और मिथिला के सामाजिक संगठन को प्रभावान्वित करने में वे सदा से असमर्थ रहे हैं। इस्लामवाद की छाप भी बौद्ध वाद की तरह अपना कोई असर मिथिला के उस सनातन तथा समुज्ज्वल समाज रूपी स्तम्भ पर नहीं छोड़ सकी।

इस विषय में ईसाइयों को भी अपने मुँह की खानी पड़ी। जहाँ पर अन्यान्य प्रदेशों में वे अपनी सेवाओं, सहायताओं तथा प्रचार के अन्यान्य साधनों द्वारा गरीब तथा नीच जातियों को अपने में मिलाने में यत्र तत्र कतिपय अंशों में सफल भी हो गये हैं, पर मिथिला में आकर उनकी सारी गति अवकुण्ठित सी हो गयी। यहाँ की सर्वसाधारण जनता का प्रेम सनातन धर्म्म के प्रति इस प्रकार प्रगाढ़ हो गया है, कि उसको किसी प्रकार का आन्दोलन डिगा नहीं सकता। जिस प्रकार जीव तथा आत्मा को वे अभिन्न मानते हैं, उसी प्रकार वे अपने से अपने धर्म्म को भी। धर्म्म कोई विनिमय की वस्तु नहीं है, इस बात का ज्ञान यहाँ के मूर्ख से भी मूर्ख व्यक्ति को

भलीभाँति विदित है। आर्य्य समाज, ब्रह्म समाज आदि समाजवादी भी तो मिथिला में आकर कुछ नहीं कर सके। ये तो हुईं मिथिला की धार्म्मिक विशेषताएँ ।

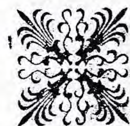
सामाजिक क्षेत्र में भी मिथिला ने अपनी सनातन परिपाटी का अच्छा आदर किया। आज भी "एकापि तौनी लिपटी पुरानी" पर मिथिला के महान् पण्डित ब्रह्म की जिज्ञासा और ज्ञान की उपासना में तल्लीन पाये जाते हैं। हर्ष का विषय तो यह है कि वे अपने को इसी रूप में इस बीसवीं शताब्दी के मध्य भाग में भी परम संतुष्ट पाते हैं। स्त्रियों के भी वस्त्र अथवा आभूषण में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं पाया जाता। मैथिल समाज की सारी अवस्था-व्यवस्था प्रायः आज की वही है, जो हजार वर्ष पूर्व में अथवा महाराज हरिसिंह जी देव के जमाने में थी। वही पञ्जी-प्रबन्ध और वही सौराठ की सभा।

अब रही मानसिक-विकास की बात। मिथिला का मस्तक इस क्षेत्र में सदा से बहुत ऊँचा रहा है। मैथिल पण्डितों का मान कहाँ पर और किस दरबार में नहीं हुआ? शतानन्द से लेकर आज तक उस संस्कृति की धारा अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित होती चली आ रही है। महामहोपाध्याय डाक्टर गङ्गानाथ झा तथा विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदन झा—सम्भव नहीं—उस जाज्वल्यमान आकाश के अन्तिम नक्षत्र हों।

यदि यहाँ के अर्वाचीन पण्डितों पर विचार किया जाय तो बालकृष्ण बाबू आदि दिग्गज विद्वान् आज भी मौजूद हैं। पर इन दिग्गज विद्वानों की परम्परा की रक्षा अथवा निर्वाह करनेवाला आगे कोई नजर नहीं आता।

अतएव मिथिला के नवयुवक विद्वानों से विनम्र निवेदन है कि जिस प्रकार समय समय पर सहस्र सहस्र आँधियाँ आने पर भी मिथिला के दिग्गज विद्वानों ने अपनी सारी विशेषताओं को कायम रक्खा है, उसी प्रकार आप भी इस आँधियों के युग में कम से कम विद्या व्यवसाय सम्बन्धी अपनी विशेषता को कायम रक्खें। आप की यही एक विशेष विशेषता थी, जिस के कारण सब जगह और सब काल में आप का सदा से सम्मान होता आया है।

दुःख की बात है कि वह परम्परा अब अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती हुई नजर नहीं आ रही है। मिथिला और मैथिलों के लिए यह एक आपत्ति-जनक परिस्थिति है और इस परिस्थिति को साहस-पूर्वक पार कर अपनी मानसिक विशेषता को कायम करना मैथिल विद्वानों का परम कर्तव्य है।



श्रीमान् महाराजाधिराज कुमार विश्वेश्वर सिंह जी बहादुर

मिथिला में नान्यवंश का शासन

श्रीयुत नन्दकिशोर लाल दास जी

मिथिला में नान्यवंश के संस्थापक महाराज श्री नान्यदेव या नान्यपदेव हुए। वे कर्णाट देश के निवासी, परमर (पमार) क्षत्रिय वंश के थे, यवनों के अत्याचार से पीडित हो वे इस देश में आये। वे बड़े उद्योगी और साहसी थे। उन्होंने समय अनुकूल पाकर १४००० पैदल और घुड़सवार सेना के साथ आक्रमण कर मिथिला और नेपाल पर अधिकार कर लिया। उन्होंने अपने नाम पर नान्यपुर गाँव बसाया। वह नान्यपुर वर्त्तमान मुज़फ्फरपुर जिले का 'कोइली नानपुर' गाँव है।

नान्यदेव के मिथिला राज्य प्राप्त करने के सम्बन्ध में एक अद्भुत कथा प्रचलित है। वह इस प्रकार है :—

एक दिन नान्यदेव एक ऊँचे स्थान पर बैठे हुए थे। अकस्मात् उनकी दृष्टि एक साँप पर पड़ी, जो फण निकाले हुए था। उन्हें साँप के फण पर कुछ लिखा हुआ मालूम पड़ा। एक पण्डित को बुलाकर वह पढ़ाया गया। पण्डित ने उस पर श्लोक पढ़ा—

" रामो वेत्ति नलो वेत्ति वेत्ति राजा पुरूरवाः।
अलर्कस्य धनं प्राप्य नान्यो राजा भविष्यति ॥ "

अर्थात्—नान्य अलर्क (कुवेर) का धन पाकर राजा होंगे, यह बात राम, नल और राजा पुरूरवा जानते हैं।

इसके बाद वह स्थान, जहाँ साँप बैठा हुआ था, खोदा गया। इस से मिट्टी के नीचे गड़ा बहुत धन निकला। वह धन पाकर नान्यदेव बड़े समृद्धिशाली हो गये और शक्तिशाली होकर उन्हों ने मिथिला का राज्य प्राप्त किया।

अब तक वह स्थान, जहाँ से धन निकला था, बहुत पवित्र समझा जाता है और नानपुर गाँव वाले वहाँ साँप की पूजा करते हैं।

१०९७ ईस्वी में नान्यदेव तिरहुत और नेपाल की सीमा पर चम्पारन जिले के शिवराम पुर नामक गाँव में एक किला बनवा कर कुछ दिन रहे। वह शिवरामपुर आजकल का सिमराँव है। वहाँ नान्यदेव के गढ़ के भग्नावशेष अबतक दृष्टिगोचर होते हैं। गढ़ के पत्थर में निम्न लिखित श्लोक खुदा है, जिस से उसके निर्माण काल का पता लगता है।

नन्देन्दु बिन्दु विधु सम्मित शाकवर्षे
तच्छ्रावणे सितदले मुनि-सिद्ध-तिथ्याम्।
स्वाती शनैश्चरयुते करिवैरि लग्ने
तन्नान्यदेव नृपतिर्विदधीत वास्तुम्॥

अर्थात् शाके १०१९ श्रावण शुक्ल सप्तमी शनिवार, सिद्धियोग, स्वाती नक्षत्र, सिंह लग्न में श्री नान्यदेव ने गढ़ निर्माण किया।

कुछ काल तक नान्यदेव ने निर्विघ्नतापूर्वक राज्य किया, फिर मुर्शिदाबाद के अन्तर्गत कनसोन के राजा वल्लालसेन ने अपने पिता आदिशूर की आज्ञा से आक्रमण कर उनके राज्य पर प्रभुत्व जमा लिया। नान्यदेव कैद कर गण्डेश्वर गढ़ में रखे गये। तत्कालीन मैथिल कवीश्वर

उमापतिधर ने राजा नान्यदेव की इस दुरवस्था का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। वह रचना कलकत्ते के अजायब घर में पत्थर पर खुदी हुई सुरक्षित है।

नान्यदेव के पुत्र श्री गंगदेव को पिता की इस दुरवस्था पर महान् शोक हुआ। उन्हों ने नानपुर के निकट घोरवर नामक गाँव में सेना का संगठन किया। फिर ढलख नामक स्थान में कई बार शत्रुओं को पराजित कर उन्होंने अपने पिता को कारागार से मुक्त किया। इस प्रकार मिथिला का राज्य जो कुछ दिनों के लिये वंग राजा के हाथ चला गया था, फिर इस वंश के हाथ में आ गया।

नान्यदेव ने मिथिला आकर कुल मिलाकर ३६ वर्षों तक राज किया। इनके राज्यकाल में अनंगपाल हस्तिनापुर में राज करते थे।

श्रीधर ठकुर नामक कर्णकायस्थ नान्यदेव के प्रधान मंत्री थे। वे नान्यदेव के साथ अपने सम्बन्धियों को लेकर कर्णाटक से आये थे। मिथिला विजय के बाद नान्यदेव ने उन्हें भरण पोषण के लिये प्रचुर भू-सम्पत्ति प्रदान की और वे राज सेवा में संलग्न रहने लगे। इसके बाद और भी कायस्थों की मण्डलियाँ कर्णाटक से आकर मिथिला में बस गईं। इस प्रकार मिथिला उन कायस्थों की आवास भूमि हो गई, जो इस समय मैथिल कर्ण कायस्थ के नाम से प्रख्यात हैं।

श्रीधर ठकुर ने दरभंगा जिले के झंझारपुर रेलवे स्टेशन से १२ मील पर अन्हराठाढ़ी नामक ग्राम में विष्णुभगवान की स्थापना की थी। प्रतिमा के पादुका-पीठ पर एक श्लोक अङ्कित है जो इस प्रकार है :—

> श्रीं श्रीमन्नान्यपतिर्जेतागुणरत्न महार्णवः।
> यत्कीर्त्या जनितं विश्वं द्वितीयक्षीरसागरः॥
> मन्त्रिणा तस्य नान्यस्य क्षत्रवंशाब्जभानुना।
> देवोऽयं कारितः श्रीमान् श्रीधरः श्रीधरेण च॥

इस श्लोक से श्रीधर का नान्यदेव का मंत्री होना तथा श्रीधर भगवान् की मूर्ति का स्थापन करना सिद्ध होता है।

२. गंगदेव (११३४-११४८)

नान्यदेव के दो पुत्र थे-गंगदेव या गङ्गादेव और मल्लदेव। नान्यदेव की मृत्यु के बाद गंगदेव मिथिला के राजा हुए। इन्हों ने अपने राज्य को कई परगनों में विभक्त किया। प्रत्येक परगने में चौधरी (Headman) अर्थात् गाँवों का मुखिया नियुक्त किया, जिसका काम था सरकारी माल वसूल करना। ग्रामवासियों के झगड़े निपटाने के लिये उन्हों ने पंचायतों की स्थापना की।

गंगदेव ने बड़े २ तालाब खुदवाये जिन से उन को बड़ा यश हुआ। गङ्गासागर नाम का तालाब उन्हीं का खुदवाया हुआ है, जो दरभंगा रेलवे स्टेशन के निकट दक्खिन ओर है, उस का नामकरण उन्हीं के नाम पर हुआ।

अन्हराठाढ़ी में उन का खुदाया हुआ एक दुर्ग बतलाया जाता है। वहाँ खोदने से पत्थर निकलते हैं जिन पर उन का नाम खुदा हुआ पाया गया है। ।

गङ्गदेव ने १४ बरस तक मिथिला का राज किया। उन के भाई मल्लदेव के सम्बन्ध में

विद्यापति ने अपने-भू परिक्रमा नामक ग्रंथ में लिखा है कि उन्हों ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजा जयचन्द्र के यहाँ नौकरी कर ली थी, किन्तु बहुमत यह है कि वे नेपाल के शासक थे।

नरसिंहदेव (११४८ -१२००)

गङ्गदेव के बाद उन के पुत्र नरसिंहदेव सिंहासन पर बैठे। उन की बहादुरी तथा रणकौशल देखकर मुहम्मद गोरी ने उन्हें अपना प्रधान सेनापति बनाया। फिर उन की सहायता से विजय प्राप्त कर वह उन पर बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें मिथिला का स्वतंत्र शासक बना दिया। उन्हें अपने चचेरे भाई से, जो नेपाल के राजा थे, मिथिला में विवाद होते लड़ाई हो गई। इस का परिणाम यह हुआ कि मिथिला और नेपाल एक दूसरे से पृथक् हो गये और इस के बाद वे फिर कभी एक न हुए। यह बहादुर योद्धा और गर्वीले स्वभाव के थे। नरसिंह देव ने सुव्यवस्था के साथ ५२ वर्षों तक राज्य किया।

रामसिंहदेव (१२०४)

नरसिंहदेव की मृत्यु के बाद उन के पुत्र रामसिंह देव मिथिला के राजा हुए। ये बड़े धर्मनिष्ठ और धार्मिक साहित्य के प्रवर्त्तक थे। इन की संरक्षकता में वेदों के कई प्रसिद्ध भाष्यों का संकलन हुआ। हिन्दुओं के धार्मिक तथा सामाजिक अनुष्ठानों के लिये नियम बनाये गये और इन नियमों के कार्य्यरूप में परिणत करने में जो शंकायें उठती थीं, उन के लिये प्रत्येक ग्राम में एक एक राज-कर्मचारी नियुक्त किये गये। इन के राजकाल में शासन प्रणाली में भी बहुत से सुधार हुए। गाँव २ में पुलिस अफसर नियुक्त किये गये, जिनका काम था गाँव में होनेवाली उल्लेखनीय घटनाओं की दैनिक सूचना गाँव के चौधरी के पास देना। गाँव के चौधरी के वेतन में कुछ जमीन दे दी जाती थी, जिस की पैदावार वह और उस के उत्तराधिकारी लिया करते थे। इसी समय गाँव का हिसाब रखने के लिये पटवारी नियुक्त करने की प्रथा भी जारी की गई। उन का वेतन ग्राम-कोष से दिया जाता था।

रामसिंह देव विद्वानों के पोषक थे। उन के सभासद महामहोपाध्याय श्रीकर आचार्य ने व्याख्यामृत नाम से अमरकोष की टीका लिखी, रत्नेश्वर मिश्र ने सरस्वती कण्ठाभरण [रत्न दर्पण] काव्य पर भाष्य लिखा और पृथ्वीधर आचार्य्य ने मृच्छकटिक नाटक की टीका की।

इन के राजत्वकाल में गणेश पण्डित तथा वृद्ध वाचस्पति मिश्र जैसे महान् पण्डित मिथिला को सुशोभित करते थे।

इनकी मृत्यु ६२ वर्ष की उमर में सुलतान नासीरउद्दीन महमूद के राज्यकाल में हुई।

शक्तिसिंहदेव

राम सिंहदेव की मृत्यु के बाद उन के पुत्र शक्तिसिंहदेव राजगद्दी पर बैठे। वे बड़े स्वेच्छाचारी थे। राजसभा के लोग उन के व्यवहार से ऊब उठे। उन की स्वेच्छाचारिता को रोकने के लिये उन के एक सचिव ने सात गण्य मान्य पुरुषों की एक परिषद् कायम की, जो राजा की निरंकुश शक्ति पर नियन्त्रण रक्खा करती थी।

चण्डेश्वर महथा शक्तिसिंह देव के प्रधान मंत्री थे। शासन की बागडोर उन्हीं के हाथों में थी। वे बड़े विद्वान् और नीतिकुशल थे। वे राजकाज भली भाँति चलाते थे, उनके बनाये- सप्तरत्नाकर-कृत्यरत्नाकर, दानरत्नाकर, व्यवहार-रत्नाकर, शुद्धिरत्नाकर, पूजारत्नाकर, विवाद-रत्नाकर और गृहस्थ रत्नाकर—प्रसिद्ध हैं।

शक्तिसिंहदेव ने पाँच वर्ष तक राज किया। इन की मृत्यु सुलतान गयासुद्दीन बलबन के राजत्वकाल में हुई।

हरिसिंहदेव

शक्तिसिंह के बाद उनके पुत्र हरिसिंहदेव राजगद्दी पर बैठे। ये इस वंश के अन्तिम, किन्तु बड़े प्रतापी, राजा हुए। इन्हों ने कुछ मैथिल ब्राह्मण वंशों की अव्यवस्था देख उन के प्रति-संस्कार के लिये उन्हें श्रोत्रिय, योग्य, पंजीबद्ध और जैवार (गृहस्थ), इन चार प्रधान श्रेणियों में विभक्त किया। वेद-विहित अग्निहोत्र आदि श्रौत-कार्य्य निष्णात श्रोत्रिय, उस से कुछ न्यून योग्यतासम्पन्न योग्य, योग्य से न्यून पंजीबद्ध और अतिरिक्त साधारण ब्राह्मण जैवार या गृहस्थ हुए। इस श्रेणी-विभाग के सम्बन्ध में कहा जाता है कि महाराज हरिसिंहदेव ने श्रेणी विभाग करने के विचार से सब ब्राह्मणों को निमंत्रण दे कर घोषित किया कि जो जैसे आचारपूत समझे जायँगे उन को वैसे ही उत्तम-मध्यम रूप से बिदाई में द्रव्य दिया जायगा।

निश्चित दिन में वे ब्राह्मण जिन को पूजा-पाठ का बखेड़ा न था, झटपट चन्दन तिलक लगाये बिदाई के लोभ से सूर्य्योदय होते राजधानी में आ पहुँचे। उनको निम्न श्रेणी के ब्राह्मणों में स्था[न] मिला। इसी प्रकार क्रमशः अपना पूजा पा[ठ] समाप्त कर जो जितनी देर से पहुँचे उनको उ[सी] क्रम से उत्तम व्यक्ति में गणना हुई। सब [से] पीछे शाम को वे कई ब्राह्मण पहुँचे जिनको, पू[जा] पाठ करते शाम हो गई थी। वे राजा से सम्मा[न] पाकर सब से उत्तम ब्राह्मण माने गये। [यह] श्रेणी विभाग अबतक मिथिला में मौजूद है।

महाराज हरिसिंह देव ने आचार-व्यवहा[र] और स्थान की दृष्टि से अन्य द्विजातियों के श्रेणी विभाग किये। और आधुनिक वैवाहिक प्रणाल[ी] जारी की। पहले द्विज लोग धर्मशास्त्र के नियमों [की] स्मरणशक्ति पर निर्भर रख अपने अपने वैवाहि[क] सम्बन्ध करते थे। एक बार भ्रम से हरिनाथ शर्मा नामक एक ब्राह्मण का विवाह एक सम्ब[न्]धिनी कन्या से हो गया। वह बड़ी पतिव्रता निकली। वह कठोर पातिव्रत धर्म का पू[र्ण] रूप से पालन करती थी।

एक समय हरिनाथ शर्मा परदेश में थे। उन की स्त्री महादेव की पूजा के लिये गाँव के ए[क] मन्दिर में गई। पूजा काल जोरों का तूफान उठा। मूसलधार वृष्टि होने लगी। संयोगवश एक व्यक्ति, जो जाति का दुसाध था और चांडाल में परिगणित था, कहीं से आरहा था। पानी से बचने के लिये वह भी उसी मन्दिर में चला गया। जब पानी बन्द हुआ, दोनों साथ ही घर आये। दोनों को साथ देख कर कुछ कुटिल लोगों के मन में सन्देह उत्पन्न हो आया।

वे जहाँ तहाँ अपना सन्देह प्रकट करने लगे। धीरे २ इसने अपवाद का रूप धारण कर लिया।

समाज में कानों-कान बात फैल गई कि हरिनाथ की स्त्री का सतीत्व एक चांडाल द्वारा नष्ट हो गया। जब हरिनाथ शर्मा की स्त्री को यह मालूम हुआ; वह बड़ी लज्जित हुई। उस के दुःख का ठिकाना न रहा। जब उसके पति घर आये उन्हें सब बातें मालूम हुईं। निश्चय हुआ कि ब्राह्मणी की अग्नि परीक्षा हो, उसे शपथ दी जाय। ब्राह्मणी प्रस्तुत थी ही, वह अपने पातिव्रत धर्म के बल पर अपवाद को मिथ्या प्रतीत कराने के लिये महाराज हरिसिंह देव के दरबार में उपस्थित हुई।

उस समय की अग्नि परीक्षा यह थी कि अभियुक्त को तप्त लौह-दण्ड (लोहे की फाल) हाथ में लेकर कहना पड़ता था कि मैं ने अमुक काम नहीं किया है। दोषी होने पर उस के हाथ जलने लगते थे, अन्यथा नहीं। इस प्रचलित प्रथा के अनुसार हरिनाथ शर्मा की स्त्री को तप्त लौह-दण्ड शपथ पूर्वक उठाने को कहा गया। उस ने यह कहते हुए कि "नाहं चाण्डाल गामिनी" (अर्थात् मैं चांडाल गामिनी नहीं हूँ) हाथ में तपी हुई लोहे की फाल ली। इस परीक्षा में उसके हाथ जलने लगे। इस पर उस को बड़ा आश्चर्य्य हुआ! उसे अपने पातिव्रत्य में पूर्ण विश्वास था, तनिक भी सन्देह न था। पर अपना यह हाल देखकर वह बड़े मर्मस्पर्शी शब्दों में भगवान का स्मरण करने लगी। फिर उस ने उपस्थित पंडित-मंडली को पूर्ण विश्वास दिलाया कि वह निष्कलंक है और अन्य वाक्य द्वारा पुनः परीक्षा लेने के लिये प्रार्थना की।

सभा के पण्डित वर्ग ने उसकी बाह्य आकृति और कारुणिक शब्दों से मुग्ध होकर परीक्षा ली। इस बार की परीक्षा में यह कहलाया गया कि "नाहं पत्यतिरिक्तचाण्डाल गामिनी" (पति के अतिरिक्त मैं अन्य चांडाल गामिनी नहीं हूँ) आग में तपाई हुई लोहे को फाल उसके हाथों में दी गई। इस बार उस के हाथ न जले। इस से यह सिद्ध हुआ कि हरिनाथ शर्मा स्वयं चांडाल हैं। किंतु वे भी बड़े धर्मनिष्ठ थे, कभी धर्म-पथ से विचलित न हुए थे। पंडित-मंडली इसका कारण अनुसन्धान करने लगी। पूर्ण गवेषणा के बाद पता लगा कि हरिनाथ शर्मा का विवाह स्वजनता में हुआ था जो शास्त्र-विरुद्ध है और शास्त्र के इस वचन के अनुसार कि 'चाण्डाल-स्वजनगामी". (स्वजनगामी चण्डाल होते हैं) हरिनाथ शर्मा को चाण्डालत्व प्राप्त हो गया था।

यह दशा देख महाराज हरिसिंह देव ने अनधिकार विवाह के निवारण के लिये समस्त मिथिला के द्विजों का पंजी-निर्माण कराया। प्रत्येक व्यक्ति के वंश परम्परा का सम्बन्ध लिपिबद्ध हुआ। इस प्रकार भविष्य में लोगों को चाण्डाल होने से बचाया गया। मिथिला के द्विजों का पंजी निर्माण शाके १२३२ में हुआ जो निम्नलिखित श्लोक से ज्ञात होता है—

> शाके श्री हरिसिंह देव नृपतिर्भूपार्क तुल्योजनिः।
> तस्मादत्तमिदेब्दके द्विज गणैः पंजी प्रबन्धःकृतः।

पंजी मिथिला की ६०० वर्षों से अधिक की एक महान् काल-क्रमबद्ध ऐतिहासिक सम्पत्ति है। पंजी की व्यवस्था बड़ी ही उत्तम है। आज तक मिथिला के पंजीकार पंजी-निर्माण में दत्तचित्त हैं और प्राचीन पंजी को सुरक्षित रखे हुए हैं।

महाराज हरिसिंहदेव ने दरभंगे में एक तालाब खुदवाया जो दरभंगा रेलवे स्टेशन से पश्चिम है और हड़ाही पोखर के नाम से मशहूर है। इस पोखर के खुदाये जाने के संम्बध में एक कहानी प्रसिद्ध है। वह यह कि एक-मलाहिन अपनी पतोहू के साथ मछली बेचने जा रही थी।

राह में एक चील पतोहू के सिर पर से एक छोटी मछली झपट कर ले उड़ी, किन्तु वह उस को संभाल न सकी। उस के चंगुल से मछली गिर पड़ी। इस पर पतोहू हँस पड़ी। उस की सास ने हँसने का कारण पूछा, किन्तु वह कुछ न बोली। इस से सास की उत्सुकता और बढ़ गई और उसने जिद ठानी। आखिर मलाहिन का पुत्र भी वहाँ आ पहुँचा। और भी बहुतेरे लोग जमा हो गये। सब लगे एकस्वर से उस से पूछने। उस ने बहुतेरा लोगों को समझाया कि मैं कारण बतलाऊँगी तो मर जाऊँगी, परंतु लोगों ने उस की एक न सुनी। अंत में उसने कहा—मैं महाभारत के समय चील थी। जब महाराज भगदत्त युद्ध में मारे गये तब मैं उनकी एक समूचो बाँह-जो अलङ्करणयुक्त थी खाने के लिये इस वृक्ष पर लाई थी। यदि इन की परीक्षा करना हो तो यहाँ पर जमीन खोद कर देख लें। एक वह जमाना था, और अब यह जमाना है कि चील एक छोटी मछली का भार नहीं सँभाल सकती। यही देख कर मुझे हँसी आई।" यह कहते ही वह मर गई। इस बात की खबर महाराज हरिसिंह देव को मालूम हुई। वे परीक्षा लेने के लिये तैयार हो गये। मलाहिन का बताया हुआ स्थान खोदा गया। उस से हड्डियाँ और अलङ्करण के कुछ टुकड़े निकले। वहाँ एक पोखर बन गया; जिस को लोग हड्डी की खुदाई के कारण हड़ाही कहने लगे।

दिल्ली का बादशाह गयासुद्दीन तुगलक बङ्गाल के विद्रोही शासक बहादुर शाह को परास्त कर वापस लौटते हुए मार्ग में अपने विजयी सैन्य दल लेकर १३२३ ई० में तिरहुत प्रदेश पर चढ़ आया। उस ने हरिसिंह देव की राजधानी को तहस-नहस कर उस पर अपना अधिकार जमा लिया। हरिसिंहदेव भागकर नेपाल चले गये और नेपाल को तराई के प्रदेशों को जीतकर वहाँ के राजा बन बैठे। उन का नेपाल प्रयाण १२४५ शाके में हुआ था जो निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है :—

बाणाब्धि बाहु शशि सम्मित शाक वर्षे
पौषस्य शुक्ल दशमी क्षितिसूनुवारे।
त्यक्त्वा स्वपट्टन—पुरीं हरिसिंहदेवो
दुर्दैव दर्शित पथे गिरिमाविवेश॥

हरिसिंहदेव के मिथिला से चले जाने के बाद मिथिला का शासनसूत्र मुसलमानों के हाथ आया। इस अवसर पर हरिसिंहदेव के राजपंडित कामेश्वर ठाकुर ने बादशाह से भेंट की। बादशाह उन के गुणों पर मुग्ध हो गया। वह मिथिला का शासन भार उन के हवाले कर दिल्ली चला गया। तब से मिथिला का शासन ब्राह्मणों के हाथ आया।

नान्यवंश के शासन में मिथिला में संस्कृत विद्या की बड़ी उन्नति हुई। स्मृतियों का अध्ययन फिर से जारी हुआ। चण्डेश्वर, श्रीदत्त-

उपाध्याय, हरिनाथ उपाध्याय, भव शर्मन, इन्द्रपति और लक्ष्मीपति जैसे विद्वानों ने इस में भली भाँति प्रोत्साहन दिया। पद्मनाभ दत्त ने अपने सुपद्म व्याकरण का प्रचार किया। भानुदत्त मिश्र ने अलङ्कार ग्रंथों की रचना की, ज्योतिरीश्वर ने पंचशायक, रंगशेखर और मैथिली भाषा का आदि महान् ग्रंथ वर्णन रत्नाकर की रचना की। रत्नेश्वर ने सरस्वती कण्ठाभरण, भवदत्त ने नैषध चरितम् काव्य, पृथ्वीधर आचार्य्य ने मृच्छकटिक नाटक और श्रीधर आचार्य्य ने अमरकोष की टीकाएँ लिखीं।

इस तरह मिथिला के इतिहास में उक्त महत्त्वपूर्ण अध्याय जोड़कर वह नान्यवंश अस्तगामी हुआ।





(श्री रामचन्द्र मिश्र 'मोहन')

सुनाओगी अपना इतिहास ?
तटिनि ! यह कैसा तेरा ह्रास ?

यहीं इन्हीं आखों ने देखी थी वह बहती धार
तेरे यौवन की फूटी पड़ती थी जहाँ बहार
अमृत बारि के वितरण से इस जगती का उपकार
किया, विना कुछ लिये, और विन चाहे प्रत्युपकार

× × ×

पर क्यों बिगड़े दिन, रूठे नगपति तेरे आधार
सूखी देह, उड़े रज, बिछुड़े अपने हित-परिवार
मुड़े मेघ से मीत, छिने तो छिने सकल शृङ्गार
धूसर जल-पट भी न बचा तन पर यह अत्याचार

× × ×

गिरे गगन, टूटे हिम भूधर सूखे उदधि अपार
कुछ भी यहाँ न अचरज है, यह माया का संसार

विश्व का ऐसा ही इतिहास
न यह रोना है स्थिर, या हास।

१७वीं और १८वीं शताब्दी के मैथिली नाटक

[श्रीमान् कुमार गङ्गानन्द सिंह जी, एम० ए०]

वङ्गीय साहित्य परिषद् ने " नेपाले बांगला नाटक" के नाम से चार नाटकों को प्रकाशित किया है। उन के नाम यों हैः–

(१) विद्या विलाप—काशीनाथ कृत

(२) महाभारत—कृष्णदेव कृत

(३) रामचरित—गणेश कृत

(४) माधवानलकामकन्दला—धनपति कृत

इन की पाण्डुलिपि नेवारी-अक्षरों में लिखी हैं। और ये नेपाल से उपलब्ध हुए। १६२२ ई० में मुझे इस संग्रह को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। इन नाटकों को पढ़ने पर यह स्पष्ट हो गया कि इन में से तीन तो मैथिली भाषा में लिखे गये हैं और एक गणेश कृत रामचरित, वङ्गभाषा में। इस सम्बन्ध में स्वर्गीय सर आशुतोष मुखोपाध्याय की अध्यक्षता में जब मैं ने वङ्गीय एशियाटिक सोसाइटी की एक बैठक में प्रकाश डाला तो किसी ने मेरे पक्ष का विरोध नहीं किया। वह निबन्ध सोसाइटी की पत्रिका में प्रकाशित हुआ। पर आज तक किसी का प्रतिवाद मेरे देखने में नहीं आया है। मैथिली-भाषी सज्जनों के लिये तो निम्नलिखित तीन उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा।

(१) काशीनाथ कृत विद्याविलाप (पृष्ठ ७)

" गुरु क पाद पद्म सेबि शस्त्र अस्त्र शिख [ष] इ आज।
वाण जोरि रक्त ताकि [डाकि] मारि बेध करह काज। "

(२) कृष्णदेव कृत महाभारत (पृ० ४३)

तनय रतन देखि सुख मोर (मोल) भेल।
जायब आन बन सब दुख गेल।

(३) गणेश कृत रामचरित (पृ० १२१)

" रङ्गभूमि दशरथ दिलेन प्रवेश।
प्रबल नृपति मा (३) ने जाहार निदेश॥
कौशल्या केकयी आदि नारीगण संगे।
सुमन्त्र सचिव धीर, परम सुरंगे॥
श्री रणजित मल्ल दिलेन निदेश।
वर्ण करिते आजि नृपरे प्रवेश॥

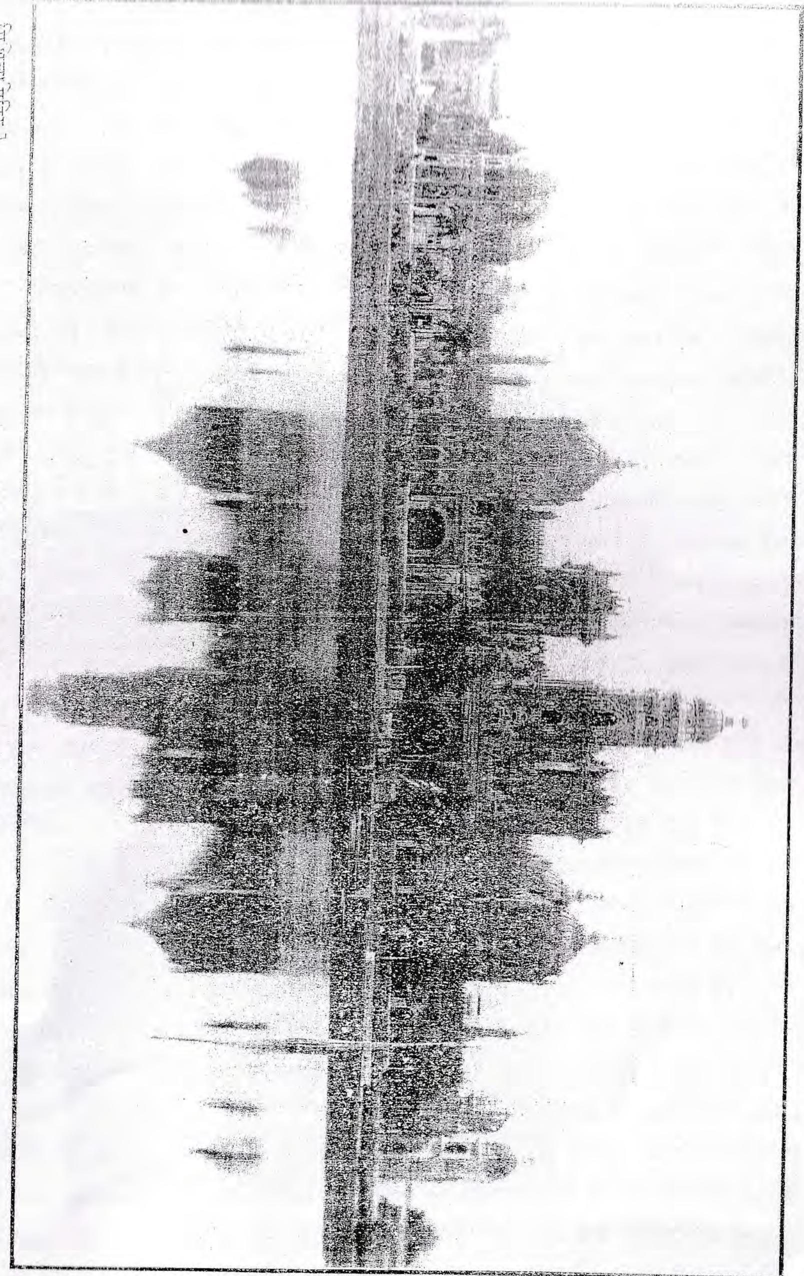
(४) धनपति कृत माधवानल कामकन्दला (पृ० २१६)

"निके (२ क) सिंगारब आंग सुरभि-तेल-कसाय
सखि आबे हे भूषण पहिराय "

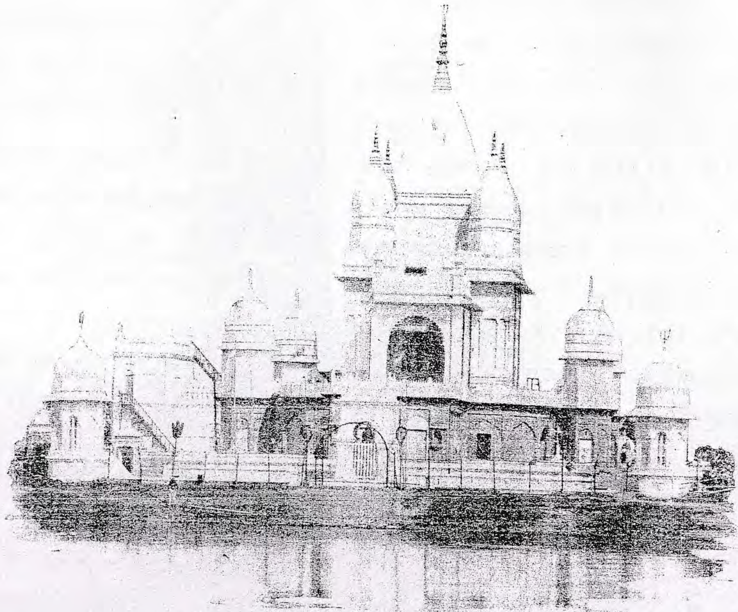
इस [नेपाले बाङ्गला नाटक] संकलन के सम्पादक श्रीयुत ननीगोपाल वन्द्योपाध्याय का भी ध्यान इस भाषा-भिन्नता की ओर आकृष्ट हुआ, पर उन्हों ने मान लिया कि ये प्राचीन वङ्गभाषा में लिखे गये हैं और जगह जगह पर अन्यान्य-भाषाओं का सम्मिश्रण है। इस संकलन की भूमिका में उन्हों ने लिखा है —

" इहादेर मध्ये प्रथम तीन खानी जे बाङ्गालीर लेखा, से विषये सन्देहई नाई। इहादेर भाषा कृष्णराम कवि, बनमालीदास, भारतचन्द्र ओ रामप्रसादेर भाषारई मत। तबे एकटु येन पुरान छाँदे। दई एकटा विदेशी कथाउ आछे; विशेष विद्याविलाप ओ महाभारतेर मध्ये। "

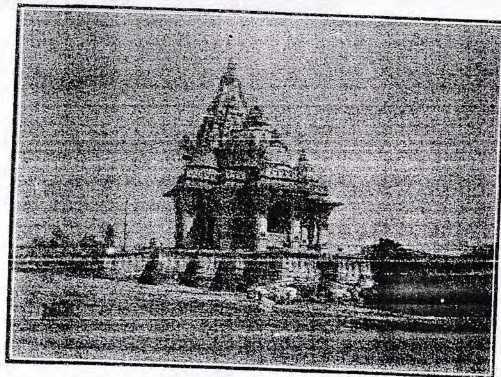
(इन में से पहले तीन बङ्गालियों के लिखे हैं। इस विषय में तो सन्देह करने की कोई-बात ही नहीं है। इन की भाषा कृष्णराम कवि, बनमाली दास, भारतचन्द्र और रामप्रसाद की भाषा की तरह



राजभवन (राजनगर) भूकम्प के पहले



काली मन्दिर, राजनगर (भूकम्प से पहले)



शिवमन्दिर, राजनगर (भूकम्प के बाद)

है, तब कुछ कुछ रूप पुराना है। दो एक विदेशी शब्द भी हैं। खास कर विद्याविलाप और महाभारत में।)

माधवानल कामकन्दला को इन्हों ने क्यों छोड़ दिया, यह मेरी समझ में नहीं आया। विद्याविलाप तथा महाभारत की भाषा रामचरित की भाषा की अपेक्षा उस से अधिक मिलती जुलती है। मैथिली भाषा से परिचित कोई भी व्यक्ति यह कह सकता है कि रामचरित को छोड़ और तीनों नाटकों की भाषा एक ही है।

श्रीयुत ननीगोपाल वन्द्योपाध्याय ने भी यह बताया है कि, रामचरित की भाषा निर्विवाद बङ्गभाषा है और अन्य ग्रन्थों की भाषा इस से कुछ भिन्न है। इन्हों ने इन भिन्नताओं पर भी प्रकाश डाला है। महाभारत और विद्याविलाप में षष्ठीकारक में 'क' सप्तमी में 'हि' तथा पंचमी में 'तह' के प्रयोग की ओर इनका ध्यान आकृष्ट हुआ। पर इस को उन्हों ने प्राचीन बङ्गभाषा मान लिया है। उन की दृष्टि इस ओर नहीं गई कि यह मिथिला की भाषा है और मैथिल इन का प्रयोग आज भी करते हैं।

इसी तरह वे हमें, हमराके, तोहे, तोहर आदिके प्रयोग पर भी भटकते रहे। मैं ने इन तीनों मैथिली नाटकों से कुछ ऐसे शब्दों को चुनकर अपने निबन्ध में दिया, जिन के मैथिली होने के सम्बन्ध में कोई विवाद ही नहीं हो सकता। कारण, इस समय भी व्यवहृत होते हैं और बङ्गभाषा में, वे शब्द जिन अर्थों में प्रयुक्त किये गये हैं; उन अर्थों में नहीं पाये जाते उदाहरणार्थ—'लग, पखारब, घुठिसोहार, खेलाय, जाय, हसि, कउन, जनि, चल्लू, अजू, उतय, एतय, धिया, कयलह, बचावह, सिखह, निके, भेल, बहिनिक, एहाक, लागल, करब गय, होयत'।

इस प्रकार अनेक शब्द और प्रयुक्त हैं जिन से यह पूर्ण रूप से प्रमाणित होता है कि वे तीनों नाटक मैथिली भाषा में लिखे गये हैं। पर विज्ञ सम्पादक महोदय को भ्रम हुआ है। इस पर आश्चर्यित होने की कोई बात नहीं है। कारण बङ्गभाषा और मैथिली में समता की मात्रा बहुत कुछ है। प्राचीन रूप की तो बात ही क्या, सामान्य परिवर्त्तन करने पर मैथिली का अधिकांश आधुनिक बङ्गभाषा मान लिया जा सकता है। पर सूक्ष्मरूप से परीक्षा करने पर भिन्नता प्रतिभासित हुए विना नहीं रहेगी। कुछ भी हो, मैथिलों को इस संकलन के सम्पादक के प्रति कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिये। क्यों कि इन्हों ने खोई हुई चीजों को ढूँढ़ निकाला है।

काशीनाथ कृत (विद्याविलाप) तथा कृष्णदेव कृत "महाभारत" नेपाल के मल्लवंशीय राजा "भूपतीन्द्र मल्ल" के समय में लिखे गये थे। राईट साहब द्वारा अनुवादित नेपाल के इतिहास से पता चलता है कि इनका राज्य काल नेपाल संवत ८१७ (१६९७ ई०) से नेपाल संवत् ८४१ (१७२१ ई०) पर्यन्त था। शेष दो, इन के पुत्र मल्लवंशीय अन्तिम नरपति रणजित मल्ल के समय में लिखे गये थे। इन राजाओं के दरबार में इन नाटकों का अभिनय किया जाता था, यह इनके पढने से स्पष्ट होता है। राजा की प्रशंसा और उन के बर्णन का बाहुल्य है। राजा के आराध्यदेव

नटराज शिव, चण्डी, भैरव और विष्णु की स्तुति मार्के की है।

इन नाटकों के कथानक बंगाल, मिथिला तथा नेपाल के तत्कालीन प्रचलित कथाओं से लिये गये हैं। विद्याविलाप की कथा को लीजिये-- धीरसिंह नामक एक राजा उज्जैन में राज करते थे। विद्यावती नाम की उन को एक कन्या थी। वह अत्यन्त प्रतिभाशालिनी थी और उसका सङ्कल्प था कि वह उसी व्यक्ति से विवाह करेगी जो उसे शास्त्रार्थ में परास्त करेगा। अनेक राजकुमार आये और भग्नमनोरथ होकर वापस चले गये। उस के पिता को इस सम्बन्ध में बड़ी चिन्ता होने लगी। राजकुमार सुन्दर उस समय बड़ा कुशल पंडित गिना जाता था और उन्हों ने उस को परखना चाहा। सुन्दर को अपने यहाँ निमंत्रित करने के अभिप्राय से अपने दरबार के कवि को उन्हों ने उस के पिता काञ्ची के अधीश्वर, राजा गुणसिन्धु के दरबार में भेजा। उधर सुन्दर को विद्यावती के रूप और गुण का पता लग गया था और उस से विवाह करने के लिये वह उत्कण्ठित हो उठा। बिना किसी को जनाये वह उज्जैन आया और दरबार में आने जाने वाली मालिन के यहाँ ठहरा। जब दोनों में कुछ घनिष्ठता हुई तो उस ने मालिन से अपना आन्तरिक अभिप्राय प्रकट किया और सहायता माँगी। उस मालिन की चतुराई से विद्यावती और सुन्दर का मिलन हुआ और देखते ही दोनों, दोनों पर आसक्त हुए। परन्तु प्रेम-पथ कंटकमय बन ही गया। उज्जैन के राजा और रानी पर गुप्तमिलन का भेद खुल ही गया। सुन्दर राजा के सामने लाया गया और चोरी का अभियोग लगा कर वह कारागार भेजा गया। इस बीच राजकवि काञ्ची लौट आये और उन्हों ने बतलाया कि वा... राजा गुणसिन्धु का पुत्र सुन्दर ही है। यह जा... ही वह कारागार से मुक्त किया गया और विद्या... वती के साथ उसका विवाह हुआ।

प्रायः चौर-पंचाशिका से यह कथा ली ... है। कुछ लोगों का ख्याल है कि इस कथा के सुन्दर चौर-पंचाशिका के रचयिता स्वयं ... कवि हैं। कुछ लोगों का यह भी ख्याल ... कि उस ग्रन्थ का निर्माण मैथिल पंडित वररुचि ... किया है। इस कथा के आधार पर बङ्गभाषा ... श्रीयुत भारतचन्द्र राय ने बड़ा सुन्दर का... बनाया है। और उसे बूढ़े बच्चे सभी बड़ी चा... से पढ़ते हैं। महाराज यतीन्द्रमोहन ठाकुर त... सुप्रसिद्ध हिन्दी लेखक भारतेन्दु बाबू हरिश्च... ने भी इस कथानक का उपयोग किया है।

भारतवर्ष में महाभारत की कथा की चिरा... लोक-प्रियता के सम्बन्ध में कुछ कहना व्यर्थ है... कृष्णदेव कृत महाभारत में उस शतसाह... संहिता के कुछ उपाख्यानों को नाटकीय रू... दिया गया है।

माधवानल कामकन्दला का कथानक ... विद्याविलाप के कथानक के सदृश अत्यन्त प्र... लित है। इस कथानक की हस्तलिखित प्रति... नेपाल, मिथिला और बङ्गला में पायी जाती है औ... इस कथानक को लेकर संस्कृत और हिन्दी ... लेखकों ने नाटकों की रचना की है।

पुष्पावती नगरी के राजा गोविन्द चन्द्र के य... माधवानल नाम का एक ब्राह्मण रहता था। व...

...संगीतज्ञ, कलाविद् और लोकप्रिय था। देखने में भी वह अत्यन्त सुन्दर था। राजा के दरबारी गण उस से ईर्ष्या करने लगे और राज्य से उसे निकलवा दिया। परन्तु राजा ने उसे सम्मान पुरस्सर विदा किया। माधवानल घूमता-घामता कामावती नामक नगर में पहुँचा। जब वह राज-प्रासाद के सिंहद्वार के समीप पहुँचा तो अन्दर से कामकन्दला नाम की वेश्या के नाच के साथ बजते हुए वाद्य-यन्त्रों के शब्द उस के सुनने में आये। वह खड़ा हो कर सुनने लगा। कुछ देर के बाद वह बोल उठा कि यह दरबार मूर्खों से भरा पड़ा है, क्योंकि मृदङ्ग बजाने वाला दाहिने हाथ का अंगूठा नहीं रहने के कारण बिलकुल बेताल बजा रहा है और कोई कुछ नहीं कहता।

द्वारपाल ने जाकर राजा को इस की सूचना दी। राजा ने उत्सुकतावश इसकी परीक्षा की और बात सही निकली। राजा ने तुरत माधवानल को बुला भेजा और बड़े आदर से दरबार में बिठाया। नाच होती रही। दर्शक मंत्रमुग्ध की तरह देख रहे थे। इस बेमौके पर एक भौंरे ने कामकन्दला की छाती पर डंक मारा। नाच का रंग भंग न हो इसलिये उसने अपने श्वास की हवा से उड़ा दिया। माधवानल को छोड़ कर किसी की नजर पर यह बात नहीं आई। वह आनन्द विह्वल हो गया और आदर सूचक जितनी चीजें राजा ने उसे दी थीं, उन्हें उसी क्षण उस वेश्या को दे दिया। राजा ने इस से अपना अपमान हुआ समझा और तुरत उसे राजधानी से चले जाने का हुक्म दिया। परन्तु कामकन्दला के हृदय में वह ऊँचा स्थान पा चुका था। उस ने माधवानल को कुछ दिनों तक अपने यहाँ रक्खा। और चलते समय तक उन दोनों में इतना प्रगाढ़ प्रेम हो गया कि विदा होते समय दोनों के दुःख का ठिकाना नहीं रहा। दोनों विरह-कातर थे। कहाँ जाय, क्या करे, माधवानल कुछ स्थिर नहीं कर सकता था। पर वह अनिश्चित भाव से चला।

संयोगवश रास्ते में उसे एक व्यक्ति से मुलाकात हुई, जो उज्जैन के राजा विक्रमादित्य के यहाँ से समस्या लेकर कामावती जा रहा था। माधवानल ने उस समस्या की पूर्ति की और उज्जैन गया। वहाँ से उस ने कामकन्दला को एक प्रेमपत्र लिखा और जब कामकन्दला ने उस का जवाब दिया तो उसकी विरहव्यथा की गाथा पढ़ कर वह विक्षिप्त सा हो गया। ऐसी मानसिक अवस्था में उसने महाकाल के मन्दिर में जाकर एक रात काटी। अपने हृदय की वेदना को हलका करने के लिये उसने दो पदों की रचना की और एक कागज के टुकड़े पर लिख कर वहाँ ही फेंक दिया। उन से उस की अन्तर्वेदना स्पष्ट होती थी।

दूसरे दिन जब राजा विक्रमादित्य पूजा करने आये तो उस कागज के टुकड़े पर उन की नजर गई और उन्हों ने उस के रचयिता को ढूँढ़ निकालने का आदेश दिया। पर खोज निष्फल हुई।

फिर दूसरे दिन भी ऐसी ही घटना घटी। इस बार वाराङ्गनाओं की सहायता से उन स्फुट पदों की रचना करने वाले को उन्हों ने पा लिया। अब उस के प्रेम की परीक्षा करने के ख्याल से राजा ने उसे विश्वास कराया कि कामकन्दला तो इस संसार में नहीं है। माधवानल विलाप

करते-करते अपने प्राण छोड़ दिये। राजा ने तब कामकन्दला को माधवानल के मरने का संवाद सुनाया, वह भी इस संवाद को सुनते ही मर गई। तब राजा विक्रमादित्य को उन दोनों के प्रेम की प्रगाढता का परिचय मिला और उन्हों ने अपने वेताल को कहा कि उन दोनों को जीवित कर आपस में मिलावे। और वेताल ने वैसा ही किया'।

यही है माधवानल कामकन्दला नाटक का कथानक।

जिन लोगों को कथाओं की जानकारी नहीं है, उन लोगों को नाटक समझने में दिक्कत होगी। और प्रायः यही कारण है कि नाटककारों ने प्रचलित कथाओं का ही आश्रय लिया है।

इसके अलावे इन नाटकों में अन्यान्य विशेषताएँ हैं। यथा दृश्य पट का व्यवहार उस समय नहीं किया जाता था, ऐसा जान पड़ता है। दर्शकों की कल्पना पर ही प्रायः यह छोड़ दिया गया था। प्रत्येक नाटक अनेक अंकों में विभक्त है और प्रत्येक अङ्क के प्रारम्भ में लिखा है 'अथ अमुक दिवसे' और उसके अन्त में 'इति अमुक अंक'। फिर प्रत्येक नाटक में प्राचीन परिपाटी के अनुसार सूत्रधार और नटी का संवाद है, राजवर्णन, तथा देश वर्णन है और दर्शकों पर पुष्प-वर्षा करने की परिपाटी का उल्लेख है। पता चलता है कि पात्र और पात्री बन ठन कर रंगभूमि पर आते थे। उन के आने और जाने का विधान है। युद्ध, जलक्रीड़ा, वाटिका-विनोद-आदि के अभिनय का उल्लेख है। यह स्पष्ट है कि एक दो से अधिक पात्र एक समय में रंगभूमि पर एकत्र होते थे।

इन नाटकों में गद्य-भाग बिलकुल नहीं है आदि से अन्त तक संगीत ही संगीत है। वार्ता लाप भी संगीत ही में किये गये हैं। साथ सा वाद्ययन्त्र भी अवश्य बजाये जाते थे। प्रत्येक गा के राग, ताल और गति का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया गया है और उनके अवलोकन से यह प्रती होता है कि नेपाल में उस समय उच्चकोटि संगीत का आदर था। टोड़ी, नट, मालकोश, मालव, भैरव, केदारा, कामोद, विहाग, परज, दीपक, कल्याण, भूपाली, विभास, श्रीगौरी, पहड़िया, कान्हरा, असावरी, याजवन्ती, काफी, धनाश्री, इमनकल्याण, वसन्त, श्रीराग, मारूधनाश्री, सारङ्ग, घुरिया मल्लार, ललित, भैरवी, मरहटी, विलावल, गौड़मालव, कौशिक, नट मल्लार, मालश्री, वराड़ी, गुर्जरी, जयतश्री, सोरठ, कोराव (? कोटान (?) तथा जति, दंडक, एकताल, दू ताल, तेताल, चौताल के उल्लेख हैं।

दीपक, मरहटी, और कोराव तथा कोटान को छोड़ और सब राग ताल आज भी प्रचलित हैं। किस तर्ज पर अमुक गाने हों उन्हें बताने के लि उस समय के प्रचलित गानों के शीर्षक भी दि गये हैं। विना संगीत का पूर्ण वेत्ता हुए इ नाटकों का अभिनय किसी व्यक्ति के द्वारा होन कठिन है। गानों के राग ताल का चुनाव प्राय इस दृष्टि से किया गया है कि पात्रों के वाक्य समु चित रूप से भावोत्पादक बने।

कहीं कहीं हिन्दी भाषा का भी प्रयोग किया गया है। यथा विद्याविलाप में एक स्थान पर है:-

"मेरे शुभ घरिया है, मिल गय तुम गुणमन्त
जैसे पपिहा हरष (ख) कियो सो, पानी पाय तुरन्त।"

इसी प्रकार माधवानल कामकन्दला के

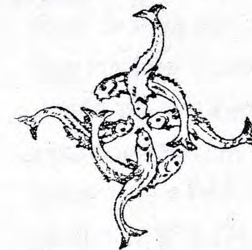
नट रसिया मय हर भजिये
गौरी के पति नाँच रंगे भव के तारन जानि···

में "भजिये" और "के" से हिन्दी भाषा की बू आती है।

कहीं कहीं संस्कृत स्तोत्र भी दिये गये हैं और कहीं कहीं नेवारी भाषा के छींटे पड़े हैं। "मेपू" (नेवारी शब्द) का प्रयोग अनेक स्थानों में है और विद्याविलाप के अन्त में लिखा है:—

"संवत् ८४० भाद्र शुदि १३ यो नाटक संपूर्ण थाहा जूलो"। मैथिली से भिन्न इन भाषाओं के यत्र तत्र प्रयोग किये जाने से यह अनुमान किया जा सकता है कि मैथिली बोलने तथा जानने वाले भी अन्य प्रान्तों की भाषाओं से अनभिज्ञ नहीं थे, पर उन भाषाओं की पूरी जानकारी उन्हें नहीं थी। यों तो जो प्रकांड विद्वान थे उन्हें एक से अधिक भाषा पर अधिकार था। यथा विद्यापति चाहे संस्कृत हो, मैथिली हो, अवहट्ट हो, सब भाषाओं में समान रूप से अपने पांडित्य का परिचय दे चुके हैं।

इन नाटकों के अनुशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय नेपाल राज्य परम ऐश्वर्य-शाली था। वहाँ नाना देश के लोग इकट्ठे होते थे और संगीत साहित्य-कला को प्रोत्साहन मिलता था। यह भी निर्विवाद है कि वहाँ मैथिली की गिनती शिष्ट-भाषाओं में होती थी और वह उस देश की संस्कृति को अनुप्राणित करती थी। आज की तरह तिरस्कृता उस समय नहीं थी। उस समय वह आगे बढ़ रही थी और सारे भारतवर्ष पर अपना प्रभाव स्थापित करने की आशा करती थी।



मिथिला के कोकिल से—

[श्रीयुत 'केसरी']

कंठ-स्वर खोलो तो !

कब मधुमास बनेगा अपना पतझड़ कोकिल ! बोलो तो

कंठ-स्वर खोलो तो !!

इस हिम-गिरि की रम्य तलहटी-
में अलका की छवि-छाया में
किसी उर्वशी के प्राणों के-
अक्षय यौवन की माया में
खिंच आए जग में-अमरों के ;
चिर छाया-पथ के बनजारा
देवदूत ! तू शिंजित गुञ्जित
कर मिथिला का कूल किनारा

कुंज-कुंज प्राणों की वंशी—
हिम-गिरि की विशालता लेकर
फूट पड़ी प्राणों की कविता
निखिल विश्व की हूक सँजोकर
बजी वेदना वृंदा की रे !
तिरहुत की कदंब-तरु-छाँही
उतरे जनक-लली के जग में
राधा-माधव दे गल-बाँही

× × × × × ×

अरे अमर कवि ! अमर प्रेम-
अनुभूति-भरी तेरी वह वाणी
सुन विदेह के जर्जर जग में
उमड़ पड़ी उन्मत्त जवानी
सिहर उठा कण-कण वसुधा का
अङ्ग-वङ्ग के दिग-दिगंत का
प्यार ज्वार-सा फूट पड़ा
कूका जब तू कोकिल वसंत का

× × ×

बात पुरानी सदियों की-
जब था अपना वह स्वर्ण सवेरा
कहीं हिमालय की छाया में
देवदारु के तले बसेरा
होगा तव बन-राजि रूपसी
परियों की सुराग-राका में
किसी यक्ष सा चित्रित करते
होंगे हिय-छवि हिम-शाका में

फूल-फूल की अगम कथा
झरनों की स्वर्गिक तरल निकाई
कुंज-कुंज में किसी अलख—
मोहन की प्यार-भरी पहुनाई
आह ! यही जग तो कवि का रे !
दूर जगत की अमा-उदासी
खींच गया पूर्णिमा अमर
मिथिला में वह अलका का वासी

बौद्ध-कालीन मिथिला

श्रीयुत कमलनारायण झा जी 'कमलेश'

बौद्ध साहित्य के ग्रन्थों में मिथिला के विदेह और लिच्छवियों का जिक्र किया गया है।

लिच्छवियों की राजधानी वैशाली में थी। 'वैशाली-राज्य' का संस्थापक विशाल नाम का एक राजकुमार था, जो नाभाग वंश का था। वाल्मीकि ने भी अपनी रामायण के बालकाण्ड में वैशाली का जिक्र किया है। किन्तु पीछे के बने महाकाव्य महाभारत में केवल विदेहों का ही जिक्र किया गया है वैशाली का नहीं। इससे जान पड़ता है कि विशाला (वैशाली) के नाभाग वंशियों की शक्ति क्षीण होने पर विदेहों ने वैशाली को भी मिथिला में ही मिला लिया था। बौद्धकाल में वैशाली गणतन्त्र राज्य थी और वहाँ लिच्छवियों का आधिपत्य था। लिच्छवी कौन थे और कहाँ से आये थे, यह ऐतिहासिक विवादग्रस्त है। मनु महाराज ने लिच्छवियों को[1] व्रात्य-क्षत्रिय कहा है और वह शब्द निच्छवि से बना है। अंगरेज ऐतिहासकों ने लिच्छवियों को तिब्बती बनाया है। लिच्छवियों को वृज्जी जाति का भी कहा है। बुद्धदेव के जीवन के आरम्भ-काल में लिच्छवियों ने मगध पर भी आधिपत्य जमा लिया था। बिम्बसार ने तात्कालिक मगधराज का सेनापति था। अपने मालिक को मारकर मगध की गद्दी ले ली, और लिच्छवियों को वहाँ से मार भगाया।

'सूत्र निपात' नामक बौद्ध-ग्रन्थ में वैशाली को मगधपुर' याने मगध राजधानी कहा है। वृज्जी जाति के लोग कई शाखाओं में बँटे हुए थे जिनमें विदेहों और लिच्छवियों की प्रधानता थी। जातकों में लिखा है, प्रारंभ में विदेहों का राज्य तेईस सौ मीलों तक फैला हुआ था। उन की राजधानी मिथिला (इस नाम की केवल एक नगरी) थी, जिसका घेरा लगभग पचास मील का था। मगध-राज बिम्बसार ने लिच्छवि-नरेश चेटक की कन्या चेलना का पाणिग्रहण किया था।

बिम्बसार के पुत्र अजातशत्रु ने लिच्छवियों को हराकर अपने अधीन किया था। परन्तु तौ भी उसे वृज्जी-गणतन्त्र का भय सदा बना रहता था। उनके आक्रमणों को रोकने के लिये उस ने गंगा और सोन के संगम पर 'पाटलि' नामक किला बनाया था, जो आगे चल कर पाटलि-पुत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अजातशत्रु ने वहीं अपनी राजधानी भी बनाई।

निर्वाण प्राप्त करने के कुछ साल पूर्व जब भगवान् बुद्ध ने पाटलिपुत्र का निरीक्षण किया था, उस समय मगध-राज के प्रधान मंत्री "सुनिधि" और "बसाकर" किला बनाने में व्यस्त थे।

वैशाली-नगर बहुत बड़ा था। वह तीन भागों में विभाजित था, जिन में क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की बस्तियाँ थीं। "बनिक ग्राम" में ही जैन-धर्म के वास्तविक संस्थापक महावीर वर्द्धमान का जन्म हुआ था। कहा जा चुका है कि "वृज्जी-साम्राज्य" गणतन्त्र था। उस के शासन के लिये एक केन्द्रीय सभा थी, जिसमें प्रत्येक शाखा के प्रतिनिधि रहते थे। इस तरह के प्रतिनिधि "राजा" कहलाते थे। कहा जाता है कि वृज्जियों के ७७०७ राजा थे। प्रत्येक राजा की मदद के लिये राज-प्रतिनिधि, सेनापति और कोषाध्यक्ष रहते थे।

१—झल्लो मल्लश्च राजन्याद् व्रात्यान्निच्छविरेव च। —मनुस्मृति।

वृजियों के मुख्य व्यवसाय थे-कृषि, व्यापार और युद्ध करना। "केंद्रीय-सभा" का निर्णय सब किसी के लिये मान्य था। मज्झिम।निकाय में लिखा है कि एक बार भगवान् बुद्ध ने सच्चक नामक एक जैन-साधु से वार्तालाप करते हुए पूछा, क्या मगध-राज अजातशत्रु और कोसल-राज प्रसेनजित को यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपने राज्य के भीतर जिस को चाहें उसे निर्वासित कर जला दें, और मार डालें ? उस समय कुछ लिच्छवी भी वहाँ उपस्थित थे। उन की ओर संकेत कर सच्चक ने कहा-"यदि मल्ल और लिच्छवियों के सदृश गणतंत्र और संघतंत्र के अभिभावकों को यह अधिकार प्राप्त है तो निःसन्देह महाराज अजातशत्रु और प्रसेनजित अपने राज्य के भीतर जो चाहें कर सकते हैं।"

गण-राजाओं का राजतिलक एक खास पोखरे के जल से होता था जिसे "बुद्धसाल जातक" में "वैशाली नगर-गण-राज कुसानाँ अभिषेक मंगल पोखरानि" कहा गया है। इससे विदित होता है कि शासकों के संघ को "गण" कहा जाता था, जिस में कई राजकुल थे। उन के सरदार राजा कहलाते थे और उनके पुत्र लिच्छवि-कुमार। अश्वघोष ने लिखा है कि वृजियों की अपनी प्रमाण-पुस्तक थी, जिसके अनुसार वे अपराधियों को दण्ड देते थे। दण्ड देने के पहले अभियुक्त को अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने का काफी मौका दिया जाता था।

बुद्धदेव का मिथिला से बराबर सम्बन्ध रहा। महावीर वर्द्धमान तो वैशाली के ही निवासी थे। उन्हें 'नतपुत्र' कहा गया है। 'नत' क्षत्रियों की एक शाखा थी। महावीर के पिता सिद्धार्थ का विवाह राजा चेटक की कन्या से हुआ था, अतः मगध राज बिम्बसार इन के मौसा थे। उन का जन्म ई० पू० ५९९ के लगभग हुआ था। संन्यासी होने के पश्चात् श्री महावीर 'वैशाली' आये हुए थे। वहाँ उन के भी कई शिष्य हो गये थे। 'महावग्ग' से ज्ञात होता है कि "वैशाली में कई धर्मों के मानने वाले थे। कभी २ उन में मुठभेड़ भी हो जाया करती थी और एक धर्म के लोग दूसरे धर्म वालों की शिकायत भी किया करते थे।"

'कल्प-सूत्र' में लिखा है कि 'महावीर के मोक्ष प्राप्त करने पर वैशाली में बड़े समारोह के साथ दीपावली मनाई गई थी।' इस से पता चलता है कि महावीर के लिये लिच्छवियों को कितना गर्व था ?

वैशाली में महामारी से लोग तवाह हो रहे थे। लोगों ने बुद्ध भगवान् को निमन्त्रित किया। उन के पहुँचते ही बीमारी भाग गई। इस से लोगों का ध्यान उन की ओर पूर्ण रूप से आकर्षित हुआ। बहुत से लिच्छवी बौद्धसंघ में शामिल हो गये। इस के सिवा भी बुद्ध भगवान् ने दो बार और वैशाली का निरीक्षण किया था। निर्वाण प्राप्त करने के कुछ दिन पहले (ई० पू० ४८७ में) कुशीनगर जाते समय भी वे वैशाली में टिके थे।

वैशाली में ही उन्हों ने अपने चचेरे भाई, शिष्य आनन्द और उनकी माँ के आग्रह करने पर पहले पहल भिक्षुणियों को भी 'संघ' में शामिल किया था। उन्हें लिच्छवियों के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। महावीर निर्वाण सूत्र में लिखा है कि राजा अजातशत्रु ने लिच्छवियों पर आक्रमण करना चाहा। उस ने अपने मंत्री को इस संबंध में भगवान् बुद्ध की राय लेने के लिये भेजा। भगवान् ने कहा:—

"जब तक वृजियों की केन्द्रीय सभा को बैठक बराबर होती रहेगी, उनकी प्राचीन संस्कृति और एकता कायम रहेगी, वे अपने बड़े बूढ़ों की कदर करते रहेंगे, उनमें व्यभिचार और बलात्कार का प्रवेश न होगा, वे वृजिस्तूपों की पूजा करते रहेंगे, अपने प्राचीन धार्मिक यज्ञों को न छोड़ेंगे और अपने वाणिज्य की रक्षा करते रहेंगे तब तक उन की शक्ति किसी भी तरह क्षीण नहीं हो सकती।"

एक बार वैशाली में अम्बपाली-नामक वेश्या ने बुद्ध भगवान् को अपने यहाँ भोजन करने के लिये निमन्त्रित किया था। लिच्छवियों के लाखों मना करने पर भी भगवान् ने उसके यहाँ चलकर भोजन किया था। भगवान् बुद्ध के स्मारक में लिच्छवियों ने कई मठ बनवाये थे और कई तालाब भी खुदवाये थे। देश-देशान्तर से लोग वैशाली के दर्शन को आते थे।

बौद्ध जातकों में लिखा है कि "भगवान् बुद्धदेव जब वैशाली में रहते थे। तब बराबर वहाँ के निवासियों से वाद-विवाद करते रहते थे। लिच्छवी जाति के लोग बड़े ही विद्वान् और बुद्धिमान् थे। भगवान् से वार्त्तालाप करने के लिये उन्हों ने वैशाली में कई विशाल भवन बनवाये थे।"

जब बुद्ध निर्वाण प्राप्त करने के लिये वैशाली से कुशीनगर की ओर चले, तब लिच्छवियों ने भी उन का पीछा किया। भगवान् ने उन्हें साथ छोड़ देने को वाध्य किया। अपना भिक्षा-पात्र उन्हें दे दिया और अपने तथा उन के बीच एक नदी बहा दी। अब लिच्छवियों को रोते-पीटते वैशाली लौटना पड़ा।

कहा जाता है कि ये बातें चम्पारण जिले के केशरिया नामक स्थान में हुई थीं। विन्सेंट ए० स्मिथ ने अपने 'कुशीनर या कुशीनगर' नामक एक लेख में लिखा है कि भगवान् बुद्ध के निर्वाण प्राप्त करने पर जब उन का शरीर जलाया गया, तब उसकी भस्म के ऊपर चम्पारण जिले के लौरियानन्दन-गढ़ नामक स्थान में एक स्तूप बनाया गया। अश्वघोष ने बुद्ध चरित में लिखा है कि 'लिच्छवियों ने बुद्धदेव के निर्वाण प्राप्त करने पर अन्य धर्मों की सभी पुस्तकें जला दीं और बुद्धदेव के पद-चिन्ह के ऊपर एक स्मारक बनाया।

बुद्धदेव के महानिर्वाण के बाद वैशाली की गिनती तीर्थ-स्थानों में होने लगी। ई० पू० ३७७ में बौद्ध-धर्म की दूसरी सभा यहीं हुई थी।

बुद्धदेव के पश्चात् अजातशत्रु ने षड्यन्त्र करके लिच्छवियों की संघ-शक्ति क्षीण कर दी और जब वे घरेलू झंझटों में फँसे थे, उसी समय उन पर चढ़ाई कर विजय प्राप्त कर ली। ई० पू० २५० में अशोक ने मिथिला-भ्रमण किया था। उस ने वैशाली, लौरिया-अरराज, बेतिया, लौरिया नन्दन गढ़, जानकी गढ़ और रमपुरवा पियरिया आदि स्थान को देखा था।

उसके समय में मिथिला मगध-साम्राज्य के अन्तः थी। वृजियों की संघ-शक्ति कम हो गई थी, वे मौर्य्य-सम्राट् के अधीन थे। मौर्य्य-वंश के बाद क्रमशः सुंग, कण्व और आंध्र-वंश वालों ने मगध पर अपना आधिपत्य जमाया। सन् १२० ई० में कुशन-सम्राट् कनिष्क मिथिला दर्शन को आया था। उसने वैशाली नगर को देखा और वहाँ से बुद्ध भगवान् का भिक्षा-पात्र लेकर लौट गया।

आंध्र साम्राज्य की शक्ति घटने पर लिच्छवियों ने फिर जोर पकड़ा। उन की शक्ति बढ़ती गई और उन्हों ने मगध पर भी अपना पंजा जमा लिया। सन् ३०८ ई० में चन्द्रगुप्त ने वैशाली की लिच्छवी-राजकुमारी देवी का पाणि-ग्रहण किया और पाटलिपुत्र का राजा हुआ। लिच्छवियों की सेना की सहायता से उस ने सारे उत्तरी भारत पर अधिकार जमा लिया।

उस ने सिक्कों पर अपने साथ अपनी सहधर्म्मिणी और लिच्छवी जाति के नाम खुदवाये। गुप्त-सम्राट् गर्व के साथ अपने को "लिच्छवी-सन्तान" कहा करते थे। "वैशाली" की खुदाई होने पर बौद्ध-धर्म-संबंधी बहुत सी चीजें पाई गई है। फाहियान ने भी भस्म-स्तूप के दर्शन कर वैशाली के दर्शन किये थे। हुएनसंग और संगयून नामक चीनी यात्रियों ने भी वैशाली के दर्शन किये थे।

यह तो हुआ बौद्ध कालीन मिथिला का राजनीतिक इतिहास, अब उसके सांस्कृतिक इतिहास पर ध्यान दीजिये।



यद्यपि लिच्छवियों ने बौद्ध-धर्म ग्रहण कर लिया था, सारी मिथिला पर उन का आधिपत्य था। पर तो भी बौद्ध-धर्म का प्रभाव पश्चिमी-मिथिला तक ही रहा। वृजि-गणतंत्र की विदेह शाख पर उसका कुछ भी असर न पड़ सका। पूर्व मिथिला के ब्राह्मणों ने अपनी प्राचीन संस्कृति कायम रक्खी।

पश्चिमी मिथिला पर भी बौद्ध-धर्म का प्रभाव अधिक दिनों तक नहीं हो सका। गुप्त सम्राटों ने जिन्हें लिच्छवियों के वंशज होने का गर्व था, सनातन हिन्दू-धर्म की ही पुष्टि की। लिच्छवियों ने भी पीछे बौद्धधर्म त्याग दिया। बौद्ध काल की मिथिला में भी बड़े बड़े दिग्गज विद्वान् हो गये हैं। बौद्ध-धर्म का मूलच्छेद करनेवाले मण्डन, कुमारिल, वाचस्पति और उदयनाचार्य मिथिला के ही निवासी थे।



मिथिला की एक झलक

श्री यदुनन्दन शर्मा जी

इतिहास और ऐतिहासिक चित्रों में अन्तर होता है! इतिहास पूर्ण होता है परन्तु ऐतिहासिक चित्र पूर्ण नहीं होता! इतिहास के प्राच्य और पाश्चात्य आदर्शों में भी अन्तर है! इतिहास की उत्पत्ति भी प्राच्य है, पाश्चात्य नहीं!

× × ×

मिथिला का प्राचीन इतिहास आज एक विषम समस्या है! साधारणतः इतिहास का जो अर्थ लोग आज लगाते हैं, वह हमारे प्राचीन पण्डितों की कल्पना में समाया तक नहीं था। प्राचीन घटनावली का सूचीमात्र उस समय इतिहास का अर्थ न था! उस समय इतिहास का अर्थ था, प्रसिद्ध घटनाओं का रोचक रीति से वर्णन! रूखी सूखी घटनाओं की सूची सुनना उस समय लोगों को पसन्द न था! लोग रोचक वर्णन सुनने के प्रेमी थे। हमारे प्राचीन पण्डितों ने लोगों की नब्ज़ पहचानी! ऐतिहासिक कथायें भी रोचक बनाने के लिये उपाख्यान बनाकर लिख डालीं! यही कारण है कि हमारा प्राचीन इतिहास हमारे लिये आज एक विषम समस्या है! परन्तु यदि प्रयत्न और सावधानतापूर्वक अनुसंधान किया जाय, मनोरंजनार्थ कल्पित अतिशयोक्तियों को छोड़कर, सार निकाल लिया जाय तो हमारा प्राचीन इतिहास आज भी अक्षुण्ण मिलेगा!

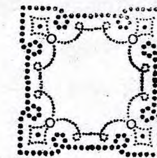
भारतीय इतिहास में मिथिला का एक विशिष्ट स्थान है! इसका अतीत इतना समुज्ज्वल है कि इस के लिये किसी भी राष्ट्र को गौरव हो सकता है। सभ्यता का केन्द्र हमारी उस समय की मिथिला थी। मिथिला-वासी जिस भांति 'सरस्वती के वर-पुत्र' कहलाने के अधिकारी होते थे, उसी भाँति वे वीरता के उत्कृष्ट उपासक भी होते थे। जिस भांति वे सांसारिक ऐश्वर्य में बढ़े-चढ़े होते थे, उसी भांति वे आध्यात्मिक ज्ञान में भी अपना प्रथम स्थान रखते थे। संस्कृत विद्या का एक मात्र केन्द्र हमारी मिथिला थी! न्याय, दर्शन की यह विश्व विख्यात विद्यापीठ थी! अपने दार्शनिक ज्ञान के आलोक से इसने संसार को आलोकित किया था! संसार ने इसे अपना शिरोभूषण मान पूज्य स्थान दिया था।

इक्ष्वाकु के द्वितीय पुत्र महाराज निमि की यह राजधानी थी। नन्दिवर्द्धन, उदावसु, नीतिहव्य जैसे एक से एक अनेको नीतिज्ञ नृपाल यहां राज्य कर चुके हैं। विराट, शिवसिंह और नरवर नरेन्द्र जैसे माता के सच्चे लाल यहां पैदा हो चुके हैं। जगन्माता जानकी जैसी पवित्र देवी इस की मिट्टी से निकल चुकी है। मर्यादा पुरुषोतम राम ने इसे एक महत्व-पूर्ण स्थान माना है। लीला-वपु कृष्णचन्द्र ने इस की धूल अपने माथे से लगायी है। इन्द्र की यह तपस्या भूमि रही है। यह शङ्कर का लीला क्षेत्र है। यह स्वर्णभूमि शाम्भवी मनुष्य ही क्यों, देवताओं से भी पूजी जा चुकी है।

कवि कोकिल विद्यापति इसी के काव्य-कानन में अपनी कल-कूक सुना चुके हैं। बाण ने यहीं रचना की है। वाचस्पति, मण्डन और महेश ठक्कुर जैसे सरस्वती के लाड़ले, संस्कृत के संसार-पूज्य उद्भट विद्वानों ने यहीं जन्म लिया है! पुण्य-प्रदेश मिथिला के कण-कण में इतिहास के बड़े बड़े पन्ने समाये हुए हैं।

\+ \+ \+

मिथिला की मिट्टी खोदकर इतिहास निकालो और उसका अध्ययन करो! बलिराज गढ़ जाओ और देखो कि तुम्हारा प्राचीन इतिहास कितना समुज्ज्वल है! विराटपुर जाओ, योगीवन का वह विशाल शाल्मली-वृक्ष देखो, भवानीपुर की भुवन-मोहिनी भवानी का दर्शन करो, जरहटिया के तालाब में जाकर डूबो और देखो कि हमारा प्राचीन कितना गौरवपूर्ण है। दूर नहीं, दरभंगे से केवल दो मील उत्तर जाओ और कंसनारायणी डीह पर बैठ कर विचारो कि हमारा इतिहास हमारे लिये एक विषम समस्या है। अथवा एक स्वच्छ निर्मल दर्पण?



विद्यापति और हमारा कर्त्तव्य

श्रीयुत रामवृक्ष जी 'बेनीपुरी' (योगी-सम्पादक)

विद्यापति हिन्दी के कवि थे; या मैथिली नाम से जो भाषा आजकल सम्बोधित की जाने लगी है, उसके— मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहता। विद्यापति ने अपने जानते तो अवहट्ठ भाषा में कविता लिखी थी, जो 'देसिल बअना' होने के कारण सब को मीठी लगती थी। आज आप उसे जो नाम दे लें। चाहे इसके लिये जितना सिर-फुड़ौवल कर लें।

किन्तु, मैं आज हिन्दी और मैथिली दोनों के हिमायतियों से एक प्रश्न करना चाहता हूँ,–कि, आप लोगों ने विद्यापति के लिये आज तक किया क्या ?

न हिन्दी में और न मैथिली में—आज तक विद्यापति की पूरी ग्रन्थावली भी निकल सकी। और बात तो दूर रहे।

हिन्दीवाले कह सकते हैं—हमारे तो बहुत से कवि हैं— सूर हैं, तुलसी हैं, कबीर हैं, हरिश्चन्द्र हैं, हम किन-किन के लिये क्या-क्या करें ? किन्तु मैथिली के हिमायती क्या कह कर अपनी लाज ढँकेंगे ? जिस एक कवि के बल पर ही उन की बोली विश्वविद्यालयों में स्थान पाने का दावा करती है, उस कवि के प्रति उन्हों ने क्या कुछ भी उल्लेखनीय कार्य किया है ?

इधर मिथिलाधीश ने विद्यापति पर सर्वोत्तम निबन्ध लिखनेवाले को प्रतिवर्ष १००) का पुरस्कार देने की घोषणा की है। उस महाकवि के लिये इतना करना ही तो कहीं यथेष्ट नहीं समझ लिया गया ?

चाहे हिन्दी वाले करें, या मैथिली वाले— मेरी यह राय है कि उस महान् कवि के स्मृति-रक्षार्थ इतने काम तुरत होने चाहिये—

(१) उनकी पूरी ग्रन्थावली शीघ्र से शीघ्र प्रकाशित की जाय। यदि ग्रन्थावली सटिप्पण हो, तो और अच्छा।

यहाँ हम निवेदन करेंगे कि ग्रन्थावली का पाठ प्राचीन हस्तलिपियों के ही अनुसार रखा जाय- न कि उसे आधुनिक मैथिली बनाने की चेष्टा की जाय। यह प्रवृत्ति आज बुरी तरह फैली हुई है, इसी से यह चेतावनी दे दी है। हमें याद रखना है कि विद्यापति आज से ४-५ शताब्दी पहले हुए थे—उस समय की भाषा और आधुनिक भाषा में महदन्तर होना लाज़िमी है।

(२) दरभङ्गा में एक "विद्यापति-साहित्य-मन्दिर" बनाना चाहिये—जहाँ विद्यापति के ग्रन्थों की सभी प्राप्त हस्तलिपियों के अतिरिक्त, मैथिली ही नहीं–सभी कवियों की कृतियों का भी संग्रह हो। विद्यापति एवं इन अन्य कवियों से सम्बन्ध रखनेवाली अन्य स्मारक सामग्रियों का भी संग्रह किया जाय। मन्दिर में पुस्तकालय और वाचनालय भी हो—तथा साहित्यिक सभाएँ करने के लिये भी उस में काफी स्थान रहे।



भारत के वर्तमान वायसराय

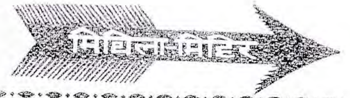
लार्ड विलिंग्डन

जिन्होंने अपने दरभङ्गा-विजिट में रमेश्वरप्लेस का उद्घाटन किया।



श्रीमती लेडी विलिंग्डन

जिन्होंने लेडी विलिंग्डन हास्पिटल की नींव डाली।



जो दरभङ्गाधीश कलकत्ता विश्वविद्यालय के लिए भवन बनवा सकते हैं, दरभङ्गा मेडिकल स्कूल के लिए लाखों रुपये दे सकते हैं, पटना विश्वविद्यालय में मैथिली चेयर की स्थापना कर सकते हैं—क्या उन के नगर में एक ऐसे मन्दिर का निर्माण कोई असम्भव बात है। दरभङ्गा नरेश नया शहर बसा रहे हैं—क्यों न उसी में यह मन्दिर भी बनवा दें और बड़े लाट की अगवानी में जो कई चीजों की नींव पड़े, उन में एक यह मन्दिर भी हो। गर्चे मैं तो उस की नींव डालने के लिये महामहोपाध्याय डाक्टर गङ्गा नाथ झा जी ऐसे विद्वान को ही पसन्द करूँगा। यह दूसरी बात है कि झा जी के कई विचारों से मैं सहमत नहीं होऊँ।

(३) विद्यापति के जन्मस्थान बिसपी गाँव में भी विद्यापति के स्मृति-रक्षार्थ कोई आयोजन करना होगा। एक छोटा सा कुसुमोद्यान बनवाया जाय, जिस के बीच में संगमरमर का एक सुन्दर स्तम्भ हो, जिस पर विद्यापति के जन्म और मृत्यु की तिथियाँ लिखी हों, एवं उन की प्रशंसा में बनाया गया एकाध भावपूर्ण पद्य भी लिखा हो। या स्वयं उन्हीं का रचा पद या पद-खंड लिखा हो।

"बालचंद विद्यापति भाखा,
दुहुँ नहि लगगई दुर्जन भाखा,
ई परमेसर हर सिर सोहई,
ऊ निच्चय नागर मन मोहई"

विद्यापति का यह पद्य भी उस स्तम्भ के लिए बुरा नहीं होगा।

सुना है, जिस मन्दिर में विद्यापति पूजा किया करते थे, वह अब तक विद्यमान है। अच्छी बात हो कि पूरी मरम्मत कर के उसे कलात्मक रूप दे दिया जाय और उस पर यह बात खुदवा दी जाय कि यहाँ विद्यापति पूजन-भजन करते थे।

यों ही विद्यापति के निधन-स्थान पर भी कुछ किया जाना चाहिये।

(४) विद्यापति-जयन्ती व्यक्तिगत प्रेरणा पर न छोड़ी जाय—वरन् उस का आयोजन व्यवस्थित और संगठित रूप में किया जाय। हर वर्ष एक जयन्ती-समिति बने, जो अधिक से अधिक स्थानों में विद्यापति-जयन्ती मनाने का प्रबंध करे-करावे। प्रबंध-पाठ, कविता-पाठ, साहित्यिक जुलूस, गान-प्रतियोगिता आदि उस के कितने ही अंग और रूप हो सकते हैं।

(५) वर्ष में एक बार विद्यापति से सम्बन्ध रखनेवाले स्थानों की साहित्यिक-यात्रा का भी आयोजन किया जाय, तो बड़ा अच्छा हो।

अब अपनी सूची को मैं ज्यादा बढ़ाना नहीं चाहता। जहाँ चाह, वहाँ राह। यदि इस ओर ध्यान दिया जाय, तो आप ही आप ऐसी बातें सूझने लगेंगी, जिन से उस कवि के प्रति यथोचित सम्मान भी प्रकट किया जाय और साहित्यिक जीवन के निर्माण में भी मदद मिले। यदि एक मिथिलाधीश की नजरें इनायत इस ओर हो जाय, तो इन सभी आयोजनों का आर्थिक प्रश्न हल हो जाय। किन्तु, यदि किसी कारण, यह नहीं हो तो मिथिला की—सीता की—भूमि इतनी श्रीहीन नहीं हो गई है कि आर्थिक अड़चन इन में आड़े आये। हाँ, जरूरत है ऐसे चुने लोगों की, जो इन कामों के लिये तुल पड़ें।

"देखें कौन आता है इरशाद बजा लाने को" एक भावुक युवक के इस चैलेंज को दुहराते हुए, मैं यहीं समाप्त करता हूँ।

—:०:—

खेल में ब्रह्म-विद्या

(मिथिला में प्रचलित कुछ खेलों की समीक्षा)

राजपण्डित श्रीयुत बलदेव मिश्रजी

आस्तिकवादी संसार का सिद्धान्त है कि जीव, जो ब्रह्म का ही एक अणु अंश है, उसकी चरम साधना ब्रह्मप्राप्ति की ही हो सकती है। इस मार्ग में उसे सहायता पहुँचाने वाली विद्या ही ब्रह्म-विद्या के नाम से पुकारी जाती है। हमारी श्रुतियाँ, उपनिषद्, दर्शन आदि इसी के अन्तर्गत हैं। सच समझा जाय तो जीव एक व्यक्ति है और ब्रह्म समाज। व्यक्ति को समष्टि में मिलाना ही उसकी सार्थकता है। पर व्यक्ति को समाज का प्राणी बनाने के लिये समाज-शास्त्र के अध्ययन या मनन की आवश्यकता होती है। यही बात यहाँ भी लागू है।

हमारा पौरस्त्य आदर्श भौतिकता को भी आध्यात्मिकता का रूप देना चाहता है, इस लोक को साधन और परलोक को साध्य बनाता है। सूक्ष्म-दृष्टि से देखा जाय तो श्रौत या स्मार्त, पौराणिक या दार्शनिक, ज्ञान काण्ड अथवा कर्मकाण्ड सभी उसी समुद्र में पहुँचाने वाली नदियाँ हैं, जिन में तिरता हुआ यह जीव उसी ब्रह्म-महासमुद्र में लीन होता है।

आज हम अपने यहाँ प्रचलित खेलों में कुछ इसी प्रकार की भावना को दिखलाने की चेष्टा करेंगे। हमारे योगी पूर्वजों ने अपनी सन्तान के मनोरञ्जनार्थ जिन खेलों का प्रचार किया, उन में भी कुछ रहस्य है, जिन का उद्घाटन यहाँ अप्रासङ्गिक न होगा।

१ ढेहालेलछू

मिथिला में इस खेल का बहुत प्रचार है। गर्मी के दिनों में झुंड के झुंड ग्रामीण बालक तालाब में खेलते दिखाई देते हैं। इसे ढेहालेलछू, पौरी, गुम्मा आदि कई नामों से पुकारते हैं।

खेल यों चलता है। कुछ लड़के पंक्तिबद्ध होकर पानी उछालना शुरू करते हैं। उन में से कोई हाथ में पानी लेकर पूछता है—'यह क्या है?' उ०-'जल' प्र०-'इसमें क्या है?' उ०—'अण्डा' प्र०—देनेवाला कौन है? उ०—'अमुक' प्र०—'इसे कौन फोड़ता है?' उ०—'अमुक व्यक्ति' प्र०—इसे 'गींजता' कौन है?' उ०—'अमुक।' बस, फिर क्या, 'लेलछू—मलेलछू यरबाक ढेहालेल छू' कहते हुए सब लड़के गींजने-वाले पर पानी उछालना तबतक बन्द नहीं करते जब तक वह पराजित होना कबूल नहीं करता।

अब देखिये इस खेल से कौन सा रहस्य प्रकट होता है। सन्ध्योपासन का मन्त्र है—'समुद्रो अर्णवः समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।' मनुस्मृति इस का विश्लेषण यों करती है—

> अप एव ससर्जादौ तासुबीजमवासृजत्।
> तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांसुसमप्रभम् ॥

अर्थात् ईश्वर ने आदि सृष्टि जल की की। उस में बीज रखा। फिर उस से सूर्य-सा चमकता अण्ड

पैदा हुआ। (जिससे पीछे ब्रह्माण्ड की रचना हुई)

अब इस सृष्टि प्रक्रिया से इस खेल का मिलान कीजिये। सृष्टि प्रक्रिया के पहले प्रश्न का उत्तर जल मिला, फिर उसमें कुछ (बीज) देने वाले (ब्रह्मा) का नाम आया, बाद अण्ड-स्वरूप हिमगर्भ की चर्चा हुई। अन्त में उपदेश मिलता है कि इसे-अर्थात् इस ब्रह्माण्ड को 'गींजने' वाला—इस में लिपटा रहनेवाला 'ढेहा' खाता है, अर्थात् संसार में आने जाने का जो क्रम है, उस में ठोकर खाता फिरता है। और इस तरह गींजने-वाले की दुर्दशा होती है।

इस तरह सुगम और स्पष्ट रीति से ब्रह्मविद्या को समझाने वाला खेल कोमलमति बालकों के लिये किस चतुरता से चलाया गया है, यह विचारकगण स्वयं विचार करें। यह दूसरी बात है कि इस तत्त्व को समझने वाले ब्रह्मचारी न रहे। और इस तरह खेल का सारा अर्थ लुप्त हो गया'

२ कबड्डी

यह खेल प्रायः सभी जगह प्रचलित है। खेलने की प्रक्रिया सभी जानते हैं। जिस प्रकार विभाजित दो दलों के खिलाड़ी क्रम से साँस रोककर कबड्डी का उच्चारण करते हुए अपनी सीमा में लौट आने से विजयी होते हैं, और उस में चूकने पर-साँस टूटने पर, दूसरी पार्टी के किसी खिलाड़ी से पकड़ लिये जाने पर-'सड़' जाते हैं, यह सर्व विदित है। इस से शरीर की तन्दुरुस्ती प्राणायाम का अभ्यास और नाम जप का महत्व स्पष्ट है।

एक बार इस खेल के नामकरण पर विचार करें। 'कबड्डी' शब्द किस मूल शब्द से आया है। शिवजी का नाम कपर्दी है। प्राकृत भाषा में रेफ का लोप और रेफ संयुक्त अक्षर का द्वित्व 'प्राकृत प्रकाश' आदि प्राकृत व्याकरणों में विहित है। जिस से 'कपद्दी' बना। फिर देश भाषा में इस का रूपान्तर कबड्डी हुआ।

इस प्रकार कपर्दी का नाम लेकर प्राणायाम साधता हुआ जो सीमा पार कर जाता है, वह तो विजयी और जो इस में चूक जाता है, वह 'सड़ा' हुआ, अर्थात् फिर चौरासी के फेर में जन्म-मरण का चक्कर लगाया करता है। यह तत्त्व इस खेल में भलीभाँति व्यक्त है।

३ सतघरा

इस खेल में १४ घर बने रहते हैं, जो दो खेलाड़ियों में ७-७ कर बँटे रहते हैं। पाँच-पाँच गोटियाँ उन घरों में रहती हैं। गोटियाँ लेकर क्रम-क्रम से दोनों उन घरों को भरना शुरू करते हैं। जहाँ खाली घर (शून्य स्थान) आता है, नजदीक घर की गोटियाँ लेकर फिर भरना शुरू करते हैं। इस तरह दोनों ग्रहण-वितरण करते हैं। अन्त में जो अधिक घर खाली बना सके, वही जीत पाता है।

अब देखिये—ये चौदह घर चौदह भुवन (जो पुराण सम्मत) हैं। पाँच गोटियाँ पञ्चभूत हैं, इन के साथ जीव भ्रमण करता है। जब (अधिकतः) खाली स्थान (खं ब्रह्म) शून्य मात्र को प्राप्त करता है तब वह विजयी होता है। इस से चौदह भुवनों की निस्सारता पञ्चभूत के साथ जीव भ्रमण, शून्यब्रह्म की प्राप्ति, यह विचार भलीभाँति प्रकट है।

४ चोरानुकी

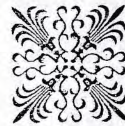
इस खेल का प्रचार मिथिला में अत्यन्त है। शाम के समय किसी भी गाँव में आप जाइये,

लड़कों की टोलियाँ यही खेल खेलती दिखाई देंगी। खेल यों शुरू होता है। मिट्टियों के ढेर बना कर तिनके का एक टुकड़ा छिपा देते हैं। जो तिनके ढेर से निकाल लेता है, वह चोर नहीं बनता। पर चूकनेवाला चोर बनता है। फिर चोर के हाथ में मिट्टी के साथ वह तिनका रख कर उस की आँखों पर पट्टी बाँधते हैं, और उसी हालत में कहीं उसी के हाथों रख छोड़ते हैं, और पहले के स्थान में फिर ले आकर आँखों की पट्टी खोलते हैं। अगर वह ढूंढ कर हाथ की रखी मिट्टी से तिनका ले आता है तो वह 'पूंग' जाता है—पूर्ण होता है, नहीं तो फिर चोर बन कर अस्पृश्य बनता है।

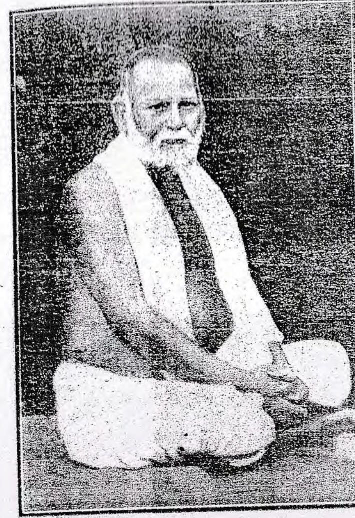
इस खेल में यह रहस्य दिखाया गया है, की मिट्टी का ढेर यह पार्थिव शरीर है। वह तिनके का टुकड़ा ईश्वर है, जो उस समीप में वर्त्तमान ईश्वर को नहीं देख सकते हैं, वे अन्धे से हैं। चर्मचक्षु से वस्तुतः यह तत्त्व देखा नहीं जा सकता। ज्ञानदृष्टि से अगर उस ने उसे ढूंढ निकाला तब तो पूर्ण हुआ—मुक्त बना।

कहना नहीं होगा कि इसी प्रकार ऋषि-मुनियों के चलाये खेलों में ब्रह्मविद्या का रहस्य कूट-कूट कर भरा हुआ है। हमारे पूर्वजों ने अपने कोमल-मति ब्रह्मचारी शिशु-शिष्य के लिये खेलों के रूप में ब्रह्मविद्या जैसी गूढ़-रहस्य समझाने की जो चेष्टाएँ कीं, अगर उसे हम समझ सके तो हमारा अनायास कितना बड़ा कल्याण सिद्ध हो सकता है, यह सोचने की बात है। अपने यहाँ प्रचरित प्रत्येक प्रथा तथा प्रत्येक वस्तु में कोई न कोई आध्यात्मिक या वैज्ञानिक रहस्य निहित है। दुर्भाग्य से हम ने उन रहस्यों को एक दम भुला दिया, फिर हमारी यह आध्यात्मिक और मानसिक अवनति का युग क्यों न शुरू हो। आज भी यदि इन रहस्यों को ढूंढने समझने की तकलीफ (?) करें तो हमारा वास्तविक आदर्श हमारे सामने स्पष्ट हो सकता है।

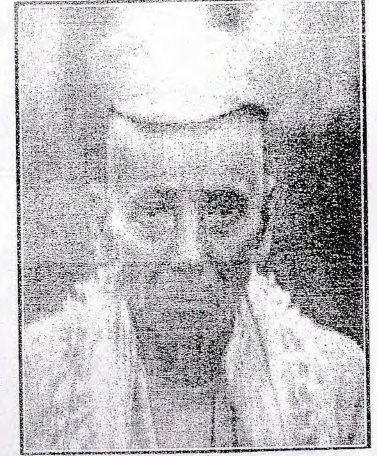
और भी बहुत से खेल हैं, जिन के कुछ रहस्य दिखाये जा सकते थे, पर समय और स्थान के अभाव से हम ने उन का दिग्दर्शन मात्र कराया है। अगर यह विषय लोगों को रुचिकर प्रतीत हो सका, तो 'मिहिर' के पाठकों की सेवा में फिर इस विषय को लेकर उपस्थित होंगे।



कुछ स्वर्गीय दुर्द्धर्ष मैथिल महामहोपाध्याय



महामहोपाध्याय पण्डित जयदेव मिश्र



महामहोपाध्याय पण्डित शशिनाथ झा

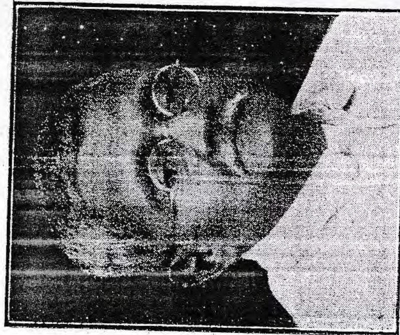


महामहोपाध्याय पण्डित परमेश्वर झा

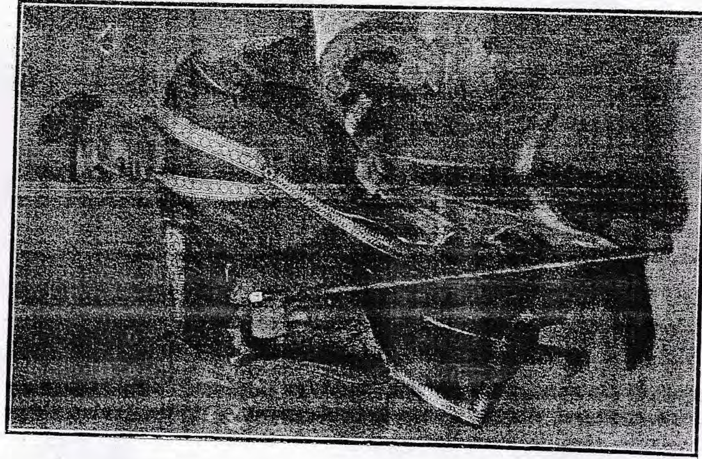


महामहोपाध्याय पण्डित राजनाथ (रज्जे) मिश्र

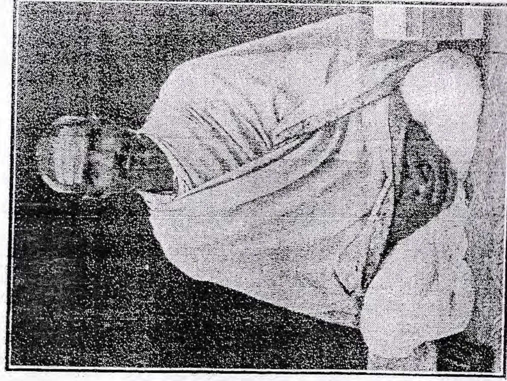
मिथिला की विभूतियाँ



महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा जी एम० ए० डि० लिट०, आचार्य



विद्यावाचस्पति श्रीमान् मधुसूदन झा जी (जय पुर)



पण्डितप्रवर श्रीयुत बालकृष्ण मिश्रजी (हिन्दू विश्व विद्यालय-काशी)

मिथिला के विद्वान् (१)

पण्डित श्रीयुत त्रिलोकनाथ मिश्र जी (प्रि० लोहना विद्यापीठ)

यह अत्युक्ति नहीं कि मिथिला, सदा से संस्कृत-विद्या का भारत-प्रसिद्ध केन्द्र रहा है। इस देश के धुरन्धर विद्वानों ने भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रमुख राज-स्थानों में अपनी अलौकिक विद्वत्ता का परिचय देकर उत्कृष्ट पूजा पायी है। जिन के वंशजों में से कई अभी भी उस पूजा के फल-स्वरूप अनुपम धन-सम्पत्ति का उपभोग कर रहे हैं। उदाहरणार्थ राज दरभंगा और राज बनैली को ले लीजिये—

राज-दरभंगा के आदि पूर्वज महामहोपाध्याय पण्डित महेश ठाकुर को अपनी उत्कृष्ट विद्या के कारण ही उस समय के बादशाह अकबर से मिथिला का राज्य प्राप्त हुआ था, जो मिथिला के प्रायः सभी लोग जानते हैं।

तेरहवीं शताब्दी में उस समय के भारत-प्रसिद्ध धुरन्धर विद्वान् राज-बनैली के आदि पूर्वज पण्डित गदाधर झा जी को उन के गुणों की बिहार-शासक नासीरुद्दीन के द्वारा प्रशंसा की जाने पर बादशाह गयासुद्दीन तुगलक ने (जब वे बिहार आये थे) १३३४, में उन्हें अतुलित धन दिया। जिस के सहारे उन की नवीं पीढ़ी के स्वनाम-धन्य प० परमानन्द चौधरी ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा से धन को राज्य का स्वरूप दे दिया।

सदा से संस्कृत विद्या के प्रधान केन्द्र रहने के कारण ही अनेक आघातों के लगते रहने पर भी मिथिला के आचार, विचार, वेष, भूषा, भाषा, साहित्य तथा स्वरूप आदि का रत्तिक भी परिवर्त्तन नहीं हुआ। मिथिला में विधर्मियों का आक्रमण, कभी सफलता को नहीं पा सका।

जिन्हों ने भारत के कोने-कोने में प्रबलरूप से आक्रान्त बौद्ध धर्म पर, थोड़े ही दिनों में सनातन धर्म का डङ्का बजा कर लोगों की शङ्का को निर्मूल कर दिया और सर्वत्र भारत-धर्म की विजय-वैजयन्ती फहरायी, उन्हीं साक्षात् ईश्वरावतार कहे जानेवाले स्वामी शङ्कराचार्य्य जी को भी मण्डन मिश्र की धर्मपत्नी महा विदुषी सरस्वती से पछाड़ खाकर छः महीने की अवधि लेनी पड़ी। और पीछे पर-काय-प्रवेश द्वारा काम-शास्त्र की योग्यता प्राप्त कर उत्तर देने की शक्ति हो सकी।

बंगाल के राजा लक्ष्मण-सेन कट्टर बौद्ध-धर्मी थे, जो बारहवीं शताब्दी में हुए। उस समय झुण्ड के झुण्ड बंगाली विद्यार्थी, गङ्गेश उपाध्याय आदि धुरन्धर मैथिल विद्वानों से न्याय पढ़ने के लिये मिथिला आते थे, उन सबों ने इन महाविद्वानों की कृपा से यहाँ (मिथिला) के संस्कारों से संस्कृत हो अपने देश में जा जा कर सनातन धर्म का प्रबल प्रचार किया।

बौद्ध-धर्मावलम्बी राजाओं में से अशोक, अजात-शत्रु, शिशुनाग आदि प्रधान हुए हैं। इन में भी अशोक की प्रभुता भारत-व्यापी थी, उन्हों ने बौद्ध-मत का घोर प्रचार किया। उन के स्तम्भ और शिलालेख भी अभी भारत के बहुत स्थलों में मिलते हैं, किन्तु मिथिला के मुख्य केन्द्रों में कहीं नहीं।

अब संस्कृत-विद्या के अनन्य उपासकों की कुछ परिचय सहित नामावली तथा उन के निर्मित ग्रन्थों की तालिका नीचे उद्धृत करता हूँ—

गौतम मुनि—

आप न्याय-दर्शन के निर्माता हैं। आप का आश्रम दरभङ्गा जिले के भरवाड़ा-परगने में खिरोई (विरजा) नदी के निकट ब्रह्मपुर नाम के ग्राम में था। उस के दक्षिण—

पश्चिम कोण में गौतमकुण्ड था, जो अभी तक विद्यमान है। इस की कुछ ही दूरी पर "अहियारी"[1] ग्राम में गौतम मुनि की अभिशप्ता सहधर्मिणी प्रातः स्मरणीया पतिव्रता अहल्या का पाषाण शरीर था। 'अहल्या ह्रद' अब भी है।

प्रमाण—

"आसीद् ब्रह्मपुरी नाम्ना मिथिलायां विराजिता।
तस्यां लसति धर्मात्मा गौतमो नाम तापसः॥
अहल्या नाम तत्पत्नी पति-भक्ता प्रियंवदा।
सर्व-लक्षण-सम्पन्ना सासीत्सर्वाङ्ग-सुन्दरी"॥
[स्कन्दपुराण]

"गौतमस्याश्रमे याम्ये पातालोत्थित-पाथसि।
स्नात्वा कुण्डे नमेद्भक्त्या यजुः-पाठ-फलं लभेत्॥
ततो गच्छेद् ब्रह्मऋषेर्गौतमस्य वनं नृप।
अहल्याया ह्रदे स्नात्वा लभते परमां गतिम्॥"
[बृहद्विष्णुपुराण]

कपिल मुनि

आप ने साङ्ख्य दर्शन का निर्माण किया है। आप दरभङ्गा जिले के हाटी परगना में ककरौड़ ग्राम के निवासी थे। आप ने अपने आश्रम से एक मील की दूरी पर श्री कपिलेश्वर महादेव की स्थापना की; वहाँ अब तक मिथिला का प्रसिद्ध तीर्थस्थान माना जाता है।

विभाण्डक मुनि

आप का रचित ग्रन्थ कोई उपलब्ध नहीं है। आप का योगबल बहुत बड़ा था। खिरोई (विरजा) नदी के तट पर गौतमाश्रम के कुछ आगे आप का आश्रम था जिस को योगिवन- (जगवन) कहा जाता है।

प्रमाण—

"विभाण्डको महायोगी दक्षिणे निवसत्यसौ।
गौतमस्याश्रमात्पुण्याद्याम्य-पश्चिम कोणके॥"
[बृहद्विष्णुपुराण)

शतानन्द मुनि

आप महर्षि गौतम के सुपुत्र तथा राजा जनक के पुरोहित थे। आप का भी रचित ग्रन्थ अनुपलब्ध है।

मुनि वात्स्यायन

आप का रचित वात्स्यायन-भाष्य आदि प्रसिद्ध है। आप थे तो मैथिल ही किन्तु निवास-स्थान आप पटने में कर रक्खा था।

महायोगीश्वर महर्षि याज्ञवल्क्य

भू-मण्डल में सुप्रसिद्ध तथा परमादरणीय याज्ञवल्क्य स्मृति आपही की कृति है। आप के द्वारा मिथिला अत्यन्त गौरवान्वित हुई है। आप की अमल कीर्त्ति की गीतिका छान्दोग्यआदि उपनिषदों में भरी है। आप का आश्रम नेपाल राज के कोराडी परगने के कुसुमा ग्राम में था। के आस-पास अभी धनुः क्षेत्र (धनुखा) स्थान ईशाननाथ तथा मिथिलेश्वर महादेव के लिङ्ग भी उसी निकट-वर्त्ती हैं। अध्यात्म-ज्ञान-निष्णाता महाविदुषी मैत्रेयी आपही की धर्मपत्नी थी।

महामहोपाध्याय मण्डन मिश्र

आप न्याय तथा पूर्व-मीमांसा के अद्वितीय विद्वान् थे उस समय के भी समस्त विद्वानों के शिरोमुकुट तथा प्रमाण भूत थे। दर्शनों में कई जगह, "तदुक्तं मण्डन- मिश्रैः" कह कर प्रमाणरूप में आपका उल्लेख है। आप ने मिथिला को छोड़कर युक्त-प्रान्त के मण्डला में अपना निवास किया। आप के रचित ग्रन्थ-विधि-विवेक, मण्डत्रिशती नैष्कर्म्य-सिद्धि और वेदान्त-वार्तिक हैं।

महामहोपाध्याय उदयनाचार्य

आप दरभंगा जिले के दक्षिण भागस्थ "करिअन" ग्राम के निवासी थे। आपके निवास-स्थान के अध्यापनालय की भूमिपर विशाल पाकड़ का वृक्ष, अभी भी उस समय की स्मृति दिला रहा है। करिअन तथा उस के आस-पास गामों के छोटे छोटे बच्चों को, उनके अभिभावुक लोग ...सी वृक्ष के नीचे लाकर अक्षरारम्भ कराते हैं। इन्हों ने ...द्ध-मत के निराकरण में अपनी असाधारण शक्ति ... परिचय दिया है। ...की गर्वोक्ति प्रसिद्ध है।—

"वयमिह पद-विद्यां तर्कमान्वीक्षिकीं वा
यदि पथि विपथे वा वर्तयामः स पन्थाः
उदयति दिशि यस्यां भानुमान् सैव पूर्वा,
नहि तरणिरुदीते दिक्पराधीनवृत्तिः॥

इनके रचित ग्रन्थ, कुसुमाञ्जलि, किरणावली, गुण ...किरणावली आत्म-तत्त्व-विवेक, लक्षणावली और तात्पर्य-परिशुद्धि हैं। आर्यासप्तशती के प्रणेता पं० गोवर्द्धनाचार्य जी ... आप प्रधान शिष्य थे।

षड्दर्शनाचार्य म० म० वाचस्पति मिश्र

आप दरभंगा जिले के अन्तर्गत ठाढ़ी ग्राम के निवासी थे। ...पर आपकी धर्म-पत्नी "भामती" के नाम से मिश्राइन ...तलाब अभी तक प्रसिद्ध है। कोई इन का निवास-स्थान "...मण्डारसम" ग्राम कहते हैं।

आप, सभी दर्शनों के महाविद्वान् थे; आप की ...-शैली तथा संस्कृत-छटा की तुलना, आजतक संस्कृत-...दर्शनों में किसी ने भी न कर पायी। आप ने सभी दर्शनों ...टीकाएँ की हैं। और उसमें खूबी यह कि जिस दर्शन की ...का को देखिये, प्रतीत होगा कि 'आप इसी दर्शन के कट्टर ...-पाती थे"। आप के रचित ग्रन्थ सांख्य तत्त्व कौमुदी, ...त्त्व-बिन्दु, वैशारदी, तत्त्व-समीक्षा, न्याय-कणिका, न्याय-वार्तिक तात्पर्य टीका, वाचस्पत्य, भामती आदि हैं।

म० म० वाचस्पति मिश्र (अभिनव)

आप दरभंगा जिले के सरिसव ग्राम के निवासी थे। न्याय तथा धर्मशास्त्र में आप के रचित द्वैतचिन्तामणि, आकारचिन्तामणि, आह्निक--चिन्तामणि, नीतिचिन्तामणि, श्राद्धचिन्तामणि, व्यवहारचिन्तामणि, शुद्धिचिन्तामणि, शूद्राकारचिन्तामणि, विवादनिर्णय, द्वैतनिर्णय,[2] शुद्धिनिर्णय, तिथिनिर्णय, महादान--निर्णय, दत्तकविधि, प्रायश्चित्त-चिन्तामणि, कृत्यमहार्णव, पितृभक्तितरङ्गिणी, गयाश्राद्धपद्धति, गयाप्रयोग, गया-यात्रा, चन्दन-धेनुप्रमाण, अनुमान-खण्डटीका, शब्द-निर्णय, खण्डनोद्धार तथा न्याय-सूत्रोद्धार ग्रन्थ मिथिला के कोने कोने में प्रचलित हैं।

महामहोपाध्याय गङ्गेश उपाध्याय

आप दरभंगा जिले के मधुबनी सबडिवीजन के उत्तर मंगरौनी ग्राम में निवास करते थे। न्यायशास्त्र में आपकी योग्यता अतुलनीय थी। आप ने दूर दूर के विद्यार्थियों को आजीवन निःस्वार्थ विद्या-दान किया और जैन-बौद्ध-मत के खण्डन-स्वरूप 'तत्त्व-चिन्तामणि' नाम का ग्रन्थ-रत्न लिखा।

म० म० महाकवि गोवर्द्धनाचार्य

आप प्राचीन हैं। न्याय-कुसुमाञ्जलि प्रणेता उदयनाचार्य के एकमात्र गुरु आप ही थे। आप के सोदर कनिष्ठ भ्राता बलभद्राचार्य भी बहुत विशिष्ट विद्वान थे। आर्यासप्तशती के "सकल-कलाः कल्पयितुं प्रभुः प्रबन्धस्य कुमुदबन्धोश्च। सेन-कुलतिलकभूपतिरेकोराकाप्रदोषश्च" इसश्लोक की टीका में महामहोपाध्याय सचलमिश्र के "सेतु नामक ग्रन्थकर्त्ता कवि-सेव्यः प्रवर-सेननामा नटवरः स्वदेशीयो भूपतिरित्यर्थः"

इस लेख से स्पष्ट होता कि उस समय के राजा 'प्रवर सेन' के आप द्वार पण्डित थे। उक्त श्लोक में 'सेन' पद को देख कर किसी ने वंगीय राजा लक्ष्मण

(१) यह 'अहल्या-पुरी' का अपभ्रंश शब्द है।

(२) द्वैत-निर्णय आदि ग्रन्थ, प्राचीन वाचस्पति-रचित ही सम्मत हैं, मुझे भी यही पक्ष ठीक जँचता है; इनका रचित 'परिभाषा कृत्य- प्रदीप' है। ले०

सेन के द्वारपण्डित आप को माना है। जो अप्रमाणिक सा प्रतीत होता है। स्थानाभाव से आप की कविता के उदाहरण नहीं दे सका।

म०म० मुरारि मिश्र (कविवर)

आप आठवीं और नवीं शताब्दी के भीतर हुए हैं अनर्घराघव नाटक, आप कारचित है।

महाकवि कालिदास

मिथिला की प्रसिद्धि है कि आप को दरभंगा जिले के अन्तर्गत उच्चैठ भगवती की असीम कृपा से असाधारण योग्यता प्राप्त हुई। आप के विषय में बहुत सी किंवदन्तियाँ हैं जो विस्तार-भय से यहाँ नहीं लिखी गयी हैं।

महामहोपाध्याय पार्थसारथि मिश्र

आप सभी दर्शनों के प्रगाढ़ विद्वान् थे परन्तु पूर्वमीमांसा पर अटल श्रद्धा रखते थे। शास्त्र-दीपिका, न्यायरत्नकणिका, न्यायरत्नमाला, तन्त्र-रत्न, श्लोकवार्तिक; न्याय-रत्नाकर आदि ग्रन्थ-रत्न आपके निर्मित हैं। शास्त्र-दीपिका में नास्तिक-मत का बड़ी युक्तियों के साथ खण्डन किया गया है।

म० म० उमापति उपाध्याय

आप, दरभंगा जिले के अन्तर्गत मंगरौनी ग्राम के निवासी थे। किसी किसी का मत है कि आप हरि सिंह देव राजा के द्वार-पण्डित थे और मैथिल-पञ्जी-प्रबन्ध, आप ही की प्रधानता में निर्मित हुआ था। कोई कहते हैं कि आप महाराज राघवसिंह के समय में हुए हैं। आप का रचित ग्रन्थ—"पारिजात हरण' नाटक मिलता है।

म० म० रुद्रधर उपाध्याय

आप, धर्म-शास्त्र के धुरन्धर ज्ञाता थे। आप के रचित-शुद्धिविवेक, श्राद्ध-विवेक, व्रतपद्धति; वर्ष-कृत्य आदि ग्रन्थ हैं। इन में से शुद्धि-विवेक सारे भारत में एक रूप से समादृत है। इस में जन्माशौच; मरणाशौच एवं अन्यान्य अशौच तथा श्राद्धाधिकारियों का निर्णय बड़ी ही खूबी के साथ किया गया है।

म० म० वर्द्धमान

दरभङ्गा जिले के 'देकुली' स्थान में आप के स्थापित 'वर्द्धमानेश्वर' महादेव का लिङ्ग अबतक वर्त्तमान है। धर्मशास्त्र के निबन्ध-ग्रन्थों में आप को अत्यन्त प्रामाणिक माना गया है। आप के रचित—स्मृति-परिभाषा, किरणावली-प्रकाश तथा गया-पद्धति आदि ग्रन्थ हैं।

म० म० केशव मिश्र

आप, दरभङ्गा जिले के 'सुगौना' ग्राम के वासी थे। किसी किसी के मत में आप वाचस्पति मिश्र के पुत्र माने जाते हैं। आप भी बहुत बड़े धर्म-शास्त्री हुए हैं। द्वैत परिशिष्ट, संख्या परिमाण और तार भाष्य ये तीन ग्रन्थ आपके रचित उपलब्ध होते हैं, इन में 'द्वैत परिशिष्ट' धर्म शास्त्र का अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ है। इसके प्रारम्भ में आपने लिखा है—

"अधीत्य सर्व-तन्त्राणि निबन्धानवलोक्य च।
श्रीकेशवेन विदुषा परिशिष्टमिहोच्यते"

इसी की टीका 'सुश्लिष्ट परिशिष्ट' है जो म० म० कल्याणधर-कृत है।

मुरारि मिश्र (अपर)

आप, उपर्युक्त केशव मिश्र के शिष्य और न्याय तथा धर्म-शास्त्र के प्रगाढ़ विद्वान थे। आप ने धर्म-शास्त्र का अध्ययन केशव मिश्र से और अन्यान्य शास्त्रों का अध्ययन रामभद्र झा से किया था। धर्म-शास्त्र-सम्बन्धी 'शुभकर्म निर्णय' नामक ग्रन्थ आप का निर्मित है। जो मिथिला भर में आदरणीय हो रहा है। आप राजा त्रिविक्रम-नारायणदेव के द्वार-पण्डित थे। यथा—

"यं रणमुखे त्रिविक्रमनारायण देवमालोक्य।
अपि कनकगौरमरयो, मन्यन्ते सपदि कालमिव॥
विज्ञायाखिलशास्त्रतत्त्वममलं श्रीरामभद्राद्गुरो-
र्मिश्रात्केशवतः स्मृतीरथ तयोः सारं विविच्यस्वयम्।
पादाम्भोज-युगं प्रणम्य शिवयोः संख्यावतां प्रीतये
व्यातेने शुभकर्म-निर्णयममुं श्रीमान् मुरारिः कृती

भानुदत्तमिश्र जी

आप, इसहपुर ग्राम में बारहवीं शताब्दी में हुए हैं। आप ने रसमञ्जरी, अलङ्कार तिलक, शृङ्गारदीपिका रस पारिजात, रसतरङ्गिणी, कुमारभार्गवीय, मुहूर्तसार आदि रचे हैं।

म० म० छोटामिश्र

आप, विशिष्ट वैयाकरण थे। स्फोट-वाद का शास्त्रार्थ आप का निरुत्तर था। विद्वानों की जिस सभा में जाते थे आप की यही प्रतिज्ञा रहती थी कि—

"अष्टौस्फोटा श्छोटामिश्रेण निरूप्यन्ते"

म० म० गोविन्द ठाकुर

आप के वंशज, दरभङ्गा के अन्तर्गत 'मटसीमरि' ग्राम में वर्त्तमान हैं। आप की विद्वत्ता अतुलनीय थी। आप ने 'काव्य-प्रकाश'-कार मम्मट भट्ट की माता से प्रार्थित होने पर काव्य प्रकाश के ऊपर 'प्रदीप' नाम की टीका लिखी, जो साहित्य जगत् में ग्रन्थ-रत्न-रूप से प्रसिद्ध है पूजा-प्रदीप, उदाहरणदीपिका तथा कृष्ण-स्तोत्र भी आप ही के रचित हैं।

शूलपाणि उपाध्याय

आप, धर्म-शास्त्र के बड़े विशिष्ट विद्वान् थे। आप ने आचार विवेक, प्रायश्चित्त विवेक और प्रायश्चित्तशूलपाणि ग्रन्थ रचे।

महामहत्तक गणेश्वर

आप दरभङ्गा के विरसायर, नामक गाँवमें चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुए हैं। आप ने दान-रत्नाकर, विवाह रत्नाकर, श्राद्ध-रत्नाकर, व्यवहार-रत्नाकर आदि ग्रन्थ बनाये।

म० म० शालिकानाथ मिश्र

आप पार्थसारथि मिश्र के समकालिक महामीमांसक हुए हैं। आप की प्रतिभा अनुपम थी। प्रकरण-पञ्चिका, न्याय-रत्न, शबर-भाष्य-टीका आदि मीमांसा के अनेक ग्रन्थ आप ने रचे हैं।

महामहोपाध्याय शुचिकर (उपाध्याय)

आप महामहोपाध्याय महेशठाकुर के गुरु थे। आप का रचित ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

महामहोपाध्याय महेश ठाकुर

आप अकबर के समकालिक थे। संस्कृत-विद्या के प्रभाव से आप ही ने दरभङ्गा-राज्य का उपार्जन किया। यद्यपि मिथिला में एक दो ब्राह्मण राजा और भी हो चुके हैं, पर मिथिला का आधिपत्य जिस प्रकार महेश ठाकुर ने प्राप्त किया, उस प्रकार काश्मीरी 'मातृगुप्त' पण्डित के सिवा संस्कृत विद्या के प्रभाव से किसी अन्य ब्राह्मण ने नहीं किया। आप ने चिन्तामणि और आलोक-दर्पण की टीकाएँ की हैं। आप के अन्यान्य भ्राता भी इसी कोटि के विद्वान् थे, जिन में से इन के छोटे भ्राता मेघ ठाकुर का मिथिलाक्षर में हस्तलिखित 'सरस्वती कण्ठाभरण' मैं ने बीकानेर महाराज के पुस्तकालय में देखा है।

म० म० नरहरि [प्राचीन]

आप धर्म-शास्त्रज्ञों में एक थे। आप का रचित 'द्वैत निर्णय' प्रसिद्ध है।

पखनिया सरस्वती

आप ने 'आचार-दीपिका' रची।

भवदेव मिश्र

आप सत्रहवीं शताब्दी में हुए हैं। प्रायश्चित्त भवदेव [मिथिला में सम्मानित], दान कर्म-प्रकिया और पातञ्जल सूत्र-भाष्य तीनों ग्रन्थ आप के रचित हैं।



म० म० हेमाङ्गद ठाकुर

आप खण्डवलाकुलोद्भव थे। आप का रचित ग्रन्थ 'ग्रहण-माला है।

महामहोपाध्याय मेघ ठाकुर

आप, म० म० महेश ठाकुर के भाई थे। आप ने 'जलज' नाम का ग्रन्थ रचा।

रामदत्त ठाकुर

आप गणेश्वर के पुत्र और चण्डेश्वर महता के भाई थे। मिथिला में प्रचलित 'विवाह-पद्धति' के रचयिता आप ही हैं।

महामहत्तक चण्डेश्वर "महता"

आप, राजा हरिसिंह देव के युद्ध-मन्त्री थे। आप की विद्वत्ता सर्वतोमुखी थी, किन्तु धर्म-शास्त्र के विषय में आप एक ही माने जाते थे। स्मृतिरत्नाकर, पूजारत्नाकर, दान वाक्यावली; शिववाक्यावली, कृत्य-चिन्तामणि, आदि-विधि, स्वामि-पाल-विवाद-तरङ्ग, दास-विमोच-विधि आदि आप के रचित ग्रन्थ हैं।

धनपति उपाध्याय

आप, राजा रामचन्द्र के समय के थे। धर्म-शास्त्र में आपको मैथिल-समाज प्रमाणभूत मानता आया है। आप का रचित ग्रन्थ 'श्राद्धदर्पण' उपलब्ध है।

देवनाथ ठाकुर

आप, आलोक-परिशिष्ट और तत्त्व-चिन्तामणि के रचयिता हैं।

रुचिपति उपाध्याय

आप मंगरौनी के निवासी थे तथा महाराज महेशसिंह के द्वारपण्डित थे। मुरारि-कृत अनर्घराघव नाटक की टीका के रचयिता हैं।

म० म० शुभंकर ठाकुर

आप म० म० महेश ठाकुर की सन्तान तथा मिथिला के अधिपति थे। आप की संस्कृत-विद्वत्ता, कविता, दानवीरता तथा युद्ध-वीरता अद्भुत थी। आप के रचित 'तिथि-निर्णय' तथा 'श्री हस्तमुक्तावली' दो ग्रन्थ हैं।

कविवर जयदेव

'प्रसन्न राघव' नाटक के रचयिता आप पीयूषवर्षी नाम से प्रसिद्ध हुए। विद्वानों के मत में आप ही पक्षधर मिश्र थे।

चित्रधर (प्राचीन)

आपका स्थिति-काल, पन्द्रहवीं शताब्दी है। आप महाराज भैरव सिंह के द्वार-पण्डित रहे हैं और उन की आज्ञा से आप ने मुरारिकृत 'अनर्घराघव' नाटक की टीका की।

महामहोपाध्याय श्रीनिवास मिश्र

आप, सोलहवीं शताब्दी में 'सिंघासो' ग्राम में हुए हैं। आप का निर्मित ग्रन्थ 'अद्भुतसागर' प्रसिद्ध है।

इन्द्रमणि ठाकुर

आप धर्म-शास्त्र के धुरन्धर विद्वान् थे। आप का रचित एक ग्रन्थ 'मीमांसारस-पल्लव' है। आप का जन्म पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ है।

अकल उपाध्याय

आप, अट्ठारहवीं शताब्दी में हुए हैं। वाक्य-बोध तथा शब्द-विचार दो ग्रन्थ आप के रचित हैं।

सिंहभूपाल

आप ने सङ्गीत रत्नाकर, व्याख्यासङ्गीत तथा रसार्णव सुधार ये तीन ग्रन्थ बनाये।

श्रीदत्त उपाध्याय

आप चौदहवीं शताब्दी में हुए हैं। 'सप्तपादार्थिक' ग्रन्थ आप का रचित है।

श्री दत्तमिश्र

आप पन्द्रहवीं शताब्दी में हुए। आचारादर्श, धर्मपितृ-भक्ति—आदि आप के रचित हैं।

म० म० मधै ठाकुर

आप, महामहोपाध्याय महेश ठाकुर के बड़े भ्राता थे; आप के रचित ग्रन्थ—वुद्धाधिकार, कुसुमाञ्जलि-प्रकाशिका, द्रव्य-प्रकाशिका, किरणावली-प्रकाशिका आदि हैं।

मधुसूदन ठाकुर

आप के निर्मित-कण्टकोद्धार, समय-प्रदीप-जीर्णोद्धार, तत्त्वचिन्तामण्यालोक; द्वैत-निर्णय-जीर्णोद्धार आदि ग्रन्थ हैं।

मधुसूदन (प्राचीन)

आप ने 'ज्यौतिष-प्रदीपाङ्कुर' ग्रन्थ बनाया।

रघुदेव झा

आप राजा हरिसिंह देव के द्वार-पण्डितों में से थे, और उन की आज्ञा से आप ने ही पञ्जी-प्रबन्ध का संग्रह किया।

म० म० विद्यापति ठाकुर

आप, १४ वीं शताब्दी में हुए हैं। उस समय के राजा शिवसिंह के आप प्रधान द्वार-पण्डित थे। आप की योग्यता से प्रसन्न होकर उन्हों ने 'बिसपी' नाम का ग्राम आपको जागीर के रूप में दिया। आप के वंशज सौराठ ग्राम के दक्षिण टोले में अभी भी वर्त्तमान हैं। मैथिली कविता में आप, अपर वाल्मीकि माने जाते थे।

आप ने वर्षकृत्य, भू-परिक्रमा, पारिजातहरण, रुक्मिणीपरिणय, मैथिली कृष्णमति, दुर्गाभक्तितरङ्गिणी, गङ्गावाक्या-वली, विभागसागर, शैवसर्वस्व, लिखनावली, कीर्त्ति-लता, पुरुष-परीक्षा, दानवाक्य-माला, पदावली आदि ग्रन्थों का निर्माण किया।

हरिहर उपाध्याय

आप अर्वाचीनों में विशिष्ट थे। 'प्रभावती-परिणय' तथा 'भर्तृहरि निर्वेद' नाटक आप के रचित हैं।

लोचन कवि

आप, राजा महीनाथ ठाकुर के द्वार-पण्डित थे। 'रागतरङ्गिणी' आप की रचित है।

लक्ष्मीपति उपाध्याय

आप पन्द्रहवीं शताब्दी में थे। आप का रचित 'श्राद्धरत्न है।

महामहोपाध्याय भवनाथ (अयाची) मिश्र

आप सर्व तन्त्र स्वतन्त्र रहते हुए भी नैयायिक बहुत विशिष्ट थे और सन्तोषी इतने थे कि अपनी कुटिया के आस-पास जो कुछ पत्र-शाक होते थे-उन्हीं से अपना निर्वाह करते हुए जीवन भर किसी से आप ने कुछ याचना नहीं की। इसी से आपका नाम 'अयाची' पड़ा। आप ने अपने संकल्प से विपरीत निज पुत्र शङ्कर को राज प्रतिग्रह लाते देख तत्क्षण गृह-त्याग कर दिया।

महामहोपाध्याय शङ्कर मिश्र

आप 'सरिसब' के, निवासी थे। उपर्युक्त अयाची [भवनाथ] मिश्र के आप सुपुत्र थे। आप को अत्यन्त शैशव अवस्था में ही समस्त वेद-वेदाङ्गों तथा दर्शनों का पूर्णतत्त्व-ज्ञान हो गया था आप की विचक्षणता अतुलनीय थी। एक नाटक में एक नट बैल का स्वांग धर कर आया। उसके उस विषय के पाण्डित्य की जांच-की नीयत से उस के उपर आपने छोटा सा एक कंकर फेंका; उस चतुर अभि-नेता ने ठीक बैल की भाँति उतनी ही दूर तक अङ्ग को कँपाया। इस चमत्कार से अतिप्रसन्न हो आपने अपने ऊपर का वस्त्र उसे दे दिया और उस गुणज्ञ अभिनेता ने भी उस वस्त्र को बड़े प्रेम से माथे में बान्ध लिया। उस नाटक में दरभङ्गा अधिपति मिथिलेश सम्मिलित थे; उन्हों ने बैल का अभिनय करने वाले उस के अभिनेता पर तो प्रसन्नता प्रकट की ही, किन्तु छोटे से शङ्कर के कंकर की

उस अनोखी करामात से चकित हो शङ्कर से पूछा "ऐसी प्रतिभा इस बाल्य-काल में आपकी आश्चर्य-जनक प्रतीत हो रही है ?"

शङ्कर ने उत्तर दिया—

"बालोऽहं जगदानन्द ! न मे बाला सरस्वती ।
अपूर्णे पञ्चमे वर्षे वर्णयामि जगत्त्रयम् ॥"

वैशेषिक सूत्रोपस्कार, अनुमान-चिन्तामणि-मयूख, गौरीदिगम्बर प्रहसन, भेदरत्न, कण्टकोद्धार, रसार्णव, वादि-विनोद, तथा छन्दोगान्हिक प्रसिद्ध हैं ।

म० म० पक्षधर मिश्र

आप मंगरौनी निवासी न्याय के अद्वितीय विद्वान् थे ।

"शङ्कर-वाचस्पत्योः शङ्करवाचस्पती सदृशौ ।
पक्षधर-प्रतिपक्षी लक्ष्मीभूतो न च क्वापि"

यह उक्ति आप ही के विषय की है । आप ने सब से अधिक विद्या दान-किया । प्राचीनों में गङ्गेश उपाध्याय से और अर्वाचीनों में आप से न्याय की योग्यता प्राप्त कर ही बंगालियों ने बङ्गाल में न्याय का प्रचार किया ।

म० म० गोकुलनाथ उपाध्याय[1]

आप का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी में मंगरौनी में हुआ है । आप अर्वाचीनों में सब से प्रखर थे ।

आपके रचित—अमृतोदय नाटक, कादम्बरी कीर्त्तिश्लोक, कादम्बरी प्रदीप, कादम्बरी प्रश्नोत्तरमाला, पदवाक्य रत्नाकर, शिवशतक, कुसुमांजलि-टिप्पणी, तत्वचिन्तामणि पद्धति, खण्डन कुठार, मिथ्यात्वनिर्वाचन, आलोक टिप्पणी, मुक्ति-वाद विचार, विशिष्ट वैशिष्टय बोध, प्रबोध-कादम्बरी, कुण्ड-कदाम्बरी, मास-मीमांसा, आधाराधेय-भाव-तत्व परीक्षा इत्यादि ग्रन्थ हैं ।

गणेश्वर (अपर)

आप के रचित-हरि-भक्ति-प्रदीपिका तथा गङ्गाभक्ति तरङ्गिणी दो ग्रन्थ हैं ।

वामदेव उपाध्याय

आप ने 'स्मृति-दीपिका' बनायी ।

म० म० देवनाथ

आप 'उषाहरण' नाटक के रचयिता हैं ।

हरिलाल

आप ने 'आचारादर्श-व्याख्या' नाम का ग्रन्थ रचा ।

रमापति कवि

आप 'रुक्मिणी स्वयंवर' नाटक के रचयिता थे ।

अभिनव वर्द्धमान

आप सरिसव के निवासी थे । 'परिभाषा-विवेक' आप का रचित है ।

नरहरि उपाध्याय

आप भी सरिसव-निवासी ही थे । आप ही ने 'अधि-करण-कौमुदी' (जिस में धर्म-शास्त्र में जहाँ-तहाँ प्रसङ्ग से आये हुए मीमांसा के अधिकरणों का संग्रह है) रची है ।

मनबोध (भोलन) कवि

आप का निवास-स्थान 'भराम' था । आप, मिथिला भाषा के सुप्रसिद्ध कवि थे । मैथिली में आपका 'कृष्ण-जन्म' नाम का पद्यात्मक ग्रन्थ अपूर्ण है ।

देवनाथ

आप ने-स्मृति-कौमुदी' बनायी ।

१ आप के छोटे भाई का नाम था 'वंशीधर उपाध्याय' वंशीधर को आप ने अयोग्य जानकर घर से निकाल दिया । वे भी ईर्षा-वश, पढ़ने के लिये 'नदीया' चले गये : वहां के प्रमुख भट्टाचार्य से ही उनका शास्त्रार्थ हुआ जिस में भट्टाचार्य जी पछाड़ खा कर छिप गये । तब लोगों ने कहा "वंशीधर ! तेरे डर, नदिया न दिया वर"

(उत्तरांश अन्यत्र)

मिथिला के शिक्षित युवक

श्री शुकदेव ठाकुर बी० ए० (आनर्स)
श्री देवनारायण सिंह बी० ए०

किसी देश की भावी उन्नति वहाँ के होनहार युवकों पर ही निर्भर रहती है । इसी दृष्टिकोण से हमें यहाँ विचार करना है कि हमारे युवकों की मौजूदी मनस्थिति क्या है, मिथिला के सामूहिक जीवन में उन का क्या स्थान है, और भारतवर्ष के भविष्य के निर्माण को वे कैसे प्रभावित कर सकते हैं ?

वर्तमान मिथिला में मुख्यत: दो प्रकार की शिक्षा-संस्थाएँ हैं । एक तो पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति के अंग स्कूल-कालेज आदि हैं । दूसरी वे पाठशालाएँ, टोल और महाविद्यालय हैं । इस के अतिरिक्त क्रिश्चियन मिशिनरियों द्वारा-संचालित स्कूल और नवीन ढंगों के आश्रम भी हैं, जहाँ पाश्चात्य और प्राच्य विषयों का नवीन दृष्टिकोण से अध्यापन हो रहा है । इधर दरभङ्गे के समीप एक उच्च कन्या विद्यालय भी खुला है । भाषाओं और लिपियों की दृष्टि से भी मिथिला में कई विलक्षणताएँ हैं । शिक्षित समुदाय में अधिकत: देवनागरी, उर्दू, और रोमन लिपि का ही प्रयोग होता है । कैथी लिपि को अब तक सरकारी महक-मों तथा साधारण साक्षर दिहातियों की लिखा-पढ़ी में गौरव का स्थान प्राप्त है । मैथिल युवक

अपनी घरेलू बातें मैथिली भाषा में ही किया करते हैं । साधारणत: शिक्षित मैथिल युवकों के जीवन में अब हिन्दी-देवनागरी को ही स्थान प्राप्त है ।

इन संस्थाओं में शिक्षित युवक कौन हैं ? प्रति-वर्ष मुजफ्फरपुर, दरभङ्गा, लोहना स्थानों से अनेक उपाधि-प्राप्त पण्डित तैयार किये जाते हैं । इन में से जिन का आंगल भाषा में प्रवेश हो जाता है, उन की तो हाईस्कूलों में नियुक्ति हो जाती है । कतिपय विशेषज्ञ संस्कृत विद्यालयों में अध्यापन-वृत्ति द्वारा जीविकोपार्जन करते हैं । शेष को नृप-संश्रय या ज्योतिष-कर्मकांड आदि के व्यव-साय से ही वृत्ति संपादन करना पड़ता है । इन में एक दल है; जो अपने व्यावहारिक आयुर्वेद-ज्ञान से स्वतन्त्र चिकित्सा-कार्य्य में संलग्न है ।

पर शोचनीय दशा तो इन की है जिन की शिक्षा संस्कृत की रहन-सहन एवं वार्तालाप की प्रणाली संस्कृत है, पर जो अब आधुनिक फैशन-परस्ती के वैसे ही वशीभूत हैं जैसे अन्य इंग्लिश शिक्षित युवक । मिरजई और पाग की परिपाटी मिटी जा रही है । अब, कम से कम शहरों में तो वह शादी पोशाक वाले सहज सुन्दर पंडितों की मूर्ति दीखती

ही नहीं; बल्कि पाश्चात्य वेशभूषा और भाव भंगी में संस्कृत के छात्र कहीं कहीं अंग्रेजी वालों से भी बाजी मार रहे हैं। अब जरा अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त युवकों की स्थिति पर गौर कीजिये। इन में से अधिक भाग्यशाली युवक तो ईंडियन सिविलसर्विस, प्रान्तीय सिविल पुलिश, एजुकेसनल, तथा जमसेदपुर जैसे व्यापारिक सर्विसों में स्थान पा रहे हैं। अन्य पौरुषपूर्ण युवक मिथिला के प्रमुख राज्यों, और जमींदारी रियासतों, स्कूलों, और सरकारी तथा गैर-सरकारी महकमों में हैं। अन्य उत्साही मैथिल युवक साहसिक मारवाड़ियों और बंगालियों के प्रशंसनीय पदचिह्नों का अनुगमन करते हुए, भारत के सुदूर प्रान्तों में जा कर जीवन के विभिन्न विभागों में अपनी क्षमता की धाक जमाकर, जीवन पथ पर अग्रसर हो रहे हैं।

पर गहन समस्या उन वर्द्धिष्णु युवक समुदाय की है, जिन्हों ने अपने अधिक प्रगति शील पड़ोसियों की देखा-देखी अपनी पैतृक सम्पत्ति का प्रचुर अंश व्यय कर के विना किसी विशेष लक्ष्य के, यों ही, शिल्प, कला, और विज्ञान से भिन्न लिवरल विषयों में डिग्रियाँ प्राप्त करली हैं और कार्य्यों के अभाव में जो अपने निरपराध अनुभवहीन हृदयों में एक व्याकुल दीनता का दारुण भार वहन करते हुए पटना, मुजफ्फरपुर, दरभंगा और भागलपुर की गलियों की खाक छानते फिरते हैं। उन के जीवन की सामाजिक तथा आर्थिक सुख-सुविधाओं का आदर्श उतना ही उच्च है, जैसा उन से अधिक भाग्यशाली शिक्षित बन्धुओंका। यद्यपि प्रकृति ने मिथिला को एक सम्पन्न प्रान्त बनाया है, हमारे तृषित नेत्रों के सामने ऐसे अनेक चोंक पड़ेहैं, पर हमारे युवक क्यों नहीं उठते? इस विपन्न परिस्थिति का निदान क्या है?

यौवन का वर्णन करते हुए मिथिला के मस्ताने तरुण कवि 'नेपाली' ने लिखा है—

"चाहे हो मेरे विरुद्ध में भावी का सारा निर्णय
चलता रहूँ राह पर अपनी जग में मचता रहे प्रलय
लगता जहाँ तनिक जाने में बड़े बड़े वीरों को भय
उस वेदीपर चढ़ कर देखूं रे यह यौवन का निश्चय"

आज हमारे कितने युवकों में यौवन की वह अल्हड़ मस्ती मौजूद है? इस अभाव का एक प्रमुख कारण आधुनिक निस्सार शिक्षा प्रणाली है। हमारे युवकों के शारीरिक बल का ह्रास, उन का दैन्य पूर्ण गृह जीवन, उन का सारशून्य वाह्याडम्बर, अनियमित भोजन समुचित व्यायाम आदि का अभाव बाल-विवाह आदि के कारण तथा ब्रह्मचर्य्य एवं संयम के बिना अल्प आयु में बच्चों की फिक्र में लद जाना और ज[illegible] शिक्षा इन दुर्बलताओं के निराकरण करने का नहीं सिखाती, उस शिक्षा के वातावरण में पले मैथिल युवक अपनी मातृभूमि के भविष्य को प्रोज्ज्वल बनाने में कितना योग दे सकते हैं, यह विचारणीय विषय है।

शिक्षित समाज की नैतिक उन्नति व्यक्ति और (विस्तृत अर्थ में) जाति की धार्मिक प्रवृत्ति पर निर्भर है। धार्मिक प्रवृत्ति का अभिप्राय ईश्वर और मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों की प्रचलित भावनाओं से है। किन्तु आधुनिक भारतीय शिक्षा-प्रणाली जो स्पष्ट ही धार्मिक भित्तियों पर स्थित नहीं है, नैतिकता की दृष्टि में पूर्ण तथा प्रभावशाली नहीं हो सकती। फल यह हुआ है कि यह शिक्षा-पद्धति हमारे शिक्षित युवकों के विचारों और चित्तवृत्तियों को उन्नत न कर सकी। ग्रामों और नगरों में वे सामाजिक रूढ़ियों, अन्ध श्रद्धाओं के पंकपुंज में निवास करते हैं, उन के अन्धकार, अज्ञान को विनष्ट कर, उन के हृदय में सत्साहस और स्वाधीनता की ज्योति नहीं जगा सकी। यह निष्प्राण शिक्षा उसे विरोध शक्तियों का सामना करने का आत्मिक बल नहीं देती। फल स्वरूप हम देखते हैं कि युवकों कि अन्तर्भावनाओं का क्रियात्मक प्रकाशन नहीं हो पाता और इस प्रकार कितने ही मनस्वी मैथिलों का तारुण्य, कानन-कुसुमों की नाईं सूख कर झड़ जाता है।

विदेश-यात्रा और बालविवाह-निषेध की चर्चाएँ हुईं, पर समाज सुधार की यह क्षणिक तनिक अम्बुधि के उरःस्थल पर बुदबुदों की नाईं मिट चली। यद्यपि सामूहिक रूप से मैथिलों की आर्थिक स्थिति ज्यों की त्यों रह जाती है। बल्कि उत्तरोत्तर क्षीण ही होती जाती है। यह खर्चीली शिक्षा तो साधारणतः व्यर्थ है ही, तिस पर भी स्कूल और कालेज प्रतिवर्ष बेकारों की संख्या में भयावनी वृद्धि कर रहे हैं।

पर हम यह नहीं कह सकते कि साधारण मैथिल युवक भी वास्तव में निर्जीव या निःशक्त हैं। भारत के अन्य प्रान्तों में इन की सफलता आन्दोलन में किए गए इनके त्याग, तथा शिक्षा संस्थाओं की परीक्षाओं और प्रतिद्वन्द्विताओं में इनकी उत्कृष्ट पद प्राप्तिओं से यह सिद्ध है कि इन में तेजस्विता, कर्म-शीलता की कमी नहीं। पर आवश्यकता है विदेश के स्वाभिमानी युवकों की भाँति वे अपने हृदय में स्वतंत्रता की दामिनी दमकावें और अपने मस्तिष्क से अपनी हीनता के भाव को दूर कर वहां साहस और मौलिकता को स्थान दें।

मिथिला की सांपत्तिक स्थिति से अपरिचित सज्जन तो साधारणतः कह उठेंगे—आज कल के युवक हाथों से काम करना नापसन्द करते हैं। किन्तु इस सम्मति के पूर्व हमें यह सोचना चाहिये कि जिस 'सस्य-श्यामला' 'उर्वरा' भूमि पर युवकों को आह्वान किया जाता है, उस की क्या हालत है।

एक दरभङ्गे जिले की ही बात ले लीजिये। वहां प्रति स्कायर जमीन पर लगभग ६६६ मनुष्य लदे हैं।

जिस स्थान में भूमि पर जनसंख्या का ऐसा घोर भार हो, वहां कोई भी समझदार और व्यावहारिक अर्थ शास्त्री कृषि से भिन्न जीविका-मार्गों के अवलम्बन को ही श्रेयष्कर बताएगा। इसकी ये मानी नहीं कि कृषि कार्य्य से कोई युवक घृणा करे. यद्यपि साधारण खेती-गृहस्थी के सम्पादनार्थ उस खर्चीली शिक्षा की हम कोई जरूरत नहीं समझते। मिथिला में अभी कारखाने खुल सकते हैं जिन में उच्चशिक्षित से कमपढ़े लिखे युवक भी बेकारी को दूर कर सकते हैं।

आज दिन शुद्ध दुग्ध और खाद्य-सामग्रियाँ शहरों में नहीं मिलतीं। क्या हमारे युवक शहरों के समीप गो-दुग्ध-शालाएँ एवं शाकभाजी की वाटिकाएँ संगठित कर अपना सुन्दर जीविकोपार्जन

के साथ साथ राष्ट्रसेवा नहीं कर सकते ? यही बात ऊँचे दर्जे के होटलों के संगठन करने, कपड़ा रंगने, ईंट और खपड़े आदि बेचने, साधारण ऊन के कारबार, साबुन बनाने, मूर्त्तियाँ बनाने, मोटर गाड़ियों द्वारा चीजें उगाहने, इन्धन के व्यवसाय आदि आदि कार्य्यों में भी लागू हैं।

पर आवश्यकता है वैज्ञानिक ज्ञान की, महत्त्वाकांक्षाओं की, अनवरत अध्यवसाय की, और हरेक व्यवसाय को कुछ बड़े और वैज्ञानिक पैमाने पर संगठित करने की। हिन्दुस्तान की जहाजी फौज और हवाई फौज में भी मैथिलों के लिए अमित क्षेत्र हैं। देहरादून के फौजी स्कूल में शिक्षा प्र[ाप्त] कर लेने पर बड़ी बड़ी आशाएँ हो सकती हैं। औ[र] इन कार्यों के लिये आवश्यक खर्च तो हमें साधार[ण] ऊँची शिक्षा छोड़ देने से ही मिल सकता है। हिन्दी पत्रकला के वर्द्धमान क्षेत्र में भी कुशा[ग्र] बुद्धि मैथिल युवकों के लिये बहुमूल्य अवसर है। इन व्यवसायों की सूची बढ़ाई जा सकती है। [प]क्रियात्मक मस्तिष्क वाला एवं मजदूरी की मह[त्ता] को समझने वाला युवक स्वयं ही अपना मा[र्ग] निश्चित कर लेगा।

मिथिला की गोशालाएँ

बाबू धर्मलाल सिंह, सम्पा० 'जीवदया और गोपालन'

भारतवर्ष में विहार प्रान्त की भूमि वास्तव में नाम के अनुरूप विहार करने योग्य है। उस में भी उत्तर बिहार के दरभङ्गा, मुजफ्फरपुर, और मोतिहारी, जिले का समस्त भाग, मुंगेर और भागलपुर जिले के उत्तर और किंचित पश्चिम भाग की भूमि को यदि बिहार का उद्यान कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। इस प्रकार की उर्वरा भूमि संसार में कदाचित् ही कहीं होगी। यह भू-भाग मिथिलाके नाम से प्रख्यात है।

हिन्दू-ग्रंथों में इस की बड़ी महिमा गाई है। आर्ष ग्रन्थ में तो वहां तक लिखा हुआ है कि सृष्टि का विस्तार सब से पहले इसी पुण्य-भूमि मिथिला से हुआ था। इस पवित्र भूमि में बड़े बड़े महर्षि एवं बौद्ध विभु का प्रादुर्भाव हुआ था। यहां के कृषक बड़े धनवान तथा विशिष्ट गो पालक थे। गोवंश सर्वोत्कृष्ट था। यहां के गोवंश की उत्कृष्टता से प्रसन्न हो लीलावपु भगवान राम के पिता ने कई सहस्र शुभ्र गायें दहेज में राजर्षि महाराज जनक [को दी] थीं। परशुराम के पिता जमदग्नि ऋषि की जगत प्रसि[द्ध] गौ के लिये मिथिला ही के तपोवन में टंटा [खड़ा] हुआ था। वाणासुर के उत्तर गो-गृह की प्रशंसा [हमारे] भी शास्त्रों में पाई जाती है, वह गोगृह रक्सौल स्टेशन [के] उत्तर उन के अग्नि-किला के पास है, जिस का भग्नाव[शेष] अभी भी वर्तमान है। दया-धर्म के प्रवर्तक जैन तीर्थ[ंकर] महावीर यहीं पैदा हुए थे। बुद्धदेव का जन्म [भी] कपिलवस्तु में हुआ था। सर्व प्रथम बुद्ध ने गो रक्षा [का] आन्दोलन शुरू किया।

अन्नदा बलदा चेता वण्णदा सुखदातथा
एतमत्थावसं ञत्वा नास्सु गावो हनिंसुते

भगवान् बुद्ध के उपदेश से असुर, राक्षस सभी ग[ौओं] की विपत्ति को देख कर बोल उठे कि गोवध महा अधर्म है।

ततो च देवा पितरो इन्द्रो असुर रक्खसा
अधम्मो इति पक्कन्दु यं सत्थं निपत्ति गवे


१


२

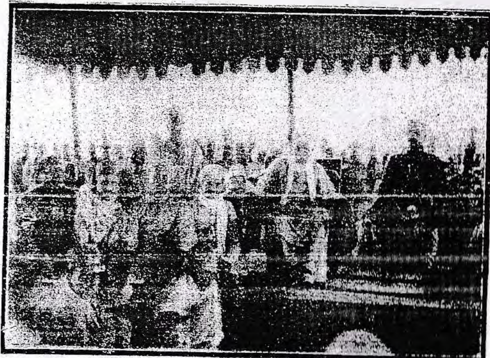
दरभङ्गा गोशाला सोसाइटी के
(१) आजीवन सभापति—
श्रीमान् मिथिलाधीश
(२) अभिभावक—
महामना पूज्य मालवीय जी
(३) उपसभापति—
श्रीमान् मुकुन्द झा जी


३





दरभंगा गोशाला में गायों के बीच जगद्गुरु शंकराचार्य



दरभंगा गोशाला के वार्षिकोत्सव में महामना मालवीय जी

और सभी लोग कहा करते थे। जिस प्रकार मां-बाप भाई और दूसरे सगे अपने मित्र हैं, उसी प्रकार गाय भी परम मित्र हैं जिस से मृत संजीवनी औषधियां मिलती है—

यथा माता पिता भाता अज्जे वापि च नातका
गावो नो परम मित्रा यासुजायन्ति ओसधा

इसी तरह तीर्थङ्कर महावीर स्वामी के वृत्तान्त में लिखा है कि कांपिल्य के कौण्डकौलिक जो मिथिला में थे, उन के पास साठ हजार गायें थीं। मुजफ्फरपुर के पास महावीर स्वामी से श्रावकव्रत लेने के समय आनन्द श्रावक के साथ चालीस हजार गौएं भी थीं।

इन सब अवतरणों से मिथिला के गोधन की विपुलता का सहज ही में पता लग सकता है। यही कारण है कि धार्मिक बातों में गौ का जैसा विशिष्ट स्थान मैथिलों में अभी भी है, वैसा कहीं देखने में नहीं आता है। हम ने कई प्रान्तों का परिभ्रमण किया है और गो सम्बंधी धार्मिक भाव तत्रस्थ लोगों में कैसा है,उस का पूर्णतया अध्ययन किया है। महाराष्ट्र प्रान्त में तथा मध्यभारत में हिन्दू कसाई के हाथ गौ बेच लेते हैं, फिर उन को किसी प्रकार का सामाजिक दण्ड प्रायश्चित्त रूप में नहीं दिया जाता है। पूछने पर मालूम हुआ कि इस प्रकार के विधान मिथिला छोड़ कर और कहीं नहीं है। इतना ही नहीं, जितनी गो संख्या और जितनी गोरक्षिणी समितियां मिथिला में हैं, पैमाने और जनसंख्या के विचार से उतनी किसी भी प्रान्त में नहीं है। बिहार में सब मिलाकर ७० गोशालाएं हैं जिन में ३९ गोशालाएं सिर्फ मिथिला में हैं, और पैमाने के हिसाब से बिहार सब से बढ़ा चढ़ा है।

मैथिलों में गो भक्ति किस प्रकार कूट कूट कर भरी है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यदा कदा की गोकुशी के मामले हैं-- यद्यपि ये मामले गो रक्षा के लिये घातक ही हैं-तोभी मैथिलों की गो भक्ति का पता इस से साफ साफ लगती है। अस्तु।

अब प्रश्न यह उठता है कि इतनी गाढ़ी गो भक्ति के भाव होते हुए भी मिथिला में इस प्रकार बेसुमार गो वध क्यों होता है, तथा मिथिला की गौ का वंश संसार में सब से निकृष्ट और दयनीय क्यों है? इसका उत्तर यह है:—

(१) अत्यन्त उपजाऊ भूमि होने के कारण लोगों की आबादी दिनानुदिन घनी होती गई और गोचर भूमि का शनैः शनैः अभाव होता गया जिस से गौ का नस्ल एकदम बिगड़ कर निम्न हो गया और पशुपालक के लिये गोपालन भारवत् हो गया।

(२) पालवंश के समय में बौद्ध धर्म का बोलबाला था इसलिये भैंसे का वलिप्रदान रोक दिया गया और सूजात की भैंस का दूध ग्रहण कर भगवान बुद्ध ने अपने अनुयायियों के आगे भैंस के दुग्धपान का आदर्श रख दिया जो उस के पूर्व आसुरी सम्पति गिनी जाती थी और जिस का उपयोग केवल यज्ञ-वलि आदि में होता था। भैंस ने गौ का स्थान ग्रहण किया। यद्यपि आर्थिक विचार से भैंस पालना घाटे का काम है, क्यों कि उसका पड़वा खेती के काम के लायक नहीं होता तथा दूध औषधि और बालकों के भोजन के लिये उपादेय नहीं है और चार गौओं का भोजन एक भैंस करती है।

(३) नैपाल तराई में कृषि के अलावा अन्य कोई रोजगार नहीं है और जंगल काफी होने से चरी बहुत होती है, इसलिये वहां के लोग निर्धन होने पर भी बहुत पशु पालते हैं और मालिक के लगान आदि देने के समय उन पशुओं को बेच देते हैं, जो चुपके से सरहद पार करा दी जाती है और बेसुमार पशु यहां के कत्ल खाने में प्रतिदिन मारे जाते हैं।



इस बेसुमार वध के कारण मिथिला की भूमि की उर्वरा-शक्ति घटती जाती है। उपज कम होती है और गरीबी अत्यन्त भयंकर रूप धारण कर रही है और पुण्य भूमि अन्न से पिछड़ी हुई गिनी जाती है। यहां तक कि विश्वराय नामक के किताब लेखक लाला भगवान दास ने उक्त पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि जैसी हालत उत्तर बिहार के पशुओं की हो रही है, यदि यही क्रम जारी रहा तो अगले ५० वर्ष में वहां के मनुष्य मनुष्य, कहलाने योग्य न रहेंगे। वास्तव में यह बात अक्षरशः ठीक है। मिथिला की गरीबी तांडव नृत्य कर रही है। अधिक से अधिक अधिवासी अर्ध-भोजन पाकर शर्द आहें ले रहे हैं। जहां की गौ की ऐसी दयनीय दशा है, वहां के लोगों की बुरी हालत होना कोई नई बात नहीं है। महात्मा गांधी के शब्दों में तीन करोड़ आदमी भूखे रह कर मरते हैं-यह कोई नई बात नहीं है, क्योंकि तीन करोड़ पशु भी अर्ध-भोजन पाकर मरते हैं। ऐसी विकट स्थिति में मिथिला की रक्षा भगवान ही करें:-

फिर भी विपरीत परिस्थिति और वायु मंडल के होते हुए भी सन्तोष की बात है कि मिथिला का ध्यान अब गोरक्षा की ओर मुड़ा है। मानचित्र पर दृष्टि देने से मालूम होता है कि यहां छोटी बड़ी सभी मिलाकर ३५ गोरक्षण संस्थाएं स्थापित हैं जो अब पुराने ढंग को त्याग कर नवीन रूप से गौ रक्षा करने के लिये बद्धपरिकर हैं। इन संस्थाओं की नामावली यों है:—

स्थान	स्थापन काल	आमद	खर्च	पशुओं की संख्या
१ सुगौली (चम्पारण)	१९२७	११००	१०००)	७०
२ गोशाला रकसौल (चम्पारन)	१९१६	२०००)	१५००)	२२५
३ मोतिहारी (चम्पारण)	१९१२	५०००)	५०००)	१४५
४ मधुवन (चम्पारन)	०	५००)	५००)	४०
५ मेहसी (चम्पारन)	१९११	६००)	६००)	३३
६ बारा चकिया (चम्पारन)	१९१८	२१००)	२१००)	७४
७ बेतिया (चम्पारन)	१९११	३३००)	३०००)	१०
८ रमगढ़वा (चम्पारन)		५००)	५००)	१६०
९ घनपटिया (चम्पारन)				
१० चितरंजन गोशाला पुपरी (मुजफरपुर)	१९२५	२४००)	२२००)	६४
११ सीतामढ़ी (मुजफरपुर)	१८९२	७०००)	७०००)	१२३
१२ वैरगनियां (मुजफ्फरपुर)	१९२५	३१००)	३२००)	६३
१३ हाजीपुर (मुजफ्फर)	१८८५)	१४००)	१४००)	११०
१४ लालगंज (मुजफ्फरपुर)	१८९२)	३००)	३००)	३२
१५ महनार (मुजफ्फरपुर)		३०००)	३०००)	१५०
१६ मुजफ्फपुर		१५०००)	१५०००)	६०५

स्थान		स्थापन काल	आमद	खर्च	पशुपालन की संख्या
१७ दरभङ्गा १८ रखवारी १९ गंगवारा २० नौगौल	दरभङ्गा	१८८१	२००००)	२००००)	१४००
२१ मधुवनी (दरभङ्गा)		१८८१	७५००)	७५००)	१५२
२२ कुशेश्वर (दरभङ्गा)			२००)	२००)	२५
२३ रोसड़ा (दरभङ्गा)		१८९०	२५००)	२५००)	९८
२४ जयनगर (दरभङ्गा)		०	५०००)	५०००)	१९५
२५ समस्तीपुर (दरभङ्गा)		१९०८	३६००)	३६००)	३५
२६ बेगूसराय (मुंगेर)		१८८७	२३००)	२३००)	१८३
२७ मुंगेर (मुंगेर)		१८८८	८०००)	८००)	३००
२८ तेघरा (मुंगेर)		१८९९	२३००)	२३००	१३५
२९ मोहद्दी नगर (दरभङ्गा)		१९३३	२०००)	२००)	५०
३० दलसिंगसराय (दरभङ्गा)			४०००)	४०००)	१००
३१ मधेपुर (दरभङ्गा)		१९१५	२५००)	२५००)	१००
३२ ताजपुर (दरभङ्गा)		१८९५	२००)	२००)	२५
३३ खगरिया (मुंगेर)		१८९१	१६०००)	१६०००)	६००
३५ नौगछिया (भागलपुर)		१९१८	७०००)	७०००)	२९०

इन गोशालाओं में ६००० पशु साल भर में पाले जाते हैं जिन में १२५ हजार रुपया सालाना खर्च होता है। गोचर भूमि रक्सौल को ५० विगहा, मोतिहारी को ५० विगहा, बेतिया को ७० विगहा, मुजफ्फरपुर १०० विगहा जयनगर को १०० विगहा और दरभंगा को ११०० विगहा है। स्थायी कोष में दरभंगा २५ हजार, जयनगर २० हजार, मुंगेर २५ हजार, मधुवनी १० हजार, नौगछिया १७ हजार, मुजफ्फपुर २१ हजार, सीतामढ़ी ७ हजार, रक्सौल ३ हजार और पुपरी ३ हजार रुपये हैं। दरभंगा, जय नगर और बैरगनियां सोसाइटीज रेजिस्ट्रेशन एक्ट के अनुसार रजिस्टर्ड है। सिर्फ २० गोशालाओं की बकायदे कमिटी है। इस समय अधिकांश गोशालाओं में अशिक्षित कार्य-कर्त्ता ही हैं। पशुओं की दशा अच्छी नहीं हैं। दरभंगा को छोड़ किसी के भवन वर्तमान ढंग के नहीं हैं। प्रचार, कोष, गोचर भूमि, भवन और पशु संख्या के लिहाज से मिथिला में दरभंगा गोशाला सर्व श्रेष्ठ गिनी जा सकती है। अतएव इस का इतिहास संक्षेप अन्यत्र।

× × × ×

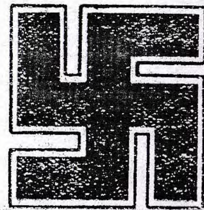
गोरक्षक देश भारत की अवस्था एक दम विपरीत हो गई है। इस दारुण परिस्थिति का पता नीचे लिखे आँकरों से लगेगा।

१ युरागवे—५००
२ आर्जेंटाइन—३२३—
३ आस्ट्रेलिया—२५६—
४ न्यूजलैंड—१५०
५ केप कालनी—१२०
६ ब्राजिल—८६
७ कनानाड—८०
८ अमेरिका—६७
९ डेन्मार्क—७४
१० हिन्दुस्थान—६१

गोधन संसार में सब से बड़ा धन है।

देश	एक गौ से औसत-रोजाना आमद	आमद	कितने वर्ष जीती है	सौ पीछे मृत्यु संख्या
अमेरिका	१३। सेर	१४॥-)	५६ वर्ष	११
इङ्गलैंड	११। ,,	६।=)	५१ ,,	१३
फ्रांस	६॥ ,,	७।०)	४८ ,,	१६
जापान	६॥ ,,	४॥≡)	४४ ,,	१८
भारत	१। ,,	-)॥	२३ ,,	३२

भारतवर्ष में २५६१४६०००० एकड़ भूमि हैं और बैलों की संख्या ५२६४७००० एक बैल के पीछे ६ एकड़ जमीन जोतना पड़ता है। मनुष्यों की आबादी ३४ करोड़ है। दूध देने वाले पशु ५६७८४००० जिन से रोजाना हराहरी ३३१२४००० सेर दूध मिलता है, जो हराहरी फी आदमी में आधा पाव पड़ता है।



पुराणों में मिथिला

प० श्री सीताराम झा 'पुराणभूषण' का० व्या० तीर्थ

वेद और स्मृतियों में जब अनेक जगह मिथिला का वर्णन है ही, फिर पुराणों में उस का उल्लेख प्रचुरता से क्यों न मिले ? अति व्यवहृत श्रीमद्भागवत ही को पहले लीजिये, मिथिला की कथा वहाँ इस तरह छिड़ी है--कि स्वायम्भुव मनु के पुत्र इक्ष्वाकु से राजा निमि उत्पन्न हुए। इन्होंने तीरभुक्ति, जो पीछे 'मिथिला' नाम से प्रसिद्ध हुई- पर शासन किया।

एक समय राजा निमि ने यज्ञ कराने की इच्छा से पुरोहित वशिष्ठ को निमन्त्रित किया। परन्तु इन्द्र के पुरोहित रूप में उन के स्वर्ग चले जाने पर निमि ने भृगुआदि मुनियों को लेकर यज्ञ सम्पादन किया। जब वशिष्ठ लौटे तो निमि के आचरण पर क्रुद्ध होकर विदेह हो जाने का शाप दे दिया। हा हा कार मच गया ! प्रजा घबरा उठी। तब उस ऋषियों ने अराजकता के डर से उन्हें मथ डाला और उस से मिथिल वा विदेह का जन्म हुआ। यह जनक नाम से भी ख्यात हुए। मिथिल ने इस देश का पालन किया; अतः इस का सार्थक नाम मिथिला विख्यात है। श्रीमद्भगवत में लिखा है—

'जन्मना जनकः सोऽभूद्वैदेहस्तु विदेहजः।
मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता॥"

निमि के बाद उन्नीसवीं पीढ़ी में राजर्षि सीरध्वज जनक हुए, जिन के यहाँ स्वयं जगज्जननी सीता जी खेत की उपज-सी आई थी। सीरध्वजी जनक के बाद उन के वंशज भी राजर्षि होगये हैं। वे जीवन्मुक्त थे।

श्रीमद्भागवत में स्पष्ट है—

"एते वै मैथिला राजन्नात्मविद्या-विशारदाः।
योगेश्वर प्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि॥"

मिथिला के विषय में देवी भागवत में लिखा है कि व्यास जी जब सुमेरु पर्वत पर थे, उन के पुत्र श्री शुकदेव जी ने मुक्ति पाने की इच्छा से उन से वन जाने की आज्ञा मांगी। परन्तु व्यास जी ने उन्हें घर में रह कर ज्ञान पाने के लिये कहा। दृष्टान्त में जनक को बतलाया और उन्ही से शिक्षा लेने को भेजा। फिर शुकदेव जी उत्सुकता से जनक जी से मिलने के लिये आये।

देवी भागवत में है—

वर्षद्वयेन मेरुंच समुल्लंघ्य महामतिः।
हिमालयं च वर्षेण जगाम मिथिलां प्रति॥
प्रविष्टो मिथिलां मध्ये पश्यन् सर्वर्द्धिमुत्तमाम्।
प्रजाश्च सुखिताः सर्वा सदाचाराः सुखं स्थिताः"॥

इस तरह मिथिला आकर जनक राज के द्वार पर पहुंचे। वहाँ के द्वारपाल इन्हें भीतर नहीं जाने देता था। इन के तेजस्वी स्वरूप को देख कर जिज्ञासार्थ उस ने 'किंसुखं द्विज ? किं दुखःम्' इत्यादि आध्यात्मिक प्रश्न किया। शुकदेवजी मिथिला के द्वारपाल की विद्वत्ता देख कर चकित रहे और उस का उचित समाधान किया। जो संवाद बड़ा ही रोचक है। इस से मिथिला में आध्यात्म-विद्या का प्रचार चरम सीमा का मालूम होता है।

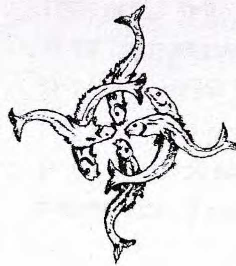
शुकदेव जी का आना सुन कर योगिराज जनक बड़े खुश हुए। विश्राम के लिये सारी सुविधायें कर दीं। पहले भेंट नहीं कर के जनकजी ने उन के योगी होने की परीक्षा करने के लिये सुन्दरी दासियाँ सेवा में भेज दीं। जैसा कि दे० भा० में कहा है—

'गीतवादित्र-कुशलाः कामशास्त्र-विशारदाः।
ता आदिश्य च सेवार्थं शुकस्य मन्त्रिसत्तमः' ॥

शुकदेवजी योगी जनक की करतूत से क्षुब्ध हो उठे। अपने पिता की बातों पर घृणा हो चली। उन दासियों की सेवा इन्हें विष सी प्रतीत होने लगी और उसे माता समझ कर अपने योग में लीन हो गये। दासियों ने इन की सारी क्रियायें जनक जी से जाकर कह सुनायीं। जनक जी ने खुश होकर अपने गुरु, मन्त्री, पुत्र, आदि के साथ आकर उन की भेंट की शुकदेवजी आगबबूला हो रहे थे। जनकजी के आते ही उन से कड़ी कड़ी बातें कह सुनायीं। जनकजी ने हँसते हुए उन के अना[...] का सारा वृत्तान्त कहा। फिर शुकदेवजी प्र[...] हो कर उन से सारा सन्देह दूर कर मिथिला [...] शिष्य बनकर अपने आश्रम को लौटे।

पद्मपुराण ब्राह्मपुराण और अनेक रा[...]यणों में मिथिला की चर्चा ज्ञानभूमि कह कर [...] गई है। महाभारत में मिथिला के मांस वि[...] व्याध ने जो क्रोधी ब्राह्मण को शिक्षा दी थी, [...] गृहस्थाश्रम का मर्म समझाया और कर्मका[...] ज्ञानकाण्ड का सामञ्जस्य दिखलाया [...] वह किसी भी इतिहास वाचकों से छिपा नहीं है[...] पुराणों ने काशी और विदेह को एक संस्[...] का मूल धाम कहा है। इन सर्वविदित विष[...] की चर्चा मात्र अलम् है।

सचमुच यह अलौकिक-भूमि है, जहाँ मिट्टी [...] सीता सी मणि निकली थी, जिस की चरित्र ज्यो[...] आज भी संसार में प्रकाश दे रही है।



मिथिला में आयुर्वेद

प० श्रीयुत हरिश्चन्द्र झा जी कविराज

जिस शास्त्र में सम्पूर्ण प्राणियों के आरोग्य [र]हने के उपाय और उनके रोगों के प्रतीकार के साधन [व]र्णित हों, उस शास्त्र का नाम 'आयुर्वेद' है। यह आयुर्वेद वेदों में ही वर्णित होने के कारण अनादि है और ब्रह्मा ने इसका भी उसी अनादि युग में [नि]र्माण किया है। उपदेश क्रम यों चला है—

धन्वन्तरि काशीपति राजर्षि दिवोदास के रूप में जन्म ग्रहण कर सत्र-स्वभावानुकूल शल्य शाला-[क्य] आदि चिकित्सा के प्रचार में लगे और ब्रह्मर्षि भर[द्]वाज ने ब्राह्मण स्वभावानुकूल काम्पिल्ल-राजधानी पञ्चालक्षेत्र के आश्रम में शारीर-वनौषधि संवलित वैद्यक शास्त्र का उपदेश अपने शिष्यों को दिया आगे चल कर धन्वन्तरि समुदाय सुश्रुत सम्प्रदाय के नाम से अभिहित हुआ और भरद्वाज-सम्प्रदाय आत्रेय सम्प्रदाय के नाम से। आत्रेय सम्प्रदाय का ग्रंथ 'चरक' बड़ा ही प्रसिद्ध है।

धीरे धीरे अष्टांग-संवलित वैद्यक शास्त्र का प्रसार भारत ही क्या, सारे संसार में फैला। फिर मिथिला इस प्रभाव से कैसे बची रहती? दर्शन-शास्त्र की आदि भूमि होने का श्रेय इसी भूमि को प्राप्त है। आदि दार्शनिक गौतम और कपिल ने भी इस शास्त्र पर संहिताएँ रची हैं। साथ ही मिथिला के आदि नरेश निमि और उनके वंशज राजर्षि जनक ने भी आयुर्वेद संहिताएँ बनाई हैं। ब्रह्मवैवर्त्त में तो जनक के आयुर्वेद ग्रंथ का स्पष्ट उल्लेख है, पर इस ग्रन्थ-रत्न का लोप हो गया है। वहाँ लिखा है—

'चकार जनको योगी वैद्य-सन्देह-भञ्जनम्।'

जनक ही का नहीं, प्रत्युत निमि, कपिल, गोतम आदि की भी आयुर्वेद-संहिताएँ काल के गर्भ में विलीन हो गई हैं, केवल कुछ प्राप्य प्रामाणिक ग्रंथों में उनके नाम सप्रमाण उल्लिखित हुए हैं। सुश्रुत की टीका चक्रपाणि ने लिखी है। वे ऋतुचर्या प्रकरण में कपिल का नामोल्लेख इस प्रकार करते हैं—

'तदुक्तं कपिल-वचने—
मधौ सहे नभस्ये च मासि दोषान् प्रवाहयेत्।
सहस्य प्रथमे चैव वाहयेद्दोष-सञ्चयम्॥ इति
सुश्रुत, सूत्र ६ अ० व्याख्यायाम्"

निदान-ग्रंथ की टीका करते हुए अर्शोधिकार में महामति विजय लिखते हैं—

"यदाह गोतमः—
श्लेष्मा च पञ्चधोरःस्थः श्लेषकादि स्वकर्मणा।
कफधाम्नाञ्च सर्वेषां यत्करोत्यवलम्बनम्॥
अतोऽवलम्बकः श्लेष्मा यस्त्वामाशयसंश्रितः।
क्लेदकः सोऽन्नसंघात क्लेदनाद्रसबोधनात्॥
बोधको रसनास्थस्तु शिरःसंस्थोऽक्षितर्पणात्।
तर्पकः श्लेषकः सम्यक् श्लेषणात् संधिषु स्थितः॥

इसके सिवा गोतम विरचित गवायुर्वेद-संहिता—जिसमें पशुओं की चिकित्सा वर्णित थी, भी अब स्मृतिशेष ही रह गई है।

महामति सुश्रुत ने उत्तर-तंत्र के आरंभ में ही मिथिला पति-विदेह का नामोल्लेख इस प्रकार किया है—

'शालाक्यशास्त्राभिहिता विदेहाधिप-कीर्त्तिताः"

डल्लन इस श्लोक की टीका में लिखते हैं—

"अस्याग्रे केचित्, विदेहाधिपतिः श्रीमान् जनको नाम विश्रुतः। इत्यादि पाठं पठन्ति'

चरक भी शारीरिक सूत्र में लिखते हैं—

'इन्द्रियाणीति जनको वैदेहः।'

डल्लन और भी लिखते हैं—'तथा च विदेहवाक्यम्

समन्ताद्विस्थितः श्यावो रक्तो वा मांससञ्चयः।
सन्निपातेन दोषाणां प्रस्ताय्यर्म्म तदुच्यते ॥

इति (सुश्रुत उत्तरतंत्रे)

फिर इस के आगे चलकर लिखा है—

अन्तर्गत शिरायान्तु यदा तिष्ठति मारुतः।
स तदा नयनं प्राप्य शीघ्रं दृष्टिं निरस्यति ॥'

निदान टीका में विजय लिखते हैं—

"यदाह विदेहः—

क्रोध-शोकौ स्मृतौ वातपित्तारक्तप्रकोपणौ।

फिर भी—

'यदाह विदेहः—

पित्तेन तिक्तास्य-विदाह कृत् स्यात् स्वाद्वास्यहल्लास करः कफेन। इति (अरोचाधिकारे)

श्रीकण्ठ भी विदेह का नामोल्लेख करते हैं—

'तथा च विदेहः—

सर्वलिङ्गं रुजायुक्तमर्बुदं विद्धि सर्वजम्।

(इति नासारोगाधिकारे)।"

"तदुक्तं विदेहे—

नक्त मन्धास्तु चत्वारो ये पुरस्तात्प्रकीर्तिताः।

इत्यादि (नेत्ररोगाधिकारे)

इस पाठ को डल्लन ने भी उद्धृत किया है।

शालाक्य व्याख्या में श्रीकंठ ने निमि का उल्लेख किया है—

श्लेष्मपित्त जलोन्मिश्रे कोथे शोणितमांसजे।
जायन्ते जन्तवस्तत्र कृष्णास्ताम्राः सितारुणाः ॥

इत्यादि (कर्ण रोगाधिकारे)

फिर भी—

'तथा च निमिः—

पञ्चभूतात्मिका दृष्टेर्मसूरार्द्ध दलोन्मिता।
काच इत्येष विज्ञेयो यः स्यान्नेपटलोत्थितः॥

इत्यादि (नेत्र रोगाधिकारे)

काम शास्त्र भी आयुर्वेद शास्त्र का चरमांग है। इसका भी बहुत विस्तार हुआ है। मैथिल पंडित ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने (जो म० म० पं० विद्यापति ठाकुर के पूर्वज थे) काम शास्त्र पर 'पञ्चसायक' नाम का अत्युत्तम ग्रंथ निर्माण किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्यान्य शास्त्रों की भाँति मिथिला भी आयुर्वेद शास्त्र के प्रणयन में अग्रणी रही है।

कालक्रम से, जब विदेशियों ने भारत पर आक्रमण करना प्रारंभ किया, तब भारत के कला-कौशल के साथ-साथ इस के ग्रन्थ-रत्न भी चौपट होने लगे। अत्याचारी आक्रमण-कारियों ने यहाँ पुस्तकालय के पुस्तकालय जला डाले। इसी से यहाँ भी वैद्यक शास्त्र की अवनति हो गई। कुछ दार्शनिकता ने भी इस ओर विशेष शैथिल्य दिखलाया।

हर्ष की बात है, इधर मिथिला में कुछ आयुर्वेद के जागरण के लक्षण दीख पड़ने लगे हैं। कुछ विद्वान् इस शास्त्र का अध्ययन कर इसकी उन्नति के लिये सचेष्ट हो रहे हैं। ईश्वर करे, मिथिला अपने वे दिन फिर देखे!

मिथिला की भौगोलिक स्थिति

श्री परमानन्द दत्त।

मिथिला की सीमा पुराणों और तंत्रों में निर्द्धारित हुई है कि कोशी के तट चम्पारण्य से लेकर गण्डकी तक और गंगा से लेकर पर्वत पर्यन्त यह प्रान्त फैला हुआ है।

वैदिक साहित्य के अनुशीलन से जाना जाता है कि मिथिला वा तीरभुक्ति की आबादी आर्यों के प्राचीन विस्तार काल में ही हुई है। वाल्मीकि रामायण से मालूम होता है कि गंगा के उत्तर किनारे विशाला नगरी के उत्तर मिथिला की स्थिति थी। चीनी पर्यटक यूनचवंग के समय में भी मिथिला विशाला (वैशाली आधुनिक बनियाँ बसाढ़) से अलग थी। महाभारत में भी इस विशाल जनपद का उल्लेख मिलता है।

ततः कोषं समादाय वाहनानि च भूरिशः।
पाण्डुना मिथिलां गत्वा विदेहाः समरे जिताः ॥

जान पड़ता है कि विदेहों का प्रभाव बढ़ने से विशाला जनपद मिथिला में ही अन्तर्भुक्त हो गया होगा। उस समय की मिथिला के कुछ भाग वर्त्तमान नैपाल में पड़ गया है।

मुसलमानों के समय में इस प्रान्त के उत्तर नेपाल, उत्तर-पूर्व में भागलपुर जिला, पूर्व-दक्षिण में मुङ्गेर जिला, दक्षिण में गंगा नदी, दक्षिण-पश्चिम में सारन जिला वा गण्डक नदी, उत्तर-पश्चिम में चम्पारण जिला था। जब बिहार-प्रान्त अंगरेजों के हाथ आया, उस समय भी बंगाल के छोटे लाट के अधीन ऐसा बड़ा और बहुत संख्या-विशिष्ट दूसरा जिला नहीं था। इस में छः उपविभाग थे-मुजफ्फरपुर, हाजीपुर, सीतामढी, दरभङ्गा, मधुवनी और ताजपुर।

सन् १७६५ ई० तक गंगा के उत्तर सारण, चम्पारण, तिरहुत और हाजीपुर ये चार स्थान अलग-अलग थे। उस समय सारे तिरहुत सरकार का परिमाण ६३४३ वर्ग मील था और सरकार हाजीपुर का ७८३५ वर्ग मील। इन दोनों सरकारों में १०४ परगने थे। सरकारी कागजों से जाना जाता है कि उस समय भागलपुर और मुंगेर के अधिकांश स्थान भी इसी तिरहुत सरकार के अन्तर्गत थे। नदियों के गति-परिवर्तन के कारण और भी कई स्थान इस के अन्तर्गत हुए और पीछे अलग भी किये गये।

शासन की सुभीते के लिये वर्तमान तिरहुत कमिश्नरी का निर्माण हुआ है। इस कमिश्नरी में मुजफ्फरपुर, दरभङ्गा, सारण और चम्पारण ये चार ही जिले हैं।

वर्त्तमान तिरहुत की स्थिति उस में बहने वाली नदियों के बहाव और उस के नगरों से जानी जा सकती है।

गंगा—शिकमारोपुर के निकट गंगा नदी तिरहुत में प्रवेश करती है। हाजीपुर के निकट चौमथा घाट से कई कोस पूर्व-उत्तर में गण्डक नदी भी गंगा से मिल गई है। इस के बाद गंगा वाजितपुर तक आकर तिरहुत जिले से हट गई है।

गंडक—यह नदी हिमालय से निकल कर मुजफ्फरपुर जिले के कर्णौल नीलकोठी के निकट तिरहुत में प्रवेश करती है और गंगाजी में मिल जाती है। इस की बाढ़ रोकने के लिये इस के दोनों किनारे बांध बाँध दिये गये हैं। इस के नाम नारायणी तथा शालग्रामी भी हैं। इस के किनारे लालगंज एक प्रधान बाजार है।

बया—यह चम्पारण जिले में गंडक से निकल कर दक्षिण की ओर बहती हुई तिरहुत के दक्षिण-पूर्व प्रान्त में गंगा से जा मिली है। कहते हैं, भगवान् बुद्ध ने इसे अपने योग-बल से प्रकट किया था।

बूढ़ीगंडक—यह भी चम्पारण जिले ही से निकलती है। इस का दूसरा नाम छोटी गंडक भी है। यह नदी मुँगेर शहर के ठीक सामने गंगा में जा गिरी है। इस के किनारे मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर और रोसड़ा प्रधान नगर हैं।

बलान—हिमालय-वन के एक सरोवर से निकल कर कई शाखाओं में आई है। इसी से इस नाम की कई नदियाँ तिरहुत में हैं, उन में एक ताजपुर के निकट छोटी गंडक से निकल कर मुंगेर के समीप फिर छोटी गंडक में ही मिल गई है। कई बलान चौरों से और कुछ झीलों से निकल कर पास की बड़ी नदियों में जा गिरी है। इसी को वर्चनी कहते हैं।

बागमती—यह नदी नैपाल की राजधानी काठमांडू के निकट उत्पन्न होकर सीतामढ़ी के पास मखियारी घाट के निकट तिरहुत में प्रवेश करती है। इस की धारा बड़ी प्रखर है और नैपाल में इस नदी की पार्वत्य धारा में से उत्पन्न तुमुल कलकल ध्वनि व्याघ्र गर्जन की भाँति सुनाई पड़ती है, इसी से वहां इसे 'व्याघ्रवती' भी कहते हैं। कहते हैं कि इस की प्रखर धारा में पड़ने से, तिनके भी दो खंड हो जाते हैं। यह कुछ दूर तक छोटी गंडक के साथ समानान्तर भाव से बहती है। पहले यह रोसड़ा के निकट छोटी गंडक में मिलती थी, किन्तु अब घूम कर हयाघाट के निकट कराई नदी के सहारे तिलजुगा में जा मिली है। बागमती के पुराने गर्भ छोटी बागमती नदी में लाल बकिया, मुरेंगी, हंडाइ, कमला, और झिम आदि नदियां स्थान स्थान पर आ मिली हैं। पीछे यह छोटी बागमती भी दरभङ्गे से आठ मील दक्षिण हयाघाट में बड़ी बागमती में जा मिली है। इस को वाग्वती भी कहते हैं।

कराई—बागमती की धारा जब पुरानी बागमती होकर बहती थी तब यह मामूली नदी थी। अब यही हयाघाट के नीचे बागमती की प्रधान धारा होकर तिलजुगा में जा मिली है।

तिलजुगा—(त्रियुगा) यह नैपाल से निकल कर कहलगांव के निकट गंगा में गिरी है। इस की एक शाखा भगता नामक स्थान में बलान से जा मिली है।

कमला—यह भी नैपाल के पहाड़ से निकल कर जयनगर नामक स्थान में तिरहुत में प्रवेश करती है और कमतौल के पास मिल गई है। इस नदी की पुरानी धारा तिलकेश्वर के निकट तिलयुगा में गिरती है।

कोशी—यह नदी हिमालय से निकल कर सात धाराओं को एक में मिलाती हुई बहती है और पूर्णियाँ होकर गंगा में जा मिली है। इस की धारा बराबर बदलती रहती है। जहाँ एक ओर यह बाढ़ में भयानक हानि पहुँचाती है, वहाँ दूसरी ओर यह जमीन की उर्वरा शक्ति भी खूब ही बढ़ाती है।

इनके सिवा और भी छोटी-मोटी कई नदियाँ हैं। वर्षाऋतु में इन नदियों में बड़ी बाढ़ आती है। नदियों के कारण ही तिरहुत का भूभाग अधिकांश पंकमय है।

अब यहाँ तिरहुत के कुछ मुख्य मुख्य नगरों के परिचय दिये जाते हैं—

मुजफ्फरपुर— यह तिरहुत कमिश्नरी और जिले का प्रधान नगर है। यह छोटी गंडक के किनारे बसा है। मुजफ्फरखां के द्वारा बसाये जाने के कारण इसका नाम 'मुजफ्फरपुर' पड़ा। यहाँ म्युनिसपैलिटी, कलक्टरी सदर अदालत, अस्पताल स्कूल और कालिज हैं। जब इस्ट इंडिया कम्पनी को दीवानी मिली थी, उस से बहुत पहले चकला नायक मुजफ्फर खाँ ने केवल ७५ बीघे जमीन निकाल कर इस नगर की नींव डाली थी।

सरैया—यह मुजफ्फरपुर से १८ मील हटकर दक्षिण पश्चिम कोने पर है। यहाँ से थोड़ी दूर पर एक पत्थर क स्तंभ है जिसे 'भीम की लाठी' कहते हैं। यह

चौबीस फीट ऊंचा है। पुरातत्वविद् डा० राजेन्द्रलाल मित्र के मत से यह अशोक स्तम्भ है।

साहबगंज—यह मुजफ्फरपुर से १५ कोस उत्तर-पश्चिम बया के किनारे व्यापारिक नगर है। यहाँ के जूते बड़े प्रसिद्ध हैं।

राजखंड—यह मुजफ्फरपुर से उत्तर पूर्व बाईस मील के फासले पर है। यहाँ भैरव नाम का मेला लगता है। इस मेले में गाय बैल की बिक्री होती है।

कटरा—इस का दूसरा नाम अकबरपुर है। यहां पर एक टूटा फूटा किला लाखहंडाई नदी के किनारे अवस्थित है।

दरभङ्गा—यह इसी जिले का प्रधान शहर है। पहले यह जिला पटना कमिश्नरी के अन्तर्गत था। सन् १८७५ ई० में यह तिरहुत कमिश्नरी में आया। बिहार में यह तीसरा शहर है। यहां लहेरियासराय नाम के स्थान में अदालत, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्यूनिसपैलिटी वगैरह और सरकारी अफसरों के बँगले हैं। खास कर दरभङ्गा मिथिलेश की राजधानी है। यह छोटी बागमती के तट पर है।

समस्तीपूर—यह दरभङ्गा जिले का एक उपविभाग है। यह गंडक नदी के किनारे पर बसा हुआ रेलवे लाइनों का जंकशन है। यहाँ लोहे आदि का बड़ा कारखाना तथा कई मिलें हैं।

मधुबनी—यह शहर कमला नदी के किनारे दरभङ्गा से सोलह मील उत्तर पूर्व में है। यहां का बाजार अच्छा है। दरभङ्गा-नरेश मधुसिंह के तृतीय पुत्र बाबू कीर्ति सिंह के वंशज यहीं रहते हैं। इस शहर होकर नेपाल जाने का प्रधान मार्ग है। वहाँ से थोड़ी दूर उत्तर राजनगर है। यहाँ स्वर्गीय मिथिलेश की बनवाई अनेक इमारतें हैं। मधुबनी से कुछ दक्षिण हट कर भौआरा स्थान है जहाँ हाथ के बुने कपड़े खूब तैयार होते हैं। भौआरा में ही पहले मिथिलेश के पूर्वज रहा करते थे। मधुबनी से आठ मील पर सौराठ नाम का एक गाँव है, जहाँ प्रति वर्ष मैथिल ब्राह्मणों की वैवाहिक सभा होती है। इस में वर पक्ष और कन्या पक्ष वाले अपनी संतानों का विवाह-संबंध स्थिर करते हैं।

झंझारपुर—यह बाजार मधुबनी से चौदह मील दक्षिण पूर्व में है। यहाँ दरभङ्गा राजवंशीय प्रताप सिंह के नाम पर प्रतापगंज बाजार और बलान नदी में प्रतापपुर घाट भी है। राजा मधुसिंह की बहन श्री देवी के नाम पर श्रीगंज बाजार भी है। यह ग्राम पहले राजपूतों का था। महाराज छत्र सिंह ने इसे खरीदा था। यहीं उनको संतान भी हुई थी। यहाँ के पीतल के बने पनबट्टे और गंगाजली काफी प्रसिद्ध है। यहाँ रक्तमाला देवी का मन्दिर है।

मधेपुर—इस का दूसरा नाम मध्यपुर है। यह बरहमपुर, हर सिंहपुर, गोपालपुर घाट, और दरभंगा के संगम स्थान पर है। यह प्राचीन मिथिला का केन्द्र स्थान है। मिथिला-नरेश मधुसिंह के चतुर्थ पुत्र रमापति सिंह ने पचही परगना पाकर यहीं अवस्थान किया था। तिरहुत और पूर्णिया के पथ पर होने से यह बाजार व्यावसायिक केन्द्र हो गया है।

ककरौर—यह दरभङ्गा से बारह मील उत्तर है। यहाँ कोकटी के कपड़े अच्छे बनते हैं। इसके निकट ही कपिलेश्वर महादेव का मन्दिर है। कथित है कि यहीं कपिल मुनि का बास था। यहाँ आस पास के तालाबों में मखाना काफी उपजता है।

जयनगर—यह नेपाल की सीमा पर है। यहाँ मिट्टी का भग्नावशिष्ट किला है। इसके निकट कमला के

किनारे शिलानाथ गाँव में मेला लगता है। यहाँ का शिवलिंग मन्दिर समेत कमला के गर्भ में विलीन हो गया।

पूसा—छोटी गंडक के किनारे यह स्थान है। यहाँ पर कृषि-कालेज बड़ा प्रसिद्ध है।

सीतामढ़ी—यह लखहंडाई वा लखनदेई के नदी के किनारे मुजफ्फरपुर जिले में है। राम नवमी के मेले में यहाँ बैल खूब बिकते हैं। प्रवाद है, यही जानकी जी भूमि से उत्पन्न हुई थीं। यहाँ के आसपास शिवहर, पनौरा, देवकाली, बैरगनिया आदि स्थान मशहूर हैं।

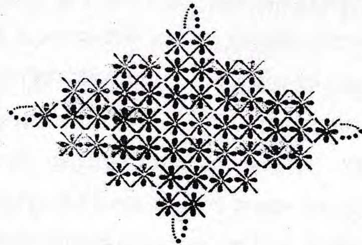
हाजीपुर—यह गंडक के किनारे बसा है। यहाँ कई दुर्ग भग्नावशिष्ट हैं। यहाँ से कुछ हटकर लालगंज बाजार है।

भपटियाही—यह भागलपुर जिले के उत्तर-भाग में है। यहाँ से उत्तर थोड़ी दूर हटकर नेपाल राज की सीमा शुरू होती है! नेपाल के उत्तर-पूर्वाञ्चल से लोग आकर प्राय: यहीं रेलगाड़ी पर चढ़कर यात्रा करते हैं।

सुपौल—यह भागलपुर जिले का उपविभाग है। यह घेमुरा नदी के किनारे है। आजकल कोशी के कोप में भागलपुर जिले के एक दूसरे उपविभाग मधेपुरा के बर्बाद हो जाने के कारण वहाँ की सरकारी अदालत सुपौल ही में आ गई है। मधेपुरा से चार मील उत्तर सिंहेश्वर नाम के स्थान में खूब मेला लगता है। वहाँ महादेव का मंदिर है। कहते हैं, वह स्थान राजर्षि जनक के राज भवन के सिंह द्वार पर था। कोई-कोई य: भी कहते हैं कि वहाँ ऋष्यश्रृङ्ग का आश्रम था।

इस के अन्तर्गत तीर्थस्थान और आबादी-जनसंख्या आदि के वर्णन अन्यत्र मिलेंगे।

ऊपर तिरहुत की मुख्य-मुख्य नदियों और शहरों के वर्णन से इसकी स्थिति पर पूरा प्रकाश पड़ा होगा। इस के सिवा बोलचाल रीति रिवाज आदि भी भौगोलिक स्थिति पर बड़ा प्रभाव डालते हैं। उस दृष्टि से जान पड़ता है कि पश्चिम से मिथिला की सीमा कुछ कट गई है और दक्षिण-पूर्व में कुछ दूर आगे तक चली गई है।



मैथिल कवियों के कुछ संस्कृत पद

प० श्री रामचन्द्र मिश्र 'मोहन' व्या० वे० आचार्य

इस संसार के कोलाहलमय जीवन में, जीवन की धुपछाँही घड़ियों में, हृदय के भावों का झोंका आता और चला जाता है। कुछ आदमी चुप चाप अनुमान करते हैं, तथा कुछ ऐसे भी हैं जो उसे सजाकर लोगों के सामने रखते हैं, मुक्त-हस्त होकर लुटाते हैं। जिन्हें सहृदयों के अन्तर तक प्रवेश करने की शक्ति होती है, वे ही अपने को द्वितीय कोटि में रख पाते हैं, यही है कवियों का छोटा सा किन्तु मार्मिक परिचय। कवि होना ईश्वरीय वरदान है। यह सौभाग्य बिरले को ही नसीब होता है। वह आत्मा जो दूसरों के दुख दर्दों को देख-सुन कर मुर्ग-बिस्मिल की तरह तड़प उठे साथ ही किसी पर्वतीय उपत्यका को, निर्मलसलिला कलकलवाहिनी के स्रोत को देखकर अपने को भी भूल जाय उन्हीं कवियों के हृदयों से निकले हुए उद्गारों का अधिकार-प्राप्त नाम है काव्य।

अच्छा, अब प्रकृत विषय पर आइये, इस कविता क्षेत्र में, इस ईश्वरीय सम्पत्तिके लुटानेवाले व्यवसाय में, मिथिला का भी कुछ कम हाथ नहीं है। इस छोटे से निबन्ध में मिथिला के कुछ संस्कृत कवियों के कुछ पद आप लोगों के आगे उपस्थित करने की चेष्टा करूंगा।

सब से पहले मैं आप लोगों का ध्यान उस कवितावतार, तीन भाषाओं के कवि, मैथिल कोकिल विद्यापति की एक काकली पर आकृष्ट करना चाहता हूँ। किसी राजा की कीर्त्तिके वर्णन में इन का एक पद है—

क्षीरोदीयन्ति सद्य: सकलजलधयो वासुकीयन्ति नागा:
कैलासीयन्ति शैला दिवि च दिविषद: शङ्करीयन्ति सर्वे
यौष्माकीणे समन्तात् प्रसरति भुवने शुद्धकीर्त्ति-प्रताने
मञ्जोषाकाचभूषा: किमिति न सहसा मौक्तिकीयन्ति देव।
(पुरुष परीक्षा)

इस के अर्थ को कविवर चन्दाझा के शब्दों में सुनिये, जिसका उन्हों ने अपने पुरुषपरीक्षा के मैथिली भाषानुवाद में इस प्रकार उचित रूपान्तर दिया है।—

कुण्डलिया।

सभ समुद्र जनु क्षीरनिधि
पन्नगपति सभ नाग।
सकल शैल कैलास सन
अमर शम्भु सन लाग।
अमर शम्भु सन लाग भुवन भरि कीर्त्ति प्रताने
दश दिश प्रसरित भेल मर्म एकर के जाने।
इमर भरनि कर काच अलङ्कृत नहि मुक्ताप्रभ
मन मन गुन आश्चर्य नगर घर घर नारी सभ।

एक पद और है—मैथिल कवि चण्डेश्वर का:—

फूत्कारोपहता फणीन्द्रशिरसि, क्रोडानने दंष्ट्रया
विद्धा, कूर्म कठोर पृष्ठकपणै: पीडामुपेता चिरम्
कार्णाटाधिपमन्त्रिणि प्रविलसत्कीर्त्ति प्रताने महा-
दानौघव्यसने नयैकसुहृदि क्षोणी सुखं वर्त्तते

अर्थात्—यह पृथ्वी बहुत दिनों तक शेषनाग के शिरपर उनके फण की फूत्कार की विषैली हवा में

झुलसती रही है बाद महावराह के दाँतों की ठोकरें भी नसीब हुईं, इतना ही नहीं, कूर्मराज की कड़ी पीठ की यातनाएँ भी भुगतनी पड़ीं। किन्तु अब कर्णाट राज के मन्त्री विशुद्धयशोनिधि दान-वीर देवादित्य के भुजों के आश्रय में वह चैन की वंशी बजा रही है।

इस के बाद—" अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गम्भीरतामापातालनिमग्नपीवरवपुर्जानाति मन्थाचलः " के द्वारा अपनी पाण्डित्य गरिमा का आभास देने वाले मनीषी मिश्र मुरारि का एक पद सुनिये:—

'अद्यापि स्तनशैलदुर्गं विषमे सीमन्तिनीनां हृदि,
स्थातुं वांछति मान एष धिगिति क्रोधादिवालोहितः।
उदयद्दूरतर-प्रसारितकरः कर्षत्यसौ तत्क्षणात्
फुल्लत्कैरवकोषनिस्सरदलिश्रेणी कृपाणं विधुः' ॥

इस पद्में चन्द्रोदय का वर्णन है—आप कहते हैं कि-चन्द्रमा मन ही मन यह सोच कर कि अब एक मेरे उदित हो जाने पर भी, वधुओं के निम्नोन्नत हृदय दुर्ग में मान टिका ही है, ऐसा सोच कर क्रोध से रक्तमुख हो खिलते हुए कुमुद पुष्पों से निकलती हुई भ्रमर-माला रूप कटारी को अपने फैले हुए करमें (किरण, हाथ) लेकर उस मान-पर धावा बोल दिया है, आखिर उस मान की इस शरारत को वे कब तक बर्दास्त करते। अनन्तर हम आप को पं० गोकुलनाथ उपाध्याय के कुछ पद सुनाने का यत्न करेंगे। आप की सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचय देना न हमारा लक्ष्य है न हमारे सामर्थ्य की बात, आप का पदवाक्य रत्नाकर, भर्तृहरि निर्वेद, अमृतोदय, शिवस्तुति प्रभृति ग्रन्थ रत्न ही आपके अमर चिह्न हैं। सुनिये—

प्रसरति विषयेषु येषु रागः
परिणमते विरतेषु तेषु शोकः।
त्वयि रुचिरुचिता नितान्तकान्ते
रुचि-परिपाक-शुचामगोचरोसि ॥

अर्थात् जिस चीज में प्रेम किया जाता है उस परिणाम में प्रेम के प्रतिफल में शोक ही होता सभी चीजों की अनित्यता से प्रेम के अन्त में शो की सम्भावना बनी ही है। किन्तु हे मेरे प्रभु, प्रेम तु करना उचित है, क्यों कि परिणाम में होने वा शोक की चिन्ता से तुम्हारे प्रेमी मुक्त हैं। इस में दार्शनिक विचार का साहित्य के कैमरे लिया गया है एक पद और:—

" श्रुति जनक ! स्यत्यसौ कुमारी
तव दुहिता बहिरेत्य नेति नेति ॥
व्यवहितनिकटस्थितेपि यस्मात्
त्वयि मिलिते तु यमातिथेः स्वभोगः " ?

क्या उत्तम भाव है श्रुतिजनक (वेद निर्माता) परमात्मन्, तुम्हारी वह कुमारी लड़ श्रुति, सामने आकर कहती है कि नेति, नेति, पिता नहीं हैं, लेकिन यह प्रबन्ध अतिथियों व्यर्थं उलटे पांव लौटाने का निराला उपाय बे है। अजी, तुम्हारे मिलने पर मुझ अतिथि को कि चीज का भोग कहां ? इस एकही पद्में ईश्वर वेद का जनक बताकर उसके द्वारा दिये गये 'नेति ने के तत्त्व की झांकी दिखा कर, ऊपर से किया ग मीठा परिहास बहुत ही मार्मिक है। आत्मा विषय में व्यवहित निकटस्थित विशेषण कहकर आ उस निपुण कृपण का चित्र खींचा है, जो टाट ओट में छिप कर अतिथियों को अपने दरवाजे टालने की चेष्टा में हो, परन्तु अतिथि उसकी चाला ताड़ जाय। 'बहिरेत्य' बाहर किसी नवागन्तुक सामने आने वाली कन्या का विशेषण दिया कुमारी"। इस तरह की कविता करने का सौभाग्य म ही महापुरुषों को मिला होगा। खैर,

अब आप को प० पक्षधर मिश्र (अभिनव जयदेव) का एक सुनाऊँ ?

येषां सद्रसकाव्यकौतुककलालीलावती भारती।
तेषां कर्कशतर्क-वक्र-वचनोद्गारेपि किं हीयते ॥
यैः कान्ताकुचमण्डले कररुहाः सानन्दमारोपिताः,
तैः किं मत्तकरीन्द्र-कुम्भ-शिखरे नारोपनीयाश्शराः ॥ ?

अर्थात् जिसकी वाणी साहित्यिक भावनाओं से भरी कवितामयी होती है, क्या वह कठिन तर्क शास्त्र की उलझी गुत्थियों को नहीं सुलझा सकता ? क्या जिसने काम-क्रीड़ा का सुखानुभव किया है, उसे कोरे बब्बर के शिकार में सफलता नहीं मिल सकती है, ? इस की काकुध्वनि रचयिता को दार्शनिक तथा कवि सिद्ध करती है।

अब उदनाचार्य का एक श्लोक सुनिये :—

अस्माकन्तु निसर्गसुन्दर ! चिराच्चेतो निमग्नं त्वयी-
त्यद्धानन्दनिधौ निसर्गतरलं नाद्यापि सन्तृप्यते।
तन्नाथ ! त्वरितं विधेहि करुणां येन त्वदेकाग्रतां
याते चेतसि नाप्नुवाम शतशो याम्याः पुनर्यातनाः ॥

अर्थात् ऐ स्वभावमनोहर ! हमारा हृदय न दिनों से आप की स्मृति से आनन्द सिन्धु गोता लगाता रहा है। परन्तु आप की कृपा न होने से उस की प्यास अभी नहीं बुझी है, इसलिये नाथ ! अब ऐसी कृपा कीजिये जिससे आप में एकतान होकर यमयातना से बचनेका अवसर प्राप्त करे।

अब हम आपको कुछ नये युग में प्रवेश कराते हैं आइये महावैयाकरण प० आंखी झा का एक पद सुनिये:—

राधारोमालिरेषा पतिदमनरुषा गेहिनी कालियस्य
प्राप्तेयं नूनमेतां हलधररहितो वीक्ष्य मुग्धो मुकुन्दः
उद्धर्त्ता स्मारकाणामपिभवजलधेः सोयमाभीरनारी-
नाभीकूपे निमग्नं निजमपि हृदयं हन्त नोद्धर्तुमीशः

श्री राधा की रोमराजि कालियनाग की पत्नी है वह अपने पति के मारने वाले श्री कृष्ण चन्द्र से वैर शोधन को उनके निकट आई है, उसे एकान्त में अकेले श्री कृष्ण देखकर अचम्भे में पड़ जाते हैं तथा अपनी रक्षा के लिये उनका मन श्री राधा के नाभी कूप में प्रवेश कर जाता है। पीछे किसी तरह इस बला के टल जाने पर श्री कृष्णचन्द्र, जो स्मरण मात्र करने वालों को भव-सागर से उद्धृत करने के व्यवसायी हैं, वही श्री व्रजचन्द्र राधा के नाभी कूप में पड़े हुए अपने मन को बाहर नहीं कर सकते हैं, कैसे आश्चर्य की बात है ? अभिप्राय यह है कि राधा की रोम-राजि तथा नाभी कूप को देखकर उनका मन परवश होकर हाथ नहीं आ-रहा है—यही बात किस खूबी से कही गयी है ? आपकी रचनाओं में से कुछ का संकलन श्रीकृष्ण पञ्चाशिका के नाम से सम्पन्न हुआ है, जिसके साथ 'पं० सुरेश मिश्र' के कुछ स्फुट साहित्य तथा 'पण्डित दुर्गादत्त झा' जी का वाताह्वान भी छपा है, सबका समुदित नाम है 'मैथिल पद्यावली' खेद है कि उस पुस्तक को समय पर न पा सकने के कारण अवशिष्ट दो महानुभावों की रचना का रसास्वादन अपने प्रेमी पाठकों को नहीं करा सका।

इसके बाद दर्शन-वाचस्पति 'श्री धर्मदत्त झा' (बच्चा झा) जी के सुलोचना माधव नामक अमुद्रित विशालकाय चम्पूग्रन्थ से एक श्लोक उद्धृत करता हूँ, पाठक इस उत्प्रेक्षा का निभाना तो देखें:—

श्यामेयं सुषमेन्धनं सुरभिणा सन्धुक्षितं वायुना
कुर्वन्तं जगदुज्ज्वलं प्रसृतया सज्ज्योत्स्नया भूम्यया ।
सम्पाद्यात्तनुमग्निमुज्ज्वलविधुभ्राष्ट्रकपालेऽध्वग-
प्राणान्भर्जत ऋचलाज-निकरो-यदृश्यते खेऽङ्गने ॥

किसी बसन्त की चन्द्रज्योत्स्नाचर्चित रजनी को कवि ने एक भरभूजे की दूकान की समता दी है। रात भूजने वाली है, उसकी शोभा ही इन्धन है, सुरभि-वायु फूंक लगा रही है, लपटों से सारी दिशाएँ उजली हो उठी हैं, इस तरह कामाग्नि तैयार की गई है। चांद ही पात्र है, वियोग विधुर व्यक्तियों के प्राण ही अन्न हैं जो भुने जा रहे हैं, फैले हुए नील नभो मण्डल रूप स्थान पर उन भुने हुए वियोगियों के प्राण रूप अन्नों का लावा राशीभूत पड़ा है। कल्पना लोक में प्राणों को भी प्राण छोड़कर भूने हुये लावों के रूप में आना पड़ा ।!! ठीक है 'कवयः किन्न पश्यन्ति'? इसके बाद हम आप महानुभावों को म० म० प० परमेश्वर झा जी का एक पद सुनावेंगे । महामहोपाध्याय जी का पाण्डित्य विलक्षण था। आप माघ के विलक्षण ज्ञाता थे, साथ ही आप का काव्य-निर्माण भी अत्युत्तम होता था। आपने अपने 'यक्ष समागम' में कहा है:—

निःश्वासस्याप्यधिकखरतां योऽधरस्ते न सेहेऽ-
धीरो दध्यात्कथमिव तुलां पल्लवस्तस्य बालः ।
बिम्बं निम्बोपममथ रसे का सुधा पातपीता
कान्ते स्वान्ते बहु कलयता तुल्यता क्वापि नापि

कान्ते ! तुम्हारे जिस अधर ने साँस की भी गर्मी नहीं सही उससे इन चञ्चल बाल पल्लवों की कैसी बराबरी? निम्ब की तरह कड़वे बिम्बी फलों की बात ही क्या? रही सुधा, वह तो राहु की पीत शेष जूठन है इस तरह मन में बहुत विचार करके भी उपमा नहीं खोज सका! इस नायक के चाटु वचन में कैसी मिठास है? न क्वापि आपि इसका सौन्दर्य कितना रोचक है? आइये, प० खुद्दी झा जी का एक श्लोक सुनिये:—

ये धन्याः प्रतिभाजुषःप्रतिदिनं व्याख्या नवास्तन्वते
ये वा पण्डित-मानिनो मति-लवेनान्यंतृणं मन्वते ।
माप्रद्वैस्तुरिह स्वदृष्टि-निकरं ते ते नचातो वृथा
यत्नो मे, बहवोहि सन्त्यधिजगन्माध्यस्थ्य भाजोबुधाः ॥

आपकी बनाई 'व्युत्पत्तिवाद- नौका' में यह पद है। तात्पर्य है कि—जो महानुभाव प्रतिदिन अपनी अवदात-प्रतिभा से नवनवोन्मिषित व्याख्या करते हैं वे धन्य हैं और जो अपनी ओछी बुद्धि से दूसरों का छोटा समझते हैं वे भी धन्य ही हैं। वे दोनों मेरी इस टीका पर दृष्टिपात न भी करें तो भी हमारे यत्न की व्यर्थता नहीं होने की, क्योंकि इस जगत में मध्यस्थबुद्धि वाले बहुत विद्वान् मौजूद हैं, उनकी दृष्टि में मेरे परिश्रम की कीमत जरूर जँचे।

अब एक ही पद इस समय अपने लेख के पूर्वार्द्ध में आपको सुनाऊंगा। ठाकुर पं० देवीकान्त सिद्धान्तशास्त्री जी ने अपने महिषासुरवध नामक अपूर्ण तथा अप्रकाशित महाकाव्य में एक पद कहा है, वह कितना मधुर तथा सीधा है:—

कालालकानां प्रतिबिम्बमम्बा
कपोलभित्ताववलोकमानाः ।
सुधांशुलेखाग्रसनाय लेखा
राहुं निलीनं पुनराहुरेनम् ॥

काले कुन्तल को माँ भगवती के कपोल प्रदेश में प्रतिबिम्बित देख कर देवों ने समझा कि यह चन्द्रमा को ग्रसने के लिये छिपा हुआ राहु है। यहाँ मुख की चन्द्रता, केशों का राहुत्व, कपोल की प्रतिबिम्ब ग्रहणशक्ति सब कल्पित हैं, इन कल्पना प्रसूत सामग्रियों ने जो अर्थ-गौरव उत्पन्न किया है वह हृदयों के सामने है।

यहाँ मैं अपने लेख का पूर्वार्द्ध समाप्त करता हूँ, अब तक मैंने दिवङ्गत आत्माओं के ही उद्गार उपस्थित किये हैं, इस समय मेरी समझ में—गीतगोपी पति, राधानयन-द्विशती पण्डित जीवनाथ ठाकुर की 'गङ्गा लहरी' 'पारिजात हरण' (नाटक) प्रभुनारायण विलास महाकाव्य प्रभृति मिथिला के काव्य तथा कुछ और प्राचीन विद्वान् लोगों का सूक्ति-सञ्चय छुटने से मालूम दे रहे हैं। यदि हो सका तो आगे इसी पत्र के पृष्ठों में पाठकों के सामने उनके भी नमूने पेश करूंगा।

× × ×

अब आप लोगों को कुछ उन महात्माओं की कवितायें सुनाने की चाह है, जो अभी मिथिला के गौरव को बढ़ा रहे हैं—प्रथमतः हम आपको पण्डित प्रवर श्रीयुत बालकृष्ण मिश्र जी का एक पद्य सुनावेंगे "लक्ष्मीश्वरी चरित चम्पू, राधानयन द्विशती टीका" उभयाभाववारक परिष्कार टीका प्रभृति ग्रन्थ आप के सर्वतोमुखी प्रतिभा के परिचायक हैं आपका एक श्लोक है:—

पदाम्भोज-प्रान्त-प्रणतहरिमाणिक्य-मुकुट
स्फुटोद्यच्छुभ्रांशु प्रमुदित चकोराक्षिरुचिरा ।
श्रियं लावण्याब्धिस्मर विहितनिर्मन्थनभवां
दधाना श्रीराधा मम विविधबाधां तिरयतु ॥

मानापनोदन के लिये श्री कृष्ण चन्द्र राधा के चरणों पर गिरते हैं, उनके मुकुट की उजली माणिक्य-किरणों (शुभ्रांशु-चन्द्र) से राधाके नयन-चकोर प्रमुदित होजाते हैं। जो लावण्य सिन्धु के कामदेव द्वारा मथे जाने पर निकली हुई श्री (शोभा) से युक्त है ऐसी राधा मेरी बाधाओं को दूर करे। 'शुभ्रांशुः' पदके द्व्यर्थक प्रयोग से इस पद में बड़ा चमत्कार आगया है।

अनन्तर आपको मैं उन कविवर की एक कविता सुनाऊंगा जिन्हें अपने जीवन में एक उच्च कोटि के 'संस्कृत महाकाव्य' के लिखने तथा प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त है। वे हैं हमारे प० श्रीबदरीनाथ झा कवीश्वर तथा वह महाकाव्य है 'राधापरिणय'। आपका एक पद है:—

"परोरजा यो निगमेषु गीतः
परं रजोधूसरविग्रहं तम्
लुठन्तमादाय हृदोपगूहन्
न तृप्तिमाभीरपुरन्दरोऽगात्"

जिसे शास्त्रों ने रजः (गुण) से पर बताया है, वही रजः, धूल में लोट रहा है। क्या वारीक भाव है! श्री कृष्ण के बालक्रीड़ा का वर्णन है, उत्तरार्द्ध में वात्सल्य का परिपाक—कालिदास के 'धन्यास्तदङ्ग-रजसा मलिनीभवन्ति' का स्मरण कराता है।

—✻✻✻✻—

मिथिला

श्रीयुत आरसी प्रसाद सिंह जी

गन्धहीन किंशुक-सी वनमें
कौन निदारुण वनमाली
छोड़ गया तुमको, अतीत चिर
वैभव की अयि मतवाली !

महा-महिम हिमवान तुम्हारा
द्वारपाल, निर्भय-प्रहरी;
सुमनसवन्दित-चरण निरन्तर
धोती सुरसरि की लहरी

कमला जिस का हृदय, लक्ष्मणा
वाणी, वागमती उद्‌गार,
शत-शत रक्त शिराओं-सी
निर्मल सरिताओं का विस्तार !

कर अचेत चैतन्य-देव को
हुए कहाँ वे अन्तर्धान ?
गूँज रहे अब भी 'नदिया' में
किस कवि-शेखर के मृदु -गान ?

भूली कहाँ किरीट, इन्दिरे !
अपना वह मरकत-शृङ्गार ?
वीणापाणि, कहाँ वह तेरी
वीणा की मादक झंकार ?

सस्य-श्यामला मही आज,
सिकता-शय्या पर सोती है!
मिथिले, आज तुम्हारी महिमा
खण्डहरों में रोती है !!

शङ्कर से शास्त्रार्थ करे, जो
बोलो, वह भारती कहाँ ?
सारा विश्व उतारें जिसकी
दीप गन्ध आरती कहाँ ?

चीख-चीख उठती है कोयल
उजड़े उपवन में निर्जन;
किसी नष्ट-प्रतिमा को कब से
ढूँढ़ रहा मारुत वन-वन !

तू ही बता, कलप-निर्वासित
अरी ! अहल्या पाषाणी !
कहाँ गई सर्वस्व लुटाकर
मेरी गरिमा दीवानी !!

लोट रहे राजा धूलों में
भटक रही पथ में रानी;
प्यास लगी, जल रहा कंठ रे,
किन्तु, कहाँ मिलता पानी ?

हाय, उर्म्मिला की शुचि-स्मृति में
किस की जल धारा न बही !
मिथिले, आज तुम्हारे दुख की
कोई भी सीमा न रही !!

चिता राजधानी में जलती,
जनकपुरी बन गई श्मशान !
योग भ्रष्ट क्यों जनक, तुम्हारा ?
गौतम कहाँ तुम्हारा ज्ञान ?

वसुधे, कहाँ स्वर्ग की सुषमा ?
वाचस्पति का बुद्धि विकास ?
सीता-सी देवी को लेकर
भी न मिटी हा ! तेरी प्यास !!

फटती क्यों न धरा की छाती ?
क्यों न उमड़ता पारावार ?
अरे, फिरा दे-फिरा, हमारी
पुनः मैथिली को सुकुमार !

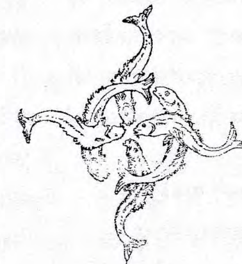
वह अरण्य, वह पण्य-वीथिका,
पुण्य-तपोवन का ओंकार;
लौटा दे री ! आज अभागिनि,
वही ज्ञान, वह ज्योति-प्रसार !

महा शक्ति, इस पुण्य-देश में
एक बार फिर लो अवतार;
पुनः तुम्हारी ज्योति-सुरभिसे
नन्दित हो सारा संसार !

एक बार बन मार्ग प्रदर्शक
मिथिले, पुनः विकल-जग में;
ज्ञान-दीप ले चल इस दुर्गम
जग के तमसावृत मग में !

संग्रह कर अब शेष अस्थियाँ,
नवयुग का नव-शोणित डाल;
फूँक नवल प्राणों को उन में,
पुनः खड़े हों ये कंकाल !

साहस भर पल्लव-बालों में,
कर तनु में विद्युत-संचार;
मिथिले, कोटि-कोटि कण्ठों से
गूँज उठे तेरा जयकार !



मिथिला का महत्त्व

श्रीयुत प० जनार्दन झा जी 'जनसीदन'

विस्तार में बड़ा न होने पर भी यह मिथिला धर्म, विद्या और धन में किसी प्रदेश से दबी हुई नहीं बल्कि बढ़ी चढ़ी है। किसी समय मिथिला का महत्त्व सारे संसार में आदर्श हो रहा था और इस की विजय-वैजयन्ती सर्वत्र फहरा रही थी। अब भी इसका महत्त्व किसी अंश में ज्यों का त्यों बना है। युगभेद से कुछ न कुछ परिवर्तन होना भी अनिवार्य ही है।

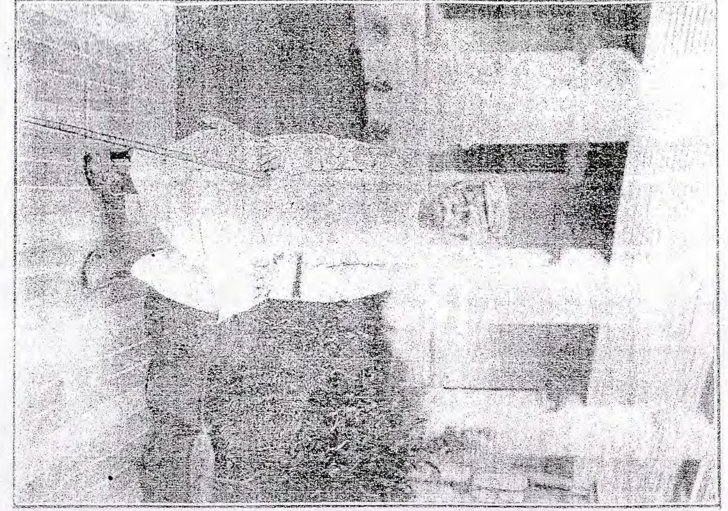
यह वही मिथिला है, जिस के शासक जनक महाराज से उपदेश ग्रहण करने के लिये पिता की आज्ञा से श्री शुकदेव जी स्वयं पधारे थे और जिन के उपदेश से उन का मोह भङ्ग हुआ था। योगवासिष्ठ और गर्गसंहिता में इस की कथा विशदरूप से वर्णित है। अध्यात्म-ज्ञान के लिये मिथिला का गौरव इस से बढ़ कर और क्या हो सकता है!

जनक जी गृहस्थाश्रम में रह कर भी जीवन्मुक्त थे। जिन का आध्यात्मिक ज्ञान देख कर और पारमार्थिक उपदेश सुन कर मुनि लोग भी मुग्ध हो जाते थे और इस मिथिला को परम पावन तीर्थ मान कर किसी नदी के तट में या किसी निर्जन वन में कुटी बना कर तपस्या करते थे। अब भी जहाँ तहाँ उन मुनियों के निवास का चिह्न पाया जाता है। जिस को लोग अब भी बड़े आदर की दृष्टि से देखते और जिस का दर्शन पुण्य-जनक समझते हैं। यथार्थ में है भी ऐसा ही। धार्मिक कर्मकाण्डियों की संख्या जितनी मिथिला में है, शायद ही अन्य देश में हो। इस देश के श्रोत्रिय ब्राह्मणों की धर्मनिष्ठा अब भी प्रशंसनीय है। इस गये गुजरे जमाने में भी यही एक मिथिला देश है, जो सनातन धर्म का केन्द्र बना हुआ है। जहाँ के निवासी शास्त्र-विरुद्ध कर्म करने में सदा शङ्कित रहते हैं और भूल से कोई अनुचित कर्म हो जाने पर तुरन्त उसका प्रायश्चित कर डालते हैं।

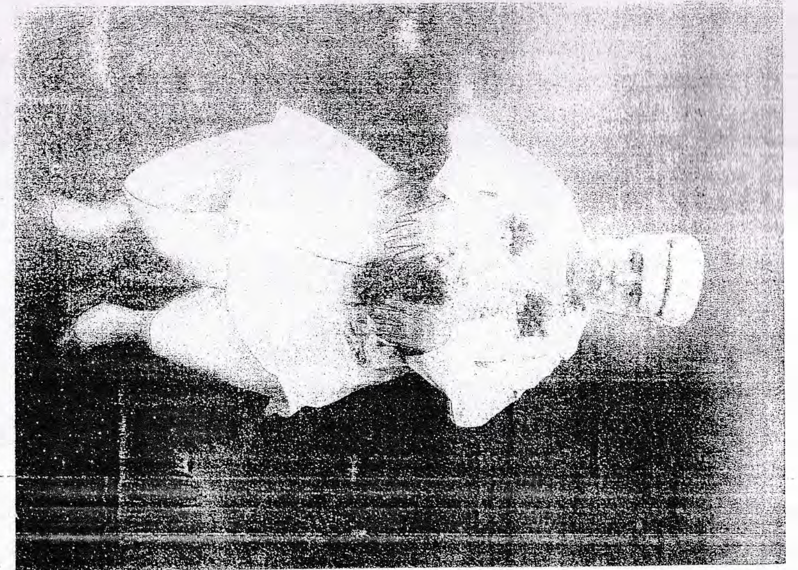
मिथिला में प्रायः किसी ब्राह्मण का घर ऐसा नहीं मिलेगा जिस में नित्य शालग्राम विष्णु या पार्थिव शिव का पूजन न होता हो। प्रत्येक मास के पर्व पर जो धर्म कृत्य करना चाहिये, वह भी यथा-साध्य करने से कोई पराङ्मुख नहीं होता। वैदिक संस्कार भी समय पर किये ही जाते हैं। धर्म-चर्चा भी गांव गांव में होती रहती है। कहीं यज्ञ का अनुष्ठान, कहीं पूजा पाठ का विधान, कहीं योगेश्वर श्रीकृष्ण का ध्यान, कहीं पुराण पुरुषोत्तम का यशोगान भी होता ही रहता है।

वैवाहिक सम्बन्ध का शास्त्रीय विचार भी मिथिला में प्रायः पर्याप्त ही रहता है। यहाँ तो यदि पाँच सौ वर्ष पूर्व के अपने पुरखों का नाम कोई जानना चाहे तो पञ्जीकार के द्वारा आसानी से जान सकता है।

शास्त्रानुकूल समय में उपनयन आदि संस्कार हो, इस पर मैथिलों का विशेष रूप से ध्यान रहता है। ब्रह्मचर्य का पालन तथा आहार विहार का नियम भी बड़ी निष्ठा के साथ निवाहा जाता है। अभक्ष्य पदार्थ यथा लहसन-प्याज मैथिल प्रायः



म० म० डा० पण्डित श्री मुरलीधर झा जी



म० म० पण्डित श्री मुकुन्द झा बक्सी

वायसराय विजिट चित्रावली



गार्डन पार्टी में मैथिल पण्डितों से परिचय करते हुये वायसराय और उनकी पत्नी।

छूते तक नहीं। मनुस्मृति में लिखा है—

छत्राकं विड्वराहंच कुक्कुटं लशुनं तथा।
पलाण्डुं गृञ्जनं चैव मत्या जग्ध्वापतेद्द्विजः॥

भावार्थ इस पद्य का यही है कि उपर्युक्त पदार्थ जान कर कोई द्विज (ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य) खा ले तो वह पतित होजाय। पतित के लिये 'पुनः संस्कारमर्हति' ऐसा लिखा है। यह मर्यादा मिथिला की है कि किसी दरिद्र ब्राह्मण के भी घर पर कोई अतिथि आ जाय तो वह सम्मानपूर्वक अतिथि को भोजन करा कर पीछे आप भोजन करेगा। मिथिला में जितने देव-स्थान या देवालय हैं, सर्वत्र नित्य नियमपूर्वक देवाराधन होता है। वहाँ भी अतिथि-सत्कार की व्यवस्था बँधी है। सारांश यह कि धर्म-रक्षा के लिये मिथिला अब भी आदर्श है।

विद्या की तो कोई बात ही नहीं। मिथिला में एक से एक धुरन्धर विद्वान् हो गए है। व्याकरण न्याय, सांख्य, मीमांसा, पातञ्जल, वेदान्त और ज्योतिष तथा काव्य-नाटक आदि के पारंगत पण्डितों से मिथिला विभूषित थी। स्वर्गीय महामहोपाध्याय व्याकरण-केसरी पण्डित परमेश्वर झा के रचित "मिथिलातत्त्वविमर्श" नामक ग्रन्थ में प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्वानों का परिचय पूर्ण रूप से लिखा गया है। प्रायः वह अपूर्व ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित रूप में ही पड़ा है।

यहाँ ऐसे अनेक विद्वान् हो गये हैं, जिन से शिक्षा पाने के लिये दूर दूर से छात्रगण आते थे और शास्त्र-निष्णात होकर अपने देश को जाते थे। अब भी मिथिला में अनेक शास्त्रों के विद्वान् विद्यमान हैं।

किन्तु खेद के साथ लिखना पड़ता है कि उत्साह-वर्द्धक पारितोषिक प्रदान कारक धनवानों की निरपेक्षता से सम्प्रति संस्कृत विद्या का दिनानुदिन ह्रास होता जा रहा है। यह अत्यन्त शोचनीय विषय है। वृत्ति-विहीन विद्वानों का उत्साह संस्कृत पठन-पाठन की ओर से दिन दिन घटता जा रहा है। "दारिद्र्यदोषो गुण-राशिनाशी" चरितार्थ हो रहा है। मैं आशा करता हूँ कि यदि ऐसी कोई संस्था स्थापित की जाय, जिस से अध्यापकों और छात्रों की उदरदरी के भरण की चिन्ता जाती रहे तो अब भी कुछ ही दिनों में राजा भोज के समय की भाँति घर घर में संस्कृत विद्या का प्रचार हो जाय।

मिथिला में धन की कमी न थी, अब भी नहीं है। गोसाईं तुलसीदास जी ने श्रीजानकी जी के विवाहोपलक्ष्य में मिथिला की सम्पत्ति का वर्णन करते हुए श्री रामचरित मानस (रामायण) में लिखा है।

हरित मणिन के पत्र, फल-पद्म राग के फूल।
रचना देखि विचित्र अति मन विरंचि कर भूल॥

बेणु हरित मणिमय सब कीन्हे। सरल सपर्ण परहि नहि चीन्हे॥
कनक बलित अहि बेलि बनाई। लखि नहि परै सपर्ण सुहाई॥
तेहि के रचि पचि बन्ध बनाये। बिच बिच मुक्ता दाम सुहाये॥
माणिक मरकत कुलिश पिरोजा। चीरि कोर पचि रचे सरोजा॥

× × ×

जनक भवन की शोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिय तैसी॥
जो तेरहुत तेहि समय निहारी। तेहि लघु लगे भुवन दश चारी॥
जो सम्पदा नीच गृह सोहा। सो विलोकि सुरनायक मोहा॥

यह अतिशयोक्ति नहीं, यथार्थ वर्णन है। उस समय मिथिला धन-जन से परिपूर्ण थी। सभी लोग सुख की निद्रा सोते थे। अब भी मिथिला अन्नपूर्णा कही जा सकती है।

मिथिला के विद्वान् [२]

पण्डित श्रीयुत त्रिलोकनाथ मिश्र जी (प्रि० लोहना विद्यापीठ)

हरिनाथ

आप 'सतघरा' के निवासी थे। आप का रचित ग्रन्थ 'स्मृति-सार' प्रसिद्ध है।

विश्वेश्वर

आप ने 'स्मृति-समुच्चय' ग्रन्थ का निर्माण किया।

म० म० गोविन्द मिश्र

आप का रचित 'नल चरित्र' नाटक है।

मिश्रुमिश्र

आप लगभग पन्द्रहवी शताब्द में हुए हैं। धर्म-शास्त्र के आप धुरन्धर विद्वान् थे। आप के रचित-विवाद-चन्द्र, पदार्थ चंद्र, आदि अनेक ग्रन्थ हैं।

लाल महाकवि

आप 'मंगरौनी' के रहने वाले और मिथिलेश नरेन्द्र सिंह के द्वार-पण्डित थे। आप के रचित 'समर-वर्णन' आदि ग्रन्थ हैं।

कवि वैद्यनाथ

आप अट्ठारहवीं शताब्दी में हुए हैं और अपने स्वामी मुलतान के राजा केशव देव का जीवन-चरित्र-स्वरूप 'केशव-चरित्र' आप ने रचा।

रघुदेव मिश्र

आप ने अपनी 'सरस्वती' की उज्ज्वलता के कारण शाहजहाँ बादशाह से 'सारस्वत' पदवी को पाया।

पद्मनाभ मिश्र

आप सत्रहवी शताब्दी में हुए हैं। आप बडे विशिष्ट नैयायिक थे। 'सिद्धान्त मुक्ताहार' ग्रन्थ आप का रचित है।

कवि रत्नपाणि

आप राजा शिवै सिंह के समय में हुए हैं। आप ने 'काव्य-दर्पण' नाम का ग्रन्थ बनाया।

कवि रविठाकुर

आप सोलहवी शताब्दी में थे। काव्य प्रकाश पर 'मधुमती' नाम की टीका आप के रचित है।

ग्रहेश्वर मिश्र

आप का स्थिति-काल तेरहवी शताब्दी है। आपने 'व्यवहार तरङ्ग' ग्रन्थ रचा।

चन्द्रदत्त उपाध्याय

आप का रचित 'भगवद्भक्ति-माहात्म्य'।

जीवनाथ झा

आप अट्ठारहवी शताब्दी में हुए हैं। आप ने वास्तु-रत्नावली, भावकुतूहल, भाव प्रकाश, दीवातत्त्व प्रकाश और जन्म-पत्री-विधान ग्रन्थ बनाये। आप का निवास पटना के निकट था।

देवनाथ ठाकुर

आप सोलहवी शताब्दी में थे। आलोक परिशिष्ट और तत्त्वचिन्तामणि दो ग्रन्थ आप के रचित हैं।

भीम उपाध्याय

स्थिति-काल पूर्वोक्त। आप ने गीतसङ्कर, कृत्य-दर्पण तथा कुमार-सम्भव की टीका, ये तीन ग्रन्थ बनाये।

सकल उपाध्याय

स्थिति-काल पूर्वोक्त। आप मंगरौनी के निवासी थे और महान् ज्योतिषी थे। आप का रचित 'शतरञ्ज-प्रबन्ध है।

मधुसूदन (प्राचीन)

आप भी ज्योतिषी थे; 'ज्यौतिष-प्रदीपाङ्कुर' आप का रचित है।

मदन मिश्र

आप ने 'गोरक्षा-निर्णय' ग्रन्थ का निर्माण किया।

मुक्तेश्वर झा

आपका रचित ग्रन्थ—'पूजा-पटल-भास्कर' है।

पद्मनाभ दत्त

आप बड़े प्रकाण्ड विद्वान् थे। आप का स्थिति-काल लगभग चौदहवीं शताब्दी था।

वेणीदत्त झा

आप अट्ठारहवीं शताब्दी में हुए हैं। आप ने 'रस कौस्तुभ' निर्माण किया।

वटेश्वर झा

आपका स्थिति-काल पन्द्रहवीं शताब्दी है। रचित ग्रन्थ मुद्राराक्षस नाटक की टीका है।

परशुराम झा

आप न्याय-शास्त्र ग्रन्थ के प्रसिद्ध लेखक थे। आप का स्थिति-काल-सत्रहवी शताब्दी है।

प्रज्ञाकर

आप ने 'सुबोधिनी' नाम की नलोदय की टीका रची।

राम उपाध्याय

आप अट्ठारहवी शताब्दी में हुए हैं। आप की विद्वत्ता से प्रसन्न हो उस समय के राजा प्रताप सिंह ने आप को जागीर के रूप में बहुत से ग्राम दिये थे

रुचिदत्त

आप पन्द्रहवी शताब्दी में हुए हैं। आप की रचित टीकाएँ अनेक ग्रन्थों पर हैं।

सुचरित मिश्र

आप ने 'काशिका' नाम का ग्रन्थ बनाया।

वाग्मणि (गायक-शिरोमणि)

आप सत्रहवी शताब्दी में हुए हैं। 'संगीत-संग्रह' नाम का ग्रन्थ आप का निर्मित है।

विभाकर

आप का स्थिति-काल उन्नीसवीं शताब्दी है। आप 'उजान' के निवासी थे। न्याय लीलावती कण्ठाभरण तथा खण्डन खाद्य-टीका आपके रचित हैं।

वंशमणि

आप सत्रहवी शताब्दी में हुए हैं। 'गीत-दिगम्बर' नाटक आप का रचित है।

वासुदेव मिश्र

आप पन्द्रहवीं शताब्दी में थे। आप का रचित 'तत्त्व-चिन्तामणि-टीका' है।

विश्वेश्वर मिश्र

आप शाहजहाँ के द्वार-पण्डित थे। आप ने 'स्मृति-समुच्चय' ग्रन्थ रचा है।

विष्णुदत्त झा

आप ने अपनी योग्यता से सन्तोषित महाराज प्रताप सिंह की कृपा से 'सिमरा' नाम का गाम प्राप्त किया। कई ग्रन्थों की आप ने टीकाएँ रचीं।

प्रेमनिधि ठाकुर

आप ने 'धर्माधर्म प्रबोधिनी' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया।

लक्ष्मीधर उपाध्याय

आप सत्रहवीं शताब्दी के हैं। आप ने 'कल्पतरु' नामक ग्रन्थ रचा।

रत्नपति झा (प्रसिद्ध नाम बबुरैया झा)

आप उन्नीसवीं शताब्दी में हुए। महाराज रुद्रसिंह के आप द्वार-पण्डित थे। आप का निवास कौशिकी नदी के निकट 'परसा' नाम के ग्राम में था। प्रायश्चित पारिजात, प्रवण-चन्द्रिका, एकोद्दिष्ट सारिणी, आचारसंग्रह-स्मृति,

कृष्णार्चनचन्द्रिका, नारीपरीक्षाचिकित्साकथन, क्षयमासादि-विवेक, महादानवाक्यावली, मिथिलेश चरित, मिथिलेशाह्निक, व्रताचार, रामचन्द्रप्रतिष्ठा; सुबोधिनी-धर्म आदि ग्रन्थों का निर्माण आप ने किया।

म० म० आँखी झा

आप 'हरिनगर' के निवासी महावैयाकरण थे। आप उक्त प० बबुरैया झा के समकालिक हैं। संस्कृत में आप की कविता अत्यन्त श्लाघनीय थी। 'कृष्णपञ्चाशिका' आदि छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ आप की रचित हैं।

नरहरि मिश्र

आप बड़े ज्यौतिषी थे। 'स्वरोदय' ग्रन्थ आप ही का निर्मित है।

दुर्गादत्त मिश्र

आप नैयायिक थे। वृत्तमुक्तावली और न्यायबोधिनी दो ग्रन्थ आप के रचित हैं।

बदरीनाथ उपाध्याय

आप पूर्णियाँ जिले के 'खोखा' ग्राम के निवासी थे। आप के निर्मित चक्रकौमुदी, ताराभक्ति-सुधार्णव की टीका, भैरव-यमोक्त स्तोत्र की टीका तथा मर्म-सूचिका व्याख्या आदि ग्रन्थ हैं।

नीलाम्बर झा

आप ज्यौतिष और तन्त्र के महान् विद्वान् थे तथा अलवर महाराज शिवदान सिंह जी के प्रधानद्वारपण्डित थे। पूर्व में आप पटने में थे। ज्यौतिष में आप का रचित "गोल प्रकाश" अति प्रसिद्ध ग्रन्थ है। आप के रचित अनवद्य पद्यों को देख कर प्रतीत होता है कि आप की साहित्य-व्युत्पत्ति भी विलक्षण थी।

कविरत्न भानुनाथ

आप 'सरिसव' के निवासी थे। 'प्रभावती हरण' नाटक के आप रचयिता हैं।

दीनबन्धु झा

आप को नेपाल-महाराज के यहाँ से जागीर मिली थी। आप की योग्यता प्रसिद्ध थी।

बाशाकवि

आप 'भंडारिसम' ग्राम के निवासी थे। आप ने बाणीश्वरी भगवती की स्थापना की और 'पार्वती-परिणय' नाटक रचा।

राजेश्वर

आप का रचित 'प्रबन्ध-कोष' है।

लाल महाकवि

आप 'मंगरौनी' के निवासी तथा मिथिलेश नरेन्द्र सिंह के द्वार-कवि थे। भाषा के आप बहुत बड़े कवि थे। कन्दर्पी घाट का 'समर-वर्णन' आप का ही रचित है।

महामहोपाध्याय सचल मिश्र

आप पाहीटोल-निवासी प० रघुदेव मिश्र के पुत्र थे। आप ने १७७१ में मिथिलेश महाराज प्रताप सिंह की प्रसन्नता के फलस्वरूप में 'जगत पुर' ग्राम तथा १७७९ में महाराज माधव सिंह की कृपा से 'चनौर' ग्राम प्राप्त किया। पूना के राजा माधवराव से आप को जब्बलपुर के इलाके में 'महगवाँ' और 'सलैया' दो ग्राम मिले। आप ने चीफ जज के कर्त्तव्य स्वरूप, धर्मशास्त्र के कई फैसले किये, जिन का उल्लेख बिहार-ओरीसा-रिसर्च सोसाइटी के प्रमुख मिस्टर के० पी० जायसवाल एम० ए० ने किया है।

मदन उपाध्याय

आप 'मंगरौनी' के निवासी बड़े विद्वान् तथा महात्मा थे। आप के विषय में आश्चर्य जनक कई किंवदन्तियाँ हैं।

गोनूझा (महाधूर्त्त)

आप दरभंगा जिले के 'भड़वारा' ग्राम के निवासी थे। आप संस्कृत के विद्वान् थे; और साथ ही धूर्तता में मिथिला भर में एक ही थे।

महामहोपाध्याय हर्षनाथ झा

आप दरभङ्गा जिले के 'उजान' ग्राम के निवासी थे और महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह जी के द्वारपण्डित थे। आप की प्रतिभा व्याकरण, साहित्य, धर्मशास्त्र तथा शास्त्रार्थ में अनुपम थी। आप के रचित ग्रन्थ—शब्देन्दु शेखर की कारकान्त टीका, परिभाषेन्दुशेखर की 'परिभाषार्थ दीपक' नाम की टीका, मनोरमा की भावदीपक टीका, शब्दरत्न की शब्दरत्नार्थ-दीपक टीका, कृष्ण कविनिर्मित गीतगोपीपति काव्य की टीका, 'उषाहरण' नाटक, 'माधवानन्द' नाटक, 'राधाकृष्ण मिलन' नाटक, 'सुदामा-चरित' नाटक, राधाकृष्ण-प्रतिष्ठा, तारा प्रतिष्ठा, तथा धर्मशास्त्र-विषयक संग्रह रूप 'संस्कार दीपक' नाम का महान् निबन्ध हैं।

महामहोपाध्याय अमृतनाथ झा

आप उत्तर भागलपुर जिले के 'चैनपुर' ग्राम के निवासी थे। न्याय तथा धर्म-शास्त्र में आप की तत्त्व-स्पर्शी व्युत्पत्ति थी। अपने प्रायश्चित्तव्यवस्था तथा कृत्यसार समुच्चय दो ग्रन्थों का निर्माण किया, जो इस समय मिथिला भर में सर्वमान्य धर्मशास्त्र निबन्ध माने जा रहे हैं।

तुफानी झा

आप दरभंगा जिले के मोहना ग्राम में हुए हैं। आप ने 'कृत्य-शिरोमणि' नाम का एक विशाल ग्रन्थ धर्म-शास्त्र का रचा, जिस में प्रचलित सभी पर्वों-त्योहारों और उपवासों का बहुत गम्भीर विचार किया गया है। आप के रचित और भी ग्रन्थ हैं। १ अब्दचिन्तामणि, २ कृत्यतत्त्वचिन्तामणि, ३ कृत्यसुधार्णव, ४ कृत्यविवेकरत्नाकर, ५ मदनक्रीडाचन्द्रकोष आदि।

चित्रधर उपाध्याय

आप मंगरौनी के निवासी थे तथा महामहोपाध्याय सचल मिश्र के गुरु थे। न्याय तथा धर्म-शास्त्र में आप की बड़ी प्रखरता थी। आप के रचित वीरसारिणी, [illegible]सारिणी तथा प्रमाण-प्रमोद तीन ग्रन्थ हैं।

जगद्धर

आप, महाराज धीरसिंह जी के दरबार में धर्माध्यक्ष थे। आप ने देवी माहात्म्य, श्रीमद्भागवत, वेणीसंहार मालतीमाधव मेघदूत तथा वासवत्ता आदि पर टीकाएँ रची हैं।

रामदास झा

आप महाराज सुन्दरठाकुर के समकालिक थे। आप का रचित "आनन्दविजय' नाटक है।

सुधाकर झा

आप प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। आप का जन्म सोलहवीं शताब्दी में था। 'रत्नावली' नाम का ग्रन्थ आप का रचित है।

हृदयनाथ शर्मा

आप ने "नान्दीमुख-निरूपण' बनाया।

महामहोपाध्याय मुक्तिनाथ ठाकुर

आप पुर्नियाँ जिले के 'धमदाहा' ग्राम के निवासी धुरन्धर नैयायिक तथा धर्मशास्त्री थे। आप मिताक्षरा दायभाग के पूर्ण विज्ञ होने के कारण पूर्णियाँ जिले के जज बनाये गये थे।

जासू मिश्र

आप भागलपुर जिले के 'परसरमा' ग्राम में हुए हैं। व्याकरण में बड़ी योग्यता थी।

रामेश्वर झा

आप उजान के निवासी बड़े तान्त्रिक थे। आप ने 'भूत-विवाह-पद्धति' बनायी। जो आप के वंशज वर्त्तमान श्री-नीलाम्बर झा नैयायिक जी के यहां सुरक्षित है।

ऋद्धिनाथ झा

आप भी उजान ही के निवासी थे और धुरन्धर नैयायिक थे।

कवि कृष्णदत्त झा

आप 'शारदापुर' के निवासी थे। लोकोक्ति है कि शारदा देवी ने आप को एक रात्रि में स्वप्नावस्था में दुग्ध-

पान कराया था। प्रातः काल से आपकी प्रतिभा लोकोत्तर हो गयी। निर्मित 'गीतगोपि पति' काव्य अपूर्व है।

महीधर मिश्र

आप महाविद्वान् थे। आप का "मन्येमहीधर-भयेन" इत्यादि श्लोक प्रसिद्ध है।

अचल मिश्र

आप के विषय में बहुत किंवदन्तियाँ हैं। कहा जाता है कि आप ने सचलमिश्र को जो पूना आदि में जाया करते थे सूचना दी।

" ज्योतिरिङ्गण ! कथं न लज्जसे, खेचरन्निशि तमोऽपशान्तये।
इत्थमेव बहु किं न मन्यसे, यत्त्वमेव तिमिरेषु लक्ष्यसे" ॥

इस के उत्तर में सचलमिश्रने कहा।

" मन्दिर-तिमिर मपाकुरु दीपः हिमांशु किमाचिपसि।
भवनाद्बहिर्मनागपि पवनात्परिशीलयात्मानम् ॥

मुक्तिनाथ ठाकुर

आप अथरी "ग्राम के निवासी थे; व्याकरण तथा न्याय में आप का शास्त्रार्थ मिथिला में अति प्रशस्त है। व्याकरण महाभाष्य पर आप की अतिरमणीय टीका है। आप निपट बधिर थे।

महामहोपाध्याय बच्चा झा

आप, 'नवानी' के निवासी थे। वर्त्तमान शताब्दी में आप के सदृश संस्कृत विद्वान् कोई नहीं हुआ। मिथिला में आप को अपर गंगेशउपाध्याय कहा जाता है। आप ने श्री मद्भगवद्गीता की टीका, व्युत्पत्तिवाद पर गूढार्थतत्त्वालोक बावनसर्गों का 'सुलोचनामाधव' नामक महाकाव्य, सामान्यनिरुक्ति, अवच्छेदकत्वनिरुक्ति—गूढार्थ-तत्त्वालो क, व्याप्ति—पञ्चक तथा सिद्धान्तलक्षण—गूढार्थतत्त्वलोक आदि ग्रन्थ-रत्नबनाये। 'गूढार्थतत्त्वालोक' को अविकलरूप से पढानेवाले भारतवर्ष भर में दो चार ही मिलेंगे।

श्रीनाथ

आप ने कीर्तितन्त्रार्णव ग्रन्थ का निर्माण किया।

दुर्गादत्त कवि

आप दरभङ्गा जिले के 'भराम' ग्राम के निवासी थे। आपने मैथिल भाषा में दुर्गासप्तशती की रचना की है।

कवि पूरणभक्त

आप बड़े प्रसिद्ध कवि हुए हैं।

बबुजन झा

आप दरभङ्गा जिले के 'पिलखवाड' ग्राम के निवासी थे। न्याय शास्त्र के आप बड़े विशिष्ट विद्वान थे।

भाना झा

आप उक्त नैयायिक बबुजन झा के भ्राता थे धूर्त्तों में आप को अपर गोनूझा कहा जाता था। ज्यौतिष में आपने 'व्यवहाररत्न' नाम का ग्रन्थ बनाया।

कन्हाई झा

आप 'पिलखवाड' ही के थे। आप धुरन्धर नैयायिक हुए हैं। जम्बू-महाराज के यहाँ रह कर आप ने बहुत से धन और जागीर पायी।

कमलनयन मिश्र

आप 'कोईलख' के निवासी ज्यौतिषी थे। आप के वंशधर पौत्र धुरन्धर ज्यौतिषी हुए हैं। श्री बबुआजी (श्री कृष्ण) मिश्र भी आपके प्रपौत्र हैं, जो कलकला-संस्कृत कालेज के प्रौफेसर हैं।

महामहोपाध्याय परमेश्वर झा

आप 'तरौनी' के निवासी थे। महाराजाधिराज प्रभुवर रमेश्वर सिंह बहादुर के आप द्वार-पण्डित तथा संस्कृत पुस्तकालय के संरक्षक थे। आप ने कर्मकाण्ड का पूर्ण प्रशोधन किया; गुणविष्णुभाष्य, श्राद्धरत्न आदि पर टिप्पणियाँ कीं और प्रयोगदर्पण, यक्षसमागम काव्य (मेघदूत का उत्तर भाग) एवं कुसुमकलिका (आख्यायिका) आदि ग्रन्थों का निर्माण किया।

महामहोपाध्याय कृष्ण सिंह ठाकुर

आप खण्डवलाकुल संभव 'राजग्राम' निवासी थे। व्याकरण और वेदान्त में भी आप की असाधारण गति थी। आप योगाभ्यासी थे। तीर्थ-यात्रा करते समय कई राजधानियों में शास्त्रार्थ-द्वारा विजय के साथ बिदाई में जो रुपयों की थैलियाँ मिलती गयीं, उन्हें दुष्ट प्रतिग्रह जान छोड़ते गये।

महामहोपाध्याय जयदेव मिश्र

आप 'गजहड़ा' के निवासी थे, राज-दरभंगा के विद्यालय काशी में पहले नियुक्त हुए। वहाँ से धीरे धीरे आप का यश देशान्तरों में फैल गया। शास्त्रार्थ में आप की बराबरी करने वाला जीवन में कोई नहीं हुआ, आप के सुयोग्य पुत्र डाक्टर उमेश मिश्र जी M. A. इलाहवाद यूनिवर्सिटी के प्रौफेसर हैं। महामहोपाध्यायडाक्टर झा जी ने भी आप से अध्ययन किया था। आप ने परिभाषेन्दुशेखर की टीका विजया, व्युत्पत्ति वाद की टीका जया और शास्त्रार्थ-रत्नावली तीन ग्रन्थ बनाये। प० श्रीदीनबन्धु झा प० श्रीमार्कण्डेय मिश्र, प० श्री रमाकान्त मिश्र आदि आप ही के शिष्य हैं।

गुणविष्णु

'गुणविष्णु भाष्य' आप ही की कृति है। महामहोपाध्याय प० परमेश्वर झा जी ने गुणविष्णु भाष्य की टिप्पणी की भूमिका में आपको मैथिल सिद्ध किया है।

नैयायिक विश्वनाथ झा

आप, दरभंगा जिले के 'ठाढ़ी' ग्राम के निवासी थे। न्याय-शास्त्र की आप साक्षात् मूर्त्ति थे। महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह जी के आप द्वार पण्डित थे। आप को परास्त करने वाला, कोई नहीं था।।

नैयायिक लोकनाथ झा

आप श्रोत्रिय थे। महामहोपाध्याय बच्चा झा के आप प्रधान शिष्य थे। आप का रचित 'उभयाभाव निरूपण' उपलब्ध है। आप की योग्यता के परिचय में यही लिखना पर्याप्त होगा कि विद्वन्मुकुट गुरुवर श्री बालकृष्ण मिश्र जी तथा पञ्जाब एवं यू० पी० में सुप्रसिद्ध स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी एक मात्र आप ही के शिष्य हैं।

ज्यौतिषी परमेश्वरीदत्त मिश्र जी

'आप' नेपाल राज्य के सप्तरी परगने के 'तिलाठी' ग्राम में हुए हैं। आप श्रीनगर ड्यौढ़ी के द्वार-पण्डित थे।

ज्यौतिषी यदुनन्दन मिश्र जी

आप भी उक्त 'तिलाठी' के ही निवासी थे आप नेपाल महाराजा चन्द्रशमशेर को यौवराज्यावस्था में ही कह रक्खा था "अमुक वर्ष के अमुक मास के अमुक पक्ष की अमुक तिथि में इतने समय में आप को गद्दी मिलेगी" और वैसा ही हुआ जिस पर महाराज चन्द्रसमशेर ने आप को विपुल धन और ग्राम 'वृत्ता' कह कर दिये।

नन्दकिशोर मिश्र ज्यौतिषी

आप भी 'तिलाठी' के ही थे शास्त्र में आप सब से प्रखर रहते हुए भी पागल तथा भाग्य-हीन अधिक थे।

श्रोत्रियवर हेमपति झा (बौकल झा)

आप 'लालगंज के निवासी थे। आप न्याय तथा व्याकरण के प्रौढ़ विद्वान् थे। आपका निर्मित 'शब्द-प्रदीप' है।

महा वैयाकरण खड्गनाथ झा

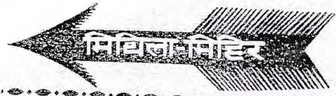
आप पुर्णिआं जिले के 'परमानन्दपुर' ग्राम के निवासी तथा गोसपुर के प० पदार्थ मिश्र जी के प्रधान शिष्य थे। व्याकरण और धर्मशास्त्र में आप की बड़ी प्रतिभा थी।

महान् पण्डित गेनालाल मिश्र

आप भी उक्त जिला के 'रामनगर' के निवासी थे। आप, विशिष्ट वैयाकरण थे।

महामहोपाध्याय राजनाथ (रजे) मिश्र

आप, प्रसिद्ध 'सौराठ' के निवासी थे। अन्तसमय में आप दरभंगा महाराजाधिराज के द्वार-पण्डित तथा



रमेश्वरलता विद्यालय के प्रिन्सपल रहे; पीछे काशी में शरीरत्याग हुआ। महामहोपाध्याय प० जयदेव मिश्र, महा-वैयाकरण प० खुद्दी झा आदि आप ही के शिष्य थे। आप धर्म-शास्त्र के बहुत विशिष्ट ज्ञाता थे। 'तिथि निर्णय' आदि अनेक ग्रन्थ आप के रचित प्रचलित हैं।

महामहोपाध्याय शशिनाथ झा

आप 'चनौर' के निवासी थे। संस्कृत कालेज मुजफ्फर-पुर के आप प्रधानाध्यापक थे। व्याकरण, न्याय, धर्म-शास्त्र तथा साहित्य में आप का अलौकिक पाण्डित्य था।

ज्यौतिषी वासुदेव झा

आप उक्त म० म० शशिनाथ झा जी के सोदर ज्येष्ठ भ्राता तथा महाराजाधिराज रमेश्वरसिंह बहादुर के द्वार-ज्यौतिषी थे।

ज्यौतिषी कृष्णदत्त झा

आप 'भखराईन' के निवासी थे। आप ने आजीवन काशी में ही अध्यापन किया। चन्द्रशेखर झा आदि योग्य विद्वान् आप के शिष्य हैं।

महामहोपाध्याय मुरलीधर झा

आप 'श्यामसीधप' के निवासी थे बनारस-क्विन्स-कालेज में आप प्रधानाध्यापक नियुक्त थे। आप का व्युत्पत्ति-कौशल तथा वाक्चातुर्य अद्भुत था। ज्यौतिष में महामहोपाध्याय के पदधारी मैथिल केवल आप ही हुए। मिथिला-मोद मासिक पत्र के प्रवर्त्तक भी आप ही थे।

महावैयाकरण लालजी झा

आप, 'चिकनौटा' निवासी अद्वितीय शास्त्रार्थी थे। आप का शास्त्रार्थ एकबार स्वर्गवासी महाराजाधिराज की अध्यक्षता में मुजफ्फरपुर कनवोकेशन में हुआ था जिसमें एक अंगरेज डाइरेक्टर भी सम्मिलित थे उन्हों ने आप की अलौकिक विद्वत्ता की भूरि भूरि प्रशंसा की।

पण्डित किशोरी झा

आप उक्त प० लालजी झा के भ्राता थे। मुजफ्फरपुर संस्कृत कालेज के व्याकरणध्यापक थे। आप बड़े निविष्ट वैयाकरण थे। व्याकरण थे।

नरसिंह झा महावैयाकरण

आप 'पोखरौनी के निवासी थे। व्याकरण की योग्यता आप की बढ़ी चढ़ी थी।

पण्डित विश्वनाथ मिश्र

आप भागलपुर (उत्तर) जिले के 'गोसपुर' के निवासी थे। वैयाकरण तथा पौराणिक बहुतर बडे थे।

पण्डित बदरीनाथ मिश्र

आप उक्त पण्डित जी के कनिष्ठ भ्राता थे। व्याकरण, धर्म-शास्त्र तथा साहित्य में आप की अलौकिक प्रतिभा थी।

फूदन चौधरी।

आप उत्तर भागलपुर जिले के 'महिषी' के निवासी थे। आप व्याकरण, साहित्य संगीत विद्या के के भी पारङ्गम थे।

नैयायिक राजा झा

आप भागलपुर के 'बघवा' ग्राम के निवासी थे।

नैयायिक अपूछ झा

आप पुर्नियां जिले के 'सिरसिया' ग्राम के निवासी थे। आप उस प्रान्त में बे-जोड़ नैयायिक माने जाते थे।

ज्यौ० अपूछ झा

आप दरभङ्गा जिले के 'कोइलख' के निवासी थे। आप ने निर्णयार्क ग्रन्थ बनाया था।

(अवशिष्टांश अन्यत्र)

गत भूकम्प की घटना से सम्बद्ध एक कहानी

झोपड़ी में

श्री सुरेन्द्र झा

****

झो

रविवार की तिपहरी थी। स्कूल बन्द था हो। लड़के छुट्टी की खुशी में अपने साथियों के साथ किलकते सप्ताह भर की चिन्तारूपी धूल को आनन्द की नदी में धो रहे थे। ललित आज सबेरे ही घर से तीर की तरह निकल आया। खेल-कूद में दुपहरी बिता डाली। तीसरा पहर भी बातों में बीत चला।

उधर माँ ब्यालू बना कर उस की बाट जोह रही थी, पर वह आया नहीं। बूढ़ी सन्ध्या तारों की आँखे बिछाये प्रतीक्षा में थी, पर बालक चन्द्र अभी तक गोदी पर उछला ही नहीं था।

ललित खेल-कूद कर थक गया। वीरेन्द्र उसे अपने घर लिवा ले गये। तितल्ला मकान, खूबसूरत और साफ-सुथरा! तसवीरों से सजे और बेल-बूटों वाले कमरे, चिकदार खिड़कियाँ, पाँतियों में ढंग से सजे फूलों के गमले, सभी सुन्दर औरआकर्षक थे! वीरेन्द्र की कोठरी तो खास कर उसे बहुत ही भली और लुभावनी लगी। मुलायम गद्दीदार पलङ्ग, सुन-हरी जिल्दों चमकती आलमारी, फैशनेबुल कुर्सियाँ, पढ़ने-लिखने के सामानों सजी मेज, दीवाल में लटकते चित्र और बड़ी क़द का टँगा आईना—सभी हृदय को चकित कर रहे थे। उसकी जबान वीरेन्द्र के साथ बातों में लगी थी! आँखे लुभावनी सजावट पर अटकी थी! मन किसी अभाव की झाड़ी में उलझा पड़ा था!

देर तक वहाँ ठहरा। साथी के व्यवहार से तो खुश था। पर उस के दिल पर अभाव की चोट गहरी पड़ती थी। अभी तक ये सुन्दर महल पोशाक में सजे उस के सामने नाच रहे थे। पर अब अपने टूटे-फटे टाट के घर आँखों में आ-आकर घूसने लगे!

सन्ध्या निकल चुकी। माँ बेटे की प्रतीक्षा में अधीर थी, तब तक वह आया, पर फुदकता हुआ नहीं। देर हो जाने कारण तो बतलाया, पर चहकती आवाज में नहीं। माँ ने सोचा, मन सुस्त है। मन ही मन देवियों की मनौती हुई! जब नैया हवा के झोकों में डगमगाती हो तो मल्लाह के सिवा उसे कौन ढाढ़स दिला सकता है?

रात में सोने के समय माँ जब ललित का सिर सहलाती सिरहाने बैठी थी, उस ने वीरेन्द्र का परिचय पूछा—उस के वैभव का इतिहास पढ़ना चाहा।

प

अब चाहे वैभव की दीवाल और गरीबी की खाई ललित और वीरेन्द्र को दूर का वाशिन्दा बना

दे—दोनों की रहन-सहन में दिन-रात जैसा अन्तर डाल दे; पर वे दोनों एक ही रक्त के थे। उन दोनों के दादे चचेरे ही भाई थे। गाँव की बैठक और चारपाई बराबर सी दोनों के लिये बिछतीं। एक को दूसरे की दशा पर स्पृहा या दया होने का मौका नहीं था !

वीरेन्द्र के पिता शहर में आ बसे। भाग्य अनुकूल था। बाजार का रुख पहचानते थे। दूकान को कुछ ही दिनों में चमका लिया ! रुपये बरसने लगे। आलीशान मकान शहर की छाती पर सिर उठाये आकाश से बातें करने लगा। वीरेन्द्र इसी महल की सीपी के मोती थे।

ललित के पिता पर ऋण का गट्ठर था। सूद के जाल से फँस गये। जमीन देकर जान बची। इधर बड़ी कोशिश से दस रुपये की नौकरी मिली। दिन किसी तरह काट लेते हैं। ललित इसी गरीबी की गोदी का लाल था।

इस तरह ललित और वीरेन्द्र इतने निकट होते हुए भी दूर हो गये। एक उन्नति की चोटी पर बस गया तो दूसरा दीनता की झील में जा डूबा। एक महल का अमीर था तो दूसरा झोपड़ी का गरीब !

ड़ी

ललित जब कभी वीरेन्द्र को देखता, झेंप जाता। अपने और उन के बीच महल और कुटी का भेद देखता। स्कूल के और छात्र भी ललित की श्रेणी के थे, कुछ वीरेन्द्र की स्थिति के भी। उन्हें कब यह भेद दिखाई पड़ता ? बचपन का सोना सभी के पास था। फिर कमी किस चीज की और भेद-भाव किस तरह का ? भोला-भाला हृदय और बेफिक्र मिजाज का हिस्सा सभी बच्चों में बराबर बँटा था पर किसी बुरी घड़ी में चिन्ता के कीड़े ने ललित के कोमल हृदय के फूल पर डेरा जमाया !

उस दिन शनिवार था। छुट्टी सबेरे ही मिल गई। जाल से छूटी मछली की तरह, पिंजरे से छूटे नये पंछी की तरह लड़के फुदक रहे थे। वीरेन्द्र ने ललित का हाथ दबा कर कहा—"चलो ललित आज तुम्हें घर पहुँचा दूँ।"

ललित चुप था। मन ही मन गरीबी को कोस रहा था। आज मेरे भी महल होते तो उसी शान से वीरेन्द्र को बिठाता ! सुन्दर चमकीले फर्नीचरों की सजावट से अपने को वीरेन्द्र का उपयुक्त साथी साबित करता !

जब दोनों घर पहुँचा, ललित की माँ ने बड़े प्यार से दोनों को जलपान कराया। वीरेन्द्र से मीठी-मीठी बातें कीं। माँ का प्यार, पिता का प्रेम और बहिन का दुलार पूछा। ललित तो अपनी अवस्था पर झेंप रहा था। पर वीरेन्द्र को झोपड़ी के स्वागत ने महल की याद भुला दी।

× × × ×

ललित के पिता बातचीत के सिलसिले में जब कभी सन्तोष की महिमा का गाना गाते और बीच में श्लोकों के उद्धरण का हारमोनियम बजाते, वे ललित के कानों में बेसुरे से जँचते। बूढ़े का वैराग्य बच्चों और जवानों के अनुराग पर कैसे विजय पावे ? बुढ़ापे का सन्तोष नई उम्र की प्यास को कैसे बुझावे ? कुटिया नदी के किनारे एकान्त स्थान में खड़ी रह कर वासना को दुत्कार सकती है, पर वही अगर महल के पड़ोस में बस जाय तो उस पर तृष्णा का जादू असर कर जाय !

ललित का वश होता और अगर लक्ष्मी का एक कटाक्ष उस पर चलता तो वह इतने दिनों से आराम पहुँचाने वाली बूढ़ी झोपड़ी को तुरत उखाड़ फेंकता। टूटी तिपाई को इन्धन-घर का जेलखाना दिखाता। सुन्दर भवन खड़े होते। फैशनेबुल सामानों से कमरे सजे जाते और बड़े फाटक पर दरवान टहलता दिखाई देता !!

पर मन का लड्डू पेट कब भरता है ? हवाई किला मन की ही भूमि पर तो बनाया जाता है !

में—

तब थी २४ ईसवी। अब तो उसे बीते दस साल हो चुके। ललित की झोपड़ी महल तो नहीं बनी, हाँ वह बच्चे से जवान बन गया था। समय का घोड़ा दौड़ रहा था। इस समय ३४ ईसवी की डाक उस के कन्धे पर थी। जमाने के हाथ कैसी चिट्ठी मिलती है, यह तो घटना की थैली खुलने पर ही मालूम हो सकता !

उस दिन आफिस के लिये पन्द्रहवीं जनवरी थी। धार्मिक हिन्दुओं के पञ्चाङ्ग की सोमवती माघी अमावस। और व्रती मुसलमानों के ईद का पूर्व दिन। भोर बीता। दुपहरी निकल चुकी। दुनियाँ कामों में रोज की तरह मशगूल थी। स्कूल-कालेज की बेञ्च-कुर्सियाँ ठिकाने से भरी थीं। आफिसों में क्लर्कों की कलम उसी रफ्तार से दौड़ रही थी। प्रेसों की टिख-टिख और खट-खट क्यों बन्द रहती ? बाजार मोटर गाड़ियों की चिल्लपों से, दूकान खरीद-बिक्री करने वालों से चहल-पहल थी। गाँव के खेत-खलिहान किसानों से आबाद थे। पान-तम्बाकू तास-सतरंज का रंग वैसा ही गहरा था ! वह तूफान जो तुरत आफत ढाने वाला था, वर्तमान की आँखों से ओझल था !

इधर घड़ी में टन-टन कर दो बजे ही थे उधर भूकम्प का एलार्म जोर से गरज उठा। शहर ने वायुयान की आवाज मानी। गाँव वालों को मोटर याद पड़ी ! अचानक अड़ड़ड़ धम्म······!!

फिर क्या था ? प्रलय अट्टहास कर नाचने लगा ! पृथ्वी तूफान में पड़ी नाव की तरह उलटने लगी ! आकाश से बातें करने वाले बड़े बड़े मकान पाताल के चरण चूमने लगे ! कटी डाल की तरह दीवालें उलटने लगीं ! आह ! काल की एक ही एँड़ ने चीटियों की तरह मनुष्यों को मसल डाला। बसे घर उजार दिये ! प्रकृति की नादिरशाही में बूढ़े, बच्चे, मर्द, औरत, कची और पकी उम्र के लोग बेरहमी से क़त्ल कर दिये गये ! उफ ! कुछ पलकों में ही बाप ने जिगर के टुकड़े बेटे को खो दिया ! माँ की गोद के लाल लुट गए ! भाई बहन को ईंटों के ढेर में खोजते फिरते थे ! बहनें भाई के शव को आँसुओं से नहलाने लगीं।

बूढ़ों की हिचकी, जवानों के विलाप और बच्चों के चीत्कार से आकाश रो उठा ! पृथ्वी के जिगर टुकड़े टुकड़े थे ! नदियों की आँखें आँसू बहाते-बहाते सूज गई थीं !

शहर ने गाँव का मुँह देखा ! कड़ाहते महल कुटियों से पानी मांगते थे !! दौलत गरीबी के गले बाँह डाले अपनी करुण कहानी सुना रही थी !

खण्डहर बनने वालों में वीरेन्द्र का मकान भी था ! ईंटों पत्थरों की हड्डी-चूर चोटों से पिसने वालों में वीरेन्द्र के माँ-बाप भी थे !

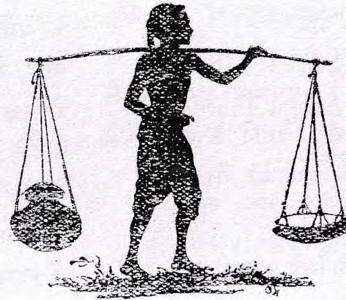
× × ×

उसदिन वीरेन्द्र ललित की झोपड़ी में भूकम्प की भयङ्करता की ही बातें कर रहा था। एक साधू कहीं पास में ही खजरी बजा बजा कर गा रहा था—

फूटता जग का घड़ा घड़ी में।
प्राणी-पानी बढ़ कर रहते फट कर काल छड़ी में।
दो दिन के परदेशी को क्या महल और झोपड़ी में॥

वे कुछ पहले साधु के इस अल्हड़ गाने सुनना भी नहीं चाहते, पर आज उस के अ अक्षर को सुनने में दोनों तल्लीन थे!

संसार को महलों का मोह छूटा हो या न पर ललित की तृष्णा बुझ गई थी। अब सन्तुष्ट था अपनी फूस की ही झोपड़ी में!



रामायण-कारों की दृष्टि में मिथिला

रघुनाथोपाध्याय, व्याकरणाचार्य, 'विशारद'

रामचरित्र चित्रण कर अपनी सरस्वती को सार्थक करने वाले समादरणीय कवियों के काव्य ग्रन्थों का सुन्दर नाम "रामायण" है। इन की संख्या एक दो नहीं; किन्तु करोड़ों की है।

गोस्वामी जी ने तो लिखा है कि "रामायण-शत कोटि महँ, लिय महेश जिय जान॥" परन्तु काल प्रभाव और भिन्न-मतानुयायियों के ईर्ष्या संपृक्त दुर्व्यवहार से अब तो उस शत कोटि का अनुमान भी नहीं किया जा सकता है।

रामायणों में ही हमें देखना चाहिए कि मिथिला का वर्णन किस प्रकार का है। इन के यहाँ वैदिक युग प्रसिद्ध मिथिला किस प्रकार सम्मानित है। और उस के समादर के कौन से प्रसिद्ध-कारण का दिग् दर्शन कराया गया है। मिथिला की पवित्र परिस्थितियों पर इन की धवल दृष्टि किस प्रकार पड़ती है। रामायण-रचयिताओं की आन्तरिक प्रवृत्ति पर दृष्टिपात करने से हम इस निर्णय-पथ पर आ पहुँचते हैं कि विशेषकर वे कविगण राम से सम्बद्ध-घटनाओं पर ही अपनी वर्णन-शक्ति का सद्-व्यय कर सन्तुष्ट हो जाते हैं। इसी प्रवृत्ति के कारण जितना वे अयोध्या का वर्णन करते, उतना मिथिला का नहीं। परन्तु मैथिली की उत्पत्ति-मही मिथिला के वर्णन से एकदम तटस्थ भी नहीं रहते। क्योंकि इस शक्ति-द्वय का प्रादुर्भाव किसी वैसे ही सर्वश्रेष्ठ पवित्र पृथ्वी-प्रदेश में हुआ था। इन लोगों ने मिथिला का चित्रण करते समय इस नाम-करण पर भी अपना विचार प्रकट किया है।

अगस्त्य—रामायण में प्रसंग वश एक स्थान पर एक श्लोक आया है; जिस का भावार्थ है कि शरीरस्थ और वाह्य-शत्रु जहाँ पराजित किए जाँय, उसे 'मिथिला' कहते हैं और वहाँ ही जनकों ने अपनी राजधानी कायम की। यथा—

'अन्तोवहिश्च सर्वत्र मथ्यन्ते रिपवः सदा।
"मिथिला" नाम सा ज्ञेया जनकैश्च कृता मही।'

यह श्लोक बृहद्विष्णुपुराण के पाताल खण्ड में पराशर और मैत्रेय के संवाद में भी आया है।

यह राजधानी मिथिला उस समय ५० मील चतुर्दिक् विस्तृत थी। अगस्त्य और याज्ञवल्क्य रामायण से विदित होता है कि यह सात योजन लम्बी थी। गमनागमन के लिये पर्याप्त आयत मार्ग बने हुए थे। राजधानी के सभी मार्गों पर प्रतिदिन जल-सिञ्चन होता था। मार्ग के उभय पार्श्वों में सपुष्प गमले सजा कर रखे थे। मिथिला के अन्दर क्रय विक्रय के सुन्दर स्थान बने हुए थे। नाना प्रकार के आयुध भी जैसे शतघ्नी (तोप) सहस्रघ्नी (मशीन गन) भी रक्षा के निमित्त यत्र तत्र लगायी गई थी। यहाँ बड़े बड़े निपुण शिल्पी रहा करते थे। इन का शिल्प-प्रदर्शन रंग-मञ्च, मण्डप-निर्माण, और गिरिजा-मन्दिर के वर्णन में देखते बनेगा। प्रासादों पर धवल-पताकायें उच्च और शुभ्र भावना की सूचना दे रही थीं। नगर के प्रवेश-द्वार पर बड़े बड़े धातु के कपाट लगे हुए थे।

नगर के चतुर्दिक् निखात (खाई) थे। उस में जलानयन और जल-निष्कासन-यन्त्र भी लगाए गए थे। चतुरंगिणी सेना सदा सन्नद्ध रहती थी। व्यापार-कुशल वणिकों का बृहत्-समाज व्यापारार्थ वहाँ आते और जाते थे। मिथिला में रत्न-राशियों की न्यूनता नहीं थी। मैथिली के बिदा समय असंख्य और अमूल्य रत्नराशियाँ दायज में देकर जनक ने उपर्युक्त रामायणियों के वर्णन की सत्यता संसार को दिखला दी थी। इस राजधानी के सप्तभूमिक और चर्तुदश-भूमिक-प्रासादों का वर्णन मिलता है। इस से अनुमान किया जा सकता है कि उस समय हमारी इस मिथिला में ही कितने बड़े बड़े इञ्जिनियर होंगे। उन के यन्त्रादि भी कैसे विशिष्ट होंगे। और इस शिक्षा का कैसा प्रचुर-प्रचार रहा होगा।

राज-महलों में अनेकानेक बहुमूल्य-रत्न भिन्न-भिन्न रंगों के जटित थे। यह राजधानी सम-भूमि में बसाई गई थी। यहाँ की भूमि बड़ी उर्वरा थी। यहां बहुतेरे पदार्थ उत्पन्न किए जाते थे। मिथिला में तो गुणियों ने मानो अपने पैर में कीलें ठोक रक्खी थीं। यहाँ के जनकादि जैसे स्वयं ज्ञानी होते थे, वैसे ही यहाँ वेदज्ञ, शस्त्रज्ञ और ऋत्विजों की बराबर सस्ती ही रहती थी। इन जनकों की राजधानी मिथिला में विश्वामित्र, कपिल, गौतम, आदि मुनि-पुंगव तपस्या करते थे। यथा-समय इन की सभा को अलंकृत भी किया करते थे। इन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं झेलना पड़ता था। यहाँ की प्रजा निर्लोभ थी। व्यभिचारादि दुर्गुणों से उन्मुक्त थी और थी सानन्द। यहाँ कादर और मद्यपी कोई नहीं था। सभी स्त्री-पुरुष अपने अपने धर्म में निरत थे। सब के पास अपने आवश्यक व्ययानुकूल द्रव्य रहा करता था। सभी उदार होते हुए भी मितव्ययिता के पृष्ठ-पोषक थे। अतएव अऋणी थे। सभी गृहस्थों के यहाँ गाय, भैंस, घोड़े, हाथी, पर्याप्त थे। कामी, क्रूर, मद्यप, नास्तिक, और निरक्षर भट्टाचार्य्यों की बराबर इस राजधानी में महँगी थी। मिथिला के सभी स्त्री-पुरुष धार्मिक, बलिष्ठ, और इन्द्रियजित् तथा प्रसन्न रहते थे। नियमित समयों पर सभी के नित्य-नैमित्तक और काम्य-कर्म होते थे। सभी उदार प्रकृति के थे। चरित्र हीनता, और विचारक्षुद्रता, कभी समीप फटकने नहीं पाती थी। कोई उन्मत्त, और भयंकर रोग-ग्रस्त स्त्री-पुरुष इस मिथिला में नहीं पाये जाते थे। सभी राजभक्त थे। हृदय से राज-सत्ता में अनुरक्त थे। अतिथि-सेवा को यहाँ परम धर्म समझते थे। यहाँ राजा के कल्याण में ही लोग अपना कल्याण समझते थे और अपने अपने धर्म में सभी स्थित थे।

इस मिथिला पर महाभारत काल में पाण्डवों ने अपने राजसूय यज्ञ के समय आक्रमण किया था। उस समय "सुबाहु जनक" मिथिलेश थे। वे इन्हें हरा तो सकते थे नहीं, और बिना हराये यज्ञ में अपूर्णता समझी जाती थी। सुबाहु श्रीकृष्ण के मित्र थे, अतएव श्रीकृष्ण की सम्मति से अपने को इन्हों ने विजित घोषित किया। पाण्डवों का काम बन गया। महाभारत के सभा पर्व के ३७ वें अध्याय में इस प्रकार लिखा है कि:—पाण्डुना मिथिलां गत्वा विदेहाः समरेजिताः। विजिज्ञे पुरुष व्याघ्र नातितीव्रेण कर्मणा"

भागवत के दशम स्कंध के उत्तरार्द्ध में आया है कि:—मणि खोजते खोजते शतधनु को पीछा करते श्रीकृष्ण और बलराम रथ द्वारा मिथिला आये। शतधनु मारा गया। उस के पास मणि नहीं मिली। व्यर्थ की हिंसा और निरर्थक आयास पर पश्चात्ताप करते हुए बलराम को लौटा कर आप अपने अन्तरंग सुबाहु जनक से मिलने मिथिला राज-भवन में आये। इन की बड़ी आवभगत की गई। स्वयं उठ कर मिथिलेश सुबाहु ने सिंहासन पर सादर बिठलाया। कुछ दिनों तक मिथिलेश के अतिथि रहे। कहा है—

वृथा हतःशतधनुः मणि स्तत्र न विद्यते। अहं विदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम।

महाभारत के युद्ध में सुबाहु कौरवों की ओर से लड़े और उन के पुत्र पाण्डवों की तरफ से। अर्थात् श्रीकृष्ण की नीति ही उन्होंने भी पसन्द की होगी।

देवीभागवत में आया है कि ज्ञानार्थ आये हुए शुकदेव ने वहाँ की प्रजा को बड़ा सुखी पाया था —

प्रविष्टो मिथिला-मध्ये पश्यन् सर्वर्द्धिमुत्तमाम्।
प्रजाश्च सुखिताः सर्वाः सदाचार-सुसंस्कृताः।

सीता के पिता सीरध्वज भी जैसे ज्ञानी थे उसी प्रकार अपनी राजधानी मिथिला की रक्षा करने में शत्रुओं के छक्के छुड़ाते थे। महारामायण में आया है कि सीरध्वज प्रतिदिन रावण की भाँति कैलाश में शङ्कर की पूजा करने जाते थे। वेद—विषयक वाद-विवाद पर रावण इन से पराजित हुआ। शङ्कर ने ही चेतावनी रावण को दे दी थी कि रावण! तुम इन से युद्ध में भी हार जाओगे। शङ्कर ने यह समझा होगा कि शायद ईर्ष्यावश यह उद्धत कहीं युद्ध के उपकरणों को लेकर मिथिला पर आक्रमण न कर दे। गुरुदेव की बातों पर विश्वास कर रावण जनक के बल का लोहा मान गया था। अतएव रावण ने सर्वत्र चढ़ाई की, पर जिन के बल के विषय में शङ्कर साक्षी हैं, उन की राजधानी मिथिला पर चढ़ाई क्यों करे।

एक बार इस मिथिला पर सुधन्वा ने भी आक्रमण किया था। यह बात वाल्मीकि रामायण में स्वयं जनक ने विश्वामित्र से कही है कि मैं दो भाई हूँ। मेरा छोटा भाई सांकाश्यपुरी का राजा है। सुधन्वा को मार कर वहाँ का राजा मैंने अपने सोदर कुशध्वज को बनाया है। इस से तो यही पता चलता है कि उस समय तक मिथिला किसी से पराजित नही हुई। शास्त्र और शास्त्र में भी मिथिला सदा विजयिनी होती आई है। यह एक खास मिथिला की विशेषता है। जैसेः—

"कस्य चित्त्वथ कालस्य सांकाश्यादागतः पुरात्
सुधन्वा वीर्यवान् राजा मिथिलामवरोधकः।
स च मे प्रेषयामास शैवं धनुरनुत्तमम्
सीताश्च कन्यां पद्माक्षीं मह्यं वै दीयतामिति ॥
तस्या प्रदानान्महर्षे ! युद्धमासीन्मया सह
स हतो विमुखोराजा सुधन्वा तु मया रणे।
निहत्य तं मुनिश्रेष्ठ सुधन्वानं नराधिपम्,
संकाश्ये भ्रातरं शूरं मभिषिञ्चि कुशध्वजम् ॥

राजर्षि जनक ज्ञानयोग और कर्म योग के महान् मर्मज्ञ थे। इन्हीं मिथिलेश के विषय में गोस्वामी जी ने कहा है कि:—

"योग भोग मँह राखेउ गोई।
राम विलोकत प्रकटेउ सोई ॥

वन्दना प्रकरण में विदेह राज की भी वन्दना की है—

जैसेः—प्रणवौं परिजन सहित विदेहू ।
जाहि राम पद गूढ़ सनेहू ॥

इस प्रकार सभी रामायणकारों ने मिथिला के विषय में प्रसंगतः कुछ न कुछ कहा है सही; पर उस से उतना प्रकाश नहीं पड़ता; जितना गोस्वामी जी रामचरितमानस में मिथिला पर प्रकाश डालते हैं। तत्कालीन मिथिला की परिस्थिति पर इन्हों ने बड़े गौर से विचार किया है। और हमारे समक्ष मानो मिथिला का प्रतिबिम्ब झलका दिया है ।*

सीरध्वज कालीन मिथिला की परिस्थिति का ज्ञान कराते हुऐ हमें गोस्वामी जी ने भी बतलाया है कि उस समय मिथिला अपनी अनुक्षण वर्धमान विभूतिओं के कारण कैसी लोकप्रसिद्ध हो रही थी। एक शासक किन किन वस्तुओं से पूर्ण हो सकता है इसका उत्तर उनकी चौपाइयां ही दे लेंगी।

मिथिले, क्या तू बता सकती है कि तेरे जैसे स्वामी और भी किसी राजधानी को प्राप्त थे। तेरे यहाँ जैसे ऋषिगण और भी कहीं थे। यह सर्वोपम भाग्य तेरा ही था जिस ने सीता जैसी कन्या को उत्पन्न किया था।

अब राम के नगर निरीक्षण से भी मिथिला की कुछ संस्कृति पर प्रकाश पड़ता है। हम देखते हैं कि मिथिला की युवतियां अपनी मर्यादा कितनी अक्षुण्ण रखती हैं। और उसका यथाशक्य स्तुत्य निर्वाह किस उच्च दर्जे तक करती है और वे इस कड़ी परीक्षा में कितनी खरी उतरती हैं। मिथिला की युवतियां राम के आने पर अकस्मात् बाहर निकल कर उन का दर्शन नहीं करती; किन्तुः—

युवती भवन झरोखन लागी।
निरखहिं राम रूप अनुरागी ॥
कहहिं परस्पर सब सन प्रीती।
सखि इन काम कोटि शत जीती ॥

इतनी बातें तो परस्पर कर लेती हैं। पर मन विकृत नहीं होता। वे ईश्वर को बार बार मनाने लगती है। यह वर जानकी को अवश्य मिले।

देखि राम छवि कोउ एक कहई।
योग्य जानकी यह वर अहई ॥
कोउ कह जो भल अहै विधाता।
सबकहँ सुनिय उचित फल दाता ॥
तो जानकिहिं मिलहिं वर एहू।
नाहिन आली यह सन्देहू ॥

अपना स्वार्थ तो इन युवतियों का केवल इतना ही है कि—

सखि हमरे अति आरत ताते।
कबहुँक ए आवहि यहि नाते ॥

इससे मिथिला के इन युवतिओं का सयुक्ति संलाप और समयोचित भाषण का यथेष्ट उदाहरण मिल जाता है।

अब धनुष मखशाला में रामचन्द्र जी पहुँच कर क्या क्या देखते हैं—

* गोस्वामी तुलसी दास जी की दृष्टि में मिथिला नाम का लेख 'मिहिर' में पहले गत तुलसी-जयन्ती के अवसर पर प्रकाशित हो चुका है।

पुर पूरब दिशि गए दोउ भाई।
जहाँ धनुष मख भूमि बनाई ॥
अति विस्तार चारु गज ढारी।
विमल वेदिका रुचिर सँवारी ॥
चहुँ दिशि कञ्चन मञ्च विशाला।
रचे जहाँ बैठहि महिपाला ॥
तेहि पाछे समीप चहुँ पासा।
अपर मञ्च मण्डली विलासा ॥
कछुक ऊँच सब भांति सुहाई।
बैठहिं नगर लोग सब आई।
तिन के निकट विशाल सुहाए।
धवल धाम बहु बरन बनाए ॥
जँह बैठहिं देखहिं कुल नारी।
यथा योग्य निज कुल अनुहारी ॥

मिथिला के शिशुओं का सत्प्रेम भी प्रशंसनीय है। एक नवागत अपरिचित व्यक्ति के साथ इतना अविलम्ब निश्छल और घना प्रेम जोड़ लेना इन्हीं का काम हो सकता है।

पुर बालक कहि कहि मृदु बचना।
सादर प्रभुहिं दिखावहिं रचना।
सब शिशु यहि मिस प्रेमवश,
परसि मनोहर गात ॥
तनु पुलकहिं अति हर्षि हिय,
देखि देखि दोउ भ्रात ॥

अब आप मिथिलेश की बगीचे की ओर चलें। मिथिला की एक यह भी विशेषता है। मिथिला इसी एक बगीचे से धन्य हो रही है, और इसे अमरावती से उपमा दी जा रही है। यहाँ वृक्षायु वेंद-वेत्ता भी बड़े सुन्दर और निपुण थे और वे माली कहे जाते थे। सब ऋतुओं को अपनी कला की साँकल में जकड़ रखना इन्हीं का काम था।

गोस्वामी जी लिखते हैं:—

भूप बाग बर देखउ जाई।
जहँ बसन्त ऋतु रहे लुभाई ॥
लागे विटप मनोहर नाना।
बरण बरण बरबेलि बिताना ॥
नव पल्लव फल सुमन सुहाए।
निज संपति सुर तरुहिं लजाए ॥
चातक कोकिल कीर चकोरा।
कूजत विहग नचत कलमोरा ॥

अब रामचन्द्र बाग तड़ाग की ओर आये।

यथा—बाग तड़ाग बिलोकि प्रभु, हर्षे बन्धु समेत।
परम रम्य आराम यह, जो रामहिं सुख देत ॥

इस बाग तड़ाग के विषय में (जो मिथिला का एक विशेष अंग है) कुछ लोगों की ऐतिहासिक भावना में भिन्नता है। अवधवासी राय बहादुर सीताराम जी लिखते हैं कि लोगों के विचार में बाग और तड़ाग दो भिन्न पदार्थ हैं। पर नहीं, यह स्थान जनकपुर से १० मील पर है। और दरभङ्गा जिले के वेनीपट्टी थाने में "फुलहर" के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ ताल के तट पर गिरिजा मन्दिर है जो प्राचीन है, और इस के भीतर ३ फीट ऊँची एक गिरिजा की पाषाण मूर्ति है।

इस भूप बाग के समीप एक स्त्रियों के लिए भी पुष्पोद्यान था। वहाँ की रक्षिका माली कन्यायें थीं। और केवल गिरिजा की ही मूर्ति मन्दिर में स्थापित थी। यह भी एक मिथिला की बड़ी विशेषता है। कि गिरिजा की तपस्या का स्मरण कुमारियों के लिए कितना आवश्यक है; यह बात जनक

के जी में पैठ गई थी। इस से मिथिला की सदाशयता और जनक की दूर-दर्शिता खूब ही प्रकट होती है। स्त्रियों के लिए जो बगीचा था, उस में पुरुष माली तक का प्रवेश निषिद्ध था।

अगस्त्य रामायण में यही बात आई है:—

वैदेहोपवनस्यान्ते दिश्यैशान्यां मनोहरम्।
विशालं सरसस्तीरे गौरीमन्दिरमुत्तमम्॥
वैदेही-वाटिका तत्र नानापुष्पसुगुम्फिता।
रक्षिता मालिकन्याभिः सर्वर्तुसुखदा शुभा॥
प्रभाते प्रत्यहं तत्र गत्वा स्नात्वालिभिः सह।
गौरीमपूजयत् सीता मात्राऽऽज्ञप्ता सुभक्तितः॥"

सखियाँ दूर से ही सीता और राम की भेंट प्रक्रिया समाप्त कर के शीघ्र लौटने की चेष्टा करती हैं। वह भी मर्यादा के अन्दर ही।

बालक के सहायक संपादक मेरे अभिन्न अच्युतानन्द दत्तजी के शब्दों में तो यही कहना पड़ता है कि शकुन्तला की भाँति सीता की सखियों ने मर्यादा की अवहेलना कर उन्हें एकान्त में छोड़ कर चली नहीं जातीं, यह खूबी मिथिला के युवतियों में ही मिल सकती है।

मिथिला की संस्कृति ने ही मिथिला को धन्यवादार्ह बनाया है। और तो और, एक साधारण दूत दशरथ के यहाँ निमन्त्रण देने मिथिला से जाता है। उसे महाराज स्वयं ऐसे शुभ वृत्तवाहक के लिए कुछ न्योछावर देना चाहते हैं। हाथ दशरथ का उठ चुका है, कौन सा अमूल्य रत्न उन के हाथ में है। आखिर महाराज ही तो थे न जाने क्या देते; पर दूत कान मूँद कर स्पष्ट कह उठता है:— महाराज, मेरा लेना महान् अन्याय होगा।

सभा समेत राउ अनुरागे।
दूतहिं देन निछावर लागे॥
कहि अनीति तेहि मूँदेउ काना।
धर्म विचारि सबहिं सुख माना।

जहाँ पर एक दूत का यह व्यवहार है, उस मिथिला की समृद्धि की प्रशंसा क्या कोई कर सकता है?

राजा जनक ने जो राजा दशरथ को दहेज में सामग्रियाँ भेजी हैं उन के वर्णन देखने से ज्ञात होता है कि मिथिला में अजायब घर और चिड़िया-खाने भी थे। जनक ने रामचन्द्र जैसे जामाता के लिए जो दान दिया है, उस से पता चलता है कि मिथिला का राजकीय कोष बड़ा बृहत् था।

जानकी को बिदा करते समय उन की सखियों ने उन्हें पातिव्रत धर्म और नारी धर्म की भी शिक्षा दी थी। इस से मिथिला की पातिव्रतधर्म-प्रियता प्रकट होती है।

मिथिला की ही अनुसूया थी, जो कपिल की बहन थी। अत्रि मुनि से ब्याही गई थी। यह अपने पातिव्रत के कारण त्रिलोक में विख्यात हुई। जनक ने भी जानकी को बड़ी अच्छी शिक्षा दी है। पातिव्रत की शिक्षा सुनयना ने भी दी है।

इसी प्रकार मिथिला के विषय में यदि गाढ़ा अनुसन्धान किया जाय तो इस का और भी अद्भुत वैशिष्ट्य रामायणों में मिल सकता है। मिथिला में ज्योतिष-विद्या का भी काफी प्रचार सदा से चला आता है। मिथिला का गुप्तचर विभाग भी बड़ा ही कुशल था।

बहुत क्या, 'मिथिला सर्वमान्यास्ति सीता जन्म-संभवात्।' यही विशेषता क्या कम है?

—o—

मिथिला और भूकम्प

पण्डित श्रीयुत गिरीन्द्र मोहन मिश्र जी, एम्० ए०, बी० एल०, का० ती०

भीषण भूकम्प के हुए आज लगभग दो वर्ष हो गए। मिथिला प्रदेश के लिये भूकम्प कोई नई बात नहीं है। सौ वर्ष पहले अर्थात् १८३३ ई० में २६ अगस्त को लगभग इसी प्रकार का भूकम्प इस प्रदेश में हुआ था। यद्यपि यूरोपीय देशों में भी बहुत प्राचीन काल से भिन्न भिन्न स्थानों में हुए भूकम्पों का वर्णन है, किन्तु उस के वास्तविक कारण के विषय में पूरा अनु-सन्धान प्राचीन काल में नहीं हुआ था। वैज्ञानिकों की दृष्टि इस ओर १६ वीं शताब्दी में ही पड़ी है। तथापि कहना होगा कि कोई सिद्धान्त इस विषय में स्थिर नहीं हो सका है। इस का कारण भी स्पष्ट है। विज्ञान के लिये प्रत्यक्ष अनुभव की बड़ी आवश्यकता होती है, किन्तु भूकम्प की उत्पत्ति भूगर्भ में रहने के कारण वास्तविक प्रत्यक्ष अनुभव होना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव है; और इसलिये जिज्ञासुओं को केवल बाहर की सूरत देखकर अनुमान से अधिक काम लेना पड़ता है।

पृथ्वी के अन्दर कोई लहर पैदा होने से ही भूकम्प का होना कहा जाता है। और पृथ्वी के गर्भ में भिन्न भिन्न रूप और विभिन्न प्रकार के पदार्थों के रहने के कारण इस लहर का फैलाव एक रूप से या एक परिमाण से नहीं होता है, और भूगर्भ विद्याविशारदों ने इस लहर के होने के अनेक कारण बतलाये हैं।

इसी मिथिला प्रदेश में सौ वर्ष पूर्व लगभग इसी प्रकार के भूकम्प का होना यह बतलाता है कि दोनों भूकम्पों का वास्तविक कारण एक ही है। उस से भी पहले मिथिला प्रदेश अथवा भारत के अन्य प्रदेशों में भूकम्प अधिक हुआ करते थे, यह हमारे आचार्य्यों के लेख से स्पष्ट मालूम होता है। हमारे यहां के ज्योतिर्विज्ञान-वेत्ताओं ने इस विषय में पूरा अनुसन्धान भी किया है, और वैज्ञानिक रूप से इस के कारणों के पता लगाने की भी चेष्टा की है।

इस देश में विशेषतः प्राचीन काल में भूकम्प को पर्वतों से बहुत सम्बन्ध रहता आया है। हमारे पुराणों में यह बात प्रसिद्ध है कि पर्वतों को डैने हुआ करते थे और डैने के बल से वे आकाश में उड़ा करते थे और नीचे गिरते थे। उन से पृथ्वी को चोट पहुँचती थी और पृथ्वी काँप उठती थी। इस घोर पीड़ा से पीडित होकर पृथ्वी ने ब्रह्मा से जाकर कहा कि मैं नाम के लिए अचला हूं किन्तु उड़ने और गिरनेवाले पर्वतों के कारण काँपती रहती हूं। ब्रह्मा ने पर्वतों के कारण होनेवाले भूकम्प को रोकने के लिए इन्द्र को वज्रद्वारा पर्वतों के डैने काट लेने का आदेश किया। और इन्द्र ने पर्वतों के डैने काट लिए। तब से पर्वतों के उड़ने और गिरने के कारण भूकम्प का होना बन्द हो गया। इस बात का उल्लेख करते हुए वराहमिहिर ने अपनी "बृहत्संहिता" में लिखा है कि इन्द्र ने पृथ्वी से यह कहा कि यद्यपि

पर्वतों के कारण तुम को पीड़ा नहीं होगी किन्तु अन्य कारणों से तुम्हारा कम्प हो सकेगा। उन कारणों के विषय में यह कहा गया है कि दिन-रात्रि के चारों भागों में क्रमशः वायु, अग्नि, इन्द्र और वरुण के कारण पृथ्वी का कम्प हुआ करेगा—

"गिरिभिः पुरा सपक्षैर्वसुधा प्रपतद्भिरुत्पतद्भिश्च ।
आकम्पिता पितामहमाहामर-सदसि सव्रीडम् ॥
भगवन्नाम ममैतत्त्वया कृतं यदचलेति तन्न तथा ।
क्रियतेऽचलैश्चलद्भिः शक्ताऽहं नास्य खेदस्य ॥
तस्याः सगद्गद गिरं किञ्चित्स्फुरिताधरं विनतमीषत् ।
साश्रुविलोचनमाननमालोक्य पितामहः प्राह ॥
मन्युं हरेन्द्र धात्र्याः क्षिप कुलिशं शैल-पक्ष-भङ्गाय ।
शक्रः कृतमित्युक्त्वा 'माभैरिति वसुमतीमाह ॥
किन्त्वनिल दहन सुरपतिवरुणाः सदसत्फलावबोधार्थम् ।
प्राग् द्वित्रिचतुर्भागेषु दिननिशोः कम्पयिष्यन्ति ॥

इस तरह वायव्य, ऐन्द्र और वारुण भूकम्प के लक्षण दिए गये हैं। यह बात तो ठीक ही है कि कारण के विषय में केवल कल्पनाएँ की जा सकती थीं। नियमित रूप से किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त का होना सुलभ नहीं था। किन्तु इस से कम से कम इस बात का पता अवश्य लगता है कि पूर्व के आचार्य भिन्न भिन्न प्रदेशों में होनेवाले अनेक भूकम्पों के विवरण की परीक्षा करने ही से किसी प्रकार की साधारण कल्पना कर सकें हैं। इस प्रकार वारुण भूकम्प के वर्णन में 'वराहमिहिर' ने लिखा है—

वारुणमर्णवसरिदाश्रितघनमतिवृष्टिदं विगतवैरम् ।
गोनर्दिचेदिकुकुरान् किरात वैदेहकान् हन्ति ॥

इस से मालूम होता है कि मिथिला प्रदेश में इस प्रकार के भूकम्प अधिक हुआ करते थे। और तीन महानदियों से घिरे हुए रहने के कारण मिथिला देशवासियों को वारुण भूकम्प से अधिक कष्ट हुआ करता था।

और आचार्य्यों के अनुसार मिथिला प्रदेश में वायव्य और वारुण दोनों प्रकार के भूकम्पों से लोगों को पीड़ा होती थी। यथा—

आवन्तिकाः विदेह–काश्मीर–दरदवासान्त्यः ।
वाह्याश्रिताश्च वायव्यवारुणे प्राप्नुयुः पीडाम् ॥

जिस तरह भीषण भूकम्प का सामना १९३४ जनवरी में करना पड़ा था, और उस के बाद महीनों तक पृथ्वी कांपती रही। इस तरह भूकम्प के विषय में 'वराहमिहिर' ने कहा है—

षड्भिर्मासैः कम्पो द्वाभ्यां पाकश्च याति निर्घातः ।

जिस से भी स्पष्ट है कि बहुत प्राचीन काल में ऐसे भयङ्कर भूकम्प हुए हैं, जिन का असर महीनों तक जारी रहा है।

मिथिला देश में भूकम्प होने का कारण इस देश का हिमालय पर्वत के समीप रहना बतलाया जाता है। आधुनिक वैज्ञानिकों के हिसाब से पृथ्वी की उत्पत्ति प्रायः एक अर्ब वर्ष पहले हुई थी। और हिमालय पर्वत संसार के सब पर्वतों में अल्पवयस्क है। इस की आयु अभी केवल लगभग सात करोड़ वर्षों की हुई है। और इस कारण इस की शरीर-वृद्धि अभी तक चरम सीमा तक नहीं पहुँची है। नौजवान की तरह उस की उँचाई बढ़ती आई है, और बढ़ती जाती है। अर्थात् इस पर्वत का 'उत्पतन' और शरीर-वृद्धि के भार के कारण इस का 'अधःपतन' अभी तक बन्द नहीं हुआ है। मालूम होता है कि इस के डैने काटे ही न गये, अथवा गये भी तो अच्छी तरह नहीं।

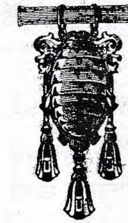
दक्षिण देश के पर्वत के वयोवृद्ध होने के कारण बहुत दिनों से ऊपर नहीं उठते। और इसलिए उन प्रदेशों में पर्वतों के कारण अब भूकम्प नहीं हुआ करते। यद्यपि पहले अधिकतर पर्वतों ही के कारण भूकम्प हुआ करते थे।

कमलाकर ने भी अपने "सिद्धान्त तत्त्व विवेक" में कहा है:—

'भूमिकम्पः पर्वतादौ सर्वदैवेति निर्णयः।'

हिमालय पर्वत संसार के पर्वतों में सब से ऊंचा है, तथापि अल्पवयस्क होने के कारण बढ़ता ही जाता है। इसलिये जब तक यह पूर्ण वयोवृद्ध नहीं होगा, तबतक अपने 'उत्पतन' और 'अधःपतन' के कारण पृथ्वी को कँपायेगा। इस प्रदेश के भूगर्भ का भाग उतना ठोस नहीं होने पाया, जितना अन्य प्रदेश का। मिथिला भूमि की तीन तरफ महानदियाँ बहती हैं। और एक तरफ विशाल हिमालय की अस्थिरता के कारण भी यहाँ के भूगर्भ के भाग में अभी तक समानता या साम्यावस्था होने नहीं पाई है। इसीलिये भूगर्भ के मृदुभाग तीव्र भूकम्प होने से बाहर निकल पड़ते हैं और पृथ्वी के गर्भ के भिन्न भिन्न पर्व जल्दी टूट पड़ते हैं। यही कारण है कि यहां की पृथ्वी कम्प होने से फट जाती है एवं पानी और बालू के सैकड़ों फौव्वारे निकल पड़ते हैं। गत भूकम्प की भीषणता के कारण गङ्गा के दूसरे पार मुङ्गेर आदि स्थानों में भी यद्यपि मकानों का सर्वनाश होगया किन्तु वहां के भूगर्भ के अधिक ठोस होने के कारण धरती नहीं फटी।

हिमालय की वर्तमान अवस्था में प्रायः हजारों या लाखों वर्ष तक मिथिला देशवासियों को ऐसे भूकम्प का सामना करने के लिये तैयार रहना पड़ेगा।



मिथिला में वनस्पति

प० श्रीयुत भुवनेश्वर झा जी वैद्यरत्न

जीवधारियों के लिये वायु और जल के बाद आवश्यक सामग्रियों में किस का स्थान है ? साधारण अवस्था में स्थिति कायम रखने एवं बल बढ़ाने का तथा रुग्णावस्था में रोगों के चंगुल से बचाने का प्रधान उपकरण कौन है ? इस का उत्तर मैं खुद न देकर आदरणीय वेद की एक ऋचा उद्धृत करता हूँ:—

"या औषधी पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहꣳ शतं धामानि सप्त च ॥
शतम्वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥"
(यजुः १२ अ० ७४-७५-ऋ०)

इन ऋचाओं में वनस्पति–सृष्टि को देवसृष्टि से भी पहले की बताई गई है । और उसे संसार का पालक कहते हैं । फिर भूख प्यास और रोग से बचाने की प्रार्थना की गई है । आगे चल कर वनस्पति वाले ब्राह्मण को भिषक् कहा गया है । यथा—

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समताविव ।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीव चातनः ॥
(यजु० १२ अ० ८० ऋ०)

आयुर्वेद तो इसी के गुण–निरूपण, रस–वीर्य विपाक आदि के विश्लेषण आदि से भरा पड़ा है । इतना ही नहीं, आयुर्वेद के त्रिकालदर्शी आचार्यों ने वनस्पति में प्राणि-धर्म का होना भी सिद्ध किया है—

"क्षुत्पिपासा च निद्राच वृक्षादिष्वपि दृश्यते ।
मृज्जलादानतस्त्वाद्ये पर्णसङ्कोचतोन्तिमा ॥"
(राज निघण्टु)

जिस देश में वनस्पति की कमी हो उस देश की उपमा मरु देश से दी जाती है । धन्य है वह देश, जहाँ की भूमि वन-उपवन से सुशोभित हो रही हो। यह सौभाग्य इस तीर्थभूमि मिथिला को प्राप्त है। जहाँ कोसों फल-फूलों के वन, हरी भरी सब्जी, लहलहे खेत, दर्शकों के चित्त चुराते रहते हैं ।

हिमालय और विन्ध्याचल आदि पर्वत औषधियों के प्रधान स्थान माने गये हैं, परन्तु योगिराज महाराज जनक के हाथ से स्वर्णलाङ्गल युक्त दिव्य हल से जोती हुई पुण्यमय यज्ञ भूमि मिथिला, जहाँ शीत, वर्षा, गर्मी, तीनों मौसमें बराबर हैं, असङ्ख्य वनस्पतियाँ मिल रही हैं। उन का उल्लेख करना इस प्रसङ्ग में आवश्यक होगा ।

त्रिफलादि वर्ग-आमला (औरा), हरड़े, बहेड़ा (ये दोनों–बरुआरी में अधिक पाए जाते हैं) पीपर, पीपरामूल, गजपीपल, चित्रक, अजमाइन, अजमोद (वनजमाइन) जीरा, काला जीरा, मङ्रैल, धनिया, सौंफ, सोआ, मेंथी, चनसूर, वायभृङ्ग, मेदा, (जो अस्थिसंधान कारक और पत्ते को पानी में मल, मिसरी के साथ पीने से स्वप्न दोष मिटाती है) मुलहटी, कवीला, (कविरा) अमलतास, चिरायता, निम्ब, महानिम्ब, इन्द्रजौ, मैनफल (छोटा बड़ा), रचना, मालकाङ्नी (मुजैली) हेमाह्वा, कायफल, भारङ्गी, पाषाणभेद, धातकी (धावा), कुसुम, लाख (लाही), हरदी, दारु हरदी, बनहलदी, बकुची, पमार (चकोर) पमार छोटी, लसुन, पलांडु, (प्याज), गाजर,

भैला, भांग, कोचिल आदि औषधियाँ देश भर में जहाँ तहाँ प्राप्त होती हैं ।

उस के अलावे अन्यान्य औषधियाँ जो अधिक पैदा होती हैं, ये हैं-अशोक दोनों, एरंड, व्याघ्र एरण्ड (बघंढा) आक (सफेद-लाल) धतूर, करिहारी (विष) अड़ूसा, पित्तपापरा (धनपापर) सेन्हुवार (सम्हालू) असौढ़, कुरैया, रीठा, घुघंची (लाल स्वेत) कवाछु, चीरी—वेंत, ईज्जर, वला—चतुष्टय, लक्ष्मणाकंद, (मनुष्याकार) अमरवल्ली, कपास, वाँस (कईभेद) नरकट, (नल) शरपत्ता, मूज, कास पटेर, मोथी, कुशा, डाभ, रोहिष तृण, अगिया, सुगंधमूल तृण, खस, चौरकाँटी, जवास, विदारीकन्द (बसैठ चैनपुरा में विशेष) मुसली (तालमूली प्रसिद्ध) शताबर, (मधुबनी डिवीजन में)—पाठा (पाढ़), निसोथ, (काला श्वेत) क्षुद्रदन्ती, (घंटी) इन्द्रारुनि, कालादाना (मारमरीच) जबासा, नील, महानील, सरफोंका, भंटी, अपामार्ग (लाल स्वेत), घीकुमारि, पुनर्नवा, (स्वेत लाल) गंधप्रसारिणी, सारिवा, (श्वेत काला) भृंगराज, मकोय (दोनों प्रकार के) शणपुष्पी, शंखपुष्पी, शिवलिंगी, त्रायमान, कौआठुठी, लज्जालू (दोनों) दुद्धी, भुइआंवला, ब्राह्मी, हुरहुर (सौवर्चल,) मूषाकर्णी, (पाना-पोठी) गुम्मा, सनैया, पनखेसर, गोभी, नकछिकनी, सुदर्शन, मोरशिखा आदि ।

अनुसन्धान करने से अनेक दुष्प्राप्य औषधियाँ मिलती हैं जैसे रुद्रवन्ती आदि बरौनी जंकसन से पूरब रेलवे लाइन के किनारे प्राप्त होती हैं ।

सुगन्धिवर्ग-श्वेत चन्दन, रक्त चन्दन, राल (धूमन) सरर गुग्गुल, तज, दालचीनी, पत्रज (तेजपात) भोज पत्र, ये अंशतः उत्तर भाग में और खस, कचूर, प्रियंगु, एकांगी, गठिवन, तालिसपत्र, पानड़ी, आदि सुगन्धिवर्ग की महौषधियाँ सर्वत्र मिलती हैं ।

फूल आदि-स्थल कमल, कुमुदिनी, सब प्रकार के कमल, नेवारी, बेला, चमेली (श्वेत पीली) जूही, कुन्द, चम्पा, मुचकुन्द, मौलसरी, हरसिंगार, मल्लिका कुब्जक, माधवी, केवड़ा, गुलइलायची, बन्धुक, (गुल दुपहरिया) जवा, ओड़हूल झव्वा, पंचमुखी (सन्यासी, नील) अगस्ति, दौना, कचनार चन्द्र–कला, अपराजिता, हेना, वर्ग हेना, गुलदाउदी कामिनी, मालती, आदि शत-सहस्र रंग विरंगे फूलों से यहाँ की वाटिकाएँ सुरभित रहती हैं ।

फल आदि—आम, कटहल, जामुन, वड़हड़, गुलजामुन, पपीता, नासपाती, कदली, अनार, सीताफल, सरीफा, लताम, बैर, इमली, निम्बु, रसगागर, आदि तरुफल और लताफलों में खरबूजा, खीरा, ककड़ी, तरबूजा, बतिया, एवं शाक–भाँजी में काम आने वाले प्रायः सभी फल यहाँ उपजते हैं। जिनका व्यापारिक दृष्टि से व्यवसाय खूब बढ़ाया जासकता है ।

ये तो हुई वनस्पतियाँ, अब इस सुजला सुफला भूमि की सस्यश्यामलता की ओर भी दृष्टि पात करें ! आलङ्कारिकों की भाषा में अनुर्वर भूमि को वन्ध्या स्त्री से उपमा दी गई है। मिथिला के खेतों की हरियाली, दृष्टि पार को छूती हुई सस्यावली-किस के हृदय को हरा न बना देंगी। हम इस उर्वर भूमि को भगवती अन्नपूर्णा का अवतार ही कहेंगे। यहाँ कुछ ही अनाज छोड़ कर प्रायः समस्त ही अधिक तायदाद में पोषक तत्त्व से भरे उपजते हैं। हम वङ्गकवि वङ्किम के स्वर में कहेंगेः–

'सुजलां सफलां सस्यश्यामलां मातरम्'

किन्तु इन वनस्पतियों के उल्लेख करते समय दुःख के साथ यह भी कहना पड़ता है कि आज देश की इन अमूल्य सम्पत्तियों की ओर से लोग उदासीन होने लगे हैं। खेत बनाने की लालच में वनस्पति कानन का उच्छेदन होने जा रहा है । इन स्वयम्भू वनस्पतियों के पहचानने की कोशिश, उन से फायदा उठाने की बुद्धि—दूर होती चली जाती है। आयुर्वेद के आचार्यों ने वनस्पति को व्यर्थ उखाड़ फेंकने वालों को बड़े ही कड़े शब्दों में निषेध किया है—

यस्त्वेतेषामात्मजन्मार्थं भार्जा मर्त्यः कुर्याच्छेदनादीन् मदान्धः।
तस्यायुष्यं श्रीः कलत्रं च पुत्रं नश्यत्येषां, वर्द्धते वर्द्धनाद्यैः॥

इन आर्ष वचनों के उल्लङ्घन से हमारा जैसा अनिष्ट हो रहा है, इसे हम खुद सोच सकते हैं।

अस्तु, इस क्षुद्रलेख की त्रुटियों के लिये क्षमा चाहता हुआ मैं समस्त मिथिलावासियों से अपील करूँगा कि वे अपनी इस वनस्पति सम्पत्ति की रक्षा के लिये ध्यान बटावें। वनस्पति देश की सर्वोपरि सम्पत्ति है, जो प्राण सङ्कट के समय काम आती है। अगर मिथिला वासियों ने इस आवश्यक विषय की ओर ध्यान न दिया तो वह समय आरहा है जब जंगल झाड़ियों में मिलने वाली बहुमूल्य अमृततुल्य औषधियों को छोड़ बाजार की सड़ी गली औषधियों के लिये घर की थैली लुटानी पड़ेगी।

क्या मिथिला की विवेक-शील जनता वनस्पति की रक्षा के लिये उसकी वृद्धि के लिये कमर कसेगी? और इस सस्यश्यामला स्वर्ण भूमि की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रखने की चेष्टा करेगी?

'येनेष्टं तेन गम्यताम्'



मैथिली की उत्पत्ति और विकास

श्रीयुत भोलालाल दास जी, बी० ए०, एल० एल० बी०

जिस तरह प्रतिक्षण बदलते और बढ़ते हुए शरीर के परिवर्तन का पता नहीं चलता, उस से कहीं अधिक मन्द क्रम से भाषा में होने वाले विकास और परिवर्तन का बोध हमें कुछ नहीं होता। पर वही क्रम कुछ शताब्दियों तक जारी रहकर कुछ ऐसा भेद उपस्थित करता है जो किसी अङ्कुरित भाषा को विशाल वृक्ष के रूप में परिवर्तित कर देता है या कभी उससे कोई नया प्ररोह ही पैदा कर देता है। मैथिली की उत्पत्ति और विकास में भी यह क्रम स्पष्ट है।

विद्वानों का अनुमान है कि वैदिक भाषा से दो भाषाएँ फूटीं; एक संस्कृत और दूसरी प्राकृत, जो उदीच्य, प्रतीच्य, मध्य, प्राच्य, और दाक्षिणात्य नाम से प्रथम भाषावर्ग के रूप में विभाजित हुई। इसी प्राच्य प्राकृत भाषा में भगवान् बुद्ध ने अपने अमर उपदेश दिये हैं, जिस से आगे चल कर मागधी और अर्धमागधी दो भाषाओं का जन्म हुआ। ईसा की छठीं और सातवीं शताब्दी तक इसका समय रहा। फिर ये अपभ्रंश के रूप में ढलीं।

उधर मध्यदेशी भाषा से सौरसेनी प्राकृत और फिर उससे भी सौरसेनी अपभ्रंश का विकास हुआ। मागधी अपभ्रंश से बिहार, बङ्गाल, कलिंग और आसाम का वर्तमान भाषावर्ग बना और अर्धमागधी अपभ्रंश से अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी आदि पूर्वी हिन्दी का जन्म हुआ। सौरसेनी अपभ्रंश से व्रज, कनौजी, बुन्देली, बांगरू-आदि पश्चिमी हिन्दी भाषाओं का विकास हुआ।

मैथिली आदि पूर्वीय भाषाओं को अर्धमागधी अपभ्रंश से विकसित होने के अनेक प्रमाण हैं। हिन्दी और मैथिली एक वंश की होने पर भी एक पिता की सन्तान नहीं हैं। दोनों में कई पीढ़ियों से अन्तर है।

आदिकाल

मिथिला में संस्कृत का आदर सदा से रहा है। प्रायः विद्वान् लोग चलित भाषा में नहीं लिखकर संस्कृत में ही ग्रंथ लिखा करते थे। हाँ, नाटकों में स्त्री पात्र और अधम पात्रों के कथोपकथन में लोक भाषा का प्रयोग करते थे। किन्तु बौद्धों ने चलित भाषा को ही अपनाया। यही कारण है कि प्राकृत, पाली, अपभ्रंश आदि भाषाओं में बौद्धों के अनेक ग्रंथ मिलते हैं। ई: ८वीं से १२वीं शताब्दी के लगभग उस समय की चलित भाषा में बौद्ध भिक्षुओं ने बहुत से स्फुट दोहे रचे, जिनका संग्रह 'सिद्धगान' नाम के प्राचीन ग्रन्थ में उपलब्ध है। जिसलिये इस में कही गई भाषा मागधी अपभ्रंश से उत्पन्न और मागधी प्राकृत के पुट में पगी है, इस लिये बहुतों ने इसे हिन्दी का और बहुतों ने इसे बंगला का आदि रूप माना है। किन्तु बौद्ध साहित्य के विशेषज्ञ महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इसे मैथिली-मगही का प्राचीन रूप कहा है।

भाषा की दृष्टि से मिथिला-मगध में उतना फर्क नहीं है, फिर नान्यवंशीय राजा नरसिंहदेव के

समय (१३ शताब्दी) में लिखेगये ज्योतिरीश्वर ठाकुर के 'वर्णन रत्नाकर' नाम के ग्रंथ में भी इन सिद्धों के नाम मिले हैं। कुछ ही समय के बाद फिर विद्यापति की 'कीर्तिलता' बनी है।

इन दोनों की भाषा को यदि सिद्धगान की भाषा से तुलना की जाय तो स्पष्ट मालूम पड़ेगा कि यह हिन्दी या बङ्गला का पूर्वरूप नहीं, मैथिली मगही का पूर्वरूप है।

जह मन-पवन न सञ्चरइ रविशशि नाह पवेश।
तहि वट चित्त विसाम करु सरहे कहिअ उवेश।
हाथेरे काङ्कण मा लोउ दापण, आपन अपा बुझतु निअ मण।
—सरहपाद (८वीं शताब्दी)

दशमि दुआरत चिन्ह देखइआ, आइल गराहक अपणे वहिआ।
चउसठि घड़िये देट पसारा, पइठल गराहक नाहि निसारा।
—बिरूपासिद्ध (९वीं शताब्दी)

खुणटी उपाड़ी मेलति काच्छि, वाहतु कामलि सद्गुरु पुच्छि।
—कम्बलपाद (९वीं शताब्दी)

दिवसे वहुदी काइड़ डरे भाअ राति भइले कामरु जाअ
अइसन चर्या कुकुरी पाएँ गाइड़ कोड़ि मझें एकुड़ी अहिं सनाइड़
भानथि कुकुरी पाए भवथिरा जो एथु बुझएँ सो एथु बीरा
—कुक्कुरीपाद सिद्ध

[डा० उमेश मिश्र के भाषण से उद्धृत]

वैसे तो ये सब पद प्राचीन मैथिली के हैं, परन्तु इन में कई शब्द शुद्ध ठेठ मैथिली के हैं। संचरइ, करु, भाअ, जाअ, अइसन आदि के व्यवहार को देख कर कोई पूर्वी हिन्दी के भ्रम में मत पड़ें। ये सब प्राचीन मैथिली के ही रूप हैं। इस प्रकार के प्रयोग वर्णनरत्नाकर और विद्यापति के काव्य में अनेक हैं। यथाः—

जहँ जहँ पद युग धरइ तहँ तहँ सरोरुह झरइ
—विद्यापति (पदावली)

तिहुअन खेत्तहि काञि तसु कित्ति वल्लि पसरेइ
अक्खर खम्भारम्भजो मञ्चो वन्धि न देइ
—विद्यापति (कीर्तिलता)

अब सिद्ध गान की भाषा से वर्णनरत्नाकर की भाषा का मिलान कीजिएः—

अथाखेटक वर्णना—'राजा काँ सर्वावसर भेला वन सञो सारज खावि हकार आइसि उपस्थित भउ कङ्कारी कावसु धावल कहल लद्धइत एक कइ गल छारि अ × त्मनि सेवा करु अक। सार जलावल गोचरुअक राजा उत्साह भउ अहेलाक साजन करण रजाएस भउ। तदनन्तर कइसन भउ, भद्र भद्र मृग मिश्र दषि (खि) न दशउ मनिक दण्ड वघेल दीपवाल आठओ जाति ये (जे) हाथि अथिकह, से नद मुख कइ महाउतन्हि आनि योध के उपगत करु अह।

पुनः विद्यापति की कीर्त्तिलता को देखेंः—

'एक हाट करेओ ओल औकी हाट करेओ कोल। राज पथक सन्निधान सञ्चरन्ते अनेक देखिअ वेश्यान्हि करो निवास जन्हिके निर्माणे विश्वकर्म्महु भेल बड़ प्रआस।'

लिखने की आवश्यकता नहीं कि मगध के सिद्धों के 'सिद्धगान' की भाषा 'वर्णनरत्नाकर' और कीर्तिलता की भाषा से भिन्न नहीं है। हाँ समय और प्रान्त का सूक्ष्म भेद अवश्य है। इस तरह मैथिली का जन्मकाल आठवीं या नवीं शताब्दी है। पीछे बंगला आदि पूर्वी भाषाओं की उत्पत्ति हुई। और इस तरह मैथिली के पूर्वजात होने से वह इन पूर्वी भाषाओं की बड़ी बहन ठहरती है।

इस समय जो प्रान्तीय भाषाओं में इतना भेद दीख रहा है उतना उस समय नहीं था। वह दिन भाषाओं का जन्मयुग था। एक तरफ हिन्दी भाषा-वर्ग अंकुरित हो रहा था तो दूसरी ओर पूर्वीय भाषावर्ग की रूप रेखा बन रही थी। अपभ्रंश का प्राकृत से सीधा सम्बन्ध था ही और विभिन्न प्राकृतों में भी अधिक बिषमता नहीं थी। सभी नवीन भाषाएँ एक परिवार की शिशु सन्तान थीं।

यही कारण है कि प्राचीन मैथिली हिन्दी और बंगला आदि में आज जैसा भेद नहीं था। इसी से मैथिली को हिन्दी के भेद मानने की भूल कुछ विद्वानों ने की है।

उल्लिखित तीन ग्रन्थों के अतिरिक्त एक डाक-वचनावली (दशवीं शताब्दी) थी, जिससे इसपर पूरा प्रकाश पड़ता। किन्तु लोगों की बोलचाल में बराबर व्यवहृत होने से उसकी भाषा प्राचीन रूप में दुर्भाग्यवश न रह सकी। फिर भी इन तीन ग्रंथों के ही मनन से यह स्पष्ट ह ता है कि मैथिली की रूप रेखा आठवीं शताब्दी में ही गठित हो रही थी। उस समय बहुवचन के चिह्न संज्ञा शब्द में न्हि, विशेषण में 'आह' क्रिया में 'अह' थे। कारक विभक्तियों में 'के' 'कइ' कर्म के, एँ करण के, सम्प्रदान कें लाए' 'सञो' 'सञो' अपादान के, अ क, कइ, काँ, केर करो आदि सम्बन्ध के और अधिकरण के मझ मझे और ए चिह्न थे। शब्दों के रूप में भेद था। ड के स्थान में ल, ख का ष व्यवहार था। घोड़ा भाड़ खोपा खुट्टी आदि की जगह घोला, भाल, षोपा खुण्टी कहे जाते थे। 'ऐ' 'औ' के स्थान में 'अइ' 'अउ' लिखने की चाल थी। जैसे करैत-करइत चौसठि-चउसठि आदि। क्रिया का रूप अविकसित था भूतकाल में उकार दिया जाता (सैन्यक पद भरें गंगा पाँक परिगउ मेरु रिट गउ) और शतृप्रत्यान्त में 'त' के स्थान में 'तें' दिया जाता (खेला-इतें आह') वाक्य योजना से, ये, तें, आदि द्वारा होती थी। जैसे-'शुक-सारिका आदि जे चटक तें आकीर्ण' इस प्रकार की बहुत विशेषता थी। अनेक शब्द ऐसे भी थे जिनके व्यवहार उठ जाने से अब उनका अर्थ लगना भी कठिन होगया है।

मैथिली का आरम्भिक काल ८ वीं से १२ वीं शताब्दी तक था। यही आज कल के लिये दुर्बोध भाषा उस समय मिथिला की साहित्यिक लोक भाषा थी। संस्कृत का व्यवहार केवल विद्वानों में था। जन साधारण में अभट्ट (अपभ्रंशोद्भूत) भाषा को छोड़कर धीरे धीरे मध्यमैथिली का व्यवहार होने लगा था। ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने भी कहीं कहीं इसी लोक-भाषा का व्यवहार किया है।

इस तरह मैथिली का उत्पत्ति-काल ८ से १२ वीं शताब्दी तक, विकाश १३ से १६ वीं तक और आधुनिक रूप सतहवीं के बाद देखने में स्पष्ट आता है।

माध्यमिक काल

यह काल मैथिली-साहित्य के उपवन का वसन्त था। इस समय इस के अनेक अनुपम काव्य-कुसुम फूटे, दिगन्त सुरभित हो उठा। इसी समय की अतुलनीय कविता-शैली ने बंगाल में व्रजबोली का बीज वपन किया, नेपाल के सुकुमार साहित्य में जीवन दिया और उड़िया एवं आसामी को अनुप्राणित किया। इस युग के साहित्य का इस छोटे से लेख में परिचय देना प्यासे को ओस चटाना होगा। हम यहां केवल उस समय की भाषा के विकास की चर्चा करेंगे।

इस समय का मैथिलीसाहित्य उमापति (जो डा० ग्रियर्सन, डा० उमेश मिश्र-आदि के मत से विद्यापति से प्राचीन हैं) और विद्यापति की भाषा पदावली से प्रारम्भ होता है। विद्यापति ने अपनी अधिक रचनाएँ संस्कृत में की हैं, फिर अवहट्ट (प्राकृत) में और पदावली का प्रचलित मैथिली में। इस से यह स्पष्ट है कि उस समय

तक चलित मैथिली की कविता ऊँची दृष्टि से देखी नहीं जाती थी। ज्योतिरीश्वर के 'वर्णन-रत्नाकर' में भी चलित मैथिली का प्रयोग कम देखते हैं। केवल उमापति ने अपने ग्रन्थ में उस का छूट कर प्रयोग किया है। विद्यापति कीर्तिलता की भाषा के विषय में 'देसिल बअना' देशी भाषा कहते हैं जिससे डा० उमेश मिश्र आदि विद्वानों ने अपभ्रंश और मैथिली के बीच 'मैथिली अपभ्रंश' भाषा का अस्तित्व माना है। किन्तु कीर्तिलता की अवहट्ट वर्णनरत्नाकर की भाषा से भी दुरूह है और पश्चिमी भाषा से बहुत मिलती जुलती है। जिस से वह मैथिली अपभ्रंश भाषा नहीं मालूम होती। चन्दवरदाई के रासो से इसकी भाषा की तुलना कीजिये—

' बजिय घोर निसान रान चहुआन चिहौदिस,
सकल सूर सामेत समरिवल यंत्र मंत्र तस
उट्ठिराज पृथिराज बाग लग मनो वीर नट,
कढ़त तेज मनो वेग लगत मनो वीज झड़ पट ॥'
' सरस काव्य रचना रचौ खल जन सुनी न हसंत।
जैसे सिन्धुर देखि मग स्वान सुभाव भुसंत ॥'

चन्द [पृथ्वीराज रासो]

अस पुरुस पसंसओ राय गुरु कित्तिसिंह गएगोस सुअ।
जें सत्तु समर सम्मदि कहु बप्पवैरि उद्धरिअ धुअ।
' पक्ख न पाखै पाउआ अंग न राखै राउ।
फूरण वौले सूअणा धम्म मंत कह जाउ ॥'

—विद्यापति [कीर्तिलता]

स्पष्ट है कि यह विद्यापति के समय की न तो चलित भाषा है और न इसे मैथिली-अपभ्रंश कह सकते हैं। अपभ्रंश और चलित मैथिली के सन्धि-काल में मैथिली अपभ्रंश का अस्तित्व होना हमें भी स्वीकृत है, किन्तु उसका कुछ रूप खिद्गगान और वर्णनरत्नाकर में है। कीर्तिलता की भाषा मागधी प्राकृत से मिलती हुई सूरसेनी प्राकृत के प्रभाव को लेकर चली है। सम्भवतः कीर्तिलता के वर्णन के अनुसार जब विद्यापति कुमार कीर्तिसिंह के साथ जौनपुर दिल्ली आदि गये थे वहीं उनपर पश्चिमी भाषा का यह प्रभाव पड़ा हो।

पीछे चलकर विद्यापति ने अपनी सुप्रसिद्ध पदावली में चलित मैथिली का प्रयोग किया है। यद्यपि अत्यधिक प्रचार के कारण विभिन्न लोगों के उच्चारण आदि के प्रभाव से उसका शुद्ध रूप मिलना कठिन हो रहा है। किन्तु सौभाग्यवश लोचन (१८वीं श०) की रागतरंगिणी में इस का कुछ स्वाभाविक रूप मिलता है। उसी से दो चार पंक्तियां उद्धृत करते हैं।

"साँझक बेराँ जमुनाक तीराँ कदवेरी वन तरु तरा
अकमि कानरा कि कहब काला सोझांहि बुझल सखि कुसुमसरा
'कण्ठ गरल नहिं मृगमद चारु फणिपति मोरा नहि मुकुताहारु
भनइ विद्यापति सुन देव कामा एक दोस अछ ओहि नामक वामा ॥

—विद्यापति [पदावली]

अन गुन परि हरि हरखि हेरु धनि मानक सवधि विहाने।
हिम-गिरि-कुम्मरि-चरण हृदय धरि सुमति उमापति भाने ॥"

—उमापति [पारिजातहरण]

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि यदि उमापति और विद्यापति मैथिल पण्डित के स्वभावानुसार लोकभाषा में अपनी रचना न करते इसका विकास सदियों तक और रुका रहता।

विद्यापति के बाद बीच के अनेक कवियों को छोड़ कर हम गोविन्ददास की ओर आते हैं। भावगाम्भीर्य्य, सुन्दर कल्पना और सब से बढ़ चढ़ कर पदसौष्ठव के लिये गोविन्ददास अद्वितीय हैं। इन के गीतों में मैथिली का रूप मँज गया है। मालूम होता है इनकी भाषा-सुन्दरी पुरानी को छोड़ नई शैली के वस्त्र का धारण कर रही है। एक पदांश सुनिये—

" कोटि कुसुमसर वरिसय जे पर तेहि कि जलद जल लागि,
प्रेम दहन कर हृदय जकर पुनि ताहि कि वज्रक आगि।
जसु पद तल हम जीवन सौंपल ताहि कि तनु अनुरोध
गोविन्द दास कहय धनि अभिसरु सहचरि आओल बोध ॥"

इन के एकान्तर अनुप्रास के अनेक पदों में एक का कुछ अंश पढ़िये। कवि की कुशलता के साथ ही मैथिली भाषा की विशदता का अनुमान कीजिये—

कांचा कंचन कांति कमल मुखि कुसुमित कानन जोइ।
कुंज कुटीर कलावति कातर कान्हु कान्हु की रोइ ॥
कि कहब कितव कत जे कुलकामिनि कठिन कुसुमसर सहइ।
करहि कपोल केश कन कुंचित कालिन्दीकूल से रहइ ॥' इत्यादि

वास्तव में यह मैथिली के लिये स्वर्णयुग था। मैथिली के अत्यन्त अनुरागी श्रीमान् युवक मिथिलेश की कृपा से सत्रहवीं सदी के कवि लोचन की रागतरंगिणी जो हाल में ही खोज कर प्रकाशित की गई है, उसमें उस समय के ३७ मैथिली-कवियों के गीत संगृहीत हैं। हिन्दी के सूर्य और चन्द्र महाकवि सूरदास और गो० तुलसीदास के कुछ बाद ही लोचन हुए हैं। उस समय ब्रजभाषा सारे उत्तरीभारत की काव्य-भाषा हो रही थी। लोचन ने भी ब्रजभाषा के गीतों को उद्धृत किया है। पर उसमें उन्हों ने ब्रजभाषा को मध्य देशभाषा और विद्यापति की भाषा को देशी भाषा कहा है। लोचन ने स्वयं ब्रजभाषा (हिन्दी) और मैथिली गीत रचे हैं। दोनों को पढ़ने से स्पष्ट भेद देख पड़ता है।

कहतनटनारायण नारि जेहिनाही हनुमन्त यातें जामे नितवादहै
विरंचि कतगीतमें विराजै नितलोचन रसीली पतिहोना परमादहै

पुनः (मैथिली)—

नन्दवदन विहुसिया, मधुवन जाइतें मिलत तोर रसिया…
सुनसि न मधुर मधुर मुरली रव सुकृत सफलकर सवे समुचित नव।
लोचन भन बुझ सरस विमलमति मधुमतिपति महिनाथ महीपति ॥

सत्रहवीं सदी के आदि भाग के गद्य का एक नमूना भी लीजिये—

"हमरा वहियाक हराइक बेटी पदुमी नाम्नी गौरवर्णा जे तोहरें बेटाजे श्रीकृष्णाजे बियाहलि से हमें एक टका लए तोहरा हमें देलियाजे। ताहि सञो हमराँ कञो लने सम्बन्ध नहिं।" (१६१५ ई० का लेख) डा० उमेश मिश्र के भाषण से।

सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक मैथिली भाषा का पूर्ण विकास हो चुका। किन्तु बाद भी इसकी विकास-धारा बन्द न हुई। क्रिया के रूप में इधर विलक्षण परिवर्तन हुआ। जहाँ हिन्दी में क्रिया का रूप कर्ता कर्म के अनुसार बदलता और लिङ्ग भेद प्रधान रहता है वहाँ मैथिली में लिङ्ग-भेद क्रम से गौण बन रहा है और क्रियाएँ कारकों के अनुसार बदलतीं। आदर, अत्यादर, अनादर आदि भावों के साथ क्रिया के रूप भिन्न होते हैं जो अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होते। यह सब परिवर्तन १७ वीं सदी के बाद हुआ है, जिसे हम वर्तमान काल कहते हैं।

वर्त्तमान काल

इस काल में मिथिला-भाषा वर्तमान रूप के साँचे में ढली। जिसका ठेठ रूप मनबोध के 'कृष्णजन्म' (१८ वीं शताब्दी) के पदों में हमें प्राप्त होता है—

"कतओक दिवस जखन बिति गेल, हरि पुनि हथगर गोड़गर भेल।
से कोन ठाम जतय नहिं जाथि, कय वेरि आङनहु सँ बहराथि ॥
द्वार उपर सौं धरि धरि आनि, हरखित हँसथि यशोमति रानि।
कय वेरि आगि हाथ सौं छीनु, कय वेरि पकला तकला वीनु ॥"

इस ग्रंथ के अध्ययन से मैथिली के वर्तमान रूप का विकास और इसकी स्वतन्त्र सत्ता स्वयं सिद्ध होती है। बाद मैथिली अपने वर्तमान रूप तक पहुँच जाती है, जिसे भाषा-विकास की दृष्टि से सन्तोषजनक ही नहीं बहुत ही आशावर्धक

कहेंगे। किन्तु साहित्य की दृष्टि से इस की वह अभ्युन्नति की धारा विपरीत परिस्थिति के चट्टानों से रुक जाती है। बहुत से छोटे-मोटे ग्रंथों का निर्माण इधर भी हुआ है किन्तु वह दिगन्त-व्यापिनी सुरभि इस की फिर कहाँ ? विद्यापति और गोविन्द दास की प्रतिष्ठा रखनेवाला मैथिली में इधर कोई नहीं !

फिर कुछ पीछे चल कर चन्दा झा, हर्षनाथ झा, जीवन झा आदि कवियों का उदय होता है, जिन की रचनाओं में हमें वर्तमान भाषा का स्थिर रूप देखने में आता है। उदाहरण लीजिये—

पदा पदा बड़ा बड़ा गृहाट्ट जारि देलकौ।
विदेहकन्यका विपत्ति जानि, कानि लेलकौ॥
बहुत छोट बानरे सभैक हाल केलकौ।
प्रचण्ड दण्ड देनिहार दूत चोर धैलकौ॥

—चन्दा झा (रामायण)

रानि हे सुनिय वचन दय कान।
जैंओ मोर मानिय दोष रोष करि, करु धनि, दण्ड-विधान॥

—हर्षनाथ (माधवानन्द)

विरह व्यथा अति आकुलि रमनी, सकल कलेवर केवल धमनी।
सहजहि पातर लकलक हियकर धक धक रे की ॥ १ ॥
लय पुरइन दल विरचल शयने, धनि कपोल कर पङ्कज धयने।
तदपि मदन जर छकछक लगइछ अकसक रे की ॥ २ ॥
घसि चानन रस लेपिय सजनी, कोन परि युग सम खेपिय रजनी।
किछु न चलइ अछि अकबक परिजन अकसक रे की ॥ ३ ॥

—जीवन झा

मोहि तेजि गेल मनमोहन मोह न तनि हिय रे।
तनि विनु निशि नहि निरवह निर वह लोचन रे॥
सून भवन सुन आङन आङ न थिर रह रे।
सुमरि सुमरि गुण गौरव गौरव सभ गेल रे॥
कि कहब अचरज नीरस नीर समय बित रे।
मोहि नहिं भावय चानन चान न मोर हित रे॥

—अज्ञात

पहिल समागम दिन छल, हृदय मलिन छल रे।
बितल पहर निश तिन छल, सखि सब निन छल रे॥
ताहि समय पहु जागल, अति अनुरागल रे।
पिबय अधर रस लागल, धैरज भागल रे॥
की ने कहल हम रहि रहि, नहिं नहिं कहि कहि रे।
तदपि कयल कुच गहि गहि, निज रुचि सभ सहि रे॥

—भीमदत्त झा

'खसल निशुम्भ महा वलवान, संज्ञालुस सुतल हतज्ञान।
देखि निशुम्भ काँ महि में पड़ल, आएल शुम्भ क्रोध अति भरल॥'

—लालदास (चण्डीचरित्र)

'मैथिल आब रहू थिर भै निरभै करु काज लगै अछि जे सक।
मान्य सनातनधर्मक ऊपर पूर्ण कृपा अछि श्रीमिथिलेशक।
सूनब फूसि न कान कथा नहिं नाम कतौ पुनि पाप कलेसक।
ऐखन देखि पड़ै अछि जे ध्रुव होएत उन्नति भारत देशक॥'

—श्रीसीताराम झा (अलंकार-दर्पण)

स्थानाभाव से अन्य यशस्वी कवियों के ग्रंथों से उद्धरण न दे सका और न मैथिली साहित्य का सौन्दर्य दिखला सका। वह हमारा विषय भी नहीं और समय भी नहीं। गद्य के उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं। मैथिली का वर्तमान रूप सभी के समक्ष है। यद्यपि वर्तमान काल जहाँ और और भाषाओं के साहित्य के लिये वसन्त का समय सिद्ध हुआ है, वहाँ यहाँ ग्रीष्म की लू जल रही है। आज मैथिली की छोटी बहनें जहाँ अपने अधिकार और स्पृहणीय विकास के कारण सबों के सम्मान-भाजन हैं, वहाँ मैथिली दुत्कार के फटे चीथड़ों में खँडहर की रानी बन रही है। वह अपना योग्य आसन कब ग्रहण करती है, यह भविष्य के हाथ है। पर हमारी यह दृढ धारणा है कि यह हीरा बहुत दिनों तक धूलि में लेटा न रहेगा। जौहरियों की दृष्टि बहुत दिनों तक धोखा नहीं खा सकती !

हरिसिंहदेवीय समाजपद्धति

प० श्री कपिलेश्वर मिश्र 'वैयाकरण शिरोमणि'

मिथिला की सामाजिकता एक ऐसी भित्ति पर खड़ी की गई है, जो युग की आँधी में एक सी अटल है। यह परिवर्त्तन इस युग में चाहे अस्वाभाविक ही जँचे पर है एक विलक्षण और विशेषतायुक्त। छः सौ वर्ष हुए, जब नान्यवंशी महाराज हरिसिंह देव मिथिला के राज्यसिंहासन पर विराजमान थे उसी समय सती ब्राह्मणी के 'नाहं चाण्डालगामिनी' शपथ को लेकर एक विचित्र घटना घटी जो इस समाज-पद्धति का मूल कारण हुई। (देखिये 'मिथिला में नान्यवंश का शासन' पृ० सं० ६८ सम्पा०)

'चाण्डालः स्वजनागामी चाण्डालः स्वजनासुतः।'

अर्थात् अपने सम्पर्की में गमन करने वाला या उसमें उत्पन्न सन्तान दोनों ही चाण्डाल हैं। इस मर्यादा की रक्षा के निमित्त तब से महाराज हरिसिंह देव ने पञ्जी चलाई जो सम्बन्ध ढूँढ़ने में सहायक हुई। और सभी के नाम मूल गोत्र सहित उसमें दर्ज होते रहे।

हर एक देश और जाति में भिन्न-भिन्न प्रकार की वैवाहिक प्रथाएँ हैं। एक निश्चित सीमा तक अपने सम्बन्धी में वैवाहिक सम्बन्ध न करना यह प्रायः प्रत्येक देश के हर एक समाज का नियम है। हिन्दू धर्मशास्त्र में कहा है—

"असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥"
"मातृतः पञ्चमं त्यक्त्वा पितृतः सप्तमं भजेत्।"

मातृपक्ष का असपिण्ड सात पीढ़ियों से ऊपर और पितृपक्ष में अपने गोत्र से भिन्न असपिण्ड कहलाते हैं। उन्हीं में विवाह हो सकता है।

इसी विचार में लीन राजा हरिसिंह देव ने सोच विचार कर एक बहुत बड़ा यज्ञ आरम्भ किया। राजा की यह घोषणा हुई कि उसमें विना किसी कारण के जो उपस्थित न होंगे उनको राजा की आज्ञा भङ्ग करने के अपराध में दण्ड दिया जायगा। इसको सुन कर नियत तिथि में राजसभा में सब के सब उपस्थित हुए। उन लोगों से मैथिल ब्राह्मण और कायस्थों का परिचय जहाँ तक प्राप्त हो सका वह लिखा गया, बहुत आदमी लोभ और कौतुक से अपने नित्यकर्म को तिलाञ्जलि देकर सबेरे ही राजसभा में उपस्थित हुए। केवल २६ कर्मठ ब्राह्मण नित्यकृत्य करते सूर्यास्त के पीछे आये। विलम्ब के कारण पूछने पर उन लोगों ने जवाब दिया कि महाराज, हम लोगों को द्रव्य से कुछ प्रयोजन नहीं, राजा की आज्ञा का भङ्ग करना पाप है, इसलिये इस समय भी उपस्थित हो सके हैं, बहुत संक्षेप और शीघ्रता करने पर भी हमलोगों का नित्यकर्म अधूरा ही रह गया।

उन लोगों की विद्या, बुद्धि, तेज और सदाचार को देख कर महाराज ने निश्चय किया कि इतने ब्राह्मणों में ये ही २६ ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ हैं, इन्हीं लोगों से मेरा राज्य गौरवान्वित है। उनमें जो १३ व्यक्ति धुरन्धर वेदज्ञ और वैदिक क्रिया कलाप में निष्णात थे वे लोग अपने कर्म के अनुसार श्रोत्रिय कहलाये और जिन लोगों में इसकी पूर्ण योग्यता थी जो इसके पूर्ण अधिकारी थे वे १३ व्यक्ति योग्य हुए। ये ही व्यक्ति श्रोत्रिय और योग्य अवदात कहलाये। इन दोनों के अतिरिक्त जो ब्राह्मण थे वे सामान्य (जयवार) ब्राह्मण में परिगणित हुए। पञ्जी प्रबन्ध में लिखा है—

"शाके श्रीहरिसिंहदेवनृपते भूंयार्क तुल्येजनि-
स्तस्मादन्तमितेब्दके द्विजगणैः पञ्जीप्रबन्धः कृतः।
तस्माद्वै द्विजबीजिवंशकलितं यद्विप्रचक्रे पुरा
तद्विप्राय समर्पितं सुकृतिने शान्ताय सर्वार्थिने॥"

"ब्राह्मणानां समुत्पत्तिं सद्बीजि करणं तथा ।
करोति रघुदेवाख्यः पाण्डुपञ्जीविनिश्चयम् ॥"

ब्राह्मणों के वंशपरिचय लिखने वालों में प्रधान पञ्जी मूलक मैथिल ब्राह्मण रघुदेव झा थे। इनके वंशज और शिष्योपशिष्य भी कुलपरम्परा से आज तक इस काम को करते आये हैं। और विषयों के समान ही इस पञ्जी का भी शास्त्रीय अध्ययन वर्षों तक करना पड़ता है। इस विषय के पूर्ण ज्ञाता होने पर वे पञ्जीकार कहलाते हैं। इसकी* धौत-परीक्षा भी होती है। वर और कन्या को कहीं किसी प्रकार का सम्बन्ध न पाता हो इस बात को पञ्जीकार लोग खूब अच्छी तरह से जाँच लेते हैं। प्राचीन प्रथा के अनुसार ताल के पत्र पर सिद्धान्त लिख कर जब ये स्वस्ति देते हैं, तब दोनों का सम्बन्ध होता है। सिद्धान्त पत्र पर वर और कन्या के मातृपक्ष और पितृपक्ष के तीन-पूर्वज पुरुषों के नाम लिखते हैं।

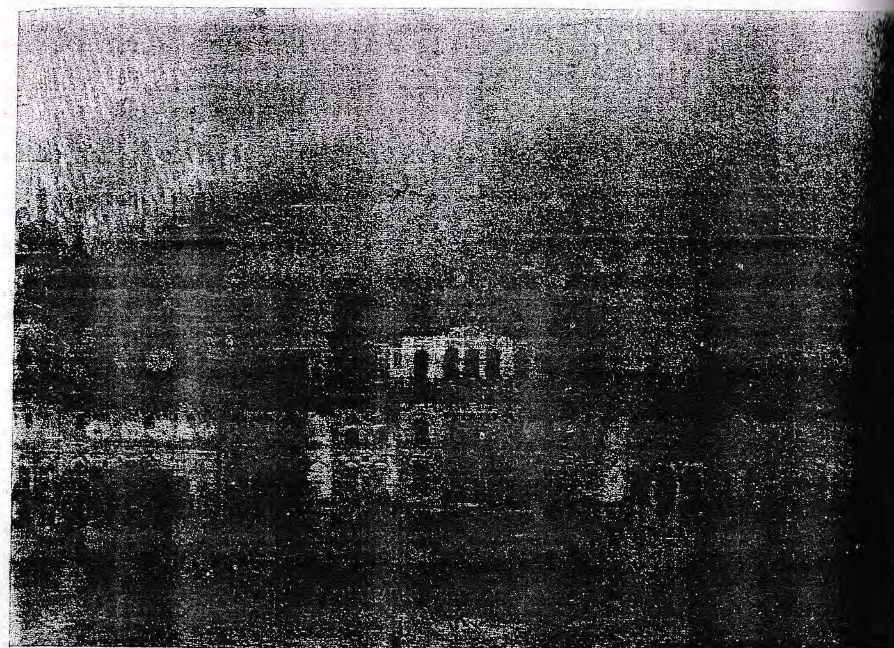
इस समाज पद्धति का प्रचार विशेषतः मैथिल ब्राह्मणों और कर्ण कायस्थों में हुआ। कहते हैं कि पहले यह प्रथा चारों वर्णों में थी, जो धीरे धीरे लुप्त हो गई।

महाराज हरिसिंह देव की यह इच्छा थी कि श्रोत्रिय और योग्यश्रेणी के ब्राह्मण भी यदि कर्म-च्युत होंगे तो वे निम्न श्रेणी में किये जायँगे और निम्न श्रेणी के ब्राह्मण भी विद्या से सुशोभित होकर कर्मठ बनेंगे तो उच्च श्रेणी में दाखिल किये जायँगे। इससे इस देश में विद्या बुद्धि और कर्म की उन्नति होगी।

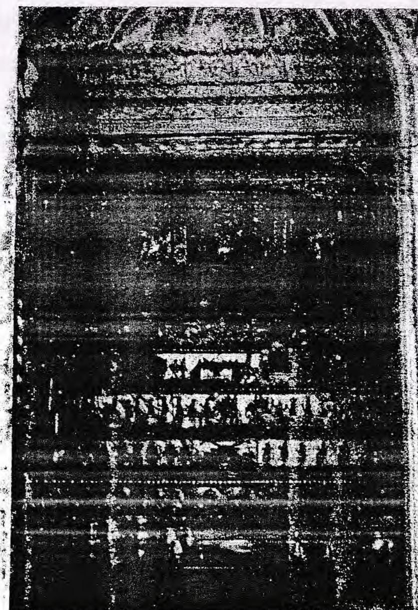
हरिसिंह देवी व्यवस्था यद्यपि अब अपने रूप में नहीं है परन्तु किसी न किसी रूप में वह अब तक चली आती है। महाराज हरिसिंह देव के बाद जब १३ घर श्रोत्रिय और १३ घर योग्य को आपस में जहाँ वैवाहिक सम्बन्ध न हो सकता वहाँ वे लोग 'स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि' इस सिद्धान्त के अनुसार जयवार ब्राह्मण के यहाँ भी सम्बन्ध करते थे और विवाह के बाद ही कन्या को साथ लेकर अपने घर आते थे। उससे जो सन्तान होती वह अपने ही बराबर कुलीन समझी जाती थी। निम्न श्रेणी के ब्राह्मणों में भी जो विद्वान् और कर्मठ होते थे उनको प्रतिष्ठित समझ कर 'विद्यया कुलम्' इस आधार पर समाज उनको उच्च श्रेणी में ले लेता। इस प्रकार कुछ समय के बाद जब कुलीनों की संख्या में वृद्धि हुई तब यह नियम न चल सका।

अपने समान की श्रेणी के वंश में सम्बन्ध करने से सन्तान समश्रेणी की और छोटे कुल में सम्बन्ध होने से वंशज निम्न श्रेणी के बन जाते हैं। पर उच्च श्रेणी में पहुँचने को कई पढ़ियों तक उच्चकुल का सम्बन्ध आवश्यक होता है। यह नियम अब तक चला आता है। बहुत से सज्जन प्राचीन कुलीनों के यहाँ कुछ पीढ़ियों तक सम्बन्ध करने से नये कुलीन बने और उसके प्रवर्तक प्रधान व्यक्ति के नाम से या उस ग्राम के नाम से नयी (लौकित) पञ्जी (पाँजि) कायम हुई। प्राचीन कुलीनों की सन्तानें तो अपने पूर्वजों के नाम से ही प्रसिद्ध थीं। वही उनकी (लौकित) पाँजि कायम हुई। इन्हों ने अपनी कुलीनता का मूल्य लेना शुरू किया जो अब हमारे समाज पर अभिशाप के रूप में है। इससे कुछ बुरे परिणाम भी निकले। फिर भी शास्त्रीय दोष बचाने में अपने पूर्वज की नामावली सुरक्षित रखने में इस पद्धति से बड़ी सहायता मिली।

* मिथिलेश महेशठाकुर के समय से यह विद्वत्परीक्षा चली है। उत्तीर्ण विद्वानों को मिथिलेश सम्मान सूचक धौतवस्त्र प्रदान करते हैं। —लेखक।



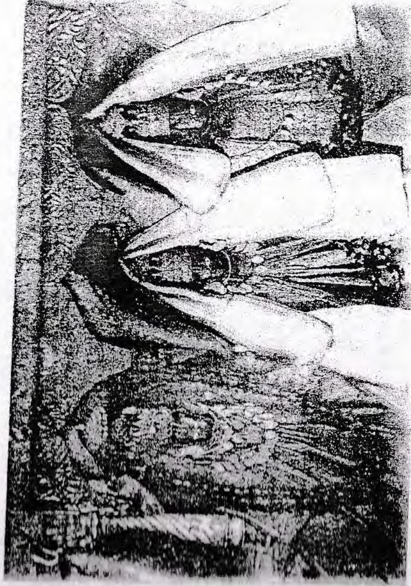
श्रीजानकीजीका नौलखा मन्दिर



श्रीजानकीजीके मन्दिरमें जानकीजीका सिंहासन



श्रीजानकी मन्दिरके भीतर जगमोहनजीके मन्दिरका प्र

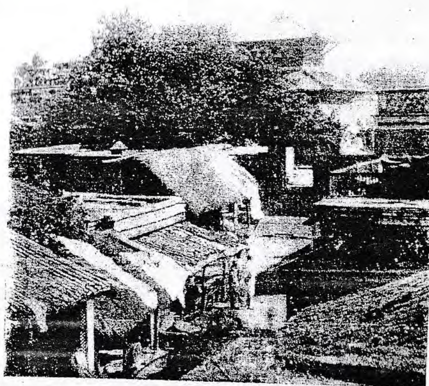


श्रीरामजीके मन्दिरमें प्राचीन मूर्तियाँ



श्रीलक्ष्मणजीका मन्दिर







श्रीरामजीके मन्दिरका पश्चिमी दृश्य

GITA PRESS, GORAKHPUR.

विविध विषय

मिथिला के तीर्थ स्थान

श्री रामनिरेषण मिश्र सा० शा०

तपोभूमि इस मिथिला के प्रत्येक भूभाग में तीर्थ, सिद्धपृष्ठ, देवालय, सर, नदी, कुण्ड, कूप, ऋष्याश्रम आदि हैं, जो देवताओं के अवतार, सिद्धों की साधना, ऋषियों की तपस्या से परिपूत हैं। यहां मुख्यतः देवीतीर्थ, शिवतीर्थ और विष्णुतीर्थ हैं। इन पुण्य तीर्थों से ही तीर्थों में मिथिला का सब से पहला स्थान है। कहा है—

'मिथिला सर्वतः पुण्या सुराणामपि दुर्लभा।
अतस्तीर्थेषु सर्वेषु मिथिला पूज्यते सदा'॥

ऐसी पवित्र भूमि के तीर्थों का पूरा परिचय एक पोथे में ही आसकता, यहाँ सूची मात्र दी गई है।

कुछ प्रसिद्ध तीर्थ

जनकपुर—यह तीर्थ मिथिलेश योगी जनक की राजधानी, जगज्जननी जानकी जी की मातृभूमि, और जगत्पिता भगवान् रामचन्द्र की विवाह-भूमि है। वह पुराण-प्रसिद्ध रामायण-प्रथित विशाल जनकपुर पीछे एक घने जङ्गल के रूप में परिणत हो गया। प्राचीन मूर्तियाँ कुछ खंडहर और जङ्गल के सिवा कुछ नहीं था। साढ़े तीन सौ वर्ष हुए रामानन्द सम्प्रदाय के महात्मा शूरकिशोर जी, जानकी जी के परम भक्त हुए हैं, उन्हें स्वप्न में जानकी जी की आज्ञा मिली कि तुम मेरी जन्म-भूमि मिथिला में जाकर रहो। तब "रही और न ठौर कहूँ जग में तब शूरकिसोर तकी मिथिला" कहते जनकपुर की खोज में चले। जङ्गल छाना, प्राचीन मूर्तियां मिलीं सब चिह्न प्राप्त हुए। फिर नेपाल सरकार की सहायता से जङ्गल काट कर मन्दिर बनाये गये। महात्मा जी की शिष्य परम्परा चली। और २८ वर्ष हुए टीकमगढ़ की रानी ने यहाँ नौ लाख रुपये खर्च कर नौलखा मन्दिर बनवाया। फिर जनकपुर मन्दिरों से भरकर दर्शनीय तीर्थ के रूप में आगया। इस के माहात्म्य का वर्णन शास्त्रों में बड़ी प्रचुरता से है। मिथिला का यह सर्वोपरि तीर्थ है।

श्रीक्षेत्र—यह तीर्थ जनकपुर से पच्छिम 'पुनौरा' ग्राम में (मुजफ्फरपुर) लखनदेई नदी के तट पर है। सीरध्वज जनक के इसी यज्ञस्थल में जानकी की उत्पत्ति हुई। कहा है—"दुर्गात्पश्चिमतो भागे योजनात्रितयात्परम्।
यज्ञस्थलं नरेन्द्रस्य यत्र लाङ्गल-पद्धतौ॥
समुत्पन्ना महाभागा सीता राघववल्लभा"।

यहाँ एक प्राचीन कुण्ड भी वर्त्तमान है, जिस के दर्शन को यात्री सर्वदा आते हैं।

सीतामढ़ी—यह प्रसिद्ध लखनदेई नदी के पास में है। जनश्रुति है कि श्वशुरालय जाने के समय में श्री सीता



यहाँ कुछ देर ठहरी थी। चैत्र रामनवमी में यहाँ दर्शक सम्मिलित होते हैं।

श्रीगिरिजास्थान—यह फुलहर गाँव (दरभङ्गा) में है। यहीं सीरध्वज जनक की कुलदेवी गिरिजा स्थापित थी, जिनकी पूजा करने को जानकी जी प्रत्यह जाया करती थीं। यह तीर्थ रामायण में बागतडाग नाम से प्रसिद्ध है।

अहल्यास्थान—यह गौतमाश्रम के निकट 'अहियारी गाँव में है। यहीं गौतम की धर्मपत्नी अहल्या अपने पति के शाप से पाषाणी हुई और जनकपुर आते समय श्रीरामचन्द्र की चरणधूलि से मुक्त हुई। यहाँ एक अहल्या-ह्रद भी है।

देवीतीर्थ

श्रीदुर्गास्थान—यह उच्चैठ गाँव (दरभङ्गा) में है। कहते हैं कि कविवर कालिदास इन्हीं दुर्गा की आराधना से सिद्ध हुए थे। **श्रीराजेश्वरीस्थान**—यह डोकहर गाँव (दरभङ्गा) में राजनगर के पास है। यहां गौरी शङ्कर की मूर्ति स्थापित है। **श्रीभुवनेश्वरीस्थान**—यह भगवतीपुर (दरभङ्गा) में है। **श्रीभद्र कालिकास्थान**—यह कोइलख (दरभङ्गा) गाँव में राजनगर के पास है। **श्रीयोगनिद्रास्थान**—यह नेपाल राज्य के भारी गाँव में खिरोई नदी के पास है। **श्रीकालिकास्थान**—यह सखरा गाँव (नेपाल) में (अंकुचि) पशुआसय नदी के किनारे पर है। **श्रीचामुण्डास्थान**—यह पचही गाँव (दरभङ्गा) में है। इस के विषय में बहुत सी किंवदन्तियाँ हैं। **श्रीउग्रतारास्थान**—यह वनगाम महिषी गाँव (भागलपुर) में जह्निका (धेमुड़ा) नदी के तट पर है। **श्री जयमङ्गला (मङ्गला)** यह जयमङ्गला गढ़ (भागलपुर) में है। **श्रीचण्डीस्थान**—यह चण्डीपुर गाँव (भागलपुर) में अंकुचि नदी के तट पर है। **कात्यायनीस्थान**—यह काष्ठवन [मुङ्गेर] में है। इस के अतिरिक्त और भी पूर्ण देवी, कामाख्या तीर्थ [पूर्णिया में] हैं।

शिवतीर्थ

श्रीशिलानाथ—यह सीरध्वज जनक के पूर्वद्वार पर था, जो अभी शिलानाथ गाँव (दरभङ्गा) में कमला नदी के किनारे पर है। यहाँ एक और क्षेत्र 'ददरी' नाम से प्रसिद्ध है। **श्रीकपिलेश्वरस्थान**—यह प्रसिद्ध तीर्थ मधुवनी से दो कोस हट कर है। यहाँ कपिलमुनि के स्थापित कपिलेश्वर महादेव बड़े उग्र हैं। यहीं कपिल मुनि का आश्रम था। **श्रीकूपेश्वर**—यह जयनगर स्टेशन के समीप जनकपुर से अग्निकोण पर जनककूप के पास है। **श्रीकल्याणेश्वर**—यह 'कलना' गाँव [दरभङ्गा] में है। **श्रीजलेश्वर**—यह नेपाल राज्य की विरजा नदी के तट पर है। **श्रीक्षीरेश्वर**—यह तीर्थ नेपाल राज्य के कोराडी प्रगन्ना के वन में है। **श्रीमिथिलेश्वर**—यह जनकपुर के ईशान कोण में कुसुमा नाम के ग्राम में है। **श्रीभैरवनाथ**—यह मिथिला के अधिदेवता थे। यह तीर्थ राजखण्ड (मुजफ्फरपुर) लखनदेई नदी के तट पर है। **श्रीहरिहरस्थान**—यह जनकपुर के पूर्वभाग में है। **श्रीहलेश्वर**—यह यज्ञभूमि के समीप नेपाल के महतरी प्रगन्ने में है। **श्रीभुवनेश्वर**—यह नाहर गाँव [दरभङ्गा] में है। **श्रीचण्डेश्वर** यह हरडी गाँव [दरभङ्गा] में बलान नदी के किनारे है। **श्रीकुशेश्वर**—यह रौता गांव (जि०दरभङ्गा) में जीवछ नदी के किनारे है। यहाँ के उग्र शिवलिङ्ग भारत विख्यात हैं। दर्शन के लिए दूरदूर के लोग आते हैं। 'हसनपुररोड' स्टेशन निकट पड़ता है। **श्रीकामदानाथ**—यह दरभंगे के दुर्गास्थान (उच्चैठ) गांव में है। कहते हैं कि इनकी उपासना से विद्यालाभ होता है। **श्रीमणीश्वर**-यह (मनमा) ग्राम (मुजफ्फरपुर) में खिरोई नदी के तटपर

योगियारा स्टेशन के पास है। **श्रीईशाननाथ**--यह मिहिला प्रगना के दवामी गाँव में है। **सिंहेश्वर स्थान**-यह भागलपुर जिले के मधेपुर के पास है। पर्व में यहाँ बड़ा मेला होता है। **विद्यापतिमठ**--यह वाजितपुर स्टेशन पर है। यहीं विद्यापति की मृत्यु हुई थी। **उग्रनाथ** [भवानीपुर] विद्यापति के प्रसिद्ध 'उगना' [शिवस्वरूप] यहीं अन्तर्हित हुए थे। **अजगवीनाथ**--यह सुलतानगंज [भागलपुर] में गंगा के बीच धार में हैं। यहाँ का प्राकृत दृश्य बहुत अच्छा है। **मन्दारमधुसूदन**-यह प्रसिद्ध दर्शनीय तीर्थ भागलपुर जिले के बौंसी स्टेशन के पास है। **बूढ़ानाथ**—यह (भागलपुर) में गङ्गातट पर स्थापित है इसके अतिरिक्त और भी **गैबीनाथ** (मुङ्गेर)—**मदनेश्वरस्थान** (पूर्णियां जिले में) **थानेश्वर** (समस्तीपुर में) हैं।

अन्यतीर्थ

धनुषास्थान—यह स्थान कुसमा गाँव [नेपाल] के समीप यमुनी नदी के तट पर है। सीता स्वयम्बर के समय जब भगवान् रामचन्द्र ने शिवधनुष को तोडा था उसका एक खण्ड यहीं आकर गिरा। वह पाषाणरूप में अब भी है जिसके एक खण्ड की लम्बाई २५ गज है। यहां बहुत से दर्शक आते हैं। **विधिस्थान (विथान)**--यह रोसड़ा स्टेशन के कुछ पूरब में है। यहाँ चतुरानन ब्रह्मा जी की एक मूर्ति स्थापित है। **याज्ञवल्क्यआश्रम**---यह धनुःक्षेत्र के निकट कुसमा ग्राम [नेपाल] में है। यहीं याज्ञवल्क्य ने स्मृति लिखी और भगवान् सूर्य से वेदाध्ययन किया था। **गौतमाश्रम**--यह ब्रह्मपुर गांव [दरभङ्गा] में खिरोई नदी के तट पर है। यहीं सुप्रसिद्ध न्यायदर्शनकार गौतम रहते थे। **वाल्मीक्याश्रम**—यह नेपाल के ससरी प्रगने के वन में मण्डना लक्ष्मणा नदी के सङ्गम पर गौतमाश्रम के नैर्ऋत्य कोन में था। लिखा है-

"निवसत्युटजं कृत्वा वाल्मीकिस्तत्र पश्चिमे।
उत्तरे याज्ञवल्क्यस्तु निवासेऽभिरतः सदा" ॥

कौशिकाश्रम---यह कोशी गाँव [नेपाल] में कौशिकी नदी के तट पर है। इस के निकट में कामेश्वरनाथ महादेव का एक सुन्दर मन्दिर है। इसी आश्रम के निकट में 'विश्वामित्रस्तुपूर्वस्यांदिशि वासमकल्पयत्' ऐसा उल्लेख है। **विभाण्डकाश्रम**—यह योगिवन [दरभङ्गा] में विरजा नदी के तट पर विभाण्डक मुनि की कुटी थी। अभी जगवन नाम से ख्यात है।

इन तीर्थों में कहीं महन्थ और कहीं पण्डे अधिकारी हैं। यात्रियों की सुविधा के लिये धर्मशालाएँ भी हैं।

अब यहाँ नदी, सरोवर, तड़ाग कूप, कुण्ड आदि का कुछ नाम मात्र परिगणित हैं जो यहाँ बहुत प्रसिद्ध हैं:—

नदी—गङ्गा, कौशिकी, गण्डकी, कमला, त्रियुगा, धेमुड़ा, वाग्मती, लक्ष्मणा, बलान, सोनी, दुग्धवती, बिल्ववती यमुना [यमुनी] बेलौती, अंकुचि [पशुआसय] गैरिका, हरिद्रा, विरजा, मण्डना, [मड़हा] जीवाइ, [जीवछ] आदि। **सरः**-पुरन्दरसर, दाशरथि, लक्ष्मण, भार्गव, जनक, धनु, [यहाँ कभी कभी धनुष के दर्शन भी होते हैं] धूतपापा, मन्मथ, मन्थान [यहीं निमि के शरीर मथा गया था] वशिष्ठ, दशरथ, पुण्य, मण्डन, रुक्मिणी, बलदेव, गोपाल, विचित्रा, कुङ्कुवती, पयस्विनी, कुण्डवती, मत्स्योदरी, व्याघ्रहरी, गोव्रजा, चित्रधारा, कष्टहरी, गोतम, कपालमोचन, (इस में स्नान करने से शिवजी की ब्रह्महत्या छूटी थी) **सागरः**—राम सागर, गङ्गा सागर, **कूपः**—जनक कूप, पुण्य कूप, शतानन्द कूप, विद्या कूप, सौमित्रिकूप, ज्ञानकूप, **कुण्डः**—सीताकुण्ड, अमृतकुण्ड। **वनः**—काञ्चनारण्य, चम्पावन, तपोवन, आदि। **घाटः**—सिमरिया, चौमथ, झमौटिया, कष्टहारिणी [मुङ्गेर] आदि हैं।

मिथिला में प्रचलित कुछ पर्व त्यौहार

श्री जीवानन्द ठाकुर व्या० शा०

मिथिला धर्म-प्रधान देश है। फलस्वरूप धार्मिक व्रत और पर्व आदि का प्रचार घर-घर है। शायद ही कोई सप्ताह हो जिसमें कोई पर्व-उत्सव न आ पड़ता हो। जाति के जीवन का पता बहुत कुछ इन पर्व-त्यौहारों से लगता है। संक्षेप में ही यहां के प्रचरित पर्व आदि की सूची देता हूं—

श्रावण—मधुश्रावणी (शुक्ल तृतीया को नव विवाहिताओं की अग्निपरीक्षा होती है और वे व्रत रखतीं तथा कथा सुनती हैं।) नागपञ्चमी (सर्पकी पूजा) रक्षाबंधन (ब्राह्मण 'येनबद्धो'-मन्त्र से रक्षा (राखी) बाँधते हैं) इस महीने में जगह जगह झूला (दोलोत्सव) मनाया जाता है।

भाद्र—कृष्णाष्टमी, कुशी अमावास्या, गणेशचौठ, चौठचन्द (शुक्ल चतुर्थी में चन्द्र पूजा, का प्रचार खण्डवला-कुल भूषण, प० महेश ठाकुर ने किया था; जिसका मिथिला ही में इस ढंग से बहुत प्रचार है।) बहुलापूजा, इन्द्र पूजा (विक्रमादित्य के समय तक इस पूजा का पूरा प्रचार था। पर इधर बन्द था जिसे स्व० म० रमेश्वर सिंह जी ने प्रचलित किया) अनन्तपूजा।

आश्विन—पितृपक्ष, जीमूताष्टमी (माताएँ सन्तति के कल्याणार्थ कृष्णा अष्टमी में जीमूतवाहन का व्रत रखती हैं) दशहरा, (इस जातीय नवरात्र के पर्व में घर-घर श्री दुर्गा देवी की पूजा की जाती है और जगह-जगह मूर्तियां बनतीं और मेले लगते हैं।) कोजागरा (लक्ष्मीपूजा)।

कार्तिक—धन्वन्तरिपूजा, (कृष्ण १३) दीपावली, गोक्रीडा, (सुखरात्रि) भ्रातृद्वितीया (शुक्ल द्वितीया में बहनें भाई को न्योता-देकर आशीर्वाद देती हैं)। चित्रगुप्त पूजा (कायस्थों का प्रधान पर्व) षष्ठीपूजा (छठ) गोपाष्टमी, कालीपूजा कार्तिकीपूर्णिमा (गङ्गास्नान)। सामाचकेवा, (सामा और चकेवा की स्त्रियां मूर्ति बनाकर पूजती उत्सव मनाती और पूर्णिमा को विसर्जन करती हैं)।

अग्रहण—नवान्न (देवपूजा, पितृपूजा, अग्निपूजा और हवन किया जाता है; और तभी से नवीन अन्न ग्राह्य होता है) विवाहपञ्चमी (जनकपुर में बड़ा समारोह होता है।)

पौष—पुसौठ (स्त्रियां नवजातकों के रक्षार्थ उत्सव मनाती हैं)।

माघ—मकर संक्रान्ति (अन्न, वस्त्र, छाता, आदि का दान, और खास भोजन के विन्यास किये जाते हैं) वसन्त पञ्चमी (सरस्वतीपूजा, हलप्रवहन, और वसन्त का स्वागत) माकरी सप्तमी (आक बैर तुलसी आदि के पत्ते के साथ प्रातः स्नान करते हैं) भीष्माष्टमी (भीष्मतर्पण) तुषारी पूजा (कुमारियां ब्राह्ममुहूर्त में गौरी की पूजा करती हैं। यह पार्वतीतपस्या की विशेष याद दिलाती है) माघीपूर्णिमा (गङ्गास्नान)।

फाल्गुन—शिवरात्रि (अनेक शिव तीर्थों में दर्शकों के मेले लगते हैं।) शिवभक्त स्त्री-पुरुष शिव जी का व्रत रखते हैं। होली (भस्मक्रीडा, सिन्दूरक्रीडा)।

चैत्र—रामनवमी, नवरात्र, (दुर्गोत्सव) वारुणीस्नान।

वैशाख—मेष संक्रान्ति-जूड़शीतल (जलक्रीड़ा शिकार व्यायाम, आदि किये जाते हैं।) शुबह में श्रेष्ठजन अपने लघुजनों के सिर कों पानी से जुड़ाते हैं) श्री जानकी नवमी (जानकी जन्मोत्सव का जगह जगह प्रचार है।)

ज्येष्ठ—गङ्गा दशहरा (स्नान) वटसावित्री (विवाहितायें वट को पूजतीं और सावित्री की कथा सुनती हैं)।

आषाढ़—आर्द्रा (पितृपार्वण) पुलिकबन्धन, (सर्प-भयनिवारणार्थ ईश्वरमूल को रविदिन करमूल में बांधते हैं)।

अन्यव्रत—इन के अतिरिक्त और भी एकादशी व्रत, चतुर्दशीव्रत, सप्तमी व्रत, अक्षय तृतीया, अष्टमी व्रत, पूर्णिमा व्रत, रवि व्रत सोमवारी व्रत (सौभाग्य रक्षार्थ), मङ्गल व्रत, प्रधान हैं जिनमें स्त्रियां विशेषतः विधिवत् उपवास करती हैं। श्रीसत्यनारायण पूजा यहां अधिक प्रचलित है। बड़े समारोह के साथ उत्सव मनाया जाता है। कार्तिक, माघ, बैशाख आदि महीनों में मासिक व्रत विशेषतः स्त्रियां ही रखती हैं। और वे जगह जगह पनिशाला भी देती हैं। समय पर विद्यापति, तुलसी, रमेश्वर जयन्तियां भी मनायी जाती हैं।

मेले—इन में कई विशेष पर्वों पर बड़े बड़े मेले लगते हैं। विजयादशमी मेला—राजनगर [दरभङ्गा] बनैली, सिंहवार, राघोपुर, पाहीटोल, बल्लीपुर, बहेरी, आदि स्थानों में—शिवरात्रि में—कुशेश्वर, कपिलेश्वर, गैवीनाथ, हरदी, सिंहेश्वर, भटोड़ा, राजनगर आदि स्थानों में—रामनवमी विवाहपञ्चमी के समय जनकपुर में असङ्ख्य दर्शक एकत्र होते हैं। इसके अतिरिक्त और भी बहुत से मेले हैं जो अन्य अवसरों पर लगते हैं। कबिलासा (भागलपुर) सीतामढ़ी, जटमलपुर, मुक्तापुर, वीरसिंहपुर आदि २। मिथिला के पश्चिम-दक्षिण सीमान्त में ही हरिहरक्षेत्र का भारत प्रसिद्ध मेला लगता है।

मिथिला के उपनिवेश

प० श्री कपिलेश्वर झा व्या० शिरोमणि

मिथिला के लोगों ने तलवार के बल पर कहीं भी अपना उपनिवेश या राज्य स्थापित नहीं किया। उनके उपनिवेश का मूल आध्यात्मिक ज्ञान, शास्त्रार्थ-पटुता और अलौकिक सिद्धियाँ ही हैं। दरभङ्गाराज्य बनैलीराज्य नैपाल राज्य के सिवा भारत के भिन्न २ भागों में मैथिलों की जमींदारियाँ तथा निवास हैं। कुछ का नाम नीचे दिया जाता है।

हजारीबाग जिले में मधुबनी के बाबू हेम कर साहब की जमींदारी है। वीरभूमि जिले के अष्टग्राम, मैमनसिंह में (पिलखवार के मैथिलों की) कुचविहार, दार्जिलिङ्ग आदि, मालदह जिलाके हुटमुटा अदाई डाँगा आदि गाँव, कटिहार में चनौर के उमानाथ मिश्र आदि की जमींदारी है। पुरलिया के शिखर प्रान्त में दो हजार मैथिल हैं। आसाम के गौरीपूरा में मैथिल कायस्थों की जमींदारी है और वहाँ के वर्तमान राजा का नाम प्रभात चन्द्र वरुआ है। भागलपुर में दरभङ्गा और बनैली के अतिरिक्त यहाँ के वराड़ी, खरहाज आदि गाँवों में मैथिलों की जमींदारी है। संथाल प्रगन्ना में दरभङ्गा राज के अतिरिक्त और भी जमिदारियाँ हैं और गया में हथुआ के श्री काली प्रसाद चौधरी की। सकरा गाँव में भी मैथिलों का निवास है। छपरा में सिवान के पास गंधर्पा, कगही, वसंतपुर, बलिया जिले के चौरी गाँव, चम्पारण के बेतिया प्रान्त के बानू छपरा, रानीपुर सरैया आदि, बनारस के पास ओरिहार में मैथिल हैं। तथा अन्य स्थान इलाहाबाद के पास यमुना के किनारे दरभङ्गा राज की और मुँगारी तथा वारडीह गाँव में दूसरे मैथिलों की भूसम्पत्ति है। अयोध्या के राजकुमारी गाँव, विन्ध्याचल के पास (प्रयागदत्त मिश्र, भूलन झा) वस्ती जिले में रविनाथ झा, मथुरा में ब्रजवल्लभ झा, अजमेर में वशीराबाद रोड के पास हरप्रसाद झा बाँदा जिले के चितहरा गाँव में पण्डित दरबारी झा रीवाँ में रविनाथ झा तथा विन्ध्यनाथ झा की जमींदारी है। बुन्देल खण्ड के बहड़ोरो गाँव में रायपुर जिला के राजनाद गाँव में मैथिल हैं। मण्डला जिले के खैरागढ़ गाँव में काशीदत्त झा तथा रामदत्त झा की जमींदारी है। अलवर स्टेट में पण्डित रामभद्र झा, जयपुर में श्री चन्द्रदत्त चौधरी आदि की जमींदारी है। छोटानागपुर के किशनपुर गाँव में मैथिलों का निवास है। इसके अतिरिक्त जगदीशपुर, देहली चित्रकूट, बनारस, चितहरा इत्यादि स्थानों में भी मैथिलों का निवास और उनकी जमींदारियाँ हैं। छपरे में भी मैथिल हैं।

यद्यपि मिथिला की सीमा पुराणों में गङ्गा के उत्तर और कोशी के पच्छिम तक ही बताई गई है पर मुँगेर और

भागलपुर के गङ्गापार अधिकांश दक्षिण भाग भी भाषा, संस्कृति और निवासियों की दृष्टि से मिथिला के अन्तर्गत आगये हैं। जिन्हें उपनिवेश न कह कर बृहत्तर मिथिला में ला सकते हैं। पूर्णिया, पहले जिस से पूरब होकर कोशी बहती थी अब उसके पश्चिम चली आने पर भी मिथिला से अलग नहीं मानी जाती। बनैली श्रीनगर आदि विख्यात मैथिल राज्य वहीं हैं।



वेश-भूषा

पं० श्री ईशदत्त झा व्या० ती०

मिथिला शीत और उष्ण कटिबन्धों के मध्य सम-शीतोष्ण में है। इसलिये यहाँ की जलवायु सम है। न चमड़े जलाने वाली गर्मी और न हड्डी छेदने वाला जाड़ा ही आपको सतायेगा। जलवायु के अनुकूल ही यहां की वेश-भूषा है।

यहां का साधारण पहनावा धोती और चादर है। मैथिल ब्राह्मणों की प्राचीन पोशाक सिर पर पाग और शरीर पर मिरजइ-चपकन और कन्धे पर दोपट्टा (डेढ़पट्टी) या चादर है। हाँ कुछ आज भी केवल दुपट्टे और हाथ की बन्धी पगड़ी सिर पर लिये बूढ़े दिखाई देते हैं। कर्ण कायस्थों का भी वही वेश रहता है। यहाँ हर जाति में पगड़ी की चाल है। हाँ, उनकी बनावट में कुछ भेद रहता है जिस से जाति का पता पा सकते हैं। सामान्यतः राजपूत मुरेठा बान्धते हैं। कहीं कहीं ताखी और शिरवानी की भी चाल है। ग्रामीण लोग धोती और गमछी या बहुत हुआ चादर रखते हैं। और बाहर जाने के समय ही पोशाक का व्यवहार करते हैं। प्राचीन प्रकार के पहनावे में खर्च कम पड़ता है। मैथिल साधारणतः लाल रंग के प्रेमी होते हैं।

स्त्रियाँ साड़ी पहनती हैं। ब्राह्मणियों में कुरती निमस्तीन पहनने की चाल नहीं है। वे जूते भी नहीं पहनतीं। बहुत सादी; केवल साड़ियों से काम चला लेती हैं। हाँ दूसरी जातियों में कुर्ती आदि का व्यवहार है। छोटे लड़के धरिया या जाँघिया भी पहनते हैं। और बच्चियाँ घघरी-साड़ी या अचरा पहनती हैं।

पुरुषों में आभूषण की चाल नहीं है। स्त्रियों में बहुत है। हाथ में चूड़ी, बरहरी, बाजू, अनन्त, बाँक, बिजौठ, पाति, जौशन-आदि, कान में-बीर-झुम्मक, कर्णफूल, कड़ी, आदि गर्दन में-सूति, चन्द्रहार, कण्ठा, आदि नाक में—नकमुन्नी, छुक, बुलाकी, और भी कई प्रकार के सिकड़ी, कोचवन, करा आदि प्रचलित हैं। लड़के छोटी उम्र तक कारा, साठा, चौकठा, यन्त्र, लवङ्ग पहनते हैं। विवाहिता सिन्दूर और कभी २ आरत और मेहदी का रंग काम में लाती हैं। कुमारियाँ सिर से साड़ी नहीं ओढ़तीं सिन्दुर नहीं लगातीं हैं। विधवाएँ विनारंगी साड़ी और हाथ में चान्दी की चूड़ियाँ पहनती हैं। सिन्दुर भी नहीं करतीं, सभी श्रृङ्गार-सामग्रियों से परहेज रखतीं हैं।

प्राचीन चाल के व्यक्ति केश नहीं छटवाते न फैशन रखते हैं। हाँ नवीन सभ्यता के प्रवेश से इस वेश-भूषा में भी परिवर्तन होने लगा है। शहर के शिवा गाँवों में भी फैशन कटे-छटे बाल और नयी पोशाकों (कोट पतलून आदि) की चाल नयी पीढ़ियों में खूब चलने लगी है।

(विविध-विषय का अग्रिम अंश पृ० १७० से देखिये----स०)

मैथिल महासभा के कुछ कार्यकर्त्ता (बीच में कुर्सी पर महासभा के प्राण श्री५मान् मिथिलेश)



स्वर्गीय श्रीनगराधीश अभिनव भोज,
साहित्य-सरोज राजा कमलानन्द सिंह



श्रीमान् कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुर
([illegible] 'गङ्गा' और वैदिक-पुस्तक
माला के संरक्षक) [illegible]

साहित्यसरोज राजा कमलानन्द सिंह

श्रीयुत विन्ध्येश्वरी प्रसाद सिंह बी० ए० बी० एल०

सरस्वती तथा लक्ष्मी का वैर प्रसिद्ध है। पर वह मनुष्य निश्चय ही भाग्यवान् है जिस पर दोनों देवियों की कृपा समान रूप से रहती है और साथ ही देशसेवा का भाव भी। स्वर्गीय राजा कमलानन्द सिंह ऐसे ही भाग्यशाली पुरुषों में थे। इनकी देश-सेवा इनकी साहित्य-सेवा थी। इनका जीवन उस समय रहा जब हिन्दी का आधुनिक रूप साँचे में ढाला जा रहा था। ऐसे समय में ये हिन्दी का पोषण करते थे। उसे राष्ट्र भाषा होने के योग्य बनाने में सहायता करते थे। ये अल्पायु हुए। पर इनकी कीर्ति अल्पायु नहीं है। राजा साहब ने अपनी नोटबुक में स्वयं अपनी जीवनी इस प्रकार लिखी है—

" मैं वत्सगोत्र पंचप्रवर माध्यन्दिनीय शाखा का मैथिल ब्राह्मण हूँ। मेरे अतिवृद्ध प्रपितामह बाबू हजारी सिंह ने मिथिला से आकर कौशिकी (कोशी) नदी से पाँच कोश पूरब पूर्णियाँ जिलान्तर्गत बनैली नामक गाँव में वास किया। मेरे पिता ने कोस भर पच्छिम हटकर अपने नाम का एक गाँव बसाया जो "श्रीनगर" नाम से प्रसिद्ध है। इसी श्रीनगर में मेरा जन्म संवत् १९३२ जेठ सुदि सोम को हुआ।

मैं जब पाँच वर्ष का ही था, मेरे पिता जी का देहान्त हो गया। राज्य कोर्टस् ऑव वार्डस् के अधीन हो गया। सात वर्ष से ग्यारह वर्ष तक घर पर ही हिन्दी, उर्दू, अङ्गरेजी, संस्कृत, की सामान्य शिक्षा पाकर पूर्णियाँ जिला स्कूल में भर्त्ती किया गया। बारहवें वर्ष में मेरा यज्ञोपवीत हुआ।

सन १८८८ ई० में अपने वैमात्रेय भाई के साथ एक गार्जियन की अध्यक्षता में भागलपुर गया, और वहां के जिला स्कूल में पढ़ने लगा।

वहां इन्ट्रेंस क्लास तक पढ़ा और एकाएक रोगाक्रान्त हो जाने पर विवश हो मैंने पढ़ना छोड़ दिया।

भागलपुर के जिला-स्कूल में साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास हेड पण्डित थे। उनकी काव्य-कुशलता देख कर और उनकी कवितायें सुन कर मेरे हृदय में भी भाषा काव्य सीखने की इच्छा अंकुरित हुई। मैंने अपना विचार अपने बङ्गाली गार्जियन पर प्रकट किया, परन्तु वे हिन्दी नहीं जानते थे। अतः उन्हों ने मुझ से बङ्गला काव्य सीखने के लिये प्रोत्साहित किया। मैंने उनकी आज्ञा मान एक वर्ष तक बङ्गला-काव्य का अध्ययन किया।

पीछे चलकर इन्ही गार्जियन बाबू मन्मथनाथ चौधरी से अंग्रेजी भाषा के प्रधान-प्रधान काव्य ग्रन्थों का अध्ययन किया।

बालिग होने पर कोर्टस् आव वार्डस् ने राज्य छोड़ दिया। आपस में मेल नहीं रहने के कारण मुझे और मेरे छोटे भाई को अपने अपने वैमात्रेय भाई से अलग हो जाना पड़ा। मैं तब भी छोटा ही था। मेरी माता जी राज्य का अच्छा प्रबन्ध करती रहीं।

मैं बालिग होने पर अपना राज-काज सँभालने लगा। इसी समय मैंने भाषा-काव्य की ओर ध्यान दिया और साहित्याचार्य पं० अम्बिका दत्त व्यासजी मेरे काव्य-गुरु हुए। मैं भी फुटकर कवितायें बनाने लगा। और केवल अपना नाम बड़ा होने के कारण, जो छोटे-छोटे छन्दों में नहीं आ सकता था, मैंने अपना उपनाम सरोज रख लिया।

मेरा विवाह सन् १८८३ ई० में हुआ। ईश्वर की इच्छा से एक कन्या हुई और पीछे सन् १८९८ ई० में मेरे ज्येष्ठ पुत्र कुमार गंगानन्द सिंह का जन्म हुआ। मेरे वंश का जीवन वृत्तान्त संस्कृत में काव्य की रीति से पं० श्रीकान्त मिश्र विरचित 'श्रीसाम्बकमलानन्दकुलरत्न' नामक ग्रंथ में है।"

अनेक राजकीय और पारिवारिक झंझटों में रहते हुए भी राजा साहब का हिन्दी साहित्य पर प्रेम बढ़ता ही गया। जो अन्त तक बना ही रहा।

राजा साहब कवियों के लिये कल्पतरु थे। उक्त पं० श्री कान्त मिश्र को 'साम्ब कमलानन्द कुलरत्न' बनाने में प्रतिश्लोक तीन रुपये के हिसाबसे ३०००) रु० दिये थे। पं० अम्बिका दत्त जी व्यास और कविवर लछिराम को गज दान देकर पुरस्कृत किया था। हिन्दी साहित्य के लेखकों प्रकाशकों विद्यार्थियों नागरी प्रचारिणी जैसी संस्थाओं और सरस्वती जैसी पत्र-पत्रिकाओं को आर्थिक सहायता दिया करते थे।

जय गोविन्द महाराज, यज्ञराज, पं० जर्नादन झा (जनसीदन) सीतला प्रसाद, रामनारायण मिश्र प्रभृति कवि वैतनिक रूप से इनके आश्रित रहे। नियमित रूप से ७ बजे शाम से १० बजे रात तक काव्य शास्त्र की चर्चा होती थी। तत्कालीन कवि समाज ने इन्हें "द्वितीय भोज" की भारत धर्ममण्डल ने 'कविचन्द्र' की कानपुर की रसिक-कवि-सभा ने 'साहित्य सरोज,' की उपाधियां दीं। कवि सम्राट् रवीन्द्र नाथ ठाकुर से इनकी मित्रता थी। एक बार उक्त कवीन्द्र ने इन्हें अपनी काव्य-ग्रंथावली की एक प्रति भेंट करते हुए लिखा था।

" तुमि यदि वक्ष माझे थाके निरवधि।
मुग्ध तोमार आनन्द मूर्ति नित्य हेरे यदि।
ए नयन मोर परान वल्लभ
तोमार कोमल कान्त चरण पल्लव।
चिरस्पर्श रेखे देय जीवन तरिते।
कोनो भय नाहि करि बाचिते मरिते॥"

कवीन्द्र रवीन्द्र ने क्या ही उद्‌गार प्रकट किया है! जिसकी गणना गुणियों में होती है, जिसकी याद विद्वान् अपने हृदय में सदा रखते हैं, वास्तव में वे ही धन्य हैं।

राजा साहब ने स्फुट कविताओं के सिवा घोट पच्चीसी, मिथिला-चन्द्रास्त, हा व्यास (पं० अम्बिकादत्त व्यास के स्वर्गस्थ होने पर) एडवर्ड बत्तीसी, हैजा स्तोत्र-आदि पुस्तिकायें बनाई हैं जो प्रकाशित भी हो चुकी हैं। श्रीरवीन्द्र नाथ ठाकुर की राजा रानी का अनुवाद भी इन्हीं ने किया है जो अप्रकाशित है।

राजा साहब के दो पुत्र विद्यमान हैं—श्रीमान् कुमार गंगानन्द सिंह जी एम० ए० और दूसरे श्रीयुत कुमार अच्युतानन्द सिंह जी बी० ए० ऑनर्स हैं। कुमार गंगानन्द सिंह जी अपने सुयोग्य पिता के समान ही साहित्य-प्रेमी, उदार और देश-हितैषी हैं।

महामहोपाध्याय डा० श्री गंगानाथ झा

श्रीयुत शशिनाथ चौधरी बी० ए० बी० एड०

म० म० डाक्टर श्री गङ्गानाथ झा जी मिथिला की वर्तमान विभूति हैं। आप मिथिला के एक प्रकाशमान नक्षत्र हैं, जिनके जीवन और कार्यों का अध्ययन करने से हमारे नवयुवकों के कर्तव्य-पथ का मार्ग स्पष्ट हो सकता है। आप का नाम अपने प्रान्त में है ही, उस से कहीं अधिक संयुक्त प्रान्त में है, जहाँ आप नौ वर्षों (तीन टर्मस्) तक 'वाइस चान्सलर' के गौरवान्वित पद पर प्रतिष्ठित रहे।

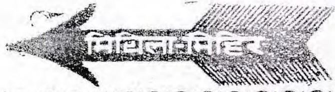
आपका जन्म फसली सन् १२७९ आश्विन कृष्ण पड़िवा (तदनुसार ई० सं० १८७२) को हुआ। १६ वर्ष की अवस्था तक आप अपने मातृक गन्हवारि नामक गाँव में ही रहे; वहाँ ही अक्षरारम्भ हुआ; वहाँ ही आप को मिथिला की पंडित मण्डली से परिचय हुआ। प्रसिद्ध स्व० म० म० पण्डित रज्जे मिश्र तथा स्व० म० म० जयदेव मिश्र जी भी वहाँ ही रहते थे, यद्यपि उन के जन्म-स्थान क्रमशः सौराठ तथा गजहरा थे।

आप का सम्बन्ध दरभङ्गा के महाराजाधिराज के वंश के साथ निकट है। जब आप ६ अथवा ७ वर्ष की उम्र के थे तो एक दिन म० लक्ष्मीश्वर सिंह शिकार खेलते हुए आप के घर आए। उस समय महाराज साहब का राज्य 'कोर्ट आफ वार्ड्स' के निरीक्षण में था। महाराज साहब के आज्ञानुसार आप दरभङ्गा आये और राज स्कूल में भर्ती हुए। वहाँ ही से १८८६ ई० में, कलकत्ता विश्वविद्यालय की "इन्ट्रेंस" परीक्षा में आप उत्तीर्ण हुए। पश्चात् क्वीन्स कालेज (बनारस) में अध्ययन करने लगे।

१८८८ ई० में आप ने इन्टरमीडियट परीक्षा पास की जो उस समय में एफ० ए० (First Examination in Arts) के नाम से पुकारी जाती थी। आप यू० पी० में सर्वप्रथम रहे, उस समय यू० पी० का नाम एन० डबल्यु० पी० था। १८९० ई० में आप ने बी० ए० परीक्षा सफलता पूर्वक पास की और आपका नाम विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम रहा। पुनः १८९२ ई० में आप इलाहाबाद युनिवर्सीटी की एम० ए० परीक्षा में संस्कृत में आप का स्थान सर्वोच्च रहा। इस के अनन्तर भी आप संस्कृत का अध्ययन बड़ी लगन और तत्परता से करते रहे। आप के अध्यापक थे पं० जयदेव मिश्र, पं० शिवकुमार मिश्र और पं० कैलाश शिरोमणि भट्टाचार्य्य। पश्चात् महाराजा बहादुर ने आप को अपने यहाँ बुला लिया।

१८८९ ई० आपका विवाह, पं० हर्षनाथ झा की कन्या से हुआ। पण्डित जी मिथिला के एक प्रसिद्ध वैयाकरण तथा धर्मशास्त्री थे तथा पण्डितमण्डली में अग्रगण्य समझे जाते थे।

महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह जी को लाइब्रेरी (पुस्तकालय) की अभिरुचि विशेष थी और उनकी इच्छा थी कि इस पुण्यकार्य्य के लिये यथेष्ट धन देकर इसे सार्वजनिक का रूप दें। महाराजा साहब ने आप के ऊपर ही कार्य भार सौंपा। पुस्तक संग्रह का कार्य अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक



तथा बृहत्‌रूप में प्रारम्भ हुआ। विलायत से एक एक पार्सल लाख-लाख रुपये के आने लगे। संस्कृत के छपे हुए सब प्राप्त ग्रन्थों का संग्रह हो गया; तदतिरिक्त हस्तलिखित ग्रन्थ भी एकत्र हुए; साथ साथ प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशित करने का भी आयोजन हुआ।

उस समय दरभङ्गा राज्य के मैनेजर 'बेल' नामक एक सीविलियन थे। एकबार जब उन से अलमीरा माँगी गई तो उन्हों ने क्रुद्ध होकर कहा कि यदि महाराजा इतनी अधिक पुस्तक खरीदते हैं तो मैं अलमीरा देने में असमर्थ हूँ। जब इस की खबर महाराजा साहब के पास पहुँची तो श्रीमान् ने उत्तर दिया—Tell Mr. Bell that the Maharaja does not amount of money spent upon books and hospitals अर्थात् पुस्तक और अस्पताल के लिये जितना भी रुपया खर्च हो, महाराजा उसके लिये बुरा न मानेंगे।

सन १८९८ ई० के १७ दिसम्बर को महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर का देहान्त हुआ। स्व० महाराजाधिराज रमेश्वरसिंह बहादुर उच्चकोटि के विद्याव्यसनी थे। अत: पुस्तक संग्रह का कार्य इन के शासन काल में समृद्ध रहा जो आज भी उसी तरह जारी है।

पुस्तकालय का एक सूचीपत्र तैयार हो गया। विशेष कार्य नहीं रहने के कारण आप पुन: संस्कृत का अध्ययन करने लगे। इस समय आप का प्रधान विषय था मीमांसा और अध्यापक थे मिथिला के प्रसिद्ध मीमांसक स्व० प० चित्रधर मिश्र। १९०२ ई० के अगस्त महीने तक यह अध्ययन-कार्य जारी रहा।

इसी समय इलाहाबाद के म्योरसेन्ट्रल कालेज में एक प्रोफेसर की जगह खाली हुई। उस के प्रिन्सिपल थे डाक्टर थीबो। डाक्टर स्वयं उन की नियुक्ति के लिये यत्नवान् थे; फलतः १९०२ ई० के २२ नवम्बर को आपकी नियुक्ति वहाँ होगई। आप "प्रोवेन्सियल सर्विस" में भर्त्ती हुए तथा १९१८ ई० तक वहाँ ही रहे।

आप १९०५ ई० में इलाहाबाद युनिवर्सीटी के "फेलो" और १९०६ ई० में सिण्डिकेट के मेम्बर हुए। इसी वर्ष (१९०६ में) आप डाक्टर आफ लेटर्स" की उपाधि से विभूपित हुए तथा १९१० ई० के वर्षारम्भ में आप को "महामहोपाध्याय" का सम्माननीय पद प्रदान किया गया। १९१८ ई० में डाक्टर वेनिस की मृत्यु के बाद आप ही गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस के प्रिन्सपल नियुक्त हुए। इस के पूर्व किसी भारतीय को यह पद नहीं दिया गया था।

१९१८ ई० में रिफार्म के अनन्तर जो प्रथम "कौन्सिल आफ स्टेट" का संगठन हुआ था उसमें आप सरकारी-सदस्य निर्वाचित किये थे। १९२३ में आप प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रथम निर्वाचित "वाइस चैन्सलर" हुए। आप इतने अधिक लोकप्रिय थे कि दो बार पुनः १९२६ ई० तथा १९२९ ई० में भी आप ही वाइसचैन्सलर निर्वाचित हुए। आप ने अपने शासनकाल में प्रयाग विश्वविद्यालय में एक नवीन स्फूर्ति और एक क्रियात्मक जागृति उत्पन्न कर दी।

वर्त्तमान समय में आप प्रयाग में ही रहते हैं और आप की हार्दिक अभिलाषा है कि अवशिष्ट जीवन प्रयाग अथवा काशी में ही व्यतीत हो।



सहृदय हिन्दू के लिये इस से बढ़ कर क्या अभिलषणीय हो सकता है मिथिला में अधिक बीमार हो जाते हैं—तो प्रयाग अथवा काशी को ही चल पड़ते हैं।

यद्यपि आप को समय अधिक नहीं मिला तथापि अवकाश-काल में समय का सदुपयोग कर आपने निम्नोलिखित ग्रन्थों के निर्माण किये हैं:—

(क) संस्कृत:—
१ भक्तिकल्लोलनी—शाण्डिल्य सूत्र की टीका (पद्यबद्ध)
२ प्रसन्नराघव नाटक की टीका
३ न्याय भाष्य की टीका खद्योत
४ मण्डन मिश्र कृत मीमांसानुक्रमणी की टीका

(ख) हिन्दी:—
१ न्याय प्रकाश
२ वैशेषिक दर्शन
३ कविरहस्य
४ हिन्दू-लॉ (पटना विश्वविद्यालय में व्याख्यान का विषय)

(ग) अङ्गरेजी —स्वतन्त्र ग्रन्थः
1 Prabhaker School of Purb Mimansa (Thesis of Dr. of Letters)
2 Thiosophical Discipline (Kamla Lecture of Calcutta University)
3 Hindu Law in its sources (2 Volums)
4 Baroda kirti Mandiva Lectures Shankaracharjy and his work for the uplift of euntrier

अनुवादित ग्रंथ:—

(१) योगसार संग्रह (२) सांख्यतत्त्व कौमुदी (३) काव्य प्रकाश (४) योग-भाष्य (५) छान्दोग्योपनिषद् शाङ्करभाष्य (६) शबर भाष्य (७) प्रशस्त पादभाष्य (न्याय कन्दली के साथ) (८) न्याय भाष्य (वार्तिक के साथ) (९) खण्डन खण्ड खाद्य (१०) श्लोक वार्त्तिक (११) तन्त्रवार्त्तिक (१२) वामन काव्यालङ्कार सूत्र, (१३) तर्क-भाषा।

[हाल में आप ने वेदान्त दीपक नाम से मैथिली में एक ग्रन्थ लिखा है जो साहित्य परिषद (लहेरियासराय) द्वारा प्रकाशित हो रहा है। आप मैथिली के अत्यन्त अनुरागी हैं।—सम्पादक]

आप विद्यार्थी-अवस्था से ही अधिक संगी-साथी पसन्द नहीं करते थे। दरभङ्गा मिश्रटोला के स्वर्गीय पण्डित भुवनेश्वर मिश्र तथा दरभङ्गा के शुभङ्करपुर के बाबू रमाप्रसाद (डिप्टी इन्सपेक्टर आफ स्कूलस्) आप के सहपाठियों में से थे। काशी के डा० भगवानदास जी तथा श्रीयुत सच्चिदानन्द सिंह पूर्वीप्रयाग के वासी) जी के साथ आप की अधिक घनिष्ठता है। इनके अतिरिक्त दरभङ्गा राज्य के ज्ञान बाबू के साथ भी आप की मैत्री और घनिष्ठता अधिक है।

आप के पाँच पुत्र और पाँच कन्यायें हैं। सभी विद्वान् एवं सुशील हैं। जिन में 'योग्य पिता के योग्य पुत्र की उक्ति' सर्वथा चरितार्थ होती है। पुत्रों के नाम नीचे लिखते हैं:—

१ डा० भवनाथ झा-कैप्टेन, आई० ए० आर० ओ० एम० बी०, बी० एस०—चीफ मेडिकल आफिसर, दरभङ्गा राज।

२ प्रो० अमरनाथ झा-एम० ए०, प्र० वि० के अंगरेजी विभाग के प्रधान तथा Dear of faculty of arts, प्रयाग।

३ प्रो० शिवनाथ झा, गवर्नमेण्ट कालेज, फैजाबाद, यू० पी०

४ श्री विभूतिनाथ झा–एम० ए० डिपुटी मैजिस्ट्रेट (विहार)।

५ श्री आदित्यनाथ झा, एम० ए०, एल० एल० बी० भारतवर्ष के I. C. S. परीक्षा में, १९३४ ई० में सर्वप्रथम।

आप के कारण मिथिला आज गर्व कर सकती है। आप उच्च कोटि के विद्वान् होने पर भी निरभिमान तथा सरलस्वभाव के हैं। आप अधिक बोलते नहीं, और सर्वदा किसी-न-किसी ग्रन्थ का अवलोकन करते ही रहते हैं। आप श्रोत्रिय वंशोद्भव और उदार विचार के हैं। 'कहने से करना भला' के आप सजीव उदाहरण हैं। जब कभी आप को व्याख्यान देने का अवसर आता है तो आप व्यावहारिक अंगों पर ही विशेष रूप से प्रकाश डालते हैं। आपके जीवन में Plain living and high thinking का आदर्श व्यवहार के रूप में दीख पड़ता है। ईश्वर आप को तथा आपके परिवार वालों को चिरायु और प्रसन्न रखें।

—※※※—

उसी की याद में—

ओ भावुकता-भव्य-भवन, ओ मानवता के मंजुल मान!
काव्यकला के पूज्य पुजारी, काव्यगगन—राकेश महान!
दुर्गम वन के अन्तस्तल में वागमती के कलकल स्वर में।
आम्रकुंज में, गिरिगह्वर में गूँज रहा तेरा कल—गान॥
जनक सुता की रम्य-पुरी में, कमला की इस शीर्ण तरी में।
जह्नुसुता की स्वर-लहरी में, सुनता हूँ बस तेरी तान॥
स्वर्ण भूमि शाम्भवी कलपती, शिथिला मिथिला आज तलफती?
मलय पवन से पूछ विलखती, ऋतु पति? मेरा कहाँ महान?
ओ भावुकता-भव्य-भवन, ओ मनावता के मंजुल मान!
काव्य-कला के पूज्य पुजारी, काव्य गगन राकेश महान!

श्री 'प्रलयंकर'



गोनू झा की नसदानी

श्रीमत्सु सम्पादकेषु,

शतशोऽथ सहस्रशो नमस्काराः

एक रोज हम दालान पर बैठे नस की फिक्र में थे। भीतर से कुण्डी-सोंटा मँगाना था। बाहर तम्बाकू के ताजा पत्ते सूख रहे थे। भीतर आवाज दी—'ऐ! कने (जरा) कुंडी सोंटा तँ (तो) द जाउ (दे जाइये)।' सम्पादकजी, यह तो आप जानते ही होंगे कि हम मैथिल शास्त्र के अनुसार पत्नी का नाम नहीं ले सकते और न पत्नी ही हमारा नाम ले सकती है। चाहे बेचारी कहीं मेले-ठेले में अकेली-दुकेली छूट भी जाती है पर वैसी हालत में भी मर्यादा के विरुद्ध पति का नाम नहीं लेती—रोती हुई रह जाती है। यह बात दूसरी है कि वैसी दशा में वह भटकती हुई मर जाय या किसी गुण्डे के पंजे में फँस जाय; परन्तु हमलोगों ने पुरानी मर्यादा तो बचा रक्खी है।

हाँ, तो कहाँ से कहाँ बहक गये याद आई। भीतर से आवाज आई—'उँह! हमरा बुते ओतेक भारी सिलौट नहिं उठत (मुझ से इतना भारी कुंडी–सोटा नहीं उठेगा!) क्या खूब, हम सोचने लगे, हमारी पत्नी उस दिन गङ्गास्नान जाने वाली थी; अपने पास भी पसेरी भर चाँदी के गहने थे, फिर भी पास-पड़ोसियों से माँग कर पहन लिये और उतने बजनी गहने पहन कर चलती गई। आज कुंडी-सोंटा नहीं उठता। परन्तु, क्या करें, हम स्वयं ही कुंडी-सोंटा लाने चले।

ज्यों ही उठे कि बाहर डाक-पिउन ने मेरे नाम की एक चिट्ठी दी, हम ने जेब में रख ली। बुरा न मानें, हमारी आदत है कि हम उसी वख्त चिट्ठी नहीं पढ़ लेते। फुर्सत पाने पर कभी पढ़ लेते हैं। हम भीतर गये। पत्नी ने पूछा—'ऐ! कत सँ चिट्ठी आयल अछि?' ('चिट्ठी कहाँ से आई है?') हम ने कहा—'नहि पढ़लहुँ अछि (नहीं पढ़ी है।)

पत्नी०—'देखू तँ, कलकत्ता सँ बबुआ तँ नहि लिखलन्हि अछि। (देखिये तो; कलकत्ते से बबुआ ने तो नहीं लिखी है।)

हम चिट्ठी निकाल कर एक ही साँस में पढ़ गये। तब जान पड़ा कि 'मिथिला–मिहिर' भी अपना पहला विशेषांक निकाल रहा है। और वह भी 'मिथिलाङ्क' के नाम से। उसी के लिये हमें भी कुछ नस भेजने की आज्ञा मिली है—परवाना आया है। यह तो हुआ नहीं, कि कुछ चोआ भेजते; वरन् तैयार नस ही माँग भेजी है। कुछ देना

नहीं, खाली लेना ही सीखा है सम्पादकजी, है न बात पते की ?

अच्छा महाराज, आप के सिर पर क्या खब्त सवार हुई कि इस समय 'मिथिलाङ्क' निकालने बैठे ? हमलोगों को तो कुछ लाभ ही नहीं होगा, क्योंकि हमलोग अखबारों पर जरा कम आस्था रखते हैं। अखबार वाले इन की बहुत हाँका करते हैं। क्या करें बेचारे ? सच्ची खबर नहीं मिली तो इधर-उधर से जोड़ जाड़ कर अखबार निकाल दिया। मगर, इस से हमलोगों को क्या, वा जान कर ही क्या करें ? निगोड़ा अखबार एक शाम का भी नद्ध का खर्च नहीं देता।

हम दो ब्राह्मण ठहरे। हम या हमारे बच्चे पढ़ें या न पढ़ें, रात को भैंसों से लोगों के खेत भी चरा लें या दो को लड़ाकर कुछ कमाने की कोशिश करें, अथवा सेंध ही लगाया करें, अथवा सौराठ की सभा में अपने बच्चों को बेच ही दें परन्तु दान-दक्षिणा के अवसर पर 'नमो ब्राह्मणाय' किया हुआ द्रव्य हमारा ही होगा; क्योंकि हमलोग 'जन्मतः ब्राह्मण' हैं; नवीन ब्राह्मण पण्डित हैं, छत्तीस वर्णों के बिना लाज के राजा हैं और दूसरों को मारते वा गालियाँ देते हुए भी नमस्य हैं। और नहीं तो 'माँग खाना' हमारा कहीं नहीं गया है। तब बताइये, हमलोगों को आप के 'मिथिलाङ्क' से क्या ?

मिथिला में जो और वर्ण रहते हैं उन में कुछ की नकेल हमारे ही हाथों है। उन को जब हम कहेंगे, तब वे उठेंगे-बैठेंगे, हम कहेंगे, तो आप का 'मिथिलाङ्क' उठावेंगे, नहीं तो ऊपर आवेंगे भी नहीं। कुछ और जातियाँ हैं, जो हमारा प्रभुत्व नहीं मानतीं। परन्तु वे अपने को 'मैथिल' नहीं कहतीं वे रहतीं तो मिथिला भूमि में ही, पलती हैं यहीं के अन्न-जल से, साँस लेती हैं यहीं की हवा में, परन्तु मिथिला नाम से उन्हें कोई सरोकार नहीं। तब भला, 'मिथिलाङ्क' की ओर वे कभी आखें उठायँगे ?

हम में कुछ ऐसे भी महानुभाव हैं जो 'मिथिला' के नाम लेने में घोर घृणा का अनुभव करते हैं। वे मिथिला को 'महिलाओं की भूमि' कहते हैं और 'मैथिली' को अश्लील गीतों वाली भाषा !! 'मिथिला' की नाम लेने में उन्हें राष्ट्रीय हानि दीख पड़ती है और वे कहते हैं कि घरों में भी अन्य प्राचीन बोली का प्रचार हो। 'मिथिला' 'मैथिली' के लिये कुछ भी मुँह खोलना भारी गुनाह है—घोर पाप है—देश और राष्ट्र के साथ विद्रोह है ! ऐसी दशा में तो वे आप के 'मिथिलाङ्क' से वैसे ही दूर रहेंगे जैसे हमलोग श्राद्ध के निमन्त्रण पत्र को अपनी हवेली से अलग रखते हैं।

अब हम भीतर ही खाट पर बैठ गये। सोचा, बाहर वाले शायद 'मिथिलाङ्क' से लाभ उठावें। मगर, वे तो मिथिला को बंगाल का उपनिवेश मात्र समझते हैं और 'मैथिली' को—नहीं सच कहेंगे पूर्वी हिन्दी का रूपान्तर मात्र ! कोई कोई इसे 'बंगला की जूठन' कहते हैं। मगर इस से आप को क्या ! आप ने तो सत्तोड़ परिश्रम कर सिद्ध किया ही होगा कि—सो तो आप जानें। हमें तो इतना ही कहना है कि बाहर वाले 'मिथिलाङ्क' से कुछ वास्ता न रखते हुए भी उसे कौतुक से देखेंगे।

इतने में गृहदेवी ने आकर हमारा ध्यान भंग कर दिया। उन्हों ने अपने कल-कंठ से कहा। सम्पादकजी, यद्यपि उन के कंठ का अनुकरण ही कौओं ने किया है, फिर भी हम कविमर्यादा की रक्षा करते हुए उन्हें कल-कंठी' ही कहेंगे। हाँ, उन्हों ने कहा—अहाँ बैसले रहब, दालि, डिबियाक तेल, खटाई घर में नहि अछि। चाउर-तरकारी तँ आइ राति भरि चलत। (आप बैठे ही रहेंगे। दाल, मिट्टी का तेल, खटाई वगैरह घर में नहीं हैं। चावल और तरकारी तो रात-भर के लिये है।)

बस, हमारा सारा गुड़ गोबर होगया। कहाँ तो हम 'मिथिलाङ्क' पर विचार प्रकट कर रहे थे और कहाँ बीच ही में शृंखला टूट गई। भाई, पहले तो हमारा घर सम्पन्न था—घी के दीये जलते थे। दस आदमियों को खिलाकर खाते थे। 'बाबू साहब' बने थे 'बाबूसाहब'। परन्तु अब ? मत पूछिये। बड़े घर के लाड़ले ठहरे हम। मोटे काम अपने हाथों कैसे करें ? जमीन जायदाद की देखभाल कौन करे ? कुछ साथी पैदा होगये और स्वार्थ को मित्रता के पर्दे में छिपा कर हमारे पसीने के बदले लहू बहाने को आ जुटे। हम उब पर सब-कुछ छोड़-छाड़ कर निश्चिन्त हो गये। हमारी ओझाइन जी भी भला अपने हाथों क्यों काम करतीं ? उन का पारा तो और भी सातवें आस्मान पर चढ़ा रहता। अरोस-पड़ोस की स्त्रियाँ उनको ठग-ठग कर अपने घर भरा करतीं। इधर हम भी लुट रहे थे। उन मित्रों के चलते अदालतों के द्वार खटखटाने पड़े। मुकदमों के ब्याज से अधिकांश रकम मित्रों की जेबों में जाती। आमदनी कम तो होने ही लगी। प्रबन्ध तो हवाई प्रबन्ध था। खर्च का सिलसिला बढ़ चला। ब्याह-शादी श्राद्ध कार्य भोज-भात में बेहिसाब खर्च हुआ, मुँह पर तो सब हमारी बड़ाई ही गाते थे। हम भी प्रशंसा में फूल कर कुप्पे बने थे।

थोड़े ही दिनों में ऋण ने हमें घर दबाया और मास-मिलकियत जमीन-जायदाद को नीलाम करा छोड़ा। हाथ खाली देख मित्रों ने नाता तोड़ा। अब तो न हम 'राजा' रहे, न ओझाइन 'रानी'। अब तो खाने-पहनने तक का कष्ट है। मगर दूसरों को दिखाने के लिये तो अब भी जबानी जायदाद बतानी पड़ती है। इस के बिना तो रही-प्रतिष्ठा भी मिट्टी में मिल जायगी।

हमारे बच्चों का हाल सुनिये। बिहार में स्त्री-शिक्षा का आन्दोलन चला तो हमें लड़कियों को पढ़ाने का शौक चर्राया; मगर हमारी ओझाइन जी हम पर बरस पड़ीं। बोलीं—'लड़कियों को पढ़ा कर क्या उन्हें मेम बनाइयेगा ? उनको साग तोड़ कर जिन्दगी काटनी है।' हमने भी सोचा लड़कियाँ पढ़ कर मेम तो जरूर हो जाती हैं। नाहक क्यों तरद्दुद कीजाय ? हमारी ओझाइन ही नहीं पढ़ी लिखी हैं तो क्या बिगड़ता है ?

हमें एक ही लड़का है। वह पाठशाला में पढ़ने लगा। एक दिन गुरुजी ने उसकी शरारत पर उसे मारा, लड़के ने रो-रोकर अपनी माँ से अपनी व्यथा सुनाई। बस, ओझाईन जी ने आस्मान को सर पर उठा लिया। हमारे आने पर बोलीं—रहने दीजिये अपना स्कूल आप। मेरा लड़का ऐसा ही रहेगा। जियेगा तो मजदूरी करके कमा खायगा।' बस, लड़के का पढ़ना छूटा। वह शोहदों की संगत में पड़ गया। एक दिन घर में जो कुछ हाथ लगा, ले-देकर भाग गया। ओझाइन जी रो धोकर बैठ गईं। पीछे खबर लगी कि वह कलकत्ते में है। कहीं ठाकुरबारी में रसोइया बन गया है।

हाँ सम्पादक जी, हम तो अपने घर की दशा सुनाने लगे। क्या करें, कहीं से कहीं निकल आये, क्षमा कीजिये। फिर 'मिथिलांक' की बात ! मिथिला की साहित्यिक प्रगति का भी हाल सुनियेगा ? यहाँ अखबार-उखबार नहीं चल सकता, अगर हम ब्राह्मणों के लिये 'विशेषांक' निकालिये तो उसमें दान-दक्षिणा की महिमा गाइये, मुकदमों की गुत्थियाँ सुलझाइये तो कुछ काम निकले।

हमारा साहित्य तो पोथी-पत्राओं में, पटवारी के बस्तों में और मुहाफिज खाना तक ही सीमित है। अधिक से अधिक वितंडावाद में और लोगों के लड़ाने में समझिये। हम में जो आधुनिक ढंग से शिक्षित हैं उनका भी साहित्य, कुर्सियाँ तोड़ने या क्लर्की में कलम घिसने तक है। हमारी स्त्रियोंका साहित्य चरखा-टकुरी (केवल नाम ही के लिये सही !) डाइन-जोगिन के फेर और कलह में छिप गया है। हमारा साहित्य एक जगह और है। दूसरों को धोखा देना या अपने ही भाइयों की हँसी उड़ाना हमारा नियम रह गया है। स्वयं आचार-विचार को तिला-अलि देकर दूसरों को 'पाखंडी-ढोंगी' कहने में हम अपना गर्व समझते हैं। आप चाहें, तो हमलोगों के काम का विशेषाङ्क निकालें।

अच्छा नमस्कार, आप से बातें करने में हमारा समय बहुत बीत गया। नस भी नहीं बन सकी। रात शायद चूल्हा भी नहीं जलेगा। खैर, एक बात और। हम हिन्दी नहीं जानते। 'ने' और 'विकृत-अविकृत' के फेर में हम घबरा उठते हैं। हम ने अपने एक कनौजिया मित्र की सहायता से अपनी नस को हिन्दी की नसदासी में आप के पास भेजा है।

भवदीयः—

गोनू झा

मार्ग (अमा) १३४३ साल।



हर्षनाथ-काव्य-ग्रन्थावली—सम्पादक पण्डित ऋद्धिनाथ झा, प्रकाशक प्रो० श्री अमरनाथ झा एम० ए० (प्रयाग-विश्वविद्यालय)।

मैथिल कवि हर्षनाथ झा अपनी सुन्दर कविताओं के कारण प्रसिद्ध हैं। उन्हों ने संस्कृत निबन्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ नाटकों और मैथिली कविताओं का प्रणयन किया है। प्रस्तुत ग्रन्थावली में उन्हीं के १-'उषाहरणनाटकम् २-माधवानन्द नाटकम्, ३-राधाकृष्ण-मिलन लीला, और उद्भट गीतों का सङ्ग्रह है।

दोनो नाटकों के कथानक पौराणिक हैं। संस्कृत और मैथिली में इनकी रचनाएँ हैं। उत्तम प्रकृति पुरुष पात्रों के मुख से संस्कृत और स्त्री पात्रों के मुख से प्राकृत-गद्य तथा मैथिली के गीत सुनाये गये हैं। प्रभात वर्णन का एक पद्य यह है।

धीवर अङ्क मयङ्क तरणि चढ़ि शशिकर जाल पसार।
उडुगन मीन बझाए चलल जनि मगन पयोनिधि पार॥

इस पद्य में कवि ने चन्द्र-कलङ्क को मल्लाह रूप में खड़ा किया है। उस ने चन्द्रमा-नौका पर चढ़ आकाश-समुद्र में किरणों का जाल फेंका है। नक्षत्ररूपी मछलियाँ बझाकर अब समुद्र के पार जा रहा है।

गीत संग्रह में-उनके मिथिला प्रसिद्ध मैथिली गीतों का संग्रह है। पद बड़े मधुर हैं—

चान किरन तन दहय समीरन चन्दन चम्पक दामे।
कि करब के कह विमुख देखि विह सफल जगत भेल बामे॥

इस की बाहरी रूपरेखा भी सुन्दर। छपाई सफाई के विषय में इण्डियन प्रेस का नाम लेना ही पर्याप्त होगा। मूल्य लिखा नहीं, पुस्तक पठनीय है।

—※—

राधापरिणय (संस्कृत महाकाव्य) रचयिता—प० श्री बदरी नाथ झा जी 'कविशेखर,' पृ० लगभग ३००, मूल्य १।)

यों तो संस्कृत भाषा की मृतभाषा के नाम से खिल्ली उड़ाई जाती है, पर आज भी संस्कृत साहित्यसेवियों की अनवरत और अनुकरणीय सेवा से उस के समृद्ध भण्डार की बराबर कुछ न कुछ पूर्ति हो ही रही है। इस समय भी ऐसे कलाकार यहाँ मौजूद हैं; जिनकी प्रतिभा संस्कृत साहित्य के इस धुँधले युग में भी प्रकाश फैला देती है।

कविशेखर मैथिल श्रोत्रिय पण्डित बदरीनाथ झा जी ने राधापरिणय की रचना कर संस्कृत महाकाव्यों में एक और की वृद्धि की। शायद इस शताब्दी में संस्कृत महाकाव्य के प्रणयन और प्रकाशन का सौभाग्य आपको ही मिला है।

प्रस्तुत महाकाव्य विविध छन्दों के २० सर्गों में समाप्त हुआ है। कथा पुराण-प्रथित राधा के साथ कृष्ण के परिणय को लेकर चली है। इस का परिपाक अलङ्कारों की छटा शब्द-सौष्ठव सर्वत्र पाये जाते हैं। रचना प्रसादगुण-विशिष्ट है। बालप्रकृति, प्रभातवर्णन और ऋतुवर्णन बड़े सुन्दर उतरे हैं। प्रभातवर्णन का एक पद्य है।

अनूरुजको व्योमदौमादस्तं व्यधाद्दलम्।
उषःप्रभाभरक्षारं समासज्ज्य तमोमलम्॥

आकाश रूपी वस्त्र पर अन्धकार का मैलापन बैठ गया है। धुलाने की जरूरत है। अरुण महाराज धोबी बन कर आ डटे। उषःकाल के सोडे लगा-लगा कर उसे एकदम झक् बना दिया!

कहिये कैसी सुन्दर और अछूती कल्पना है? इस प्रकार के सर्वाङ्गपूर्ण महाकाव्य के रचयिता संस्कृत संसार के धन्यवादार्ह हैं। हम संस्कृत के अनुरागी पाठकों से इसे एकबार बांचने का आग्रह करते हैं।

सूक्ति-सुधा

बीजं यस्य चिरार्जितं सुचरितं, प्रज्ञा नवीनोऽङ्कुरः,
काण्डः पण्डितमण्डलीपरिचयः, काव्यं नवः पल्लवः।
कीर्तिः पुष्पपरम्परा, परिणतः सोऽयं कवित्वद्रुमः,
किं वन्ध्यः क्रियते विना रघुकुलोत्तंस-प्रशंसाफलम्॥

—प्रसन्नराघवकार

भुवन-भवन-भासन प्रदीप! न्यपतदसौ त्वयि चेतनापतङ्गी।
क्षणमधिकमदीप्यत ज्ज्वलन्ती पुनरजहात्प्रथमामपि स्वसत्ताम्॥

—गोकुलनाथोपाध्याय

स्वस्थानादपि विचलति मज्जति सलिलेषु नीचमपि भजते।
निजपक्षरक्षणमनाः सुजनो मैनाकशैल इव॥

—गोवर्द्धनाचार्य

शैत्यं नाम गुणस्तवैव सहजः, स्वाभाविकी स्वच्छता,
किं ब्रूमः शुचितां व्रजन्त्यशुचयः स्पर्शेन यस्यापरे।
किञ्चातः परमस्ति ते स्तुतिकथा यज्जीवनं जीविनां,
त्वंचेन्नीचपथेन गच्छसि पयः! कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः॥

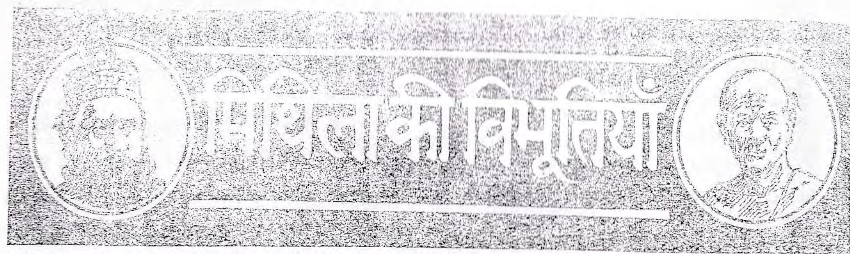
—भवनाथ मिश्र (अयाची)

सरसिज बिनु सर, सर बिनु सरसिज, की सरसिज बिनु सूरे?
जौबन बिनु तन, तन बिनु जौबन, की जौबन पिय दूरे?
सुजनक प्रेम हेम समतूल, दहइत कनक दुगुन होअ मूल।
टुटइत नहिं टुट प्रेम अद्भुत, जइसनें बढ़ए मृनालक सूत॥

—विद्यापति

करितथि द्रुम पर बक की आँखि धनिक बकटेट।
बिरचि विरंचि शरीर ई जौं न बनबितथि पेट॥

—प० सीताराम झा



देश केवल उच्च गिरिश्रृङ्ग, प्रशस्त नदियाँ, उर्वर क्षेत्र और मणि-मुक्ताओं की खान से ही वैभवशाली नहीं हो सकता। ये स्थूल सम्पत्तियाँ भूति नाम से पुकारी जायेंगी। पर वास्तव में देश की विभूतियाँ—विशिष्ट ऐश्वर्य—वहाँ की वे दिव्य आत्माएँ हैं, जिनके जन्म से वह कृतकृत्य और संसार-प्रसिद्ध होता है। विभूति कही जानेवाली मिथिला की प्राचीन सन्तान एक देश के नहीं प्रत्युत सार्वदेशिक विभूति हैं। जिनके परिचय की बात कौन कहे नाम गणना भी इस लघु स्तम्भ में असम्भव है।

शास्त्रकार—याज्ञवल्क्य योगीश्वर के रूप में संसार प्रसिद्ध हैं। शुक्लयजुर्वेद के स्रष्टा, विदेह जनक-काल के सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी और समाजशास्त्र के अपूर्व वेत्ता हुए हैं। इनकी (याज्ञवल्क्य) स्मृति धर्मशास्त्र की शिरोमणि है। 'मिथिलास्थः स योगीन्द्रः' से ये सर्वविदित मैथिल धर्मशास्त्रकार हैं। न्यायसूत्रकार गौतम-पुराण प्रसिद्ध मुनि हैं। न्याय शास्त्र के आदि आचार्य के रूप में आप दर्शनगङ्गा का हिमालय हैं। साङ्ख्यशास्त्र के आविष्कर्ता कपिलमुनि का वास यहीं प्रसिद्ध है। और भी शतानन्द विभाण्डक-ऋष्यश्रृङ्ग आदि महर्षि मिथिला की विभूति हैं जो पुराण-प्रसिद्ध होने से सभी के परिचित और श्रद्धाभाजन हैं। काणाद न्याय के प्रवर्तक कणाद, कौशिक आदि मुनियों को भी विद्वानों ने मिथिला की विभूतियों में सिद्ध किया है। दार्शनिकों में दार्शनिकशिरोमणि उदयनाचार्य, मीमांसक-मुकुट-मण्डन कुमारिल-भट्ट और पार्थसारथि मिश्र, आदि हुए हैं।

नव्यन्यायकार—गंगेश उपाध्याय नव्यन्याय के प्रवर्तक थे। तत्वचिन्तामणि की रचना से न्याय दर्शन में युगान्तर उपस्थित करनेवाला ऐसा विद्वान् उनके बाद शायद ही कोई हुआ है। तत्वचिन्तामणि के विस्तृत अनेक साङ्ख्यग्रन्थों का सङ्कलन किया जाय तो उसकी पृष्ठ संख्या दस लाख से कम न होगी। गङ्गेश के योग्य पुत्र वर्धमान अनेक न्यायग्रन्थों के प्रणेता प्रसिद्ध नैयायिक थे। यज्ञपति हरिमिश्र और पक्षधर प्रसिद्ध शास्त्रार्थी हुए हैं। भवनाथ मिश्र (अयाची) शङ्कर मिश्र बालकवि न्याय और साहित्य की मूर्ति हुए हैं। वाचस्पति मिश्र के समान दर्शनग्रन्थों का प्रौढ भाष्यकार शायद ही दूसरा हो। लखिमा ठकुराइन भी अद्वितीय स्त्री नैयायिक हुई हैं। पं० मधुसुदन ठकुर 'आलोककण्टकोद्धार' के ग्रन्थकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। केशव आदि भी नामी न्यायशास्त्री हुए हैं।

साहित्यशास्त्रकार और कवि—गोवर्धनाचार्य, गोकुलनाथ उपाध्याय, जयदेव (प्रसन्नराघवकार) उमापति उपाध्याय, ज्योतिरीश्वर ठाकुर, कवि-कोकिल विद्यापति ठाकुर, केशव मिश्र (अलङ्कारशेखर-कर्ता) भानुदत्त मिश्र, मुरारी मिश्र, गोविन्ददास झा, गोविन्द ठाकुर (काव्यप्रदीपकार) चन्दा झा आदि।

धर्मशास्त्रनिबन्धकार—हलायुध (ब्राह्मणसर्वस्वकार) चण्डेश्वर ठाकुर, अभिनव वाचस्पति, आदि।

सिद्ध महात्मा—मदन उपाध्याय, धीरेन्द्र उपाध्याय, लक्ष्मीनाथ गोसाँइ, घनानन्द दास (तान्त्रिक) आदि हुए है।

इन विभूतियों के पृथक् चरित्र के लिये एक नहीं अनेकों 'मिथिला-विभूतिग्रन्थ' की जरूरत होगी। मिथिलाङ्क में इन विभूतियों का संक्षिप्त परिचय प्रसङ्गान्तर में आ चुका है। विस्तृत परिचय प्राप्त करने में समय और स्थान की आवश्यकता थी। फिर भी हमने कुछ विशिष्ट आधुनिक व्यक्तियों की जीवनियाँ मँगवाई। किन्तु खेद है कि स्थानाभाव से वे इस अङ्क में न निकल सकीं। आगे के अङ्कों में 'मिथिलामिहिर' के पाठक उन्हें पढ़ेंगे। इन जीवनी के लेखकों और प्रेषकों से इसके लिये क्षमा प्रार्थी हैं।—सम्पादक।

मिथिला की विदुषियाँ

श्री सिद्धेश्वरी प्रसाद श्रीवास्तव

मिथिला की पावन भूमि विद्वान् पुत्रों की ही नहीं उन विदुषी पुत्रियों की भी माँ है, जिनकी कीर्त्तिगाथा युगों तक कवियों के कण्ठ का सङ्गीत रहेगी। हम यहाँ कुछ ऐसी आदर्श महिलाओं के नामस्मरण करेंगे जिन से मिथिला ही नहीं सम्पूर्ण भारतवर्ष धन्य है!

गार्गी—गर्गमुनि के वंश में उत्पन्न होने से गार्गी नाम से यह प्रसिद्ध थी। राजा जनक के यहाँ ब्रह्मज्ञानियों की सभा में यह सम्मिलित हुआ करती थी। एक बार 'ब्रह्मज्ञान में श्रेष्ठ कौन है?' इसके निर्णय के लिये जनकजी ने सभा करवायी जिस में गार्गी के साथ याज्ञवल्क्य का बड़ा शास्त्रार्थ हुआ, जिस की विस्तृत चर्चा उपनिषद् में है।

मैत्रेयी—यह गार्गी की भाँजी, मित्र ऋषि की कन्या और याज्ञवल्क्य की पत्नी थी। अपने पिता से ब्रह्मज्ञान की शिक्षा मिली। जब पति (याज्ञवल्क्य) वानप्रस्थ लेने लगे तो उन्हों ने सम्पत्ति को दोनों स्त्रियों में बाँट देना चाहा पर मैत्रेयी ने धन न लेकर ब्रह्मविद्या की शिक्षा माँगी। इस ने अपने पिता के विद्यालय में ब्रह्मविद्या की शिक्षिका के पद को सुशोभित किया था।

सुलभा—यह प्रधान नामक राजर्षि के कुल की विदुषी क्षत्रिय-बालिका थी। यह उपयुक्त वर न पाने से आजीवन ब्रह्मचारिणी रही। राजा जनक की मोक्षधर्म-प्रवीणता सुन कर जनकपुर गई। वाणी के गुण और लक्षण पर प्रवचन दिया और जनकजी को यह सिद्ध कर दिखलाया कि राज्य-सुख भोगते हुए कोई मोक्ष का अधिकारी न हो सकता।

अनसूया—कर्दम ऋषि और देवहूती की पुत्री, मैथिल कपिल की बहन और अत्रि मुनि की पत्नी थी। इस आदर्श माता ने अपने तीनों पुत्रों की शिक्षा स्वयं दी थी। वनवास के समय सीताजी ने इनसे उपदेश ग्रहण किये थे।

सुनयना—यह महाराज जनक की सहधर्मिणी और सीता उर्मिला जैसी पुत्रियों की माता थीं। यह विदुषी रानी जब राजा जनक कार्यवश बाहर रहते थे तो उनकी विद्वत्सभा का नेतृत्व स्वयं करती थीं। पुराणों में इसका उल्लेख है।

सीता—अयोनिजा पतिप्राणा सीता यहीं पैदा हुई! इनके चरित्र के विषय में कुछ कहना समुद्र को ओस चटाना है। इनका आदर्श पतिप्रेम संसार में दुर्लभ वस्तु है! उर्मिला-माण्डवी-श्रुतिकीर्त्ति सीता की ये तीनों बहनें नारी जाति का श्रृङ्गार हैं। इन देवियों का सा त्याग किसी ने नहीं किया। उर्मिला का चरित्र दुनियाँ में बेजोड़ उतरता है। उर्मिला सी पत्नी पाकर ही लक्ष्मण आदर्श अनुज बन सके। मिथिला इन चार पुत्रियों को पाकर सदा के लिये कृतार्थ बन गई।

भारती—सुप्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्ट की बहन मण्डन मिश्र की धर्मपत्नी थी। अपनी विद्वत्ता के कारण साक्षात् सरस्वती अवतार समझी गईं। उभय भारती नाम से भी प्रसिद्ध थीं। शङ्कराचार्य और मण्डन मिश्र के बीच सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ की मध्यस्थ निर्णायिका यही थी। अन्त में जब मण्डन मिश्र परास्त हुए तो इन्हों ने शङ्कराचार्य से कहा कि आप अर्धाङ्गिनी को बिना परास्त किये पूर्ण मण्डन विजयी नहीं हो सकते। फिर शास्त्रार्थ चला। एक मास सात दिन होता रहा। आखिर भारती ने कामशास्त्र के प्रश्न पूछ कर शङ्कर को निरुत्तर कर दिया!

वैशालिनी—यह इतिहास विदित लिच्छवी राजधानी विशाला के राजा विशाल की विदुषी कन्या थी। यह बड़ी पतिभक्ता हुई। करन्धम के पुत्र अविचित से इसका विवाह सावित्री-सत्यवान की याद दिलाये बिना नहीं रहती।

विदुषी लखिमा—भैरव सिंह के भाई चन्द्रसिंह की पटरानी थीं। इनके लिखे 'पदार्थ चन्द्र' और 'विचार चन्द्र' नाम के दो न्याय ग्रन्थ अभी प्राप्त हैं। एक सहस्र वर्ष तक आप जैसी स्त्री नैयायिक कोई पैदा नहीं हुई। बहुत सी किंवदन्तियाँ आपके विषय की मिथिला में प्रसिद्ध हैं।

चन्द्रकला—आप मैथिलकोकिल विद्यापति की पुत्रवधू थीं। कविवर चन्दा झा ने आपको महामहोपाध्याय कह कर उल्लेख किया है। आपके रचित संस्कृत पद मिले हैं।

इसके अतिरिक्त विश्वास देवी धामुदत्ता आदि बहुत सी देवियाँ उत्पन्न हुई हैं जिन्हों ने मिथिला के साथ ही साथ स्त्री जाति का मुख उज्ज्वल किया है। किन्तु हन्त! 'ते हि नो दिवसा गताः।'



साहित्य में प्रान्तीयता का विष !

कालिदास किसी भी वंश के अवतंस रहे हों पर आजकल उनका काव्य सभी के मानस का हंस बन रहा है ! विद्यापति मिथिला के होते हुए भी अंग-बंग-कलिंग के समान श्रद्धाभाजन रहे हैं ? वंगपुत्र रवीन्द्र को गोद में लेने के लिये कौन सा देश लालायित नहीं होता ?

साहित्य विश्वजनीन होता है उसे स्वदेशी कह कर सत्कार और विदेशी बना कर दुत्कार देने का प्रयत्न हास्यास्पद ही होगा। यही एक वस्तु है जिसे राष्ट्रीयता की मुहर, प्रान्तीयता की संकीर्णता सिकस्त नहीं बना सकती।

किन्तु इधर कुछ दिनों से हिन्दी के साहित्य में प्रान्तीयता की दिवाल खड़ी होने की आशंका बढ़ती दीख पड़ती है। कुछ पत्रों में इसकी प्रतिध्वनि सुनाई भी देती है। कोई बिहार की साहित्यिक लूट के लिये यू० पी० को लंकाशायर बना रहा है तो किसी को बिहारियों की गति-विधि में बहिष्कार का षड़यन्त्र ही सूझ रहा है।

हम नहीं समझते इस प्रकार की दुर्भावना किस बुरी घड़ी से क्यों कर पैदा हुई। इन दोनों प्रान्तों ने बड़ी लगन के साथ हिन्दी की सेवा कन्धा से कन्धा मिला कर की है। इस तरह एक ध्येय के पथिक की यह अनबन किसी प्रकार सह्य नहीं है।

हम प्रान्तीयता के कारण न तो किसी सुरभित कुसुम को कुचल सकने का ख्याल कर सकते हैं और न निर्गन्ध किंशुक को नाक लगाने का असफल प्रयास कर सकते हैं। जो मणि होगी वह कहीं की रहे मुकुट पर चढ़ेगी ही और धूल माथे पर चढ़ाई जा कर भी धुलेगी ही।

युक्तप्रान्त ने हिन्दी मन्दिर के श्रृङ्गार में जो कुछ किया है उसे भूलेगा कौन ? पूज्य 'महावीर' का 'प्रसाद' बाँटने 'गुप्तजी' और 'हरिऔध' जी की कविता सुनाने प्रेमचन्द सा उपन्यासकार पैदा करने का जिसे सौभाग्य प्राप्त है उसके सहयोग का स्वागत कौन नहीं चाहेगा ? फिर बिहार की सेवा भी भुलाई नहीं जा सकती। वह जहाँ साहित्यपोषक राजा कमलानन्द सिंह को पैदा करता है वहाँ बाबू शिवपूजन सहायजी सा साहित्यिक तपस्वी भेंट देता और 'दिनकर' के गाने सुनाता है।

यह गलतफहमी का कुहेसा जिसमें दूर हो वही सद्भाव का वसन्त हमें इष्ट है।

संस्कृत-साहित्य की ओर

संस्कृत भाषा की गणना आधुनिकों की दृष्टि में Dead Languages मृतभाषाओं में भलेही की जाय पर आज भी उसके सेवकों में सेवा की जो एकान्त भावना पाई जाती है, संस्कृत के विशाल भण्डार के भरने में जैसा

कार्यात्मक उत्साह देखा जाता है, वह प्रचलित-भाषा-सेवियों के लिये भी स्पृहणीय और अनुकरणीय है।

भारतीय भाषाओं की मूल-भाषा और हमारी धार्मिक भाषा होने के कारण नेपाल के पर्वत-मूल से मद्रास के सागर की छोर तक और वंग के पूर्वीय अञ्चल से सिन्ध काश्मीर के किनारे तक किसी न किसी तरह संस्कृत की आराधना हो रही है। इस छोटी सी मिथिला को ही ले लीजिये पचास वर्ष के इधर यहाँ के संस्कृत-साहित्य की ओर दृष्टिपात कीजिए, आप को सामयिक स्फुट रचना-ग्रंथों के अतिरिक्त अनेकों ऐसे ग्रन्थ मिलेंगे, जिनके चिर-स्थायित्व में रंच मात्र भी सन्देह नहीं।

हमें सब से पहले यहाँ सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् स्व० पण्डित धर्मदत्त [बच्चा] झा के 'सुलोचनामाधव' का स्मरण आता है, यह ९६ सर्गों में प्रौढ गद्य और सरस पद्य में समाप्त हुआ है। ऐसा विशालकाय चम्पूकाव्य इधर शायद कोई नहीं बना। यदि इसके प्रकाशन का प्रबन्ध हो जाय तो संस्कृत-भण्डार की यह एक सुन्दर सामग्री प्रस्तुत होगी। फिर प्रतिभाशाली विद्वान् देवीकान्त ठाकुर सिद्धान्त शास्त्री का जिन के नाम के साथ स्वर्गीय लगाते अत्यन्त कष्ट होता है रचित महाकाव्य देवीचरित [महिषासुर वध] संस्कृतानुरागियों के कण्ठ का हार बन सकता है अगर वह प्रकाशन के सूत्र में गूंथा जाय।

हम प्रकाशित महाकाव्य और अनेक खण्डकाव्यों की चर्चा नहीं करेंगे वे तो सभी के समक्ष की चीजें हैं। हाँ, इस समय भी बहुत से काव्य यहाँ रचे जा रहे हैं जिनसे संस्कृत साहित्य की दशा आशावर्धक कही जायगी ! हमारा लक्ष्य उस ग्रन्थ की ओर है जो 'आर्यासाहस्री' नाम से 'राधा परिणय' महाकाव्य के रचयिता पण्डित श्री बदरीनाथ झा जी द्वारा प्रायः समाप्ति पर है। कहना नहीं होगा कि 'आर्यासप्तशती' की पद्धति का यह काव्य अनोखा उतरेगा।

कुछ नवयुवक संस्कृत के कवि भी इस दिशा की ओर आगे आ रहे हैं, संस्कृत नाटक और खण्डकाव्य के प्रणयन में दत्तचित्त हैं जिनकी सूचना इस स्तम्भ में समय समय पर निकलेगी, और इस तरह हमें संस्कृत-साहित्य की भविष्य-परम्परा सुरक्षित मालूम होती है। तथास्तु !

शिवास्ते सन्तु पन्थानः

अनेक कठिनाइयों के बीच गुजरता हुआ मैथिली-साहित्य आज प्रगति की ओर है। हमें पूरा पता न हो पर थोड़ी सी जो जानकारी हासिल है वह इसके भविष्णु वर्तमान का परिचय देती है। कविवर पं० सीताराम झा जी (चौगामा) मौलिक और अनुवादात्मक पद्य रचना में अग्रसर हैं। उनकी 'गीता तत्वसुधा' समाप्त हुई, 'मैथिली याज्ञवल्क्य स्मृति' की पूर्ति करते हुये सुभाषित के ढंग की स्फुट पद्य-रचना में प्रवृत्त हैं। उनकी 'अलङ्कार दर्पण' 'सूक्तिसुधा' आदि एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हैं। मिथिला के भूतपूर्व सम्पादक श्रीयुत कुशेश्वर 'कुमर' की लेखनी भी कविताक्षेत्र में अग्रसर है। इधर बाबू भोलालाल दासजी 'मैथिली-इतिहास' की सामग्री का संचय कर रहे हैं तो उधर प्राचीन मैथिली की खोज में डा० श्रीयुत उमेश मिश्र जी दत्तचित्त हैं। बाबू नगेन्द्रनाथ दास 'विद्यापति' (समालोचनात्मक) और 'गोविन्द-गीतामृत' लिख कर प्रकाशन के प्रबन्ध में हैं। पं० श्री जयनन्दन शास्त्री, 'मैथिली शब्दसागर' नाम के कोष का संग्रह कर रहे हैं।

डा० गङ्गानाथ झाजी का वेदान्त दीपक प्रेस में है, 'उच्च गद्य संग्रह' का प्रकाशन शुरू हो रहा है। म० म० प० श्री मुकुन्द झा बक्सी जी का विस्तृत 'मिथिला-इतिहास' शीघ्र निकलेगा। पुस्तकभण्डार [लहेरियासराय] ने कन्यादान [प्रो० श्री हरिमोहन झा लिखित] का सुन्दर प्रकाशन किया। बाबू अच्युतानन्द दत्त जी के 'रघुवंश' का पूर्वार्द्ध निकल चुका। उन्हों ने महाभारत जैसे विशाल ग्रन्थ का संक्षिप्त पद्यानुवाद कर मैथिली-पद्य-साहित्य की श्री-वृद्धि की है।

बाबू गङ्गापति सिंह बी० ए० मैथिली-कवि परिचय के प्राचीन और अर्वाचीन दोनों खण्डों के संकलन में संलग्न हैं। डा० श्रीयुत सुधाकर झा जी ने 'मिथिला देश दर्शन' नाम से सुप्रसिद्ध 'भारत भारती' के ढंग की कविता पुस्तक हाल में ही लिखी है। श्रीयुत बाबू भुवनेश्वर सिंह जी 'भुवन' उपन्यास सम्राट् शरत् बाबू के उपन्यास का मैथिली अनुवाद कर रहे हैं। इन कार्यों को देखते हुए मैथिली-साहित्य प्रगति के पथ पर आरूढ़ दिखाई देता है। 'शिवास्ते सन्तु पन्थानः'



मिथिला की कुछ संस्थाएँ

श्री देवनारायण चौधरी

संस्थाएँ लोकजागृति के चिन्ह हैं। किसी देश का आन्तरिक स्वास्थ्य संस्था की नाड़ी देख कर ही जानी जाती है। मिथिला में अनेक संस्थाएँ हैं, जिनमें कुछ प्रधान के संक्षिप्त परिचय दिये जाते हैं।

साहित्यिक--

मैथिली साहित्य परिषद् (लहेरियासराय):—इस परिषद् की स्थापना ४-९-१९३१ को दरभंगे में हुई। परिषद् ने अपने अल्प-बाल्य-काल में ही आशातीत सफलता प्राप्त की है। मातृभाषा मैथिली को योग्य पद प्रदान करना, उसके प्राचीन ग्रन्थों का उद्धार और नवीन साहित्य निर्माण, इस परिषद् के प्रधान उद्देश हैं। सफलता का अत्यधिक श्रेय इसके उत्साही वर्तमान मन्त्री बाबू भोलालालदास जी को है, जिनका मूल्यवान् समय परिषद् की चिन्ताओं में ही व्यय होता है। बाबू शशिनाथ चौधरी बी० ए० का नाम इसकी स्थापना के साथ जुड़ा हुआ है। परिषद् ने अनेक प्राचीन कवियों के लिखे ग्रन्थों का संग्रह और प्रकाशन भी किया है। कोर्स के लिये नवीन मैथिली की पुस्तकें भी तैयार करवायी हैं, जिनमें कुछ प्रकाशित हुए हैं। नियमित रूप से इसके वार्षिक अधिवेशन होते हैं। इसकी शाखाएँ भिन्न-भिन्न स्थानों में खुल रही हैं।

पुस्तकभण्डार—यह मिथिला की ही नहीं बिहार की प्रधान साहित्यिक प्रकाशन-संस्था है। इसके संचालक विद्यापतिप्रेस के अध्यक्ष बाबू रामलोचनशरण 'बिहारी' बालसाहित्य के अन्यतम निर्माता हैं। सुप्रसिद्ध मासिक 'बालक' यहीं से प्रकाशित होता है। भण्डार ने अनेक प्राचीन और नवीन पुस्तकों का प्रकाशन किया है। हाल में हिन्दी-संसार नाम से वार्षिक पुस्तक निकालने की स्तुत्य आयोजना इसने की है। हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकों का सहयोग इसे प्राप्त है। मैथिली के कई ग्रन्थ यहाँ से प्रकाशित हुए। 'मिथिला' मासिक पत्रिका यहाँ से निकली और मैथिली टाइप की छपाई का काम एकमात्र इसी ने आरम्भ किया है। इसके अतिरिक्त छोटी-मोटी और भी प्रकाशन संस्थाएं हैं।

मैथिल विद्वत्समिति:—इसका वार्षिक अधिवेशन मैथिल महासभा के अवसर पर साल में हुआ करता है। पं० श्री बलदेव मिश्र ने इसकी स्थापना की।

मैथिली रिसर्च सोसाइटी:—जस्टिस शारदा चरण मित्र के उद्योग से यह सोसाइटी कायम हुई। स्वर्गीय महाराजाधिराज इसके सभापति थे। और उसने अनुसन्धान का कार्य्य किया। विद्यापति की पदावली का अनुसन्धान भी इसी सोसाइटी ने किया। पर अब यह भूतकाल के गर्भ में चली गयी। हिन्दी साहित्य के भी अनेक सभा-समाज हैं जो प्रान्त में हिन्दी की अच्छी सेवा कर रहे हैं।

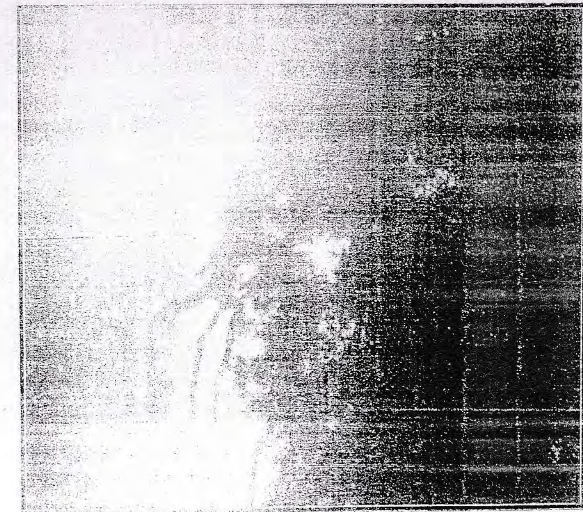
सार्वजनिक

दरभङ्गा गोशाला सोसाइटी—काशी के पं० जगत-नारायण शर्म्मा के उद्योग से स्वर्गीय महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह जी के हाथों इसकी स्थापना सन् १८८१ ई० में हुई। इसके सभापति मिथिलेश ही हैं और कार्य्य संचालन के लिए ८ सभ्यों का बोर्ड है। यह वैज्ञानिक ढंग से गोपालन करती है जिस के फलस्वरूप बहुतेरी बंध्या गौएँ गर्भवती हुईं। और दूध की आय ६००) वार्षिक से ३०००) हो गयी है। यहाँ से 'जीवदया और गोपालन' नाम का एक सचित्र मासिक भी निकला करता है। बम्बई जीवदया मंडली का प्रचार कार्य्य इसी संस्था के तत्वावधान में चलता है। संस्था ने पूज्य मालवीय जी, जगतगुरु शंकराचार्य आदि महानुभावों के सभापतित्व में अनेक सभाएँ करायीं और जिस से गोरक्षा में बड़ी मदद मिली है। इस के पास ९००) एकड़ भूमि है। ८५ हजार रुपया कोष में जमा है। संस्था ने अपनी गोचरभूमि में ७२६४८ पशुओं को आश्रय दिया है। कोई भी व्यक्ति ५०१) देकर इसका आजीवन सदस्य हो सकता है।

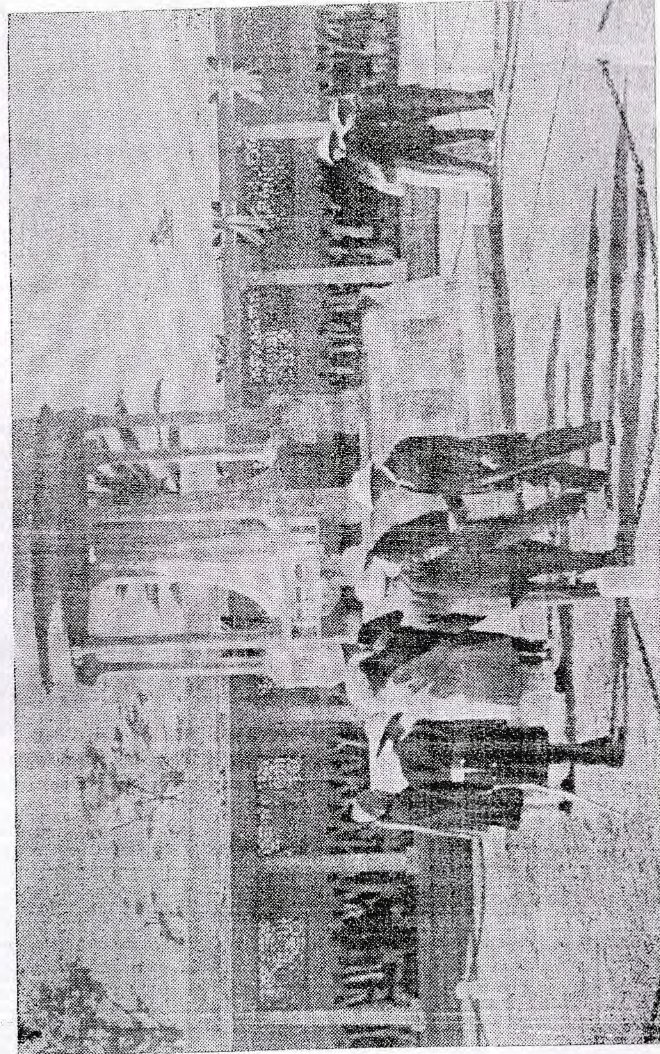
दरभङ्गा सेवासमिति—सन १९१९ ई० में बाबू कमलेश्वरी चरण सिंह जी के सदुद्योग से बनी और स्वर्गीय महाराज रमेश्वर सिंहजी के ५००) के दान से इसका भवन बना। यह समिति मेला, बाढ़ एवं अन्यान्य दुर्घटनाओं के समय सेवा कार्य्य करती है। इसके सभापति पं० श्री गिरीन्द्रमोहन मिश्र जी हैं।



पूसा (जिला दरभङ्गा) का विश्वविख्यात कृषि कालेज



मिथिला के भारत-प्रसिद्ध दार्शनिक उदयनाचार्य की निवास-भूमि (करियन ग्राम, जिला दरभंगा) जहाँ बरगद का पेड़ उनकी याद दिला रहा है।



रामेश्वरलेश में स्वर्गीय महाराजाधिराज की मूर्ति का वायसराय के द्वारा उद्घाटन। दूर पर मैथिल पण्डितों का ग्रुप।

दरभङ्गा अनाथालय—रायबहादुर सखीचन्द पुलिस-सुपरिन्टेनडेण्ट के उद्योग से यह अनाथालय बना। १९२७ की २०वीं जनवरी को महात्मा गांधी द्वारा इसकी नींव पड़ी। बहुत से अनाथ बच्चे भोजन वस्त्र तथा शिक्षा का प्रबन्ध इस संस्था द्वारा होता है। भवन बनाने के लिए वर्तमान मिथिलेश ने बहुत रुपये दिये हैं। इसका संचालन बाबू पद्मनाभजी तथा कमलेश्वरी बाबू के हाथों होता है।

शिक्षण संस्थाएँ

पूसा कृषिकालेज—मिथिला की यह भारतप्रसिद्ध संस्था है। यहां कृषि विद्या का अनुसंधान और साथ ही वैज्ञानिक और व्यावहारिक शिक्षा होती है। कृषि शास्त्र के विस्तृत ग्रन्थागार, कल-पुर्जे और अनुसंधानभवन हैं। इसकी प्रयोगशाला भी काफी बड़ी है। इसकी अन्तर्राष्ट्रिय ख्याति है। दुःख है इस संस्था की तबादिली दिल्ली में हो रही है।

बिहारमहिलाविद्यापीठ—यह विद्यापीठ दरभङ्गा के मकौलिया गांव में है। इस के संस्थापक प्रसिद्ध जनसेवक उत्साही बाबू रामनन्दन मिश्र जी हैं। विद्यापीठ ने इतने थोड़े समय में भारत भर में ख्याति पा ली है और सभी शिक्षा-प्रेमियों का ध्यान आकर्षित कर लिया है। स्त्री बालिकाओं के साथ १० साल से कम उम्र के लड़के भी यहाँ शिक्षा पाते हैं। शिक्षा का ढंग आधुनिक और आदर्श प्राचीन है। छड़ी की जरूरत नहीं। बच्चे स्वयम् शिक्षकों से पाठ के लिये तकाजे करते हैं।

मुजफ्फरपुर टेकनिकल—यहाँ लोगों को उद्योग कला की शिक्षा मिलती है।

दरभङ्गा—राजस्कूल के अंतर्गत एक उद्योगभवन खुला है। उस में भी दरी, कालीन, कपड़ा, नेवार, बनाने दर्जीगिरी आदि कलाएँ सिखलायी जाती हैं।

संगीत विद्यालय—लहेरियासराय, इस के संचालक बाबू जानकीप्रसाद राय ने अपना सारा समय इसमें लगा दिया है। पर ऐसी उपयोगी संस्था की ओर लोगों की जैसी रुचि होनी चाहिये, नहीं है। यही कारण है कि यह अभी स्टेन्डर्ड तक नहीं पहुंच सका है।

इनके सिवा मुजफ्फरपुर और भागलपुर के प्रसिद्ध कालेज और अनेक हाइस्कूल हैं। मेडीकल शिक्षा के लिये दरभंगे में एक मेडिकल स्कूल है। राष्ट्रियविद्यालयों की भी अच्छी तायदाद है। संस्कृत विद्यालय तो गाँव-गाँव में बिखे हुए हैं, जिनकी संक्षिप्त सूची अन्यत्र है।

जातीय

मैथिलमहासभा—यह मैथिल ब्राह्मण और कर्ण कायस्थों की जातीय महासभा है। इसके आजीवन सभापति मिथिलेश हैं। साल में समारोहपूर्वक इसका वार्षिक अधिवेशन होता है। पहला अधिवेशन मधुबनी में तीन दिनों तक २७-२८-२९ मार्च १९१० ई० को हुआ था। इसके उद्देश्य विद्योन्नति कृषिवाणिज्यादि की उन्नति, मिथिला मैथिली-हितसाधन, मैथिल स्वत्व, और सामाजिक कुरीति-परिहार, आदि २ हैं। निर्धन मैथिल विद्यार्थियों को शिक्षालाभ करने में इस महासभा ने आदर्श सहायता की है। अबतक ३०० छात्रों को कुल ४५००० रुपयोंसे महासभा ने मदद की है। कार्य्यकारिणी के सदस्यों के चंदे, राजा रईस और जमींदारों से मिलने वाली नियमित सहायता के सिवा श्रीमान् मिथिलेश के दानों से इसके खर्च पूरे होते हैं।

अन्यान्य—इस महासभा के सिवा यहां राजपूतसभा, भूमिहारब्राह्मणसभा, वैश्यसभा, कर्णकायस्थसभा, यादववंशीयसभा, गोपसभा, आदि जातीयसभाएँ हैं। मैथिल शिक्षित समाज कलकत्ता, मैथिलसम्मेलन, मैथिल छात्र समिति, भागलपूर मैथिलछात्रसमिति काशी, बनी और नष्ट हो गयी। मैथिल छात्र समिति मुजफ्फरपुर, मैथिल समिति पटना, मैथिल युवक संघ पुरनिया भी अपने अपने कार्य्य में संलग्न हैं।

अन्य—

म० कुमार विश्वेश्वर सिंह फुट बौल टुर्नामेन्ट (दरभङ्गा)—यह यहाँ की देशविदित 'स्पोर्टींग'-संस्था है। संरक्षक महाराजाधिराज-(दरभङ्गा) हैं। इसके प्राण देशप्रसिद्ध पोलो खिलाड़ी म० कु० श्रीमान् विश्वेश्वर सिंह बहादुर हैं। मैच की 'सीजन' में इसके कारण दरभङ्गा सभी प्रान्तों के खेलप्रेमियों का आकर्षण केन्द्र हो जाता है। इसे अखिल-भारतीय रूप देने का प्रबन्ध हो रहा है।

पुस्तकालय—दरभंगे का राज-पुस्तकालय अपने विशाल ग्रन्थ-संग्रह के लिये विख्यात है। अंग्रेजी और संस्कृत के उपलब्ध मुद्रित पुस्तकों के अतिरिक्त तालपत्र आदि हस्तलेखों का विशाल संग्रह है। महाकवि विद्यापति ठाकुर, शंकर मिश्र आदि अनेक प्राचीन विद्वानों के हस्तलेख यहाँ मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त पब्लिक लाइब्रेरियाँ हैं। शिक्षा-संस्थाओं से सम्बद्ध कई अच्छे पुस्तकालय हैं। भ्रमणकारी पुस्तकालयों की आयोजना की जा रही है जो लोकोपयोगी सिद्ध होंगे।

धार्मिक संस्थाएं—धर्मप्राण मिथिला में धार्मिक संस्थाओं की तो भरमार है। सभी जगह सनातनधर्म सभाएँ हैं। जिनमें रोसड़ा की सनातनधर्मसभा प्रगतिशील है। आर्य्य समाज तथा थियोसीफिकल सोसाइटी भी कई जगह स्थापित हैं। इसके अतिरिक्त देवालय भी अनेक हैं।

हिन्दीनाट्यसमाज मुजफ्फरपुरः—यह सामाजिक कलंकों को अभिनय के जल से धोने के लिये पैदा हुआ है। इसके संचालकों में श्री ललित कुमार सिंह 'नटवर' प्रधान हैं। तरुणनाट्यपरिषद्, बल्लीपुर, यह भी नाट्य साहित्य की उन्नति के लिये संचालित हुई। और भी अनेक अभिनयसंस्थाएं हैं।

चर्खा-संघ—(मधुबनी) काफी खादी कपड़े तैयार करता है। यहाँ की खादी बहुत अच्छी टिकाऊ होती है। अन्य प्रान्तों की तरह राजनैतिक हलचलों में मिथिला कभी पीछे नहीं रही। सब स्थानों की तरह यहाँ भी कांग्रेस, किसान सभा आदि का संगठन है। उनके दफ्तर जिला तथा अन्यान्य स्थानों में हैं। हिन्दूसभा आदि भी जिलों में स्थापित हैं।

मिथिला की रियासतें

प्रो० प० श्रीयुत उपेन्द्र झा जी व्या० न्यायाचार्य

बनैली राज

बैगनी नवादा (दरभङ्गा) के मैथिल पण्डित गदाधर झा की विद्वत्ता का परिचय सूबेदार सुलतान नासीरुद्दीन के द्वारा पाकर सम्राट् गयासुद्दीन तुगलक ने उन्हें कुछ गाँव जागीर में दिये। इनकी दसवीं पीढ़ी में परमानन्द झा (हजारी) हुए, जिन्हें अजीमाबाद के नवाब ने दरभङ्गा जिले का चौधरी बनाया। किन्तु कई सालों तक कर नहीं दे सकने के कारण पूर्णियाँ जिले के मूसापुर गाँव में जा बसे। वहाँ पूर्णियाँ और दिनाजपुर के कानूनगो भैरव मल्लिक ने कई तालुके उनके हाथ बन्दोबस्त किये। फिर पहसरा की रानी इन्द्रावती के खैरखाह तहसीलदार रह कर इन्हों ने 'तीरा' 'असजा' परगने हासिल किये। इस तरह स्वयं आठ लाख की आमदनी कर बनैली (पूर्णियाँ) में अपनी राजधानी कायम की।

बनैली—बाद इनके दुलार सिंह चौधरी हुए। नेपाल और बृटिश के युद्ध के समय इन्हों ने बृटिश सरकार की मदद कर 'राजा' की पदवी पायी। साथ ही बनैली के आसपास की खास कोस तक जमीन भी। इनके वेदानन्द सिंह रुद्रानन्द सिंह दो पुत्र थे। दोनों को क्रम से लीलानन्द सिंह और श्रीनन्द सिंह एक एक पुत्र हुए। वेदानन्द सिंह के एकमात्र पुत्र लीलानन्द सिंह बड़े दानी और उदार जो 'कलिकर्ण' नाम से प्रसिद्ध थे। उनके तीन पुत्र हुए, जिनमें राजा पद्मानन्द सिंह, राजा कलानन्द सिंह, स्वर्गीय हुए और श्रीमान् राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर बी० ए० इन दिनों बनैली के अधिपति हैं। आप चोटी के शिकारी और साहित्यप्रेमी हैं। आपके छः पुत्र हैं—कुमार श्यामानन्द सिंह, कु० विमलानन्द सिंह, कु० तारानन्द सिंह, कु० दुर्गानन्द सिंह, कु० जयानन्द सिंह और कु० आद्यानन्द सिंह।

राजा पद्मानन्द सिंह के एकमात्र पुत्र चन्द्रानन सिंह स्वर्गीय हुए। उनकी धर्मपत्नी रानी चन्द्रावती आज भी अपनी दानशीलता के लिये प्रसिद्ध हैं।

गढ़ बनैली-कृष्णगढ़—राजा कलानन्द सिंह के दो पुत्र हैं। ज्येष्ठ श्रीमान् कुमार रमानन्द सिंह जी गढ़बनैली के अधीश हैं। और श्रीमान् कुमार कृष्णानन्द सिंह जी कृष्णगढ़ शुलतानगंज के अधिपति हैं। आप बड़े साहित्य-प्रेमी युवक नरेश हैं। इन्हों ने 'गङ्गा' नाम की सुप्रसिद्ध पत्रिका के लिए प्रचुर दान दिया और वैदिक पुस्तक-माला के भी आपही संरक्षक हैं।

श्रीनगर—राजा रुद्रानन्द सिंह के बालक श्रीनन्द सिंह हुए जिन्होंने अपने नाम पर अलग श्रीनगर नाम से नगर बसाया। आप के तीन पुत्र हुए, कुमार नित्यानन्द



श्रीमान् कुमार गङ्गानन्द सिंह जी, एम० ए०



बनैली नरेश
श्रीमान राजा कीर्त्यानन्द सिंह जी बहादुर बी० ए०



श्रीमान कुमार रमानन्द सिंह जी बहादुर
गढ़ बनैली

सिंह, राजा कमलानन्द सिंह और कुमार कालिकानन्द सिंह। कुमार नित्यानन्द सिंह की शाखा आगे नहीं बढ़ी। राजा कमलानन्द सिंह बड़े प्रसिद्ध साहित्य-सेवी और उदार थे। इन्हें 'साहित्य-सरोज' 'अभिनवभोज' आदि अनेक उपाधियाँ प्रदान की गई। आप के योग्य ज्येष्ठ सुपुत्र श्रीमान् कुमार गङ्गानन्द सिंह देशविदित उदाराशय विद्वान् हैं और कनिष्ठ कुमार अच्युतानन्द सिंह जी बी० ए० हैं। कुमार कालिकानन्द सिंह जी के पाँच सुपुत्र कुमार अभयानन्द सिंह, कुमार विजयानन्द सिंह, कुमार घनानन्द सिंह कुमार दिव्यानन्द सिंह और कुमार प्रमोदानन्द सिंह कुमार अभयानन्द सिंह विलायत जाकर ऊंची शिक्षा प्राप्त करनेवाले प्रथम मैथिल हैं।

बनैली राज्य अपने दान और मैथिलीभाषा के प्रेम के लिए विख्यात है। देश की बड़ी बड़ी संस्थाओं में इसने काफी मदद दी है।

बेतियाराज—इस राज के संस्थापक उग्रसेन सिंह थे, जिन के पुत्र राजसिंह को मुगल सम्राट् अकबर से 'राजा' की उपाधि मिली। बहुत दिनों तक यहाँ के राजा विद्रोही गिने जाते थे। मुस्तफा खाँ के साथ अलीबर्दी खाँ से बेतिया-राजा ने युद्ध किया। बीच में यह राज मीरकासिम फिर सर रौबर्टबार्कर के द्वारा अधीन किया गया। १७६६ ई० ध्रुवसिंह की मृत्यु होने पर उनके दौहित्र राजा युगल-किशोर सिंह गद्दी पर बैठे। इष्ट इण्डिया को कर न चुकाने के कारण युद्ध करना पड़ा। हार तो गये पर कम्पनी ने फिर चम्पारन के 'मझवा' और सियाराम परगने इनके ही हाथ और अन्य परगने गजसिंह के पौत्र कृष्ण सिंह और अवधूत सिंह के हाथ बन्दोबस्त किये। कृष्ण सिंह ने **सिवहर** और अवधूत सिंह ने **मधुवन** राज की नींव डाली। जो अब उनके वंशधरों के हाथ है। उधर बीच में बेतिया-राज की बड़ी तरक्की रही। अन्तिम राजा हरीन्द्रकेश्वर सिंह 'महाराज' की उपाधि लेकर गद्दी पर बैठे। पर अन्त में निःसन्तान मरे। अभी उनकी छोटी महारानी बेतिया-राज की गद्दी पर हैं।

नरहनराज—सलरी [नेपाल] के सुप्रसिद्ध द्रोणवार राज पुरादित्य के वंशज गंगाराम ने दरभङ्गे के सरैसा परगने के गड़सरा गांव में अपनी राजधानी कायम की। पीछे इनके वंशजों को आपस में बट जाने से जो कई छोटी रियासतें बनीं, उनमें नरहन प्रमुख था। सन १७५० में जब अली-बर्दी खां ने मिथिला के राजा नरेन्द्र सिंह पर चढ़ाई की तो नरहन के स्वामी बाबू केशव सिंह ने मिथिलेश को पूरी सहायता दी थी। बाबू परमेश्वरी नारायण सिंह अन्तिम अधिपति हुए। उनकी मृत्यु पर उनकी पत्नी और माँ [जिन्हें रानी की उपाधि मिली] इस राज्य पर थीं। उनकी मृत्यु के बाद यह राज काशीनरेश और नरहन के बबुआनों में बांटा गया, जिन में बाबू कामेश्वर नारायण सिंह और बाबू राजेश्वर नारायण सिंह प्रधान हैं।

सोरिया राज—यह राज पूर्णियाँ जिले के ब्राह्मण श्रोत्रियवंशीय था। अब न इसके वंशज राजे हैं और न राज ही। इसके स्थापक सुमेरु सिंह चौधरी हुए, जिन्हें शाहआलम द्वारा जमींदारी का फरमान मिला। इस वंश की ७ पीढ़ियों तक राज कायम रहा। अपने मन्दिरों और उसमें दी गयी देवोत्तर भूसम्पत्ति के कारण इसका नाम अब भी अमर है। अन्तिम राजा रूपनारायण सिंह हुए हैं। सुमेरु सिंह के अतिवृद्ध प्रपौत्र इन्द्रनारायण सिंह बड़े नामी थे। यह विशाल राज्य था। सुनते हैं ६ लाख रुपये इस राज को कर-स्वरूप देना पड़ता था। इसी वंश ने अपनी सहायता से गन्धवरिया रियासत कायम करायी।

रजौड़—इस राज्य के अधि-पति 'कर्महे-नडुआर' मूलके उच्चवंशीय मैथिल ब्राह्मण हैं। अपनी विद्या और उदारता के लिये यह राज प्रसिद्ध है। स्व० राजा टङ्कनाथ चौधरी बी० ए० इस के प्रतिष्ठित अधिपतियों में अन्यतम थे। अभी उन के पौत्र वर्तमान हैं।

बरारी ठाकुर वंश—दरभङ्गा जिलावासी नारायण ठाकुर बड़े तान्त्रिक थे। इनके सिद्धि-बल से एक प्रतिष्ठित जमिन्दार को पुत्र मिला, बदले में इन्हें जागीर मिली। इनसे दत्त, मोहन, नाथ तीन शाखाएँ चलीं। मोहन शाखा ने इधर बहुत उन्नति की। बरारी स्टेट के अधिपति मोहन-परिवार बड़े प्रतिष्ठित हैं।

सुगौना—चपाही की रियासत भी बड़ी प्रतिष्ठित थी। पर अब वह कायम न रही। खान्दानी रईसों में रायसाहब का परिवार दरभङ्गा, खाँ-साहब का परिवार दरभङ्गा, मेढ़या परिवार मुजफ्फरपुर, सिंह परिवार भागलपुर आदि प्रसिद्ध हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य जमिन्दारों की संख्या यहां बहुत हैं जिनमें पुस्तैनी जमिन्दारी चली आती है। सिंहवाड़, सुरसण्ड, नरहन, शिवहर, वीरसिंहपुर, पतौर, बहेड़ी, बल्लीपुर, खराड़ी, केवटा, कोनैला, शुम्भा, हरिपुर, बाबी, पकड़ी, दुलारपुर, पिड़ारुच, बहेरा, बरुआरी, बडरहटा, नवादा, उखाव आदि आदि, जिनका परिचय इस लघु लेख में आना असम्भव है। इनके अतिरिक्त अनेक महन्थ भी यहां जमिन्दार हैं।

खड़ौरे बबुआन

पुरातन नियमानुसार दरभङ्गा राज्य की गद्दी के ज्येष्ठ राजकुमार ही अधिकारी होते हैं और अनुजों को परगने दिये जाते हैं। इस तरह खड़ौरे (खण्डवलाकुल) बबुआनों की परम्परा चली। जिनमें कुछ का संक्षिप्त परिचय यों है-

महाराज प्रतापसिंह की मृत्यु के बाद ज्येष्ठ कुमार कृष्ण सिंह के अल्पायु होने के कारण छत्र सिंह महाराज हुए। उनके तीन अनुजों में क्रम से कीर्ति सिंह ने जबदी प्रगना लेकर मधुबनी में अपना निवास-स्थान बनाया। और कुमार गोविन्द सिंह ने परिहारपुरराघो प्र० पाकर राघोपुर में आश्रम लिया और सबसे छोटे कुमार रमापति सिंह पचही प्रगना लेकर वहीं जा बसे।

मधुबनी—महाराजकुमार कीर्ति सिंह को बाबू गिरिधारी सिंह और बाबू दुर्गादत्त सिंह युगल पुत्र थे। गिरिधारी सिंह (बड़ी ड्योढ़ी) के बड़े पुत्र हर्षधारी सिंह थे, जिनके बाबू तेजधारी सिंह, बाबू क्षेमधारी सिंह बाबू बालादत्त सिंह और बाबू आद्यादत्त सिंह आत्मज हुए। और छोटे पुत्र बाबू तन्त्रधारी सिंह, के आत्मज बाबू चन्द्रधारी सिंह हैं। उधर बाबू दुर्गादत्त सिंह (दानी और भक्त) जी के पांच पुत्र बाबू हितेन्द्र सिंह, बाबू अमरेन्द्र सिंह, बाबू उपेन्द्र सिंह, बाबू विजयेन्द्र सिंह, बाबू दुकौड़ी साहेब (बचपन में स्व०) हुए। मधुबनी ड्योढ़ी अपनी विद्या और भक्ति के लिये नामी है।

राघोपुर—बाबू गोविन्द सिंह के पुत्र बाबू गणेशदत्त सिंह हुए जिनमें बाबू गिरिजादत्त सिंह तथा बाबू वंशीधारी सिंह हुए। गिरिजादत्त सिंह के बाबू यदुनन्दन सिंह जी और वंशीधारी सिंह के बाबू ब्रजनन्दन सिंह जी आत्मज हुए। यदुनन्दन सिंह जी के पुत्र बाबू हरिनन्दन सिंह जी बड़े साहित्यरसिक थे, जिनके सुपुत्र बाबू श्री कृष्णनन्दन सिंह जी अत्यन्त सहृदय और विद्या-एवं कला के प्रमुख आश्रय दाता हैं। विद्वानों के सत्कार में इनका सुयश सर्वविदित है। और बाबू ब्रजनन्दन सिंह के आत्मज बाबू कलाधारी सिंह योग्य और विद्यानुरागी हैं। राघोपुर पण्डित सम्मान के लिये प्रसिद्ध है।

पचही—बाबू रमापति सिंहसे कई शाखायें फूटीं जिनका पचही, मधेपुर आदि में निवास है।

बाद महाराज रुद्र सिंह के म० महेश्वर सिंह, कुमार गुणेश्वर सिंह, कु० नेत्रेश्वर सिंह तथा कु० गोपीश्वर सिंह (सुन्दर बाबू) चार पुत्र हुए। जिनमें ज्येष्ठ म० महेश्वर सिंह गद्दी पर बैठे।

शुभङ्करपुर—कुमार गुणेश्वर सिंह पड़री प्रगना लेकर शुभङ्करपुर जा बसे। उनके बाबू सुरेश्वर सिंह, बाबू हरेश्वर सिंह (रामजी बाबू), ललितेश्वर सिंह (छोटहू बाबू) चार पुत्र हुए। सुरेश्वर सिंह के दो पुत्रों में बाबू मोदेश्वर सिंह (गोपीरमण जी) समस्तीपुर जा बसे और रतीश्वर सिंह (रोहिणी रमण जी) मब्बी ग्राम में बस गये। बाबू हरेश्वर सिंह जी के तीनों पुत्र बाबू लक्ष्मीनन्दन सिंह, बाबू हरिनन्दन सिंह और बाबू श्रीनन्दन सिंह, शुभङ्करपुर में ही बसे हैं।

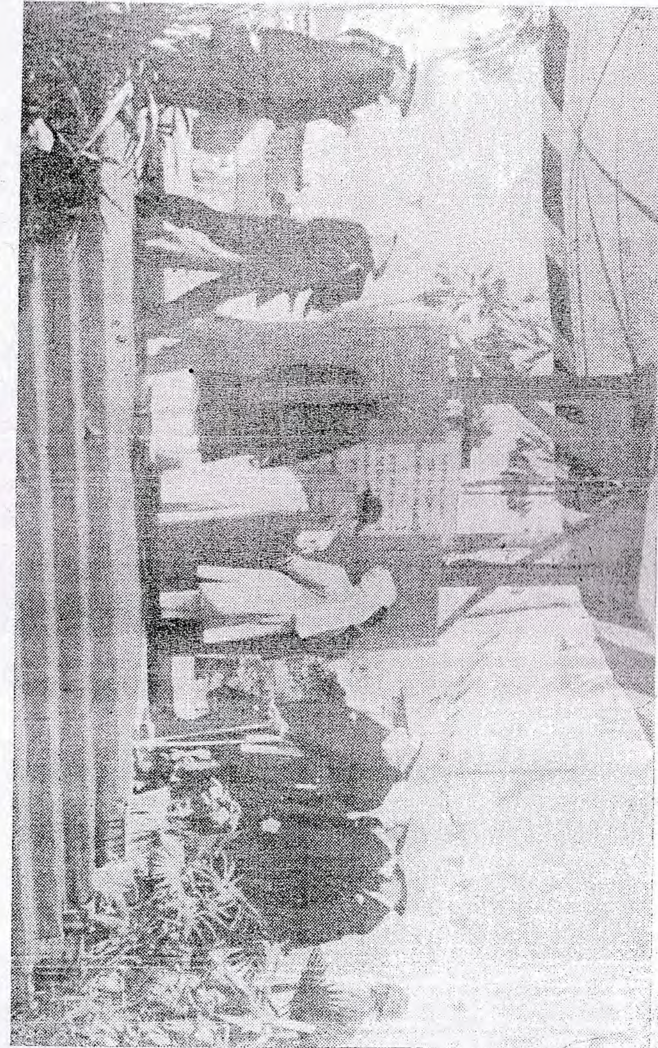
आनन्दपुर—को बाबू ललितेश्वर सिंह ने अपना निवास बनाया। आपके पाँच पुत्र हुए। आपके पौत्र बाबू भुवनेश्वर सिंह भुवन (मुजफ्फरपुर) प्रसिद्ध साहित्यसेवी हैं। बाबू तन्त्रेश्वर सिंह शुभङ्करपुर में ही रहे।

बरहगोरिया—में बाबू भवेश्वर सिंह रहने लगे। प्र० विशंकपुर बूढ़ा तालुका बेलारी इन्हें मिला। इनके दो पुत्र थे बाबू एकरदेश्वर सिंह (रघुनन्दन जी) बा० गणेश्वर सिंह (श्रीनन्दन जी)।

कबराघाट----(दरभङ्गा) म० कु० गोपीश्वर सिंह जी को आहिल प्रगना मिला। और बागमती के कबराघाट पर निवास बनाया। ये बड़े नामी हुए, अन्त में अपनी पत्नी को छोड़ कर निःसन्तान मरे।

इन खड़ौरे बबुआनों के अतिरिक्त और भी श्रोत्रिय भूस्वामी हैं। सरिसब, पाहीटोल, उजान, नवटोल आदि।

वायसराय विज़िट चित्रावली

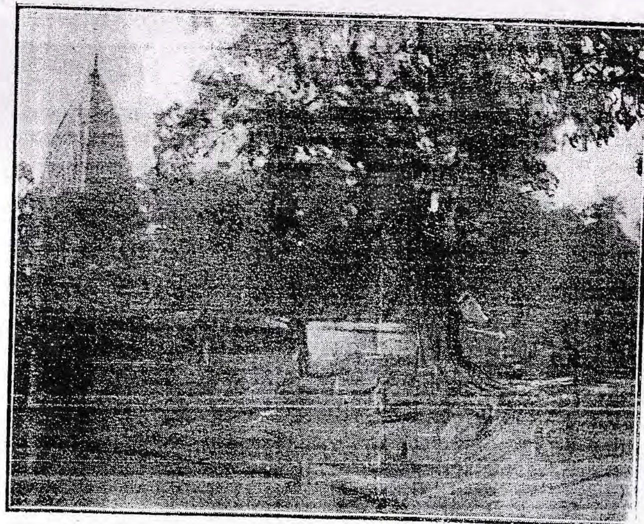


लेडी विलिंडन द्वारा अस्पताल के विशाल भवन की नींव दी जा रही है, जो उन्हीं के नाम पर स्थापित होगा।



गौतम कुण्ड

(यहीं महर्षि गौतम ने न्याय दर्शन का प्रणयन किया था)



अहल्या स्थान

(पाषाणी अहल्या यहीं श्रीरामजी की चरण-रज पाकर मुक्त हुईं)

मिथिला और काश्मीर

श्रीयुत पं० गोपीनाथ जी (राजपुस्तकालयाध्यक्ष)

—:०:—

मिथिला और काश्मीर परस्पर बहुत दूर के रहते हुए भी विचित्र समानता रखते हैं! मालूम होता है दोनों ने किसी एक जगह शिक्षा और दीक्षा पाई, और किसी एक ही जगह रहन-सहन सीखी फिर अलग अलग जा बसे! कुछ समानता देखिए—

(१) धार्मिकभावना—काश्मीर की तरह मिथिला में भी शाक्त और शैव सम्प्रदाय की प्रधानता है। उपासना में तन्त्रपद्धति का यहाँ भी वैसाही जोर है। दीक्षा के देवताओं में पुरुष की नहीं शक्ति की प्रधानता रहती है। काश्मीर के क्षीरभवानी-कुण्ड जैसे यहाँ भी बहुत से प्रसिद्ध शक्तिपीठ हैं। **(२) आहार**—मिथिला की भाँति काश्मीर का मुख्य भोजन भात है। मत्स्य-मांस के दोनों एक से चटोर हैं। **(३) भाषा, लिपि और साहित्य**—काश्मीर की भाँति मिथिला की भी स्वतन्त्र भाषा है। जिसका प्राचीन साहित्य उच्च कोटि का है। जैसे काश्मीर की अपनी लिपि 'शारदा' अलग है। वैसे यहाँ की लिपि भी 'तिहुर्ता' या मिथिलाक्षर' कही जाती है। संस्कृत भाषा का प्रभाव यहाँ और वहाँ देशी भाषा और व्यवहार में पूरा पड़ा है।

पोशाक—जब मैं किसी मैथिल ब्राह्मण को अपनी पुरानी शैली की हाथ से बँधी पगड़ी को पहने देखता हूँ मुझे काश्मीर की पगड़ी 'दस्तार' की याद आजाती है। किन्तु अब तो यहाँ कुछ प्राचीन व्यक्तियों को छोड़ सभी [बड़े पण्डित भी] कूट-काट के बँधे अपवित्र पगड़ी माथ पर चढ़ाते नहीं हिचकते जो धोयी भी नहीं जाती और जल्द मलिन पड़ जाती है। मैं मैथिल समाज के विचारकों से इस पगड़ी के अनुचित व्यवहार के त्यागने को कहता हूँ और अनुरोध करता हूँ कि वे फिर अपनी पुरानी अपने हाथ की बाँधी 'नेशनल पगड़ी' पहना करेंगे। नहीं तो इस के न त्यागने का कोई कारण हो तो जानना चाहता हूँ। **ग्रामगीत**—काश्मीर के ग्राम गीतों में बड़ा माधुर्य्य है। मिथिला के ग्रामगीत तो अपने मधुर और स्वाभाविक भाव के लिये मशहूर है। स्त्रियों के कण्ठ से निकले हुए उस सीधे ग्रामीण गीत को सुनकर कोई भी महफिल के गानों को फीका कह सकता है। यहाँ महफिल में दूसरों के रिझाने के लिये बनावटी संगीत और कहाँ ग्रामीणों में 'स्वान्तः सुखाय' के लिये संगीत। यहाँ के ग्रामगीतों में और जगहों से विशेषता है। दूसरी जगह नायक-विरह के गीत रहते हैं और यहां के अधिकांश ग्राम गीतों में नायिका-विरह-गान रहता है। मैं यहाँ स्थानाभाव से गीतों के नमूने न रख सका। अगर कोई महाशय इन गीतों का संग्रह करें तो बड़ा उत्तम हो।

प्राकृतिक—काश्मीर अपनी प्राकृतिक सुन्दरता के लिये पृथ्वी का स्वर्ग कहा जाता है। बर्फीली पहाड़ी चोटियाँ चारों और सुन्दर कानन का दृश्य वहाँ नन्दन कानन की याद दिलाता है। मिथिला की प्राकृतिक दृश्य में भी अनोखापन है। जब टेढ़ी-मेढ़ी नदियां, किनारे कोशों लहराती खेतों की हरियालियाँ, सब्जी भरे लम्बे-लम्बे मैदान, कोशव्यापी आम्रकानन नज़र आते हैं तो मिथिला का सौन्दर्य देखने में आता है।

हम जैसे अन्यप्रान्तीयतों की दृष्टि में यहाँ की बहुत सी साधारण बातों में बड़ी विचित्रता मालूम होती है। यहाँ सर्व-साधारणों में खवास की चाल है जो यहाँ बड़ों के यहाँ ही देखे जाते हैं। हम अपनी नौकरानियों में दाई का प्रयोग करते हैं पर मैथिलों में दाइ कन्या आदि के लिये प्रतिष्ठित सम्बोधन है। राजकुमारियाँ भी दाइजी के नाम से पुकारी जाती हैं। हम लोग ओझा, भूत-प्रेत के फसाद छुड़ानेवाले को कहा करते हैं जो इधर जमाइ बाबू के लिये प्रयोग होता है। यहाँ स्त्रियाँ सेर-डेढ़ सेर की हँसलिआँ और आध-आध सेर भारी वजनी बाजू पहनती हैं जो हमारे यहाँ आश्चर्य से देखी जायँगी। यहाँ के बाजार के विषय में एक दो-बातें बतानी हैं। यहाँ दूकानों में दूध बेंचने की चाल कम है। हाँ दही जितना चाहिये! बाजार यहाँ रात में सबेरे बन्द हो जाते हैं, शायद वणिकों के 'खटिया शौक' का यह परिणाम हो!

अब मैं यहाँ के चूड़ा-दही के विषय में कह कर विश्राम लूंगा। घर में, बाजार में, भोजभात में—यहाँ चूड़ा-दही की धूम है! मैंने जब इस की बड़ी ख्याति सुनी एक दिन बाजार से मङ्वाया और चीनी और फिर निमक के साथ जीमा भी। पर सच पूछिये तो मुझे इस में कुछ स्वाद न आया। एक दिन मित्रवर स्व० तीर्थमणि झा जी [श्रीमती बड़ी राजमाता के भ्राता] से बातचीत में मैंने इसका जिक्र

किया। उन्हों ने मुसकिराते हुए कहा-यहाँ का असल चूड़ा जो नाक की फूंक से उड़जाय, और देहाती दही में ही स्वाद मिलेगा। दूसरे दिन उनके वहाँ से आ-भी गया। हथेली में रखा, हलकी फूंक लगी, चूड़ा लापता था। मैं उसे दही में मिला कर खाया सचमुच रावड़ी-मलाई का स्वाद भूल गया। इसी से तो गो० तुलसीदास जी ने तिर्हुत के इस नामी खाद्य को अपनी रामायण में नहीं छोड़ा। अयोध्या की बारात में जनकपुर से भेजी जाने वाली भोजनसामग्रियों में लिखा है—

'दधि चिउरा उपहार अपारा, भरि भरि कामरि चले कहारा।'

'मिथिला की चर्चा करते समय मेरे सामने स्वर्गवासी महाराज की कृपा से मिथिला में आने के समय से लेकर वर्तमान श्रीमान् मिथिलेश के समय तक लगभग तिहाइ शताब्दी की स्मृतियाँ ताजी हो आई हैं, जिन्हें मैं भूल नहीं सकता। पर उन की चर्चा की न तो यहाँ जगह है और न प्रसंग ही।

तन्त्रवाद

श्री अच्युतानन्द दत्त जी

तन्त्र व्यापक है। जिससे लोक और परलोक दोनों के काम निकलें उस विधान मात्र को तन्त्र कहते हैं 'तनु-विस्तारे' 'तन्त्रि-कुटुम्बधारणे' इस मूल धातु से बने इस व्यापक तन्त्र की व्याख्या में वाराही तन्त्र ने 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च' से लेकर 'राजधर्मो दानधर्मो युगधर्मस्तथैव च' तक इसी के अन्तर्गत माना है। 'महानिर्वाण तन्त्र' में लिखा है—

"कलावन्योदिते मार्गैः सिद्धिमिच्छति यो नरः।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः॥"

तन्त्रशास्त्र का विस्तार भी कम नहीं है। भिन्न-भिन्न तन्त्रों के ही लेखानुसार सौ-डेढ़सौ से संख्या ऊपर पहुंच जाती है। तन्त्रशास्त्र की उत्पत्ति का काल भी अनुमान के बाहर है। तन्त्रोक्त मारण-मोहन-वशीकरण आदि का प्रयोग अथर्वसंहिता में पाया जाता है। पौराणिक युग में भी इस क्रिया का बोल-बाला था। स्मृति युग में भी इसका आभास मिलता है। मनु की टीका में कुल्लूक भट्ट लिखते हैं—
'वैदिकी तान्त्रिकी चैव द्विविधा कीर्तिता श्रुतिः।'

आगम और यामल तन्त्र के ही भेद हैं। आगम में सृष्टि के उद्भव-विनाश पुरश्चरण, योगविधि, ध्यान, देवार्चन आदि वर्णित हैं और यामल में ज्योतिषशास्त्र, वर्णधर्म, युगधर्म आदि उक्त हैं। इस तन्त्र के वक्ता और बोद्धव्य स्वयं शिव और पार्वती हैं। तन्त्रमार्ग 'लोक लाहु परलोक निबाहू' दोनों के लिये है। कहा भी है—

"यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षः यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरी-पूजनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥"

यह सुलभ उपासनाविधि-जिसमें लोगों को मोक्ष प्राप्ति के प्रयत्न में भोग न त्यागना पड़े, तन्त्रों ने ही चलाई।

आदि शक्ति प्रकृति का पूजन ही सर्वप्रथम हुआ है, जिसकी मूल भित्ति तन्त्रों पर ही अवलम्बित है। गायत्री वेदों की माता कही गई है, जिसका प्रतिपादन तन्त्रों ने भली-भाँति किया है—

प्रकृत्या जायते सर्वप्रकृत्या सृज्यते जगत्।
तोयात्तु बुद्बुदं देवि यथा तोये विलीयते॥—निर्वाणतन्त्र

तन्त्रवाद ने इसी प्रकृति को सच्चिदानन्दरूपिणी माना है—

'साधकानां हितार्थाय अरूपा रूपधारिणी।
नेयं योषिन्नच पुमान् न षण्डो न जडः स्मृतः।
तथापि कल्पवल्लीवत् स्त्री-शब्देन युज्यते॥'

उस ब्रह्मस्वरूपा प्रकृति की प्राप्ति कैसे हो, इसका उपाय तन्त्रों ने यों कहा है—'एतैः पञ्चमकारैश्च नरो गच्छत्य-नामयम्'

अब इन पञ्च मकारों के नाम और लक्षण भी सुनिये—
"आनन्दं परमं ब्रह्म मकारास्तस्य सूचकाः"
"मत्स्यं मांसं तथा मद्यं मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पञ्च मकाराःस्यु मोक्षदा हि युगे युगे॥"

ब्रह्मसूचक इन पञ्च मकारों की स्थापना बड़ी विवेचना से की गई। दोनों लोकों को एक सूत्र में बाँधने के प्रयासी ऋषियों ने इसकी कल्पना की। पञ्च मकारों का पारमार्थिक विश्लेषण कुलार्णवतन्त्र ने यों किया है—

मत्स्य—मायामलादिशमनान्मोक्ष-मार्ग-निरूपणात्।
अष्ट दुःखादि-विरहान्मत्स्येति परिकीर्तितः॥

मांस—माङ्गल्यजननाद्देवि! संविदानन्ददानतः।
सर्वदैव प्रियत्वाच्च मांस इत्यभिधीयते॥
मद्य—सुमनः सेवितत्वाच्च राजत्वात्सर्वदा प्रिये।
आनन्दजननाद्देवि! सुरेति परिकीर्त्तिता॥
मुद्रा—मुदं कुर्वन्ति देवानां मनांसि द्रावयन्तिच।
तस्मान्मुद्रा इतिख्याता दर्शिता व्याकुलेश्वरी॥
मैथुन—सर्वद्रोहं विनिर्मुक्त्वा तव प्राणप्रियो भवेत्।
एकाकारो भवेद्देवि! त्वयि ब्रह्मणि मैथुनम्॥

मकारों के कितने पवित्र और मोक्षोपयुक्त लक्षण हैं। पर अनाड़ियों और अनधिकारियों ने इन्हें केवल विषयोपभोग के साधन बना डाले। इसीसे ऋषियों ने इस रहस्य को गुप्त रखने का विधान किया। यह शाम्भवी मुद्रा (कौलिक विधान) कुलवधू के सदृश गोप्य है। अधिकारी गुरु ही यह रहस्य शिष्य को समझा सकेंगे। गुरु और शिष्य के लक्षण तन्त्रग्रन्थों में दिये हुए हैं। कुल की परम्परा से इस विधान का पालन होना चाहिये, इसलिये यह 'कुलमार्ग', और इस पर चलने वाले 'कौलिक' कहलाते हैं।

मिथिला में इस तन्त्रवाद का प्रचार प्राचीन समय से है। इसी साधन के बल पर बड़े बड़े तान्त्रिकों ने अपनी सिद्धि द्वारा लोक को चकित किया और परलोक को प्राप्त किया। तन्त्रपद्धति की पूजा-दीक्षा का यहां व्यापक प्रचार है। आज भी तन्त्रों के वास्तविक मर्म को समझने वाले कर्मठ विद्वान् यहां मौजूद हैं, जिनके बल पर ही तन्त्रवाद का तात्त्विक मर्म सुरक्षित है। हाँ, कुछ अनधिकारियों का यहाँ प्रवेश अवश्य होगया है, जो इस पद्धति को बदनाम कर रहे हैं।

—※※—

मिथिला के विद्वान् [३]

(अवशिष्ट)

वैयाकरण खुद्दी झा आप कोइलख-वासी व्याकरण-न्याय, धर्मशास्त्र तथा साहित्य के अद्वितीय विद्वान् थे। पहले श्रीनगर के आप द्वार-पण्डित थे, पीछे दरभङ्गा श्री३ रमेश्वरलता-विद्यालय के प्रधानाध्यापक हुए तदनन्तर कलकत्ता कालेज में मैथिली पढाने में नियुक्त थे। शब्देन्दुशेखर पर 'नागेशोक्तिप्रकाश' और 'व्युत्पत्ति-वाद' पर 'नौका' नाम की टीका आप की लिखी हैं।

जयलाल मिश्र 'ठाढ़ी निवासी' थे। महावैयाकरण शिवशङ्कर झा, पं० श्री रविनाथ झा, पं० श्री हरिशङ्कर झा, पं० किशोर ठाकुर, पं० श्री जर्नादन झा आदि आप ही के शिष्य हैं।

म० म० लक्ष्मीनाथ झा भागलपुर जिले के 'विचारी' ग्राम में हुए हैं। आप व्याकरण के अवतार माने जाते थे।

म०म० पदार्थ मिश्र 'गोसपुर' भागलपुर ग्राम में हुए हैं। आप की योग्यता व्याकरण, वेदान्त, धर्म-शास्त्र, पुराण तथा साहित्य में अप्रतिम थी।

महामहोपाध्याय चित्तधर मिश्र आप मुंगेर जिले के 'टमका' नाम के ग्राम में निवास करते थे। आप महाराज मिथिलेश लक्ष्मीश्वर सिंह जी तथा महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह जी के द्वारपंडित एवं दानाध्यक्ष थे। व्याकरण, मीमांसा, वेदान्त, साहित्य तथा धर्मशास्त्र में आप एक ही थे। मीमांसा का तो आप अवतार ही कहे जाते थे। आप को 'मीमांसकशिरोमणि' की उपाधि मिली थी। आप के शिष्योपशिष्य, देश-देशान्तरों में भी भरे पड़े हैं। आप ककरौड़ के महापण्डित झिंगुर झा-गोपालझा के शिष्य थे।

महामहोपाध्याय दुःखमोचन झा [बौआझा] 'पिलखवाड' के निवासी थे। आप धुरन्धर नैयायिक थे। आप की योग्यता से प्रसन्न हो कर गवर्नमेंट ने 'महामहोपाध्याय' की पदवी दी।

महावैयाकरण चुम्मे झा उक्त महामहोपाध्याय जी के कनिष्ठ भ्राता थे। आप के जोड़े में 'नवानी' के महामहोपाध्याय बच्चा झा जी ही समझे जाते थे। आप में व्याकरण, न्याय, वेदान्त, साहित्य तथा धर्म-शास्त्र की असाधारण योग्यता थी।

सुरेश मिश्र "विष्णुपुर" (अरोरु) पश्चात् 'मंगरौनी' के निवासी थे। महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह जी के दरभङ्गा-विद्यालय में व्याकरणाध्यापक थे। आप की व्युत्पति श्लाघनीय थी।

उमेश मिश्र सुरेश मिश्र जी के कनिष्ठ भ्राता थे। न्यायशास्त्र में आप को बडा सुयश था।

महावैयाकरण जुडान झा दरभङ्गा जिले में 'सखवाड़' ग्राम के निवासी थे। म० म० शशिनाथ झा, पं० शिवेश्वर झा (लालगंज) आदि आपके शिष्य हुए हैं। घर पर ही निःस्वार्थ विद्या-दान करते हुए आप ने अपना जीवन व्यतीत किया है। आपके सुपुत्र पं० कपिलेश्वर झा, म० म० ल० विद्यापीठ के साहित्याध्यापक थे।

कवि-शिरोमणि चन्द्रमणि [चन्दा] झा दरभङ्गा जिले के परगना जबदी में 'ठाढ़ी' ग्राम के निवासी थे। मिथिला भाषा के आप असाधारण कवि हुए हैं। महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह जी के आप द्वार-कवि थे। आप ने अध्यात्म रामायण के आधार पर मिथिलाभाषा में पद्यात्मक रामायण लिखी। आप मैथिली के तुलसीदास थे।

फतूर कवि आप दरभङ्गा जिले के ग्राम 'शाहपुर' परगना गोपालपुर के निवासी थे। भाषा की कविता में आप की भी काफ़ी प्रसिद्धि है।

भक्त शिरोमणि कविवर लक्ष्मीनाथ भागलपुर (उत्तर) जिले के 'बनगाम-परसरमा' के निवासी थे। आप के रचित गीत, मिथिला में घर घर प्रसिद्ध हैं। मिथिला के लोग प्रभाती गाया करते हैं।

प० गुलाब झा अड़ुआर के निवासी काशी के मारवाड़ी कौलेज के प्रधानाध्यापक थे। न्याय, व्याकरण, साहित्य, धर्मशास्त्र में आपकी अपूर्व प्रतिभा थी।

म० वै० शिवशङ्कर झा ठाढ़ी के निवासी थे। पहले आप अमृतसर में 'राममल्ल श्यामदास पाठशाला' के प्रधानाध्यापक थे, बाद लोहना विद्यापीठ के प्रिन्सपल नियुक्त हुए।

गोविन्द ठाकुर [अपर] आप [illegible] ग्राम के निवासी थे। आप का बनाया भृङ्गदूत ग्र[illegible] है।

भवनाथ मिश्र आप जमथैर के निवासी थे। आप का रचा 'मिथिला-शब्द-प्रकाश' है।

मोहन मिश्र आप पाहीटोल के निवासी थे। 'राधा-नयन-द्विशती' आप ही की कृति है, जिसकी टीका पण्डित श्री बालकृष्ण मिश्र जी ने की है। महावैयाकरण **श्रीकृष्ण मिश्र** (हिसार) और **मुसली झा** (हरिनगर) प्रसिद्ध विद्वान् थे।

इन के अतिरिक्त वै० दामोदर मिश्र, मधुसूदन मिश्र (गजहड़ा) नै० जीवनाथ मिश्र (सुगौना क्वीन्स कालेज के न्यायाध्यापक) द्वारकानाथ ठाकुर, राधाधारी ठाकुर (गोसपुर) केदारनाथ झा (अथरी) अयोध्या ठाकुर (बल्लीपुर नवकाटोल) कवि महन्थ साहेब राम (कुसमौल ग्राम फिर पचाढ़ी स्थान) नै० हरि पति झा, नै० मीमा० बलभद्र झा (लोहना) वै० बन्धु झा (उजान) वै० दुःखमोचन झा (कोइलख) वै० हरिवंश झा (रामभद्रपुर) मनभरण झा (पूर्णियाँ) कवि कान्हर राम (महन्थ) कवि रामरूप दास (सारी स्थान) बबुजन झा (उजान) नित्यानन्द झा भगीरथ झा (लोहना) वै० महेश झा, वै० दीनानाथ झा (लगमा) धर्म० वै० धनुर्धर झा (अड़ुआर) वै० सदानन्द झा (ठाढ़ी) नीरस झा (माँउ बेहट) चक्रधर झा (सागर पुर) त्रिलोक ठाकुर (कोइलख) वैद्यनाथ झा (नड़ुआर) वै० तेजनारायण झा (बल्लीपुर) लोकनाथ चौधरी (मुरलियाचक) ज्यो० प० भगीरथ झा (तरौनी) लक्ष्मीकान्त झा (तरौनी) योगधर मिश्र (भद्दी) चन्द्रदेव झा, ताराचरण झा (मङरौनी) शत्रुघ्न ठाकुर (कमौली) वै० रघुवर कुमर (कन्है) वै० सुन्दर झा (पिपरौली) सुन्दर लाल झा (वैदिक) (बेलौंजा) आदि स्वर्गीय हैं।

मिथिला के कुछ संस्कृत विद्यालय

पं० श्रीयुत कृष्णेश्वर झा शास्त्री व्या० मी० आ०



मिथिला और संस्कृत का सनातन सम्बन्ध है। एक के नाम लेते दूसरे का स्मरण हो आता है। आज भी मिथिला की आत्मा संस्कृत के शरीर में बास कर रही है। हम नीचे मिथिला के अनेक विद्यालयों में कुछ का नाम देते हैं—

धर्मसमाज संस्कृत-कालेज (मुजफ्फरपुर) विहार उड़ीसे का सर्वश्रेष्ठ गवर्नमेण्टसंस्कृतकालेज है। इसके [प्रि]न्सपल स्व० प० बच्चा झा और प० श्री ईश्वरीदत्त दौर्गादत्ति शास्त्री जी रह चुके हैं। अभी प० श्री धर्मराज ओझा एम० ए० हैं। वर्तमान प्रोफेसरों में प० श्री रविनाथ झा, प० श्री बदरीनाथ झा, प० श्रीदयानाथ झा, प० श्रीजटेश्वर झा, प० श्रीरमाकान्त झा, प० श्रीयमुना त्रिपाठी, प० श्रीसुरेश द्विवेदी, प० श्रीअनन्त मिश्र एम० ए०, प० श्रीजगदीश ठाकुर, प० श्रीकृष्णेश्वर झा, प० श्री अम्बिकादत्त चतुर्वेदी, प० श्री गोप्त्रीनाथ झा, प० श्री परमेश्वर त्रिपाठी आदि प्रतिष्ठित विद्वान् हैं। सवृत्तिक छात्रों की संख्या सैकड़ों है? दो बड़े छात्रावास और साथ ही संस्कृत का विशाल पुस्तकालय भी हैं। प्रतिवर्ष पचासों आचार्य यहाँ से निकलते हैं।

रमेश्वरलता-विद्यालय (दरभंगा) १९०७ ई० में स्थापित हुआ। इसके वर्तमान प्रिन्सपल लब्धप्रतिष्ठ प० श्री मुक्तिनाथ मिश्र जी है। सर्वश्री प० महेन्द्रनाथ झा, प० उपेन्द्र झा, प० नित्यानन्द मिश्र, प० काशीनाथ ठाकुर, प० रघुनाथ झा, और प० शारदाचरण सेन अध्यापक हैं।

महेश्वरलता-विद्यापीठ (लोहना) इसके वर्तमान प्रिन्सपल सर्वश्री प० त्रिलोकनाथ मिश्र जी और अध्यापकों में प० श्रीनन्दन मिश्र, प० दुर्गाधर झा, प० बदरीनाथ झा, प० कुमरलाल झा, प० बदरीनाथ ठाकुर हैं।

शारदा-भवन विद्यालय (नवानी) सर्वतन्त्र स्वतन्त्र बच्चा झा की स्मृति में उनके शिष्य पूर्णानन्द दण्डी द्वारा स्थापित है। इसके अध्यापक सर्वश्री प० जगदीश झा (प्रधान) प० ईश्वरीनाथ झा, प० षष्ठीनाथ झा, प० यदुपति मिश्र हैं।

संस्कृत विद्यालय (राँची) हाल ही में स्थानीय रईस श्रीमान् हिमकर साहेब ने विशाल रूप में उद्घाटित किया है। अध्यापकों में प्रधान प० श्री निरसन मिश्र हैं।

लक्ष्मीवती विद्यालय (सरिसव) पण्डितवर श्रीदीनबन्धु झा और प० श्री मधुसूदन मिश्र सुयोग्य अध्यापक हैं।

रमेश्वरी-विद्यालय (राजनगर) यह १९२४ ई० में स्थापित हुआ। इसके अध्यापक सर्वश्री प० सहदेव झा (प्रधान) प० अनिरुद्ध झा और प० लक्ष्मीकान्त झा हैं।

इसके अतिरिक्त प्रतिष्ठित विद्यालयों में कुछ ये हैं—दरभङ्गा जिला—संस्कृत विद्यालय-मधुवनी राजकीय विद्यालय मटिहानी, वंशीराज विद्यालय पचाढ़ी, संस्कृत विद्यालय जनकपुर, लक्ष्मीश्वरी विद्यालय-लक्ष्मीपुर, कुशेश्वर संस्कृत वि० कुशेश्वर, विक्रम ब्रह्मचर्याश्रम कमौली, सं० वि० ठाढ़ी, जनार्दन सं० वि० दरभङ्गा, सं० वि० लहेरियासराय, रमेश्वर वि० कपिलेश्वर, ताराभवन वि० गन्धवारि, जानकी भवन वि० सतघरा, भवानी भवन वि० गोनौली, सीतारामीय वि० सुगौना, सं० वि० तरौनी, श्री कामेश्वर वि० फुलपरास, सं० वि० बलहा, सं० वि० खोजपुर, सं० वि० महरैल, सं० वि० बाराही, त्रिलोकेश्वरी वि० चनौर, विश्वेश्वरी वि० नरहन सं० वि० रैमठ, अन्नपूर्णा वि० हावीभौआर, सरस्वती सदन वि० माँउबेहट, महावीर वि० दलसिंगसराय, दुर्गा वि० बहेरा, शारदा भवन वि० परड़ुआरि, परमेश्वरी वि० अन्धरा-ठाढ़ी, केदार विद्यापीठ शुम्भाड्यौढ़ी, सं० वि० रघुनाथपुर, सं० वि० मउ, जनकनन्दिनी वि० पटसा, भागवत वि० गाराटोल, सं० वि० घोंघरडिहा, सरस्वती भवन वि० बरहा, सच्चिदानन्द वि० सेलीबेली, सरस्वती वि० चकवेदौलिया आदि। मुजफ्फरपुर—जानकी विद्यालय सीतामढ़ी, तिलक ब्रह्मचर्याश्रम गन्नीपुर, विक्रम सं० टोल चिकनौटा, सं० वि० रीगा, रामप्रकाश वि० पातेपुर, सं० वि० पकड़ी, लक्ष्मीनारायण वि० चोरौत, रत्नेश्वर वि० हाजीपुर, सं० वि० पुपरी। मुङ्गेर—सं० वि० मुङ्गेर, सरस्वती विद्यालय बेगूसराय, सं० वि० मेहदासाहपुर। भागलपुर—सं० वि० भागलपुर, दुर्गा वि० भ्रमरपुर, सं० टोल नवगछिया, सं० वि० सुखसेना, सं० वि० धमदाहा। पूर्णियाँ—सं० वि० मदनपुर, सं० वि० पलाशी, सं० वि० डोरिया, सं० वि० बेलबाड़ी, सं० वि० ढंगरी, सं० वि० वरदबट्टा, सं० वि० अड़रिया, सं० वि० तिलाठी। चम्पारण—सं० वि० बेतिया, सं० वि० बगही आदि।

गाँव-गाँव में कई पाठशालाएँ हैं; जैसे—शुभङ्करपुर, पनिचोभ, तरौनी, कोइलख, डोकहर, सौराही, परिहारपुर, सतलखा, रैयाम, गोविन्दपुर, दामोदरपुर, नागदह, रहिका, कैथाही, करियन, बन्धार, हथौड़ी, दसौत, लखनपट्टी, हिरनी, सुजौना, रमपुरा, लोहा, पीडारुच, उच्चैठ, हरड़ी, जयनगर, बेलमोहन, मङरौनी, पिलखवाड़, भौर, झंझारपुर, चिकना, बरदाही, देपुरा, मिर्जापुर आदि आदि।

मि[थि]ला की पत्र-पत्रिकाएँ

बाबू गङ्गापति सिंह जी बी० ए०



पत्र-पत्रिकाएँ देश की आवाज़ हैं। मिथिला ने पत्रों में अपनी आवाज व्यक्त करने की चेष्टा की है। यह बात दूसरी है कि उसमें इसे अच्छी सफलता न मिली हो।

यहाँ के पुराने हिन्दी-पत्रों में 'दरभंगा गजेट' (सम्पा० कुमरकल्याण लाल) 'किसान-केशरी' (स० बाबू धर्मलाल सिंह) दरभंगे से, और 'धर्मवीर' (स० बाबू चन्द्रमा राय) मधुवनी से—सुन्दर और अपने समय के अच्छे साप्ताहिक

निकले। 'घनचक्कर' के साथ 'लठधर' भी उजड्ड की तरह आया और गया। बाबू शम्भूनाथ जी की सम्पादकता में दरभंगे से New Light नाम का अंगरेजी साप्ताहिक निकला। जातीय पत्रों में अग्रवाल मित्र और नागवंशी प्रकाशित हुए और अस्त भी। श्रीयुत नटवर जी की सुन्दर 'आशा' भी टिकी न रही।

फिर कृष्णगढ़ [सुलतान गंज] के अधिपति श्रीमान् कु० कृष्णानन्द सिंह की संरक्षकता में 'गङ्गा' पं० श्री रामगोविन्द त्रिवेदी शास्त्री और प० श्री गौरीनाथ झा के सम्पादकत्व में निकली। प्रारम्भ में बाबू शिवपूजन सहाय जी का सहयोग इसे प्राप्त था। इस ने अपने सुन्दर विशेषाङ्कों के द्वारा धूम मचा दी। पर अत्यन्त खेद है कि वह हाल ही में बन्द हो गई है। फिर श्री यमुना कार्जी जी का लोकसंग्रह आया, श्रीबेनीपुरीजी के सहयोग से संग्रहणीय भी हो चला। इधर लेखमाला के बाद 'वैशाली' लेकर बाबू भुवनेश्वर सिंह 'भुवन' जी आये और कुछ ही दिनों में 'वैशाली' की स्मृति अमिट बना दी। पर भूकम्प के चपेट में दोनों दब गये।

मिथिला की भाषा मैथिली में भी कई सुन्दर पत्रिकाएँ निकलीं। वि० वा० श्रीमान् मधुसूदन झा जी का 'मैथिल-हित साधन' जयपुर से, म० म० प० मुरलीधर झा जी का सुप्रसिद्ध सुसम्पादित 'मिथिलामोद' काशी से, श्रीरामचन्द्र मिश्र 'चन्द्र' की 'मैथिल प्रभा' और 'मैथिल प्रभाकर' अजमेर एवं मथुरा से तथा प० श्री उदितनारायण दास जी की सम्पादकता में 'श्रीमैथिली' सुन्दर रूप में दरभङ्गे से निकली।

इनके अस्त के बाद प० श्री कुशेश्वर कुमर और बाबू भोलालाल दास जी के सम्पादकत्व में पुस्तकभण्डार लहेरियासराय से 'मिथिला' शान की निकली। सुलतानगंज से प० श्री गौरीनाथ झा जी ने 'मिथिला मित्र' सुन्दर ढंग से निकाला। पर ये सब अकाल ही काल-कवलित हुए। अब केवल 'मिथिलामिहिर' (हिन्दी-मैथिली) २९ वर्षों से दरभङ्गानरेश की संरक्षकता में प्रकाशित हो रहा है। पुस्तक भण्डार का सुप्रसिद्ध सुसम्पादित 'बालक' १० वर्ष का हो चला। इस होनहार बालक ने बाल-मासिक में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। दरभंगे का 'जीवदया और गोपालन' एवं मुजफ्फरपुर का 'जीवन सन्देश' एक विशेष ध्येय को लेकर निकल रहा है।

इन बातों को देखते हुए यह स्पष्ट है कि मिथिला की उर्वर भूमि में पत्र तो पनपते हैं, लहलहाते हुए सफलता की आशा देते हैं पर असमय ही झर जाते हैं।

किन्तु अब इस अन्धेरी दिशा में कुछ प्रकाश की रेखा दीख पड़ती है। वैशाली के प्रकाशन का आयोजन हो रहा है। 'गङ्गा' के अध्यक्ष महोदय उसे मासिक और साप्ताहिक दोनों रूप में निकालने की इच्छा प्रकट कर चुके हैं। इधर नवीन दरभङ्गा में 'मिथिलामिहिर' भी नवीन रूप धारण कर रहा है!

प्रकीर्ण

आबादी और निवासी:—सुन्दर जलवायु तथा उपजाऊ भूमि होने के कारण मिथिला की घनी आबादी है। यहाँ अनेक प्रकार की जातियां बसती हैं—ब्राह्मणों में मैथिल, कान्यकुब्ज, सारस्वत, सरयूपारीण, शाकद्वीपीय, क्रौंचद्वीपीय तथा गौड़, आदि हैं। भूमिहार ब्राह्मण भी बड़ी संख्या में हैं। क्षत्रियों में पामर, चौहान तथा राठौर मुख्य हैं। वैश्यों में—अग्रवाल खत्री, गोलवाड़ा माड़वाड़ी का नाम उल्लेखनीय है। कायस्थों में कर्ण, श्रीवास्तव, अम्बष्ट, आदि मुख्य हैं। धानुक, कुर्मी, अमात, हलुआई, सोनार, कोइरी, मल्लाह, बाँतर, गोप, खतवे, जोलहा, सूड़ी, पटवा, पमरिया, पासी, बरई, लोहार तथा बरही, माली, तेली, दुसाध, मुसहर, धोबी, चमार मेहतर, ततमा, डोम, शेख, आदि भिन्न भिन्न जाति और उपजातियाँ यहाँ बसती हैं। इस के अतिरिक्त कई जातियों के मुसलमान भी हैं। मनुष्य-गणना के अनुसार यहाँ की भिन्न भिन्न जातियों की अलग तायदाद नीचे दी जाती है:—

ग्वाले-३८४००० दुसाध-२०८००० ब्राह्मण-१९८००० कायस्थ-१३५००० धानुक-१५२००० कोईरी-१४५०० मलाह-११७००० भूमिहार १५४००० शेख-१५३००० धुनियाँ--४०००० चमार--१०६००० जोलहा--५८००० राजपूत, कोईरी, कुरमी, तेली आदि मिलाकर-५०००० और अन्यान्य जातियों की १००००० है। जनसंख्या का क्रम जिलेवार इसप्रकार है--दरभङ्गा----२९१२६११ मुजफ्फरपुर-२७५४७९० भागलपुर--२०८८९५३ पुर्णियां-१८७४७९४ मुङ्गेर--१०१८०१० चम्पारण-१०९०४६२ है

इसमें भागलपुर मुङ्गेर और चम्पारण की आधी संख्या काट कर मिथिला की जन संख्या १ करोड़ की होतीहै। इसके अतिरिक्त यू० पी० और सी० पी० तथा नेपाल में भी मैथिलों का निवास है। और इनकी संख्या अनुमानतः ५--६-- लाख होगी। ये अङ्क पुराने हैं। इधर इन में और वृद्धि हुई है।

—श्री गङ्गानन्द दास



भाषा—यहाँ की अपनी भाषा मैथिली है जो आधुनिक भाषाओं में सबसे प्राचीन मानी गई है। इसका प्राचीन साहित्य बहुत उच्च कोटिका है। लगभग एक करोड़ से ऊपर की जनसंख्या में इसका व्यवहार है। हाँ पढ़े लिखे लोगों में राष्ट्रभाषा हिन्दी का भी यहाँ खूब प्रचार है।

लिपि—साधारणतः तीन लिपियों का यहां प्रचार है। मिथिलाक्षर, देवाक्षर और नागरी। छापे के कारण देवाक्षर का प्रचार बढ़ा है। मिथिलाक्षर का घट गया है। कचहरी और जमिन्दारी आदि में नागरी का खूब प्रचार है। अब तो अंग्रेजी घर-घर में परिचित हो रही है। उर्दू मुसलमानों में अधिक बूढ़े हिन्दुओं में विशेष कर कायस्थों में अभीतक है।

कृषि-उपज—एक तो भारतवर्ष ही कृषि प्रधान देश है पर मिथिला तो भारत की सर्वोपरि उर्वर भूमि है। यहाँ कितने परिवार सिर्फ दो-बीघे जमीन उपजाकर अन्न-वस्त्र की चिन्ता से निश्चिन्त रहते हैं। यहाँ प्रायः सब प्रकार के अन्न उपजते हैं। तीन फसलें प्रधान होती हैं। अगहनी रब्बी, भदै और आसिनी (आश्विन) भी। प्रधान अनाज मे हैं धान (अनेक प्रकार-मालभोग, तुलसी फूल, कनकजीर, कतिकी, सेरी, करमा, दुधराज, बासमती, रांगी आदि) यव, गेहूं, बूट, उरद, कुरथी, अरहर, मूंग, मटर, केलाव, खेसारी तीसी, तिल, आँसु, गम्हरी (साठी) मदरि, चीना, साम, मकई, जनेर, मडुआ, सरसो, दाना, (पोस्ता) लाल मिर्च, तम्बाकू, जीर, धनिया आदि सभी प्रकार के अन्न और फल, फूल, कन्द, वनस्पति आदि इस सरस भूमि में बहुतायत से उपजते हैं। कहां तक उल्लेख हो।

व्यापार-शिल्प—मिथिला के लोग व्यापार में पीछे हैं। यहाँ अधिकांश में बाहर के लोग ही व्यापार करते हैं। अब इस दिशा में उन्नति हुई है। यहां के मुख्य निर्यात अनाज हैं। धान या चावल, दलहन और तेलहन बाहर सर्वत्र भेजे जाते हैं। जयनगर से तमाकू बड़े बड़े बीड़ी और जर्दा के फार्मवाले मँगाते हैं। लाल मिर्च समस्तीपुर प्रान्त से कलकत्ते खूब भेजा जाता है। चीनी की मिलें काफी हैं। चीनी बाहर जाते हैं। मधुबनी में खादी खूब बनती है। प्रायः विहार चर्खा संघ में सब से अधिक खादी यहीं की बिकती है। भागलपुर के अण्डी रेशम के कपड़े का सर्वत्र प्रचार है। लोहे के सामान दरभंगे के शिल्प कार्यालय में अच्छे बनते हैं।

गृहकला—मेशीन के इस युग में भी इस मिथिला में घरेलू उद्योग धन्धों का लोप न होने पाया है। चर्खे चलाना तकली पर के सूत से जनेऊ तैयार करना, मिट्टी से चूल्हा, कोठी, मोरा आदि बनाने में यहाँ की स्त्रियाँ दक्ष होती हैं। मेशीन के चावल और आटे का प्रवेश गांवों में अभी तक नहीं हो पाया। मिहनती स्त्रियाँ स्वयं ओखली में चावल कूटती हैं। चक्की से आटे भी काफी तैयार होते हैं। अवकाश के समय यहाँ की स्त्रियाँ कपड़े और कालीनों पर दस्तकारी का काम भी करती हैं। शिशुपालन में तो ये स्वभाव से हीं दक्ष होती हैं।

—श्री यादवेन्द्र झा

सामाजिक

मिथिला का सामाजिक संगठन समय के प्रभाव से बहुत कुछ श्लथ होने पर भी अभी तक कायम है। अब भी उसके नियम के उल्लंघन करने वाले सामाजिक दण्ड पाते हैं। स्त्रियों में बहुत सी साक्षर हैं। किन्तु विदुषियों का अभाव है। पर्दा-प्रथा में यहां के लोग बड़े कट्टर होते हैं। प्राचीन नियमों का उल्लंघन करना ये लोग सह्य नहीं करते। ऊँची जातियों में बाल-विवाह की प्रथा कम हो रही है, पर शूद्र आदि में यह सीमा तक पहुँची हुई है। कुछ पहले यहाँ बहुविवाह की प्रथा बहुत थी, पर धीरे धीरे अब वह लुप्त हो रही। वृद्ध-विवाह की घातक प्रथा भी अब रुक चली। स्पर्शास्पर्श के विषय में यहाँ बड़ा विचार है।

शास्त्रोक्त दश संस्कार अब भी यहाँ लुप्त होने नहीं पाते। यज्ञ, व्रत, उद्यापन आदि खूब प्रचलित हैं। हाँ, उपनयन, विवाह, मुण्डन आदि में देखादेखी फिजूल खर्ची बहुत बढ़ गई है। गरीब से गरीब भी भोज-भात में ऋण के रुपये फूंक लेते हैं। कहीं तिलक और कहीं जातीय मूल्य में रुपये की लेन-देन बड़ी घातक हो रही है। वे सामाजिक रूढ़ियाँ जो हिन्दू समाज को हड़प रही हैं, उनका नाम शेष हो जाना चाहिए। बहुत कुछ विरोध होने पर भी स्त्री-शिक्षा और समुद्र-यात्रा आदि का पूरा प्रचार हो रहा है। युग की हवा मिथिला की सामाजिक-स्थिति को बिना डुलाये नहीं रही। समाज-सुधार के लिये कई संस्थाएँ अग्रसर हो रही हैं।

—श्री काशीनाथ ठाकुर सा० शा०

आहार—मिथिला का भात-दाल ही मुख्य भोजन है। चूड़ा-दही भी यहाँ का प्रसिद्ध है। खटाई अचार-आमिल और अमावट की खूब चाल है। शाक्त मैथिल मत्स्यमांस खाते हैं। वैष्णव इससे परहेज रखते हैं। पकवानों और अनेक प्रकार के व्यञ्जनों के बनाने में यहाँ की स्त्रियाँ बड़ी निपुण होती हैं। सम्बन्धियों के भोजन कराने में गरीब से गरीब भी 'सचार' सजाते हैं, जिन में दर्जनों कटोरियाँ सजनी पड़ती हैं। जिनके साथ 'सौजन्य' (सिद्ध अन्न खाने का व्यवहार) है उन्हें तो भात-दाल खिलाते हैं। और 'असौजनिया' को 'असिद्ध' चूड़ा-दही या पूरी-मधुर खिलाते हैं। उच्च वर्गों में प्याज-लहसुन आदि शास्त्रनिषिद्ध वस्तुओं का बिल्कुल व्यवहार नहीं है। आहार के विषय में मैथिल ब्राह्मण बड़े कट्टर होते हैं। आज भी ये अधिकांश में रेलगाड़ी पर लाये गये चूड़ा-पकवान आदि नहीं ग्रहण करते।

व्यवहार—मिथिलावासी बड़े व्यवहारपटु होते हैं। अतिथि सत्कार इनमें पहले सिरे का है। 'तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता' को इनके यहाँ नन्हा सा बच्चा भी जानता है। पान-सुपारी उठाने में छोटे बड़े का ये बहुत ख्याल रखते हैं। भोजन की पंक्तियों में बैठने का क्रम कहीं जातीय क्रम से तो कहीं सम्बन्ध के क्रम से बड़ा नियमित रहता है। बारात में धूमधाम की चाल भूमिहार और राजपूतों में बहुत है। मैथिल ब्राह्मणों की बारात में अब भी सादगी है। बारातियों को शास्त्रानुसार पाद्य, के बाद मधुपर्क, ताम्बूल वितरण फिर धूप आदि का प्राचीन व्यवहार है। सिद्ध भोजन कराते (सौजनियाँ बनाते) समय भोजनकर्ता का विधिवत् पूजन सा होता है। चन्दन लगाते हैं, वस्त्र पहनाते हैं। स्त्रियाँ 'उचती' आदि का पद गाती हैं। व्यवहारों का ताँता उपनयन-शादी उत्सव और श्राद्धादि के अवसर पर देखने में आते हैं।

आचार—इस नवीन पाश्चात्य सभ्यता के आक्रमण युग में भी यहाँ का परम्परागत आचार अभी बहुत कुछ सुरक्षित है। कर्मकाण्ड-पद्धति मिटने नहीं पायी है। स्पर्शास्पर्श के विषय में मैथिल बड़े कट्टर होते हैं। आज भी श्रोत्रिय-ब्राह्मणों में बिना शालग्राम की पूजा किये कोई भी उपनीत कुमार अन्नग्रहण नहीं करता। इस समय भी यहाँ गाँव-गाँव में ऐसे कर्मठ ब्राह्मण हैं जिनका दैनिक प्रातःस्मरण से शयन तक शास्त्रानुकूल है। इसी आचार की निष्ठा के कारण इसे स्मार्त-भूमि कहते हैं।

—श्री सुरेन्द्र झा विद्यार्थी

ललित कलाएं

संगीत—मिथिला की स्त्रियों में संगीत एक प्राण हो रहा है। उपनयन, शादी, मुण्डन, पूजा आदि किसी भी शुभअवसर पर स्त्रियाँ मिल कर मधुर स्वर से जब विद्यापति के गीत गाती हैं तो स्वाभाविक संगीत का रूप खड़ा हो जाता है। सभी पर्व और त्यौहारों के लिये, जामाता और सम्बन्धियों के सत्कार के लिये 'उचती' आदि गीत मुद्दत से प्रचलित हैं। कुछ का संग्रह 'मिथिला गीत संग्रह' नाम की पुस्तक में आ गया है। पुरुषों में भी महेशवाणी, नचारी आदि के जातीय पद प्रचलित हैं।

चित्रकारी—मालूम होता है मिथिला की स्त्रियों में चित्रकला बहुत पुरानी है। अब भी स्त्रियाँ विवाह के अवसर पर 'कोबर' घर में 'पुरइन' आदि, उपनयन के समय मण्डप में गणेश दुर्गा की मूर्तियाँ, और त्योहारों में, देवोत्थान

चौठचन्द्र आदि में विधि के लिये ही सही बहुत सी मूर्तियाँ बनाती हैं। कोजागरा आदि पर्वों में जामाता के यहाँ पीढ़ियाँ आदि चित्राङ्कित करके ही भेजी जाती हैं। किन्तु इस समय केवल प्राचीन कला का नाम मात्र शेष रह गया है। और भी कसीदा काढ़ना, 'कतरा' कतरना माला गूंथना आदि का प्रचार है।

—ठाकुर श्री सिंहासन सिंह

सौराठ-सभा

सौराठ सभा मैथिलों की वैवाहिक सभा के रूप में प्रसिद्ध है। यह कब से चालू है इसका कोई रेकर्ड नहीं किन्तु अनुमान है कि पञ्जी-प्रबन्ध की व्यवस्था के बाद ही विवाह में वंश-परिचय आदि के सुविधार्थ इसका प्रादुर्भाव हुआ है।

कहते हैं कि पूर्व समय में इस सभास्थान में अनेक स्थानों के मैथिल विद्वान् एकत्र होते थे और समक्ष ही अपने अपने शिष्य-वर्गों को शास्त्रार्थ का अवसर देते थे। शास्त्र चर्चा सुनने के लिये दूर दूर से श्रोता एकत्र होते और सुविधा पाकर उनमें मेधावी बालकों को कन्या के विवाहार्थ वर रूप में चुन लेते थे। इस प्रकार वर के अन्वेषण में श्रम और समय की बचत होती। धीरे धीरे यह सभा वर्तमान रूप में पहुँच गई। विवाहार्थी वर यहाँ एकत्र होते, जिन्हें कन्या के अभिभावक जाति और गुण की परीक्षा कर वरण करते हैं। वरान्वेषण की सुविधा के लिये घटक भी रहते हैं। यद्यपि पहले ऊँची नीची जाति के लिये रुपयों की लेन देन का व्यवहार नहीं था पर अब इधर होने लगा, जिस के सुधार के लिये समाज के हितैषी प्रयत्नशील हैं। इस प्रकार और भी अनेक वैवाहिक सभाएँ हैं—जैसे 'परतापुर' 'सकुआर' बनगाँव, भखराइँ, गोविन्दपुर, आदि।

—श्री उग्रनारायण झा व्या० आ०

—※—

कुछ वर्तमान प्रसिद्ध संस्कृत-विद्वान्:—

विद्या वाचस्पति पण्डित श्री मधुसूदन झा, म० म० श्री मुकुन्द झा बक्सी, श्री बालकृष्ण मिश्र, श्री बालबोध मिश्र, श्री रविनाथ झा, श्री निरसन मिश्र, श्री मार्कण्डेय मिश्र, श्री उमादेव मिश्र, श्री उमानन्द झा, श्री सदानन्द झा, नै० श्री सहदेव झा, श्री राधाकृष्ण झा, श्री लुट्टी झा, श्री पद्मनाभ मिश्र, श्री पशुपति ठाकुर, ज्यो० श्री शेना झा चौधरी, श्री शिवेश्वर झा, श्री बलदेव मिश्र [राजपंडित] श्री चन्द्रशेखर झा, ज्यो० श्री गङ्गाधर मिश्र, श्री कुशेश्वर कुमर, श्री विष्णुलाल झा शास्त्री, श्री हरिशङ्कर झा शास्त्री, श्री श्रीकान्त मिश्र, श्री भूपनारायण झा, श्री घूटर झा, श्री दुःखमोचन झा, श्री विश्वनाथ मिश्र, श्री द्रव्येश झा, श्री विद्यानाथ झा श्री हरिनन्दन झा, श्री तारकेश्वर मिश्र, श्री अनूपलाल ठाकुर, ज्यो० श्री अनूप मिश्र, श्री प्रभाकरठाकुर, श्री सीताराम झा [चौगामा], श्री सीताराम झा 'व्यास' ज्यो० श्री मधुसूदन झा, श्री मधुसूदन मिश्र, श्री जयनन्दन झा, श्री रविनाथ ठाकुर, श्री जनार्दन झा, श्री नीलाम्बर झा, श्री श्रीनन्दन झा, श्री जयनन्दन शास्त्री, श्री दामोदर मिश्र, श्री वागीश झा, श्री तेजनारायण झा, श्री पुण्यनाथ मिश्र, नै० श्री गणेश्वर झा, श्री जयकृष्ण झा, श्री वामदेव मिश्र, श्री जयमाधव झा, श्री माधव झा, श्री चन्द्रशेखर झा, श्री गणेश मिश्र, श्रीदेवानन्द झा, श्री योगी झा, श्री रामलाल मिश्र, श्री कुलानन्द मिश्र, श्री रामचन्द्र मिश्र, श्री नमोनारायण झा, श्री लोकेश्वर झा, श्री वासुदेव झा, श्री रामनारायण झा, श्री दीना नाथ झा, श्री जयनारायण झा, श्री वटेकृष्ण झा, श्री कपिलेश्वर झा शास्त्री, श्री कपिलेश्वर मिश्र, श्री कालीचरण झा, श्री धनुर्धर झा, श्री श्यामानन्द झा, श्री महेश झा, श्री शुकदेव झा, श्रीअभिनन्दन मिश्र, श्री रत्नेश्वर झा, श्री बलदेव झा, श्री शिवशङ्कर झा, श्री ऋद्धिनाथ झा, श्री श्रीधर झा (वैदिक) श्री विश्वनाथ चौधरी। इन के अतिरिक्त और भी अनेक विद्वान् हैं, जिनका नामोल्लेख छूट गया है और कुछ का प्रसङ्गान्तर में हो चुका है।

श्री रामनिरेषण मिश्र सा० शा०

हिन्दी साहित्यसेवी

भारत की राष्ट्र-भाषा जब संस्कृत थी तब से मिथिला ने उसकी सेवा को एक व्रत बना लिया है। तब आज की राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा में वह अपना पैर पीछे क्यों करे? मिथिला के पुत्रों में इससे पहले भी साहित्यसरोज राजा कमलानन्द सिंह प्रो० राधाकृष्ण झा आदि बहुत से

हिन्दी–सेवक हो चुके हैं। हम यहाँ केवल वर्तमान हिन्दी–साहित्य सेवियों के नाम गिनायेंगे।

महामहोपाध्याय डा० श्रीयुत गंगानाथ झा जी, श्रीयुत कुमार गंगानन्द सिंह जी एम० ए०, प० श्रीयुत गिरीन्द्रमोहन मिश्र जी एम० ए० बी० एल०, बाबू रामलोचन शरण 'विहारी' प० श्री जनार्दन झा जी 'जनसीदन' डा० श्री जनार्दन मिश्र जी एम० एम० पी० एच० डी०, बाबू भुवनेश्वर सिंह 'भुवन' बाबू भोलालाल दास जी बी० ए० एल० एल० बी०, प० श्री जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' एम० ए०, प्रो० श्रीयुत कृपानाथ मिश्र जी एम० ए०, प० श्रीयुत रामवृक्ष 'बेनीपुरी' बाबू रामधारी सिंह 'दिनकर' श्री श्रीकान्त ठाकुर 'विद्यालङ्कार' प्रो० श्री हरिमोहन झा एम० ए०, श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र एम० ए०, पं० श्री गौरीनाथ झा, प्रो० रामलोचन शर्मा 'कंटक' एम० ए० बी० एल०, बाबू आरसी प्रसाद सिंह, श्रीयुत गोपाल सिंह 'नेपाली' पं० श्री जगदीश झा 'विमल', बाबू गङ्गापति सिंह बी० ए०, बाबू अच्युतानन्द दत्त, बाबू कमलनारायण झा 'कमलेश' पं० श्री सुरेन्द्र झा, बाबू जयकिशोर नारायण सिंह, पं० श्री महेन्द्र मिश्र 'मग' पं० श्री शशिनाथ चौधरी बी० ए० बी० एड्०, बाबू ललितकुमार सिंह 'नटवर', पं० श्री रामेश्वर झा द्विजेन्द्र, बाबू लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु' पं० श्री बुद्धिनाथ झा 'कैरव' पं० श्री जनादन मिश्र 'परमेश' पं० श्री दीनानाथ झा, पं० श्री जयनारायण झा 'विनीत' मौलवी पीरमुहम्मद मुनिस आदि प्रसिद्ध हिन्दी-सेवक हैं।

—श्री बहादुर खाँ शर्मा सा० शा०

मैथिली-साहित्य-सेवी (प्राचीन)

म० म० ज्योतिरीश्वर ठाकुर, उमापति उपाध्याय, कवि-कोकिल विद्यापति ठाकुर, गोकुलनाथ, गोविन्ददास झा, लोचन कवि, म० म० दामोदर मिश्र, कवि श्रीनिवास, गदाधर, कविराज पूरणमल, हरिदास, कवि रामदास, गङ्गादास, कमवरल, गङ्गाधर, प्रीतिनाथ, जयकृष्ण, भवानीनाथ, भरणीधर, गोविन्द मिश्र, मधुसूदन मिश्र, कवि चतुर्भुज, श्यामसुन्दर, लाल कवि, दुर्गादत्त, मनबोध, जीवनाथ, भोलानाथ, हरिपति, चन्द्र कवि, (प्राचीन) मजन कवि, नन्दीपति, देवानन्द, रमापति, रत्नपति, कवि भीष्म, सहन्य साहेब राम, लक्ष्मीनाथ, कवि रंजन, भूपति सिंह, यशोधर, राजा लक्ष्मीनारायण, राजा कंसनारायण, भूपति सिंह, कवि मुकुन्दी, लखचन्द राज, कवि शिवसिंह, भानुनाथ, यदुनाथ, जयनाथ, बद्रुजन, फतूरन लाल, चन्द्रनाथ, बुद्धिलाल, हुरमिल, सुवंशलाल, जलधर, कारनाट, रुद्रनाथ, सुकवि, साहेबराम, द्विज, दुखरन, बासुकी, माधव, कुलपति, रामनाथ, नन्दलाल, कृष्ण, धनपति, वंशीधर, भजन, जीवनाथ, लाल, गोविन्द, मङनीराम, नवकवि, दत्त, रत्नपाणि, बादरी, हरिनाथ, प्रेमलाल, शम्भुदास, सुजनदास, सरसराम, धर्मेश्वर, मोदनाथ; मतिलाल, जयानन्द, चतुरानन, लक्ष्मीपति, अम्रदास, कान्हरदास, दामोदर, नरसिंह दत्त, तुलाराम, माधोदास, लोकनाथ, परमानन्द, हृदयदास, भीमदत्त झा, वेणीदत्त झा, स्व० हर्षनाथ झा, स्व० जीवन झा,।

मैथिली-साहित्य-सेवी (नवीन)

म० म० डा० श्री गङ्गानाथ झा, विद्यावाचस्पति पं० श्री मधुसूदन झा, पं श्री रामभद्र झा एम० ए०, कुमार श्री गङ्गानन्द सिंह जी एम० ए०, म० म० श्री मुकुन्द झा बक्सी, डा० श्री उमेश मिश्र एम० ए० डि० लिट्, प्रो० श्री अमरनाथ झा, डा० श्री सुधाकर झा, पं० श्री बलदेव मिश्र, बाबू भुवनेश्वर सिंह 'भुवन' पं० श्री बदरीनाथ झा, पं० श्री कपिलेश्वर झा (भू० पू० मि० मिहिर सम्पादक) बाबू भोला लाल दास, पं० श्री सीताराम झा (चौगामा), पं० श्री त्रिलोकनाथ मिश्र, पं० श्री जीवनाथ राय, बाबू सिद्धिनाथ झा बी० ए०, प० श्री रामचन्द्र मिश्र (जैत), प० श्री कुशेश्वर कुमर, प० श्री गौरीनाथ झा, मु० श्री रघुनन्दन दास, प० श्री भुवनेश्वर झा 'भुवनेश' ज्यो० श्री बलदेव मिश्र, प० श्री त्रिलोचन झा, प्रो० श्री हरिमोहन झा, श्री जगदीश मिश्र एम० ए०, प० श्री श्यामानन्द झा, बाबू नरेन्द्रनाथ दास, श्री यदुनन्दन शर्मा, श्री छेदी झा, शशिनाथ चौधरी, बाबू गङ्गापति सिंह, बाबू अच्युतानन्द दत्त, श्री 'कमलेश' प० श्री सुरेन्द्र झा, प० विद्यानन्द झा एम० ए० बी० एल, श्री श्रीवल्लभ झा, बाबू लक्ष्मीपति सिंह, बाबू काली कुमार दास, बाबू पुलकितलाल दास 'मधुर' प० राजदेव झा, गुणवन्तलाल दास, श्री जयनारायण मल्लिक, प० वेदानन्द झा, श्री वैद्यनाथ मिश्र 'वैदेह', श्री हीरालाल झा 'हेम', श्री परमानन्द दत्त प० हरिनन्दन ठाकुर 'सरोज' श्री लक्ष्मीनारायण झा 'सुधांशु' आदि हैं। मैथिली के अनुरागियों में रा० ब० पण्डित श्री जयानन्द कुमर जी, रा० ब० पण्डित श्री श्रीनाथ मिश्र जी, बाबू क्षेमधारी सिंह जी आदि का नाम सर्वमान्य है।

—श्री शशिनाथ चौधरी

मैथिल पहलवान

शङ्करदत्त झा—आपका जन्म गढ़ौड़ (मधेपुर-भागलपुर) में हुआ। बचपन में १९ वर्ष तक भैंस की चरवाही की, पीछे २) मासिक पर प्यादा बने। पर आपने बराबर कुश्ती का अभ्यास जारी रखा और अन्त में नरहन के राजा परमेश्वरी नारायण सिंह के यहाँ रहने लगे। हरिहर क्षेत्र में जब नेपाल के राणा शमशेर जंग बहादुर ने आपकी जोरदार कुश्ती देखी तो उक्त बाबू साहब से आप को माँग लिया। फिर तो वे भारत के प्रसिद्ध पहलवान बन गये। सम्राट् सप्तम एडवर्ड जब युवराज के रूप में नेपाल गये थे तो उनकी कुश्ती को बहुत सराहा। नेपाल से ३०० बीघे जमीन की जागीर उन्हें मिली जिसे शङ्करदत्त झा के वंशज अब भी भोग रहे हैं। शिवनन्दन झा शङ्करदत्त झा के प्रधान शिष्य और नामी पहलवान थे। दरभङ्गा जिले के महुआर गाँव के थे। उनके पुत्रों में उदित झा होनहार थे, कच्ची उम्र में मर गये पर जगदीश झा और सत्यनारायण झा अच्छे पहलवान हैं। बोतल झा नबादा (दरभङ्गा) के नामी पहलवान हुए हैं जिनके पुत्र सुखदेव झा बड़े गठीले शरीर के सुन्दर पहलवान हैं। चूमन मिश्र बनैली के पहलवान अब बूढ़े हो चले। इनके अतिरिक्त स्व० पहलवानों में रूपसुमीयाँ, जीवछगोप, रामप्रसाद चौधरी, मङनी राम चौधरी आदि, और वर्तमान में चेतनारायण झा, लक्ष्मीकान्त झा, बदरी मिश्र, रामकृपाल झा आदि हैं। दरभङ्गा-राज एवं बनैली आदि में कुश्ती कला का आश्रय मिलता आया है।

संगीतज्ञ—विद्यापति और लोचन की भूमि में संगीत का न रहना असम्भव है। संगीतशास्त्र के ग्रन्थकार मैथिल विद्वानों की चर्चा न कर इधर कुछ संगीतज्ञों का केवल कुछ नाम गिनायेंगे—मधुबनी के बाबू कन्हैया साहब और श्रीनगर के कुमार कालिका नन्द सिंह जी बड़े नामी संगीतज्ञ हुए हैं। पञ्चगछिया के स्व० रायबहादुर बाबू लक्ष्मीनारायण सिंह जी तो संगीत के बड़े ऊंचे जानकार और आश्रयदाता के रूप में प्रसिद्ध थे। वर्तमान महाराजाधिराज कुमार श्रीमान् विश्वेश्वर सिंह बहादुर संगीत के अत्यन्त अनुरागी विज्ञ और संरक्षक हैं। सर्व श्री क्षितिपाल मल्लिक का नाम सभी जानते हैं। वर्तमान संगीतज्ञों में यहाँ अब्दुल गन्नी खाँ, माङन गवैया, रामचन्द्र झा, जटाधर झा, नचारी झा, जानकीप्रसाद राय, रघुनन्दन झा, विष्णुदेव मल्लिक, रामचतुर मल्लिक, रामेश्वर पाठक, ब्रह्मदेवनारायण सिंह, हरिनन्दन जी आदि हैं।

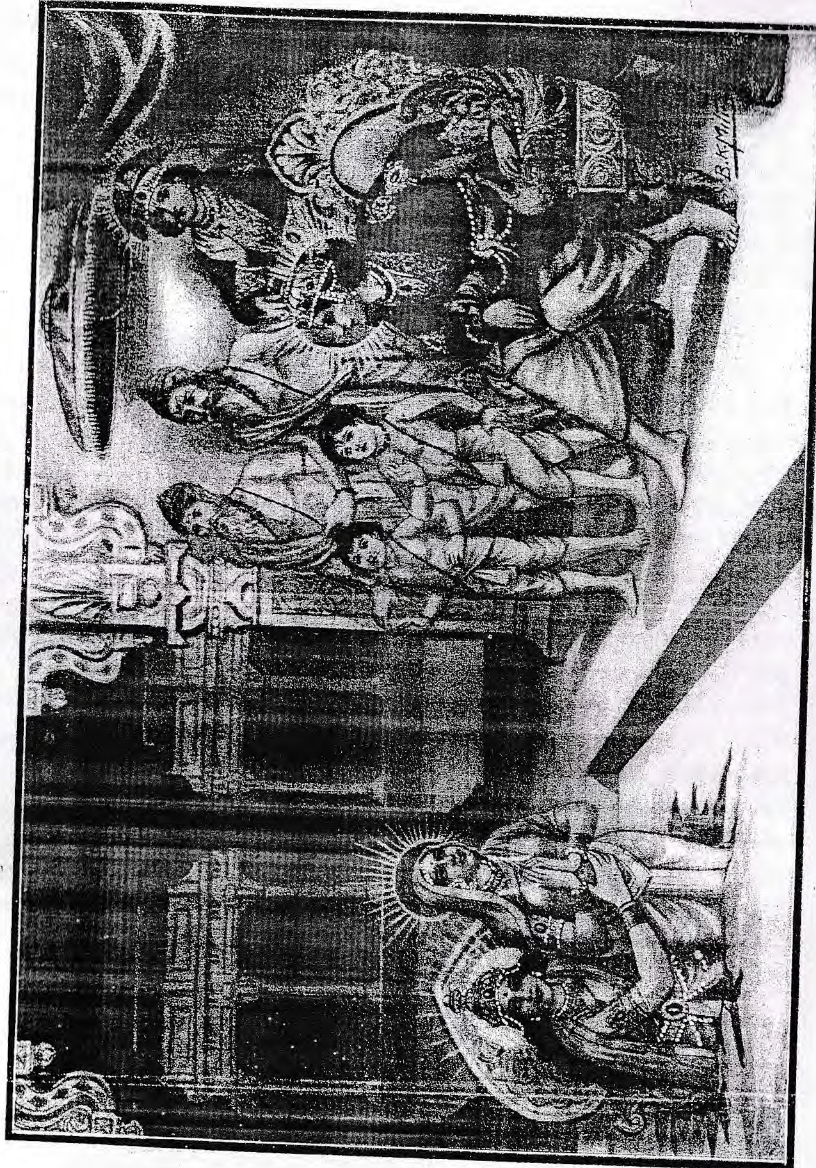
महन्थ—चोरौत, मठिहानी, चतुर्भुजस्थान, पचाढ़ी, मनियारी, मिर्जापुर, पातेपुर, नरघोघी, रामपट्टी, जनकपुर, गङ्गासागर, रामपुरा, कन्हौली गुम्हीं, फुलहर, धरमपुर, बनवारी, वसुआर, पचगामा, गाहर, बिसनपुर, बेलाही, भरवाड़ा, भवानीपुर, मोटीना, हरिपुर, सोनकी, सिंघिया, चनोरा, अदलपुर, मकरन्दा, बराही, फुलकाही, बिसौली, हनुमान नगर, भटोरा, सेलीबेली आदि हैं।

—श्री पुलकितलाल दास 'मधुर'

जयतात्

पण्डित श्रीयुत दुःखमोचन झा जी

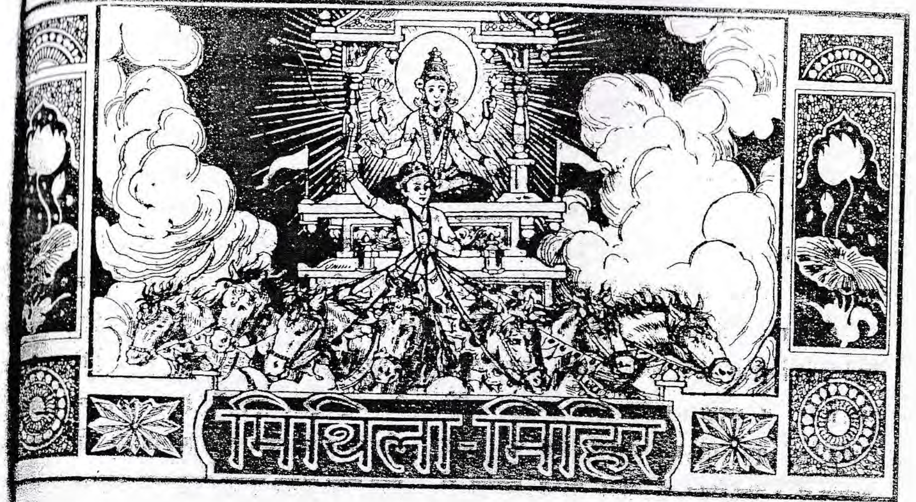
कुह चित्कमला कमलालयकोमल—पद्म—परागलसत्सलिला
कुह चित्कदलीदल-चञ्चलताञ्चित-कुसुमञ्जमही निखिला।
कुह-चित्कलनाद-विहङ्गमसङ्गि—रसाल—विशालवनी-विमला
भुवि भव्यपुरातन सभ्यकला कलिता ललिता जयतान्मिथिला॥



श्रीजानकीजीक पाताल-प्रवेश

GITA PRESS, GORAKHPUR.

श्री मैथिली



सम्पादक

श्री सुरेन्द्र झा

...शीर्ष ... फसली | मिथिलाङ्क | नवम्बर १९३५ ई०

मैथिलीक प्रति

...मस्तक नहिं रहत अनुन्नत, नहिं दुख होयत आब।
...कटिबद्ध चरण-सेवा हित, बदलल 'भुवन'क भाव॥
... दिव्य वर, हमर जाहि सँ मिटत कुकृत्य-कलंक।
...वि अतीत-सदृश गुण-गौरव, अब न कहाबी रंक॥
...प्रतिज्ञ हम, किन्तु अँहक करतल-गत पूतक लाज।
...हेरब त, पड़त शीश पर निश्चय विजयक ताज॥

श्रीयुत भुवनेश्वर सिंह 'भुवन'

शुभाशंसा

'मिथिला मिहिर' उदय सँ विकसित विद्वज्जन-अरविन्दा।
सुमधुर रस आशा सँ हर्षित छात्र-समूह मिलिन्दा॥
घोर अविद्या रूप तमक तत्क्षण भय गेल विनाशा।
होइत मात्र प्राची में 'मिथिला मिहिर'-मरीचि प्रकाशा॥

श्रीयुत रामभद्र झा जी एम० ए०
(अलवर स्टेट)

मिथिला क गति

(' मिथिलाक अधोगति क निदान'क समीक्षा)

महामहोपाध्याय डा० श्रीयुत गङ्गानाथ झा जी, एम० ए० डि० लिट्०

एहि पत्रिकाक विषय हमरा मुद्रित ' विषय सूची ' स प्राप्त भेल। विषय अछि विचित्र तहिं हम एकरहि बीछल।

'मिथिला की अधोगति का निदान'। ' अधोगति ' पद्क तात्पर्य सापेक्ष थीक और अधोगति ' पद सँ 'नीच अवस्था' ई सर्वदा सापेक्ष होयत—ककरा अपेक्षे ' नीच '। एक वस्तुक अवस्था कोनो एक वस्तुक अवस्था सँ ' नीच होयत तँ दोसर वस्तुक अवस्था सँ उच्च होयत । हिमालयक ' काञ्चन जङ्घ ' (Kinchen Janga) शृङ्ग यदि " गौरीशङ्कर" (Mt Everest) सँ 'नीच' तँ धवलगिरि शृङ्ग सँ 'उच्च' अछि। तेँ कोनों देशक ' गति ' नीच नहिं कहल जा सकत, यावत एहि कोनो विशेषण नहिं लगाओल जायत—

ककरा अपेक्षा 'नीच' ?

' विषय सूची ' क तात्पर्य ई तँ स्पष्ट अछि जे मिथिलाक ' गति '- अवस्था-अधो-नीच अछिये। जहिं ई तात्पर्य छैन्हि तहिं लेखक वृन्द कें ओकर ' निदान-कारण-निरूपण करबाक आदेश कैलेन्हि अछि।

ककरा अपेक्षें मिथिलाक अवस्था नीच, ई बूझब कठिन अछि। ' मिथिला की अधोगति ' सँ ई बोध होइछ जे पूर्वकाल में जे मिथिलाक दशा छल ताहि सँ एखन नीच दशा अछि।

ई सिद्धान्त प्रायः समस्त जनता सँ स्वीकृत अछि। परन्तु हमरा तुच्छ बुद्धि में एहि सिद्धान्तक प्रसङ्ग सन्देह अछि। एहि सन्देहक सूचना हम दू एक वेर सभा समिति में कैनहु छी। पूर्वकालीन मिथिला सँ यँ सत्ययुगी वा द्वापरयुगी जनक याज्ञवल्क्यक समय बुझी, तखन तँ अवश्य ई स्वीकार करैक पड़ैत अछि जे मिथिलाक अवस्था ओहि अव[...] अपेक्षें ' नीच ' अछि। परन्तु से तँ केवल मिथि[...] नहि—कुरु पाञ्चाल –अयोध्या-मथुरा इत्यादि समस्त [...] क इएह दशा छैक । यद्यपि एहू प्रसंग ई विचारणीय [...] जे सत्ययुग द्वापर युग में देशक सामान्यतः अवस्था [...] रहैक से निश्चित रूपेण बुझबाक सामग्री नहिं अछि। [...] परम ज्ञानी क्षत्रिय छलाह याज्ञवल्क्य उत्कृष्ट ऋषि छलाह [...] ई सत्य। परन्तु जनक याज्ञवल्क्य सन ओहू युग [...] गोटे छलाह--से नहि बूझल जा सकैछ ।

कोनो दू वस्तुक तुलनात्मक विचार ताहि अवस्[...] भय सकैछ जखन दूनूक ज्ञान हो। तेँ उपस्थित [...] अति प्राचीन मिथिला सँ करब दुस्साहस होएत। [...] १००, ५० वर्षक मिथिलाक अवस्था सँ आजुक मिथि[...] वस्थाक तुलना करबाक चाही । देशक अवस्था निर्भर [...]

'विद्या-धन-धर्म-ओ-आचार पर ' ।

विद्याक प्रसंग मिथिलाक ' अधोगति ' भेल अ[...] नहि देख परैछ। जनश्रुति वा कल्पना पर निर्भर [...] रहि हम केवल स्वकीय साक्षात् अनुभव क अनुसार [...] करब।

(१) मिथिला में एहि ५० वर्षक [...] संस्कृत–फारसी–अङ्गरेजी—हिन्दी—एहि चारि [...] शिक्षाक प्रचार छल । संस्कृत पढ़निहार विद्यार्थी [...] 'कृतविद्य' क संख्या जे ५० वर्ष पूर्व छल ताहि स कैक [...] बेशी एखन अछि। ५० वर्ष पूर्वप्रगाढ पाण्डित्य देश में [...] संख्या में छल से प्रायः एखन नहिं देखना जाइछ। [...] यथार्थ विचार करी तँ एखनहु धरि प्रगाढ पाण्डित्य मि[...] [...]ध्य वर्तमान अछि ओ आन देशक अपेक्षें अधिके । जँ एकर [...]पक डर अछि तँ तकर कारणान्तर छैक-लोकक दोष नहि-[...]लक दोष, कार्य प्रणालीक दोष, परीक्षापिशाचीक दोष । [...]० वर्ष पूर्व संस्कृतज्ञ कें एके वेर एहि पिशाचीक दर्शन [...]इत छलैक, शास्त्र समाप्त कैला पर मिथिलेशक ओतय [...]तिष्ठा लाभार्थ । तावत धरि स्वतंत्र रूपेण गुरु सँ [...]ला प्राप्त करै छल। आब तँ अक्षर मात्र लिखय अयतैक [...] लगले ' प्रथमा ' पिशाचीक भेंट कराओल जाइत छैक [...]सा पिशाची तेना भय लगैत छैक जे प्रायः २५ वर्ष [...]स्था धरि नहि छोड़ैत छैक। तदनन्तर नाना व्यग्रता-[...]त भय शास्त्रक व्यवसाय सँ विमुख भय जाइत अछि ।

परन्तु एतावता संस्कृत विद्याक प्रचार कें न्यून नहिं [...]हि सकैत छी ।

(२) ५० वर्ष पूर्व मुसलमानी राज्यक प्रभाव एतबा रहि [...] छलैक जे प्रायः धनिक घर में बालक के फारसीक शिक्षा [...]इत छलैक। (हमरहु बाल्यावस्था में ' अलिफ-बे ' [...]रिचय कराओल गेल छल। परन्तु ई दूई अक्षर छाड़ि [...] किछु स्मरण नहि रहल।) परन्तु आब प्रायः केओ [...]ल बालक फारसी नहि पढैछ। एहि अंश में विद्याक [...]स अवश्य भेल अछि। (३) अंग्रेजी क प्रचार तँ ५० [...] पूर्व सैह छल जे प्रथम मैथिल B. A. प्रायः हमर ज्येष्ठ [...]ता विन्ध्यनाथ बाबू छलाह। ई १८८८ इशवीय में [...]ए० पास कैलन्हि। दरभंगा जिला में प्रथम High [Sc]hool, राज स्कूले छल जे प्रायः १८८० वा १८८१ [...] भेल, ताहि सँ पूर्व मिडिल स्कूल छल। आइ मैथिल [B.]A, B. SC., B. L. क संख्या कें 'संख्यातीत' क ही तँ [...] अत्युक्ति नहि होएत ओ दरभंगा जिलाक कोन कथा [...]सिक्षा शहर हि में प्रायः ४ हाइ स्कूल वर्तमान अछि।

(४) हिन्दी क शिक्षा तँ ५० वर्ष पूर्व प्रारम्भ मात्र [...] छल। अक्षरारम्भ मैथिली अक्षरहि सँ होइत छल। आब तँ मैथिली अक्षरक व्यवहार कैनिहार दिनानुदिन कम्म भेल जाइछ ! मैथिली दृष्टि सँ एकरा ह्रास अवश्य कहब। परन्तु हिन्दीक दृष्टिये ' उन्नतिए ' मानैक पड़त।

धनक प्रसंग दू गोट दृष्टान्त पर्याप्त होएत। ५० वर्ष पूर्व देशक जमीदार लोकनीक प्रसंग ई उपहास प्रसिद्ध छलैन्हि जे जमीदार क लक्षण दू गोट–एक त ई जे जतय जाथि दोशाला बिना नहि जाथि-ओ दोसर जे ऋण ग्रस्त होथि।' आइकाल्हि बहुत कम मैथिल जमीदार होए-ताह जनिका में ई लक्षण पूर्णरूपे घटत। सामान्य जनता में जे उत्तम श्रेणीक सज्जन रहथि से प्रायः अपनहिं हाथक वान्हल पाग ओ एकटा दोपटा एतबे पहिरब-पर्याप्त बूझथि। सर्वत्र इएह ' Dress ' रहैन्ह आइ एहि स अतिरिक्त (१) एक फतुही वा बनिआनि (२) ताहि पर एक कमीज ओ (३) तदुपरि एकटा कोट वा अचकन। पूर्व पागक दाम १) दोपटाक ॥) यँ बड़े आडम्बर अपेक्षित होइन्हि त एकटा मिरजइ-खुटिया। जे प्रायः ॥) या ॥।) में तैयार होइक सभ मिलाक ३) टाका सँ अधिक नहि आब तँ ३) कमीज ओ कोटक प्रायः सिआइये में लगैत छैन्हि।

छोट वा गरीब लोक अधिकांश विष्टी पहिरै, यँ किछु निकें भेल तँ हाथक एकटा तौनी पहिरि पर्याप्त बुझै। आब देहात में धोती पर सँ एकटा ' बनिआनि ' वा 'गञ्जी प्रायः देखबैक। पूर्व में लालटेम संग लै केवल ' बबुआन' लोकनि चलथि, आब तँ देहात में जन-बनिहारो अन्हार में बहुत काल लालटेमे लक चलैत अछि। एहि सभ सँ धनहुक 'ह्रास' नहि सूचित होइछ।

धर्म क प्रसंग ई विचारणीय होएत जे ' धर्म ' पद सँ की विवक्षित थीक। कि आन्तरिक धार्मिक बुद्धि ओ संस्कार,अथवा बाह्य धार्मिक आचरण ? जँ बाह्य धार्मिक आचरण बुझी तँ तकर ह्रास अवश्य देखना जाइछ, कारण जे ५० वर्ष पूर्व भरि सके कोनो नीक लोकक



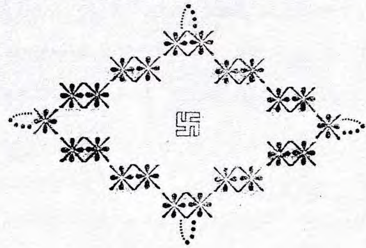
बर छल जाहि में शालग्रामादिक पूजा प्रतिदिन नहिं हो। परन्तु आइ बहुतो घरमें तकर अभावे देखना जाइछ। एकरा धार्मिक आचरण ह्रास अवश्य मानक पड़त। धर्म सँ यदि धार्मिक बुद्धि ओ संस्कार विवर्जित हो तँ तकर ह्रास नहि देखना जाइछ। 'सत्यंवद-धर्मंचर' इत्यादि सामान्य धर्मक प्रतिपालन ५० बर्ष कम्म छल। फूसि बाजब 'बुधियार क विशिष्ट लक्षण बूझल जाइक, प्रतारण कै धन उपार्जन करब 'होशियारी' क चिह्न छलैक। एहि दिश आब दशा नीक सन बुझना जाइछ। एतबा तँ अवश्ये ये ये केओ फूसि बजैत छथि वा मिथ्या व्यवहार कै धनोपार्जन करैत छथि से लज्जित रहैत छथि ओ उपहासास्पदो होइत छथि। एतावता हमरा जनैत मिथिलाक 'अधोगति कें 'अप्रसिद्ध' बुझबाक चाही।

यँ देशान्तर सँ मिलाएब तैओ अंग्रेजी विद्वान् क संख्या छाड़ि ओ धनराशि कें छाड़ि-आन कोनहु अंश में मिथिलाक 'अधोगति' नहि कहल जा सकइछ।

अंग्रेजी क प्रचारक कमीक निदान भेल पछुआएब। ५० वर्ष पूर्व हमरा सबहि अंग्रेजी पढ़ए लगलहुँ। ताहि समय अंग्रेजी पढ़बे निन्दनीय बूझल जाइक। जखन १८८८ मे विन्ध्यनाथ बाबू एक मात्र मैथिल B. A. भेलाह ताहि ताहीदिन बंगाली ओ मद्रासी ओ महाराष्ट्री B. A. नामावली ४०, ५० पृष्ठ Calender क भरल रहैत छल एहि पछुऐबाक प्रतीकार आब असम्भव। तथापि एहु दिश उन्नति प्रतिदिन भय रहल अछि।

अवशिष्ट रहल धनक न्यूनता। ई प्रसिद्ध अछि धनहि सँ धन उत्पन्न होइछ तेँ यदि आब मैथिल अमीर लोकनि सावधान भै व्यापार दिश दृष्टि देताह तँ धनहु वृद्ध होयबे करत।

एहि सभक सारांश हमर वक्तव्य ई जे अपन अधोगति मात्र दिश दृष्टि देने आत्मग्लानि होयत ताहि सँ अनुत्साह तेँ कर्त्तव्य जे अपना में जे त्रुटि अछि तकरा दृष्टि में राखि उत्साह पूर्वक 'कार्य वा साधयामि प्राणान् वा पातयामि' ई प्रतिज्ञा कै सभ क्षेत्र में आत्मोन्नति द्वारा देशोन्नति में तत्पर होउ। व्यक्तिऐक उन्नति सँ समुदायक उन्नति भ सकैछ। 'अधोगति' 'अधोगति' करैत यथार्थे अधोगति भय जाएत। तें 'अधोगति' के दबाय ऊर्ध्वगति दिश दृष्टि राखू। सर्व क्षेत्र में मिथिला-मैथिल-मैथिलीक उन्नति द्वारा भारतवासी-भारतीक उन्नति में तत्पर होउ।



दार्शनिक मिथिला

पण्डितप्रवर श्रीयुत बालकृष्ण मिश्र जी
(हिन्दू विश्व विद्यालय—काशी)

बिहार प्रदेशक उत्तर भाग में मिथिला देश विद्यमान अछि, जकर दोसर नाम "तीरभुक्ति" थीक। यद्यपि एकर परिमाण अल्प छैक, तथापि प्राचीन काल सँ अद्यावधि ई विद्यापीठ मानल जाइछ। एहिठाम देशान्तर सँ आबि पण्डित सभ विद्याध्ययन द्वारा पाण्डित्य प्रकर्ष कें प्राप्त कय मिथिला-प्राप्त-पाण्डित्य-प्रथा सँ परम आदृत होइत छलाह। भारत मिथिलैक 'भा' (कान्ति) में 'रत' भय गौरवान्वित भेल, ई हमरा दृढ़ विश्वास अछि। आई कालिह पाश्चात्य, मैथिलैक बनाओल विचार परिपूर्ण 'दर्शन पुस्तक' कें देखि नतमस्तक समस्त भारतक हेतु भय जाइत अछि। एकर कारण की ? सकल साधारणो कहि सकैछ, जे सदाचार पूत दर्शन प्रचार सँ मिथिलाक कोन कोन में दार्शनिक भाव भरल छल। एहि ठाम तक की,

'स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं, कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति'

पुरातन विद्वज्जन विषय-विमुख भय विभाग पुरस्सर देवताक उपासना करैत तत्त्व निश्चयार्थ भावना परायण रहैत छलाह। ओही भावनाक विवर्तभूत प्रभूत ग्रन्थ रत्न संसार कें समुद्भासित कयने अछि। न्याय वैशेषिक ओ मीमांसाक उत्पत्ति स्थान मिथिले थीक।

न्याय सूत्र प्रणेता "गोतम महर्षि" मिथिलहि में भेल छथि, एहि में विवादे नहिं। अद्यावधि हिनक आश्रम ओ कुण्ड जनकपुर क समीप 'अहिल्या स्थान" नाम सँ प्रख्यात अछि। एहि कुण्डक जलक पान सँ न्याय शास्त्रमें प्रवीणता होइत छैक ई प्रवाद प्रसिद्ध अछि। अतएव एकर समीप क कौतीगाममें बहुत पैघ नैयायिक सभ भेल छलाह। 'न्याय सूत्र भाष्य वार्तिक'क उपर वाचस्पति मिश्रक "तात्पर्य्य टीका" तथा ओहि टीकापर उदयनाचार्य्यक 'परिशुद्धि' छैन्हि। एहि आचार्य्यक जन्म भूमि करिऔन थिकैन्हि। जे कृष्णपुर रेलवे स्टेशनक समीप छैक। यैह उदयनाचार्य्य शास्त्र विचार द्वारा बौद्ध विद्वान् सभ कें परास्त कय भारतक सकल प्रदेश में ईश्वर-साधन-पुरस्सर सनातन धर्म्मक उद्धार कयल। जकर स्मारक जगन्नाथक प्रति कथित ई श्लोक प्रथित अछि।

"ऐश्वर्य मदमत्तोऽसि, मामवज्ञाय दुर्मते।
पुनर्बौद्धे समायाते, मदधीना तव स्थितिः।"

बौद्ध मत खण्डन, ईश्वर स्थापन विचार सभ तत्प्रणीत "आत्मतत्त्वविवेक" (बौद्धाधिकार) "न्याय कुसुमाञ्जलि" प्रभृति ग्रन्थ में ग्रथित अछि। एहि आचार्य्य सँ खण्डनखाद्यकार श्री हर्षक पिता "हीर" परास्त भेल छलाह।

अनन्तर तत्त्वचिन्तामणि प्रणेता नव्यन्याय शास्त्रक उत्पादक म० म० प० "गङ्गेशोपाध्याय" भेलाह। हिनक चिन्तामणि ग्रन्थ विभिन्न देशीय अति-प्रसिद्ध विद्वद्गण रचित अनेक टीका टिप्पणी सँ उपबृंहित भय सकल देश ओ शास्त्र में नूतन प्रणाली सँ प्राज्य साम्राज्य कें विस्तीर्ण कयलक। अद्य-पर्य्यन्त एकरे पठन पाठन चलि रहल अछि।

एहि तत्त्व चिन्तामणिक टीका म० म० प० "जयदेव मिश्र" (पक्षधर मिश्र) आलोक नामक बनौलन्हि। जाहि आलोक पर दर्पणनामक टीका केनिहार विद्यमान श्रीमान् मिथिलेश क पूर्वज म० म० महाराज प० "महेश ठाकुर" मिथिला राज्यक उपार्जन कयलैन्हि। एहि समय तक न्यायोपार्जित राज्य मिथिलहि में अछि।

पक्षधर मिश्र सँ पढ़ि वङ्गदेशीय रघुनाथ शिरोमणि दीधिति नामक चिन्तामणिक टीका (जकर व्याख्या जागदीशी ओ गादाधरी थीक) बनाय वङ्गदेश में नव्य न्याय शास्त्रक परिपूर्ण प्रचार कैलैन्हि। शिरोमणि जखन मिश्र सँ पढ़बाक हेतु अयलाह, तखन शास्त्रीय विचार में मिश्र कहलथीन्ह, जे–

"बलोजपानकृत ! काण ! संशये जाग्रति स्फुटम्,
सामान्यलक्षणं कस्मादकस्मादपलप्यते।"

पढ़बाक काल में शिरोमणि कें देश सँ पूर्वक गुरु अन्योक्ति-रूपें श्लोक में पत्र देने रहथीन्ह, जकर अन्तिम चरण ई थीक—"किमधिक सुखमाध्वीरत्र वा तत्र वेति?" एतय सँ शिरोमणि ओही रूपें उत्तर देलथीन्ह—"यः कान्ताधरपल्लवे मधुरिमा नालक्षि कुत्रापि सः" वैशेषिक दर्शन प्रणेता "कणाद मुनि" थिकाह हिनक जन्म भूमि संशयास्पद छल। किन्तु आब अनेक व्यक्ति गवेषणा सँ निश्चय कयलैन्हि जे कण-सञ्चय (शिलोञ्छवृत्ति) सँ जीवन यापन केनिहार कणाद मुनि अपन पूतोत्पत्ति सँ मिथिला-मण्डलहि कें मण्डित कयने छलाह। कणाद सूत्रक उपर शङ्कर मिश्रक उपस्कार छैन्हि। ई शङ्कर मिश्र सरिसब निवासी अयाची मिश्रक पुत्र दैवी प्रतिभा सँ संपन्न छलाह। हिनक 'बालोऽहं' श्लोक जे पुरुषोत्तम नामक राजा कें साभिमान कहने रहथीन्ह, घर-घर प्रसिद्ध अछि।

कणाद सूत्र भाष्यक व्याख्या किरणावली उदयनाचार्य्यक छैन्हि, किरणावलीक उपर गङ्गेशोपाध्यायक पुत्र वर्द्धमानोपाध्यायक प्रकाश टीका छैन्हि, ई उपाध्याय आचार्य्यक ग्रन्थ मात्र पर प्रकाश टीका बनौने छथि, प्रकाश टीका मात्रक उपर महाराज महेश ठाकुरक भाय मेघ ठाकुरक जलद टीका अछि।

आओरो अपरिमित पद्मनाभ मिश्र, केशव मिश्र प्रगल्भ मिश्र यज्ञपति उपाध्याय, गोकुल नाथ उपाध्याय, धरणी धर उपाध्याय—प्रभृति अति प्रसिद्ध विद्वान् मिथिला में छलाह। जनिक अनेक दर्शन ग्रन्थ सभ जगद्व्याप्त अछि।

मीमांसा दर्शनप्रणेता 'जैमिनिमुनि' थिकाह। हिनक जन्म-भूमिक यथार्थ पता हमरा नहिं, किन्तु बहुतो दाक्षिणात्य पण्डितक सिद्धान्त छैन्हि जे जैमिनि तथा शाबर भाष्य प्रणेता 'शबर स्वामी' मैथिले थिकाह। अस्तु, जे किछु हो, तथापि मण्डन मिश्रक 'विधिविवेक' वाचस्पति मिश्रक 'न्याय-कणिका' पार्थ सारथि मिश्रक 'शास्त्र-दीपिका' शालिकनाथक 'प्रकरण पञ्जिका' भवनाथ मिश्रक 'भावनाविवेक' प्रधान निबन्ध सब सँ मीमांसादर्शन परिवर्द्धित भेल। एहि में मण्डन मिश्रक स्त्री 'शारदा' शारदाक अवतार छलीह। जनिका सँ पराजित भय शङ्कराचार्य मण्डन-विजयी भेलहु पर मिथिला-विजयी नहिं भेलाह।

पूर्वोक्त प्रत्येक पण्डित प्रकाण्डक जन्म मिथिलहि में भेल छैन्हि, एहि में ककरो वैमत्य नहिं। मीमांसा में नवीन पथ प्रवर्तक 'प्रभाकर मिश्र' मैथिल छलाह ई प्रमाण सिद्ध कयल गेल। हिनक 'बृहती' नामक ग्रन्थ उपलब्ध अछि।

'अङ्गत्व निरुक्ति' कार मीमांसक मुरारि मिश्र मैथिल प्रतीत होइत छथि। कारण जे अङ्गत्व निरुक्ति में तुलजा देवी कें अपन कुल देवताक निर्देश कयलैन्हि अछि।

"नमामि तुलजां स्वीयकुलजाद्याधिदेवताम्।"

भगवती कुल देवता मैथिल छोड़ि अनकर नहिं होइत छथीन्ह। मीमांसाक एतेक प्रचार देश में छल जे एक समय में १४०० मीमांसक पोखरिक याग में उपस्थित भेल छलाह। एहि याग में पक्षधर मिश्र आयल छलाह, हिनक सङ्ग में विद्यार्थी रघुनाथ शिरोमणि छलथीन्ह, जकर आख्यायिका विद्यापति ठाकुरक पुरुषपरीक्षाक भूमिका में उपन्यस्त अछि।

प्रायः प्रत्येक शास्त्रान्तरहुक पण्डित कें मीमांसाऽभिज्ञता छलैन्हि। अतएव न्याय धर्मशास्त्रक ग्रन्थ सभ में मीमांसा विचारक प्राचुर्य देखैत छी। अन्ततः अलङ्कार शास्त्रहु में–गोविन्द ठाकुर काव्य-प्रदीप में श्रुति–लिङ्गादिक विचार अति स्पष्ट ओ उत्तम कयने छथि।

मनीगाछीक समीप 'भट्टपुरा' में दाक्षिणात्य भट्ट सभ आबि मीमांसा पढ़ैत छलाह। मिथिलाक कोनो स्थान एहन नहिं अछि, जाहि में श्रौत यज्ञ नहिं भेल हो ई कथा हमरा पूज्य–पाद म० म० मीमांसक प्रवर चित्रधर मिश्र कहने रहथि, एक श्लोको सुनौने छलाह; जकर अन्तिम पाद ई छैक—

'यच्छ्रौताग्निसमुद्भवैर्जगदिदं धूमैः पुरा पावितम्'

त्रेता युग में मिथिलाक महाराज श्रुति प्रसिद्ध 'राजर्षि जनक' महर्षि-याज्ञवल्क्य सँ वेदान्तक अध्ययन कय जीवन्मुक्ति कें प्राप्त कयलैन्हि।

प्रमाण उपनिषत् ओ—"याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्म पारायणं जगौ।"

याज्ञवल्क्य मैथिल थिकाह, एहि में प्रमाण—"मिथिलास्थः स योगीन्द्रः" याज्ञवल्क्य स्मृति हिनक स्त्री 'मैत्रेयी' ब्रह्मज्ञा छलीह, जे बृहदारण्यकोपनिषत् में वर्णित अछि। वेदान्त सूत्र प्रणेता व्यास थिकाह, जाहि सूत्रक 'शङ्कराचार्य कृत भाष्य' वाचस्पति मिश्र निर्मित 'भामती' टीका सँ अत्युपादेयता कें प्राप्त कयने अछि। जकर वेत्ता वैह विद्वान् बुझल जाइत छथि। ई सर्वतन्त्र स्वतन्त्र वाचस्पति मिश्र द्वादश दर्शन टीकाकार छलाह। जाहि में पाँच दर्शनक टीका उपलब्ध अछि। 'भामती' नामक ग्रन्थ अपन पत्नीक नाम अविनाशी बनयबाक हेतु हुनक नाम पर बनौने छथि। एकर आख्यायिका पैघ छैक॥

सांख्य दर्शन में सभ सँ प्रधान 'तत्त्व कौमुदी' योगदर्शन में 'तत्त्व वैशारदी' अछि। जकर निर्माता वाचस्पति मिश्रे थिकाह।

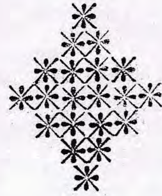
वक्तव्यक सारांश ई अछि जे दर्शन शास्त्रक पुस्तक पाण्डित्य, प्रचार, ओ तदनुकूल व्यवहार मिथिलाक समान अन्यत्र नहिं। समयक अभाव सँ संक्षेप करै पड़ल।



मैथिली एवं हिन्दी

प्रो० श्रीयुत अमरनाथ झा जी, एम० ए० (प्रयाग विश्वविद्यालय)

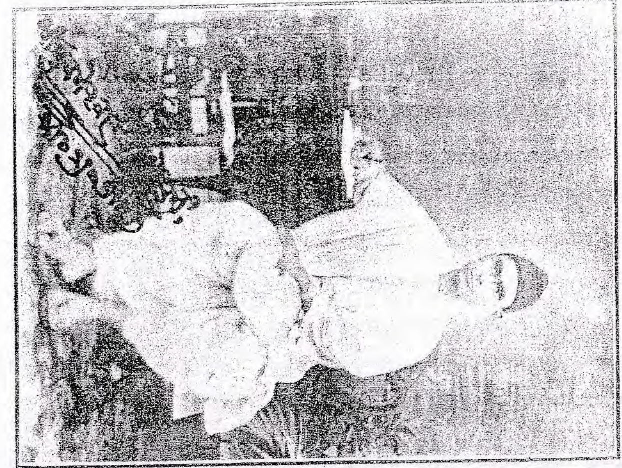
मैथिली क सेवा प्रत्येक मैथिल क कर्तव्य थीक। अपन मातृभाषा सन मधुर कोनों आओर भाषा नहिं होइत छैक। यथासाध्य एकर उन्नति ओ प्रचार करबा में प्रत्येक काँ तत्पर रहब उचित। तथापि हम ई लिखबा क साहस करैत छी जे आब क समय एहन अछि जे बिना हिन्दी क नीक ज्ञानें कोनों तरह क उन्नति सम्भव नहिं। हिन्दी राष्ट्रभाषा क स्थान प्राप्त कय चुकल अछि। मैसूर पर्यन्त में हमर हिन्दी व्याख्यान दू सहस्र श्रोता सुनलक ओ बुझलक। मिथिला प्रान्त सँ बहार होइतहिं हिन्दीक प्रयोजन होइत छैक। अशुद्ध हिन्दी बजैत अपनहिं लाज होइत अछि। मैथिलातिरिक्त समूहक प्राधान्य सभ क्षेत्र में बढ़ल जाइत अछि। योग्यता में परिश्रम में मैथिल अन्य जाति सँ कम नहिं छी, तथापि मैथिल क दशा अत्यन्त क्षीण अछि। यदि हिन्दी ओ अंग्रेजी क अध्ययन मैथिल बालक करथि त हमरा पूर्ण आशा अछि जे शीघ्र ओ उन्नति-शिखर पर पहुँच जैताह।



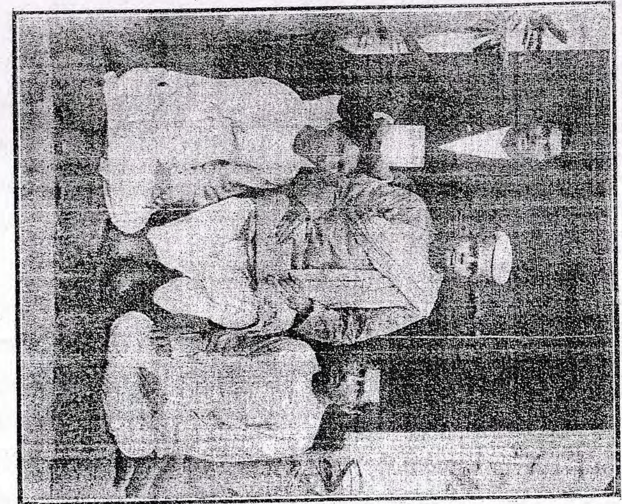
प्रभात

श्याम अस्तगिरि तुङ्गशिखर पर छवि अवलम्बित खिन्न निशेश
आवि गेल छथि अरुण पुरःसर उदयशिखर ऊपर दिवसेश
संसार क अतिशय परिवर्त्तन शील दशा अछि ई देखबैत
दीन जन क तमसावृत मानस में पावन प्रकाश छिड़कैत!

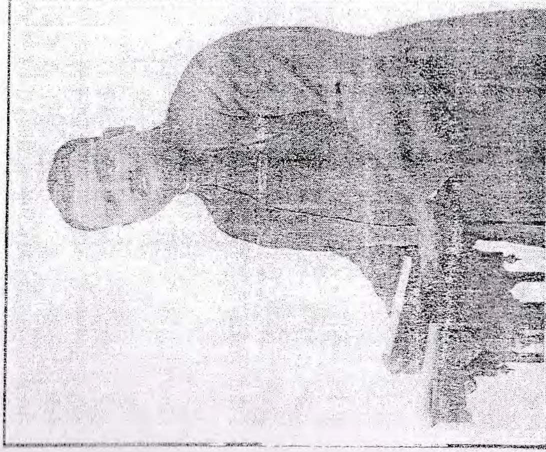
श्री आनन्द झा, न्यायाचार्य



श्रीभुवनेश्वर सिंहजी 'भुवन' (वैशाली-सम्पादक)

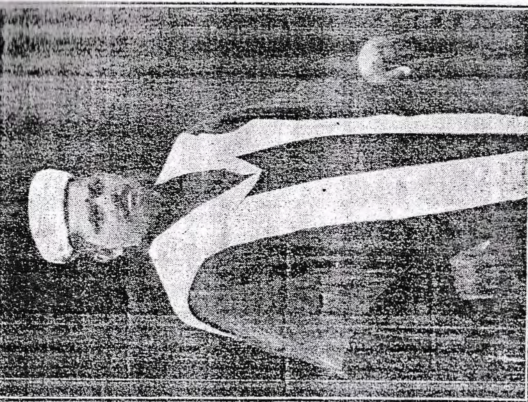


'राधा-परिणय' नामक संस्कृत-महाकाव्य के रचयिता प० श्री बदरीनाथ झा जी (बीच में) अपने शिष्यों के साथ



प्रोफेसर अमरनाथ झा जी, एम० ए०
(प्रयाग-विश्वविद्यालय)

मिथिला के रत्नद्वय



डा० उमेश मिश्र जी, एम० ए०, डी० लिट्
(प्रयाग विश्वविद्यालय)

मिथिला-मैथिल-मैथिली

प्रो० श्रीयुत डा० उमेश मिश्र जी एम० ए० डि० लिट्० काव्यतीर्थ (प्रयाग विश्वविद्यालय)

मिथिलाक प्राचीनता सृष्टिक संग सम्बद्ध छि। प्राचीन ग्रन्थहु मध्य मिथिलाक ओ मैथिल पि लोकनिक चर्चा भेटैत अछि। प्रायः यात्मविद्याक अधिकांश शिक्षक मैथिले छलाह। नो लोकनि एतय आबि आत्मतत्त्वक ज्ञान पाबि पना कें कृतकृत्य मानैत छलाह। ई पुराण या प्रायः ककरो सँ अविदित नहिं अछि; तें कर विस्तार करब पिष्टपेषण थिक। ई केवल गौरवस्मरण करयबाक निमित्त चर्चा कयल। शेष कहबाक अभिप्राय एतबे जे मैथिल केवल याक बलें जगतमें सब दिन सँ प्रसिद्ध भय पल छथि; तनिक गौरवक रक्षण-भार प्रत्येक थिलक ऊपर अछि से प्रतिक्षण हमरा लोकनि कॉं, शेष कय ब्राह्मण मात्र कें-जनिका हेतु कहल गेल छि "ब्राह्मणस्य शरीरोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते"—रण राखक थिक।

बहुतो लोकनिक ई भावना अछि जे आधुनिको मय में मैथिल क गौरव केवल संस्कृतविद्याक में सुरक्षित अछि, से नहिं बूझक थिक। संस्कृत षामें अपूर्व-अपूर्व ग्रन्थ लिखि अपन बुद्धि-क परिचय मैथिल सर्वदा सँ दैत आयल छथि, त गोआरो सब जनैत अछि, एहि सम्बन्ध में पने लोकनिकॉं स्मरणमात्र कराएब पर्याप्त थिक। न्तु एतबे नहिं, आनो आनो भाषामें मैथिल कनि चिरकाल सँ अपूर्व ग्रन्थक रचना करैत ल छथि। वैदिक काल सँ अद्यावधि एक ने देशीय भाषा भारतवर्षक प्रत्येकभाग में विद्यमान अछि, जे कि तत्तद्विभागक मातृभाषा कहल जाइछ। किछु दिन धरि प्राचीन महाराष्ट्री, सौरसेनी, मागधी, अर्द्धमागधी, आदि भाषा तत्तत्प्रान्त में छल, कतहु पाली भाषा छल। पश्चात् अपभ्रंश क समय आयल, एहूमें आभीरी, चाण्डाली, सावली, द्राविडी; औत्कली, अवहट्ट, आदि अनेक उपभाषा क भेद भेल। क्रमशः एही सबहिक लेन-देन सँ वर्तमान प्रान्तीय भाषा सबहिक उत्पत्ति भेल अछि। एहि सब अवस्थामें समय समय पर जेना आन आन देशमें ग्रन्थ क रचना भेल अछि, तेना मिथिलहु मध्य अनेक ग्रंथ बनाओल गेल अछि, जकर रचयिता धुरन्धर विद्वाने सब भेल छथि।

मातृभाषा सँ त एक प्रकारें लोक कें अविनाभावसम्बन्ध रहैत छैक। मिथिलामें प्रायः अधिकांश लोक पढ़निहार ओ ज्ञानेच्छु संस्कृत भाषा बुझैत छल, अतएव हुनका निमित्त वा अन्य देशी लोकनि (जे मैथिली नहिं बुझैत छथि) तनिका निमित्त संस्कृतहि में ग्रन्थक रचना पण्डित लोकनि करैत छलाह। परन्तु ताहूमें जखन कोनो क्लिष्टशब्द होइत छलन्हि तकर अनुवाद मैथिली में करितहि छलाह। एकर प्रमाणमें अपने लोकनि जगद्विख्यात निबन्धकार चण्डेश्वरठाकुर क सातो रत्नाकर देखू सैकड़ो स्थल में संस्कृत शब्दक मैथिली अनुवाद भेटैत अछि। धर्मशास्त्रमें तँ अनेक ठाम एकर उदाहरण भेटैत अछि। काव्य साहित्यहु मध्य रुचिपति उपाध्याय ओ जगद्धर आदि विद्वानक ग्रन्थ देखू-शतशः मैथिलीक शब्दक

प्रमाण कएल गेल अछि। एकर प्रचार त तेहन छल जे वाचस्पतिमिश्र सनक दार्शनिक विद्वान् पर्य्यन्त ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यक टीका भामती में निगड़शब्दवाची मैथिलीशब्द 'छड़ी' क प्रमाण कयने छथि। एकर बादो अनेक विद्वान्क ग्रन्थक अनुशीलन कयने एकर विशेष पता लागि सकैत अछि। अपर पर १८म शताब्दीक आदि भागमें म० म० गोकुलनाथ उपाध्यायक समकालीन कोनो विशेष विद्वान्क कथन अछि :—

'हम अति वृद्ध मरौ मरखाही * एकठा नाव चढ़ब नहिं ताही'
गोकुलनाथ कहइत अथि जेएह * हमरो सम्मति जानब सएह'

ककरो ककरो मतें ई कथन म० म० उमापति उपाध्याय क महाराज राघवसिंह क प्रति थिक। परन्तु जे हौ, थिक धरि ई कोनो विशेष विद्वान् क कथन। सब रूप सँ मैथिली क प्राचीन ग्रन्थ एखन धरि जे उपलब्ध भेल अछि, से थिक विद्यापतिक पितामहभ्राता म० म० ज्योतिरीश्वरठाकुर क "वर्णनरत्नाकर"। एहि ग्रन्थक आद्योपान्त अध्ययन सँ पता लगैत अछि जे कतेकटा शास्त्रीय विद्वान् ओ छलाह। हिनक 'रङ्गशेखर' 'धूर्तसमागम' 'पञ्चसायक' आदि संस्कृतभाषामयग्रन्थ क अध्ययन सँ हिनक संस्कृतक पाण्डित्यक परिचय होइत अछि। तथापि कम सँ कम १०० पृष्ठ क मैथिली में अद्भुत ग्रन्थ लिखि मैथिलीक गौरवक परिचय जगत् कें ई देने छथि। एतेक प्राचीन गद्यग्रन्थ एहि प्रकारक भारतवर्षक आन कोनो भाषा में अद्यावधि नहिं उपलब्ध भेल अछि। नेपालक राजा ओ मैथिल विद्वान्क मैथिलीक प्रति आदर आदर्शस्वरूप अछि। लगभग चारि-सय वर्ष धरि नेपालक राजा ओ हुनका सबहिसँ प्रोत्साहित धुरन्धर मैथिल विद्वान लोकनि मैथिली में सैकड़ों नाटक ओ काव्यक रचना कयलनि अछि, जकर किछु परिचय हम 'मैथिलीसाहित्य नेपालकेन्द्र' शीर्षक लेख में प्रकाशित कय चुकल छी, जकरा पढ़ला सँ अपने लोकनि कें सविस्तर परिचय भए सकैत अछि।

एतेक कहबाक एकमात्र अभिप्राय ई थिक जे मैथिल पण्डित लोकनि समयानुसार मैथिलीक सर्वदा आदर करैत आएल छथि। प्राचीन शिला लेख सबहिक ओ आन प्रकारक ऐतिहासिक प्रमाण क आधार पर ई ज्ञात होइछ जे एक समय में मैथिली उत्तरीय भारतवर्ष क अधिकांश भाग में पूर्ण रूपें व्याप्त छल। नेपाल में त दुइ सय वर्ष पूर्व धरि, अर्थात् १८ म शताब्दी धरि, गोर्खा लोकनिक आगमन सँ पूर्व प्रधान जनता क ओ राजाक भाषा मैथिलीए छल। मिथिला क कथे कोन।

कामरूपक सम्बन्ध भास्करवर्माक ताम्रपत्र लेखादि सँ ओ ऐतिहासिक लोकनिक गवेषणा एवं पुराण सँ ई पता लगैत अछि जे कामरूपक प्रथम राजा नरक थिकाह। पश्चात् काल एण बाणासुर क सम्पर्क सँ नरकासुर क नाम सँ प्रसिद्ध भेल छथि। 'नरक मिथिलाक राजाजनक क पुत्र थिकाह' ई कथा कालिकापुराणक अड़तीसम अध्यायमें वर्णित अछि। एकर बादो जखन त्रिपुरा राज्यक स्थापना भेल, तखन त्रिपुराधीश्वर एक यज्ञ कयलन्हि, ताहिमें पाँच ब्राह्मण पाँच विभिन्न गोत्रक (वत्स्य, वात्स्य, भारद्वाज, कृष्णात्रेय, ओ पारस्कर) आमन्त्रित भेलाह। हिनका लोकनिकाँ दक्षिणामें भूमि देल गेलन्हि, ओ भूमि पूर्वीय बङ्गालमें 'पञ्चखण्ड' नाम सँ प्रसिद्ध अछि। एहि स्थान कें रम्य देखि उक्त पांचो गोटे क्रमशः अपन देश (मिथिला) सँ आनो आनो गोत्रक ब्राह्मण काँ आनि एहि ठाम बास करौलन्हि। ई ब्राह्मण लोकनि अद्यावधि 'सिलहट' जिलामें बास करैत छथि तथा अपना कें वैदिक साम्प्रदायिक मैथिल कहैत छथि। एवं हिनका लोकनिक भाषामें मैथिलीक सम्बन्ध सँ सम्प्रति किछु परिवर्तन भए गेल छन्हि, किन्तु आचार विचार ओ शास्त्रीय सामाजिक व्यवहार एखन धरि मैथिले जकाँ छन्हि। मैथिलनिबन्धकार क अनुसरण करैत छथि। एहि बातक आभास चीनदेशीय परिव्राजक हूनशङ्ग (Huan chwang) क लेखहु सँ भासित होइत अछि। एकर अतिरिक्त अनेक विभिन्न प्रदेशमें मैथिल लोकनि अपन प्रकाण्ड विद्वत्ता क प्रभावें धनक उपार्जन कए ओतहि बास करए लगलाह। महाराज मिथिलेश भैरवसिंहदेव क समकालीन ... ली ग्राम निवासी खौआलवंशोत्पन्न रुचिपति-... क द्वितीयपुत्र प्रसिद्ध आगमाचार्य 'हरपति' उपाध्याय दक्षिणदेश क निजाम-राज्यमें दुइ तीन ... धरि वास करैत छलाह, से हुनके ग्रन्थावलो-... सँ पता लगैछ। एहि प्रकारें पाण्डित्य सदा-... ओ आत्मबलक प्रभावें मैथिल अनादि काल सँ सर्वत्र पूजित होइत आएल छथि। एहि सब ... में मैथिली क प्रचार सेहो होइत छल, तकरो ... क प्रमाण भेटैत अछि जे कि विस्तारक भयें ... ठाम नहिं कहि सकैतछी।

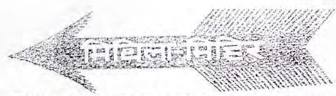
एतेक विस्तृत ओ आदृत मैथिलीक लेत्रकें ... सरि, केवल आलस्यें ओ चाकचिक्यादिमात्र-सम्पन्न आन भाषा क लोभें, हमरा लोकनि अपन ... भाषा क अवहेलना कए रहल छी! तकर निवारण करब प्रत्येक हृदयशील मैथिल क कर्तव्य थिक।

नीरक्षीरविवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुष चेत्।
विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः॥

अनेक मैथिलहु क धारणा छन्हि जे मैथिली में पूर्णसाहित्य अर्वाचीन त अछिए नहिं, किन्तु प्राचीनो बहुत अल्पे अछि, अतः एकर पोषण करबामें कोनो लाभ नहिं। ओ एहि सम्बन्ध में ई कहल जा सकैत अछि जे एहि विषयक ज्ञान क हेतु ओ लोकनि विशेष चेष्टे नहि कएलन्हि अछि, अतः हुनका एकर पूर्ण परिचय नहिं छन्हि। हमरा जनैत काव्य ओ नाटकक स्वरूप में कम सँ कम २०० सँ ऊपर प्राचीन ग्रन्थ मैथिली में वर्तमान अछि। एकर अतिरिक्त कतिपय उत्तम उत्तम ग्रन्थ क पता एखन धरि नहिं लागल अछि, सम्भव जे अन्वेषण कएला पर बहुत भेटि जाय। कतेक ग्रन्थक पता एहि भारत वर्षभरि में अद्यावधि नहिं अछि, किन्तु जर्मनी में ओकर मुद्रण पर्यन्त भए चुकल अछि। ई सब काज अन्वेषण साध्य थिक। तदर्थ मैथिल काँ सयत्न होएबाक थिक। मैथिली कविक संख्या यदि कएल जाय त प्रायः पाँच सय सँ ऊपर प्राचीने हयताह। एहि सबहिक सविस्तर वर्णन करबाक अवकाश एहि ठाम नहि तें केवल दिग्दर्शनमात्र कराओल अछि।

\+ \+ \+ \+

ई त भेल प्राचीन स्मरण, जाहि सँ हमरा लोकनि उत्साहित भए अपन अपन कार्य में अग्रसर भए सकैतछी। किन्तु प्रश्न त ई अछि जे मैथिली क उन्नति कोना भए सकैत अछि। तदर्थ कोन यत्न कएल जाय। ताहि सम्बन्धें बड़ संक्षेपमें अपन अनु-



सब समालोचनार्थ अपने लोकनि क समक्ष उपस्थित करैत छी।

१। प्राचीन मैथिली क यावतो ग्रन्थक अन्वेषण करब ओ तकरा एकत्र करब परमावश्यक अछि। ग्रन्थोद्धार नहिं भेने आगाँक काज नहिं सोझराएत। प्राचीन ग्रन्थक बलें देशक जातीय ओ सामाजिक व्यवहारक पता लगैत अछि, तथा देशक इतिहास विषयक संकलन होइत अछि, जे अद्यावधि अन्धकारमय अछि। एहि निमित्त जे कोनो लेखहो,तकर संग्रह करक थीक। कखनहुँ कखनहुँ त प्राचीन चिट्ठी पुर्जी-लेख सँ अनेक महत्त्वक अन्वेषण होइत अछि। जकर प्रमाण में कविवर विद्यापति ठाकुर क लिखनावली बड़ प्रसिद्ध अछि। हमरा देश में बहिया ओ बहिकिरनी क क्रय-विक्रय होइत छल। जकर अनेक बहिखत अनेक गोटाक प्राचीन पोथीक संग्रह में भेटैत अछि। ओकर भाषा ओ लेखशैली सँ नानाप्रकारक सामाजिक ओ ऐतिहासिक विषयक पता लगैत अछि, जकर उदाहरण में एक दुइयक प्रतिलिपि अपने लोकनिक परिचयक हेतु हम एहिठाम दैतछी।

(अ) शाके १४३७ वैशाख शुक्लचतुर्थ्यां शुक्रे श्री रामभद्रशर्म्मा श्री कपालदासेषु गौरोत्र वाटिकापत्रसर्पयति। तत्सेत्यादि—हमरा बहिया हराइ क बेटी पदुमी नाम्नी गौरवर्णा जे तोहरे बेटा जे श्री कृष्णाएँ विआहलि से हमें एकटका लए तोहरा हमें देलिआबे ताहि सयो हमराँ कवोनजे सम्बन्ध नहि साक्षी तुमत्र श्रीरसालमिश्र श्री सिद्धिनाथ झा श्री मदनन्तमहाशयानां लिखितमिदमुभयानुमतेन श्री गङ्गाधर शर्म्मणेति।''

(आ) ल० सं० ५४६ अगहन ८ बुवे श्री गङ्गापति शर्म्मखि बेलोंच सं श्रीभोराशर्म्मा गौरीव वाटिकापत्रसर्पयति देश-व्यवहारे गोराउर १ रुपैया लेड गतिराम कैवर्तक बेटी जलिया श्री गङ्गापति झा के....... विवाहार्थे स्वत्व परित्याग कए देलियैन्हि। एहि अर्थ साक्षी लेखक श्री लाल सो श्री भोरा झा क।

एहि प्रकारक अनेकपत्र संस्कृतहुँ में भेटैत अछि तकरो एकटा उदाहरण देखक थीक।

सिद्धिरस्तु परमभट्टारकेत्यादि राजावलीपूर्वके लक्ष्मणसेनदेवीय गतनवाधिक पर्थ (?) शताब्दे लिख्यमाने यत्राङ्केनापि गत सँवत ल० सं० ५०९ श्रावणबदि १४ रवौ पुनः परमभट्टारकाश्वपति गजपति नरपति राजत्रयाधिपति सुरत्राणशासन साहजहाँ सम्मानित नवोवाव हकीकति खाना–सम्भुज्यमान तीरभुक्त्यन्तरित तीसाउतथासंलग्न भोरिआग्रामे महोपाध्याय श्री प्रद्युम्न महाशया दासीकरणार्थं स्वधनं प्रयुञ्जते धन ऐहकोऽप्येतत् सकाशातुलियासर्म श्री बाछलि शर्म्मा एतदर्थ नानामध्यस्थकृत मूल्य नृरीराजत। स्तौ (?) शूद्रीमादाय सीपु भनिपु षाडूनि जातीया स्वदेषितद्वादशवर्षवयस्कां सुकुमारीनाम्नींदासीं विक्रीतवान् यत्र विक्रीतधात्री ११ शूल्याङ्कुरं......मत्र हरिअम्बसं श्री खेदूशर्म कर्महासं श्री गोपालशर्म परौलीसं श्री ....।

इत्यादि अनेक पत्र सबठाम भेटसकैत अछि तकर संग्रह करब आवश्यक।

एकर अतिरिक्त नानास्थानमें शिलालेख, ताम्रपत्र, शासन आदि चिरस्थायी लेख सब संस्कृत भाषा में अछि, तकरो संग्रह करक थिक। एहि कार्यक महत्तासँ अन्ततः मैथिल बहुत भारिचित छथि, तें एतबे कहब आवश्यक एतदर्थ कइ लाख टाकाक वार्षिकव्यय, कय सरकार संग्रह में तत्पर अछि। प्रायः एहि अधिक महत्त्वक काज सरकारी विद्याविभाग कोनो आब नहिं अछि।

२। नवीन नवीन ग्रन्थक रचना करब द्वितीय कर्तव्य थिक। एहि सम्बन्धें ध्यान राखक थिक हमरा देश में विद्वान् क कमी नहिं। सब शास्त्र क भिन्न-भिन्न वेत्ता उत्तम श्रेणी क वर्तमान छथि। हुनका लोकनिक द्वारा अपना अपना शास्त्र सम्बन्धी विषयानुसार ग्रन्थ लिखल जाय, तकर उद्योग करी। एहि सँ नवीन विद्यार्थी लोकनि काँ शास्त्राध्ययन में किछु सहायता भेटतन्हि एवं विद्यार्थी सँ अतिरिक्तो लोक कें शास्त्र-मर्यादा बुझबा में आदर ओ सौकर्य हैतन्हि एवं सब विषय में मैथिली क भण्डार परिपूर्ण हयत। यदि प्रत्येक मैथिल विद्वान् (जनिक संख्या करब असम्भव नहिं तँ क्लिष्टसाध्य अवश्य कहल जा सकैत अछि) अपन जीवन में अपन अनुशीलित विषयं सम्बन्धी एक एक दशो पत्र क ग्रन्थ लिखि देथि तँ हमरा जनैत दश वर्ष क मध्य मैथिली सन रोचक ओ सर्वाङ्गपूर्ण भाषा कोनो नहि हैत।

३। मैथिलीसाहित्य-समिति ओ परिषद् क तत्तत्शाखा ओ प्रशाखा सबहिक पाक्षिक वा मासिक तथा षाण्मासिक वा वार्षिक अधिवेशन समारोह पूर्वक कएल जाय। समारोह सँ हमर ई अभिप्राय नहि जे व्यर्थ व्यय करबाक आडम्बर मात्र करी किन्तु लोक सर्वात्मना कार्य में योगदान देथि। पाक्षिक वा मासिक अधिवेशन में मैथिली में लिखल निबन्ध केओ केओ पढ़थि तथा ओकर आलोचना हो एवं ओकर प्रकाशन हो। वार्षिक अधिवेशन में देश भरि क विद्वान् उपस्थित भय उत्साह बढ़ाबथि ओ एक एक अपन अपन शास्त्रक कोनो विषय पर निबन्ध मैथिली में लिखि अधिवेशन में पढ़थि वा पढ़ाबथि। एहि सँ शास्त्रीय विषय क लेखमें पटुता क मात्रा बढ़त ओ विद्योन्नति होएत सँग सँग मैथिलिक गौरव बढ़ले जाएत। एहि प्रबन्ध सब काँ प्रकाशित करबाक यत्न कएल जाएत। जाहि सँ अनागत लोकहु काँ अधिवेशन में पठित ओ समालोचित विषय बुझबाक अवसर होइन्ह।

४। किछु यत्न कए पुरस्कारक संग्रह सेहो करब आवश्यक। क्रमिक प्रथम, द्वितीय वा तृतीय उत्तम लेखक काँ पुरस्कार देल जाइन्हि। एहि सँ लोक कें उत्साह बढ़ैत छैक।

५। एकर अतिरिक्त (यद्यपि सब सँ अधिक आवश्यक) एक शुद्ध साहित्यिक मैथिली पत्रक प्रकाशन थिक। एकरा विना अनेक प्रकार क हानि अछि। एकमात्र लोकमें मैथिली क प्रचारार्थ इएहटा उपाय अछि। मैथिली में प्रबन्धादि लिखनिहारहु काँ एहि विना उत्साह नहि होइतछन्हि। वा कतए कोन काज के करैत छी तकरो पता त एही प्रकाशन द्वारा लागि सकैत अछि। ई हो शास्त्रोन्नतिक सामयिक एक उत्तम उपाय थिक यदि सुचारु रूपें सम्पादित हो। एकर सर्वथा अभाव मिथिला में अछि। प्रायः कोनो प्रदेश वा जाति एहन नहिं अछि जकर जातीयपत्र कोनो नहिं प्रकाशित होइत होइक। एहि में केवल धनक आवश्यकता नहिँ छैक। उत्साह ओ कार्यक्षमता देश तथा कुल मर्यादा क गौरव चाही। यदि पत्र में सुन्दर सुन्दर शास्त्रीय विषय क लेख रहत, एवं मैथिल पण्डित लोकनि ओहिपर कृपादृष्टिरखताह, तखन एकर ग्राहक के नहि हएत ? जेहन विषय सबहिक निमित्त हमरा लोकनि अन्य भाषाक मासिक पाक्षिकादि पत्र क सेवन करैत छी, ताहि प्रकार क विषय ओ ओहू सँ उत्तम रुचि क अनुकूल लेख यदि मैथिलीक पत्रमें होएत तखन किएक एकर ग्राहक नहि होएत ओ एकमात्र मासिक

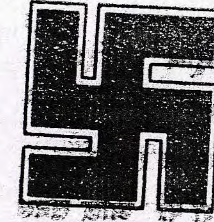
मिथिलामोद एहि ठाम ८-१० वर्षधरि जीवित छल किन्तु म० म० स्व० प० मुरलीधरझा क सँगहि ओहो काशी में मुक्ति प्राप्त कएलक। एहि प्रकारें अनेक पत्र किछु २ दिन प्रकाशित भए लुप्त भएगेल अछि। सम्प्रति एक मात्र "मिथिलामिहिर" श्री ५ मान् मिथिलेश क कृपा सँ चलि रहल अछि। किन्तु ओहो अंशतः मैथिलीक पत्र थिक से सब ज्ञाते अछि। अतः एहि दिशि सबहिक ध्यान आवश्यक अछि। यावत् सबहु गोटे मिलिकए कोनो काज नहि करब तावत् जातीय काज कोनो नहि भए सकैत अछि। पाछां पड़ल कतेक दिन रहब ने आब तेहन विद्या ने तेहन मन्त्रतन्त्रबल, ने तेहन आत्मबल, जाहि सँ संसार क गति सँ विमुखभए अपन अस्तित्व मात्र सँ मिथिला क चिर सम्पादित गौरव क रक्षा कए सकैत छी। तें हमरा सबहिं काँ एकत्र भए एहि प्रकार क कार्य करक थिक जाहि सँ यथार्थ में उन्नति हो।

एक आवश्यक विषय और अछि मैथिलीलिपिक रक्षण ओ प्रचार। एहि लिपिक आधार मैथिल मात्र थिकाह। यदि हमरा लोकनि एकर अनादर करी तँ एकर रक्षक के हयत ? एहि में कतेक गुण छैक, तकर यथार्थ वर्णन करबाक हमरा में सामर्थ्य नहिं।

पूर्व में एकमात्र ब्राह्मी-लिपि छल। ताहि सँ भारत वर्षक समस्त लिपि विकसित भेल अछि। ताहिमें एक मैथिलिओ लिपि थिक। एकर यथार्थमें सर्वाङ्गीण विकाश कहिया भेलैक से अन्वेषणीय थोक, किन्तु एतेक धरि अवश्य जे कर्णाट कुलोद्भव मिथिलाक प्रथम ऐतिहासिक राजा नान्यदेव थिकाह। जनिक राज्यकाल १०१९ शाके अर्थात् १०९७ इशवीक समीप थिक। हिनक प्रधान मन्त्री श्रीधर नामक एक कायस्थ छलाह। हुनके प्रेरणा सँ एक विस्तृत पोखरि अन्धराठाढ़ी में खुनाओल गेल एवं एही पोखरिक एक भागमें एक श्रीधर भगवान्क मूर्तिक स्थापना सेहो भेल। एही उपलक्ष्य में एक शिलालेख प्रस्तुत कए श्री भगवान्क बैसक में खोधाओल उपलब्ध भेलअछि। ई लेख शुद्ध बहुत सुन्दर ओ परिष्कृत मिथिलाक्षर में लिखल अछि। एहिना ५०१ गुप्तराज्य सम्वत्क एक लेख इर्जरवर्माक तेजपुर ग्रामक भेटल अछि। एवं आनो आनो शिला लेख भेटल अछि ई सब शुद्ध मैथिली में अछि, जनिका मैथिली लिपिक परिचय छन्हि से एकरा मैथिली मानैत छथि। आनो लोकनि एकरा वङ्गलोक पूर्व स्वरूप कहैत छथि, एहि सँ ई अनुमान होइत अछि जे नान्यदेवक समय सँ पूर्व कम स कम २०० वर्ष पूर्व मैथिली लिपि सर्वाङ्ग पूर्ण भय चुकल छल, हेतु जे ठाढ़ी क लिपिकें ओहि अवस्था में प्राप्त हएबाक हेतु कम सँ कम एतेक समय अपेक्षित छैक। २५-५० वर्ष में अक्षरक स्वरूप नहिं बनैत छैक। तस्मात् हमरा जनैत ९ म शताब्दी में अवश्य मैथिली लिपि अपन स्वरूप कें धारण कए चुकल हएत। एतेक प्राचीन लिपि कें तिरस्कार करब परम असङ्गत थिक। दोसर बात जे विद्वान् लोकनिक धारणा छन्हि जे मैथिलीक वर्णमाला तान्त्रिक नियमानुसार बनल अछि एहिमें तन्त्रक गूढ़रहस्य भरल छैक। जाहि सँ यथार्थ में ई अक्षर अविनाशी कहाओल जासकैत अछि। एहू कारणें हमरालोकनि काँ एकर रक्षण ओ प्रचार करक थिक। तेसर बात जे कोनो देश वा जातिक अस्तित्व ओकर स्वरूप पर निर्भर छैक। मैथिली मैथिलक स्वरूप थिक। तस्मात् एकर नाश भेने मैथिलक अनिष्ट होएब कोनो आश्चर्य नहिं।

भेष, भाव, भाषा, ओ लिपि पर जाति ओ देशक मर्य्यादा निर्भर अछि। जे केओ एहि सभक रक्षा करैछ, तकरे गणना जीवित जाति में होइछ। तस्मात् अपन अस्तित्व-रक्षार्थ हमरा सबहिकाँ मैथिली-लिपिक रक्षण ओ प्रचार करब थिक। मैथिली लिपिमें तेहन तेहन अपूर्व रत्न अछि, जकर परिचयक हेतु भारतीय विद्वान् मात्र काँ, अपितु पाश्चात्य विद्वानहु काँ एकरा पढ़क पड़ैत छन्हि। तें मै[illegible] लीक अस्तित्व नाशक सम्भावना हमरा [illegible] नहि अछि। परन्तु अपन हानि नहि हो तदर्थ [illegible] रक्षण करी से नितान्त आवश्यक।

हम "मिथिलाङ्क" क द्वारा यैह भाव क प्र[illegible] मिथिला में देखए चाहैत छी। मिथिला मैथिल, [illegible] मैथिली क कल्याण चिन्तन द्वारा वि[illegible] हितेच्छु छी।



जाता सा यत्र सीता सरिदमलजला वाग्वती यत्र पुण्या
यत्रास्ते सन्निधाने सुरनगरनदी भैरवो यत्र लिङ्गम् ॥
मीमांसा-न्याय-वेदाध्ययनपटुतरैः पण्डितैर्मण्डिता या
भूदेवो यत्र भूपो यजन-वसुमती सास्ति मे तीरभुक्तिः ॥

卐 卐 卐 卐 卐 卐

महत्त्व-गान

(१)

माखन सँ मृदु मञ्जुल माँटि जतै पुनि पानि क स्वाद सुधा सन।
श्रोत्रिय-विप्र-कुलोद्भव विज्ञ महीप जतै चढ़ि राज सिंहासन ॥
पण्डित पण्डित-मण्डल सँ नित नीति-समेत करै छथि शासन ।
हाथ हृदय पर राखि कहू, अछि दोसर देश कतै! मिथिला सन ॥

(२)

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा अछि शूद्र सदा निज धर्मक पालक ।
वेद पुराण क अर्थ करैछ जतै पुनि पांचहि वर्षक बालक ॥
सन्निधि नित्य त्रिवर्ग तथा न पड़ैछ प्रभाव जतै भव-जालक ।
स्वर्गहुँ दुर्लभ ताहश देश कथा पुनि की तहि ठाम पतालक ॥

(३)

खोपल सागर[1] भूमि चतुर्दिश भेटल तौं सुसरीहु क थान की !
किन्तु विदेह-सुभूमिक सद्गुन क्यौ कवि कै सकताह बखान की !
जेजन्हि जन्म सिराउरि सँ बिनु यत्न जतै जगदीश्वरि जानकी ।
ताहश दोसर देश कतै अछि सूनल ? वा पुनि सूनब कान की !

(४)

जाहि सुदेश-अधीशक सद्गुन देखि न के अभिमान तजै अछि ?
आगम-शास्त्र-महावन में जनिके सुत सिंह जकाँ गरजै अछि ॥
औखन मैथिल वृन्दहिं कैं सब मानि गुरू पदकञ्ज भजै अछि ।
"से मिथिला शिथिला छथि" एँ कहु के ई कथा भरि मूँह बजै अछि !

(५)

शत्रु पतङ्ग क हेतु जनीक कटाक्ष अखण्ड प्रदीप बराबरि।
याचक हेतु सदा जनिका कर में गुन स्वर्द्रुम[2] छीप बराबरि ॥
सत्यव्रतादिक पालन में छथि जे हरिचन्द्र दिलीप बराबरि
बुद्धि विवेकहु में कहु सम्प्रति के मिथिलाक महीप बराबरि !

कविवर
प. सीतारामझा

१ सागर-सगर क सन्तान।

२ स्वर्द्रुम छीप-कल्प वृक्ष क अग्रभाग, फलोत्पत्ति स्थान ॥

मिथिला आओर कर्म्मकाण्ड

[महामहोपाध्याय पण्डित श्रीयुत मुकुन्द झा जी बख्शी]

एहि ठाम कर्म्म शब्द क्रिया-सामान्य पर क हलहुँ आवश्यक धर्म्म नित्य-नैमित्तिक आओर काम्य एहि त्रिविध कर्म्म-कलाप कें कहैछ। जे एहि शरीर क संस्कार सँ पूर्ण सम्बन्ध रखैछ। जे गर्भ-स्थिति समय सँ ल कँ सबहि मनुष्य क अपन-अपन वर्ण आओर आश्रमोचित शास्त्र-द्वारा कहल गेल अछि। यथा—शास्त्र कर्मानुष्ठान द्वारहिं ऐहिक (इहलोकी) पारत्रिक (परलोकी) सुख ओ मोक्ष पर्यन्त जीव प्राप्त कै सकैछ, अन्यथा नहिं। स्वेच्छाचारें कर्म्म कयला क फल उक्त-विपरीते होइछ। ई कथा भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीता में कहि गेल छथि :—

"यः शास्त्र-विधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामचारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम् ॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणन्ते कार्य्याकार्य्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तङ्कर्म्म कर्तुमिहार्हसि ॥"

एहि मानवीय शरीरक उपादान (समवायि) कारण, माता-पिताक अशित-पीत अन्नजलादि सँ बनल त्वचा रुधिर मांस मेदा अस्थि मज्जा आओर शुक्र ई सात धातु अछि। ताहि सङ्ग उक्त अशित पीत वस्तुक विकार और वस्तु छाड़ि आन कोनों नहिं शास्त्र तथा युक्ति सँ सिद्ध होइछ। एकर शोधक शास्त्र-निर्दिष्ट (मन्वादिस्मृतिकथित) कर्म्मकलाप छाड़ि आन नहिं जेः—

"गार्भैर्होमैर्जातकर्म्म चौलमौञ्जीनिबन्धनैः।
बैजिकं गार्भिकञ्चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥"

इत्यादि मन्वादिक वचन जातें पुरुष स्त्री[1] सबहिं (सर्वजातिसाधारण) क हेतु शास्त्रमें कथित अछि। उक्त वचनमें होम शब्द यथाविहित गर्भाधानादि कर्म सामान्योपलक्षक बहुवचन निर्देशें मानल गेल अछि। एवं स्थावर जंगम सकल वस्तु अपन-अपन शास्त्र निर्दिष्ट संस्कारक भेलहिं उपादेय भेलापर "छोप" (स्पृश्य) शब्दें कहल जाइछ। जे "छुप स्पर्शे" एहि धातुँ सँ व्याकरण शास्त्रक प्रक्रिये बनैछ, से (संस्कार) नहिं भेलहिं "अछोप" शब्दें (अस्पृश्य) कहल जाइछ।

स्थावर (जीवेतर वस्तु) क संस्कार एक क्रिया-मात्रहुँ एक समयमें पर्याप्त होइछ। जंगम (जीव-विशेषतया मनुष्य) क रात्रिन्दिव अनेक रूपक शास्त्र निर्दिष्ट अछि, जकरा नित्यकर्म शब्दें कहल जाइछ, जे अरुण-कर-ग्रस्त प्राचीक अवलोकन काल सँ होइछ। जे समय-विशेष में आवश्यक (अकरण में दोषाधायक) भेलें कयल जाइछ ओ निमित्तवश भेलें नैमित्तिक कर्म कहल जाइछ। आओर जे कर्म फलाकाङ्क्षा राखि इच्छाधीन कृति क होइछ, सैह काम्य-कर्म कहल जाइछ। एहि में पहिलुक अनुष्ठान रात्रिशेष (ब्राह्ममुहूर्त्त) सँ प्रारम्भ भै शयनान्तकाल (अहोरात्र) में नानारूपक कहल अछि। एकर यथावत् (ठीक ठीक) अनुष्ठान

१ अमन्त्रिकाः क्रियास्तासां विवाहस्तु समन्त्रकः। (मनु) एवं शूद्रक हेतु स्त्रीसाधारण विधि कहल अछि।

मिथिला में एखनहुँ जाहि रूप क जनसाधारण में प्रचुर रूपें प्रचरित अछि; ताहि रूपें अन्यदेशमें विरले व्यक्ति में पाओल जाइछ।

संस्कार-भेद पूर्वकाल में (साग्नि सबहि द्विज कें रहैत) अनेक रूप क रहितहुँ एम्हर आबिकें १० प्रकारे क (५०० वर्ष क कर्म्मपद्धति वीरेश्वर, गणेश्वर, रामदत्तादिकृत देखला सँ) अवगत होइछ, जाहि में ६ काम्य तथा ४ नित्य जे, नामकरण-चूड़ाकरण, उपनयन आओर विवाह कहबैछ, यथायोग्य नहि कयलें वर्णाश्रम धर्मक विलोपे मानल जाइछ। एकर विधि एखनहुँ मिथिलहि में यथासमय ओ यथाशास्त्र होइत देखल जाइछ। आन (बहुतोक) ठाम तँ "गङ्गाजी इ पहिर जनौआत्" एहिरूप क कोनो तीर्थस्थान क कुण्डादि में जनौ बोरि पहिरौलहिं उपवीती (जनौ वाला) बनाओल जाइत देखल जाइछ। बहुतो क ठाम एक खुट्टा गाड़ि ओहि में पञ्चपल्लव वा आम्रपल्लव-मात्रो बान्हि ताहि लग किछु होम क नाटक कै ककरहु सँ गायत्री-मन्त्रें कान फुका देबे उपनयन कहबैछ। एवं परिवेत्ता, परिवित्ति, गोत्राध्याय, प्रवर-परिचय तँ कतिपये (गनल-गुथल) व्यक्ति में देशान्तर में देखलाँ जाइछ। लघुशङ्का कै पानि लेवा क तँ चर्चा कोन, ठाढ़ ठाढ़ लघुशङ्का करब एक सर्वसाधारण व्यवहार देशान्तर में देखल जाइछ, जकर समाज में कोनो विगान (निन्दा) नहि होइछ।

सगोत्र असगोत्र क भेद विवाह में कम्मे ठाम आद्दृत कैल देखना गेल अछि। दुइ (कन्या वरक) पक्षक समृद्धि मात्र देखि सम्बन्ध करब प्रचुर रूपें देशान्तर में प्रचरित दृग्गोचर भेल अछि। बहुतोक व्यक्ति अपना कें ब्राह्मण मानैत सगोत्र में सम्बन्ध भेलाक परिहार वत्स-वात्स-कश्यप-काश्यप एहि रूप में कयलैं छथि। बहुतो कें गोत्र प्रवर क किञ्चितो ज्ञान नहिं देखलाँ गेलैं फलतः ओहि समाज सँ मन घृणा मानैछ।

तथापि ओहि ओहि समाजक बहुतो क लोक सम्प्रति यौन—सम्बन्ध, सहभोजितादि सर्वविध सम्बन्ध ब्राह्मण मात्र सँ प्रचार करबाक हेतु उद्यत देखलाँ जाइत छथि, जे मिथिला मेंः—

"याजनं योनिसम्बन्धं स्वाध्यायं सहभोजनम्।
सद्यः पतति कुर्वाणः पतितेन न संशयः॥"

एहि वचनक पर्यालोचन रखैत क्यो नहिं आयल छथि, न वा अगहुँ करै चाहैत छथि।

लवण-संसृष्ट व्यञ्जनादि विजाति (हिन्दूमात्र) क हाथ क खैवा में विदेशी कथमपि नहिं हिचकैत छथि। जे मैथिलः—

"अन्नमरन्यम्बुसंपर्कात्स्पृष्टं लवण योगतः।
शाकन्त्रितय योगेन भक्ततुल्यं न संशयः॥"

एहि वचनक अनुसार कथमपि नहिं करैत छथि।

मिथिला में जैमिनीय-कर्म-मीमांसा शास्त्र क एतेक आदर छल ओ अछि, जे जैमिनिसूत्र पर महावृत्ति शास्त्रदीपिका, न्याय रत्नमाला, लोकवार्त्तिक, तन्त्रवार्त्तिक आदि सकल निबन्धक प्रणेता मैथिले पार्थसारथि मिश्र, भट्ट जगद्गुरु, कुमारिल आदिक ऽक भेलें ओइनवार ब्राह्मण कुलतिलक महाराज भैरव सिंहक जरहटिआ गामक पोखरिक यज्ञ में चौदह सै केवल मीमांसक क संख्या आमन्त्रित (विदाय देवा योग्य) व्यक्तिक लिखल (ताड़पत्र में) भेटि रहल अछि। अन्यान्य तदुपष्टम्भक न्याय-वैशेषिकादि दर्शन—उदयन, गङ्गेश, वर्द्धमान, पक्षधर, वाचस्पति मिश्र—आदिहिक प्रणीत सर्वदेश में एखनहुँ समादृत भै रहल अछि। बङ्गीय विद्वान् रघुनाथ, जगदीश आदि एही मिथिला देश सँ विद्यालाभ कै मैथिलहिक निर्म्मित ग्रंथ पर टीका-टिप्पणि कै अपना कें लोक-विख्यात कयलें छथि।

अतएव श्रौत-स्मार्त्त-आगम तीनू कर्मकाण्डक यथावदनुष्ठान ओ लोक में आविष्कार मैथिल विद्वानहिक कयल भेटैछ। ग्रह याग सँ लय कै अश्वमेधान्त कर्म्म-कलाप क कुण्डनिर्म्माण म० म० गोकुलनाथोपाध्याय अपना "कुण्डकादम्बरी" ग्रंथ में कय गेल छथि, जे १ पद्यें कुण्डक मान कहैत पक्षान्तरें हुँनक कन्या गङ्गा में निमग्न बालिका "कादम्बरी" क शोक वर्णन करैछ।

सन्ध्या तर्पण—एकोद्दिष्ट पार्वण—यथा नियम करब मैथिलहिं में पाओल जाइछ। देशान्तरीय तँ कतिपये, से हो कोनो समयविशेषे में कहिओ करैत देखल जाइत छथि। नित्य नैमित्तिक काम्य क ओ परिज्ञान शून्य भेल, सन्ध्या-वन्दनहुँ में बड़े लम्बा संकल्प ओ तर्पणवाक्य में "अस्मत्पिता" "वसुस्वरूप" आदि क वृथा शब्दक प्रयोग करब देशान्तरीय पण्डित—प्रकाण्डहु में देखल जाइछ। जाहि में भगवान् पतञ्जलिक कथन छैन्ह जेः—

मातरि वर्त्तितव्यं पितरि शुश्रूषितव्यं,
नचोच्यते स्वस्यां मातरि स्वस्मिन्पितरीति।'
अभिधशब्दादेवैतद्गम्यते या यस्य माता यो यस्य पितेति।'

एहि सँ अस्मत्—शब्द पित्रादि शब्दक सङ्ग लगाएब देशान्तरीय भ्रम ओ अज्ञानमूलके कहैक थिक। एवंः—

वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः।
प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितॄन् श्राद्धे न तर्पिताः॥
आयुः प्रजां तथाऽरोग्यं स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीतानृणां पितामहाः॥

एहि याज्ञवल्क्यक वचनें पित्रादि तीनि तीनि पुरुषक नामें समर्पित (देल) जलादिक कें हुनका देहान्तर (लोकान्तर) में पहुँचौनहार वसुरुद्रादित्य-नामक (८।११।१२) देवता (जे अश्विनीकुमार दू मिलाय तैंतीस[1] कोटि देवता संख्यात कयल जाइत छथि, जाहि में आश्विनेय दुहू कें वैद्य भेलें श्राद्धकार्य्य (पैतृक-कृत्य) में अधिकार नहिं देल गेलें उक्त ३१ कोटि (देवता) पित्रादिक क अधिष्ठातृ देवता मानल गेल। तत्स्वरूप कोना भेलाह? एवं ततः पर पितृवर्गक अधिष्ठाता "विश्वेदेव" नामक पितृदेवता जे श्राद्धरक्षक[2] भै त्रिपुरुषानन्तर पितृवर्गक भाग कें पहुचौनहार शास्त्र में मानल गेल छथि, तनिकाँ हुनक स्वरूप मानबो भ्रममूलके बुझैक थिक।

एवं पञ्चदेवोपासना जे नहिं कयलें देवलोकहु सँ अधोगति-प्राप्त होएब मार्कण्डेयपुराण में लिखल अछि जे :—

शिवम्भास्करमग्निंच केशवं कौशिकीन्तथा।
मनसाऽनर्चयन्याति देवलोकादधोगतिम्॥

एहि में कौशिकी पदें दुर्गा लेल गेलि छथि। (मनसाऽपि अनर्चयन्) मनहुँ सँ नहिं पूजलें (देवलोकादपि) देवलोकहुँ सँ फिरथि। एहि रूपक एकर व्याख्या निबन्धकार लोकनि कयलें छथि। एकर प्रचुर प्रचार नित्य-नैमित्तिक काम्य कर्म्ममात्र

(१) कोटि शब्द एहि ठाम श्रेणीवाचक बुझल जाइछ।

(२) देवकार्याद्द्विजातीनां पितृकार्यं विशिष्यते। दैवं हि पितृकार्यस्य पूर्वमाप्यायनं श्रुतम्॥ २०३॥ तेषामारक्षभूतन्तु पूर्वं दैवंनियोजयेत्। रक्षांसि हि विलुम्पन्ति श्राद्धमारक्षवर्जितम्॥२०४॥ एवं मनुक (अ० ३) वचन छैन्ह॥

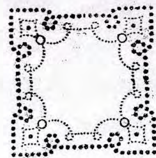


मिथिलहि में सर्वतोभावें देखल जाइछ, अन्यत्र आडम्बराभिरुच कचित्-कदाचित् काम्य कर्म में रहितहुँ ई क्रम दृष्ट-श्रुत नहिं होइछ। एवम् एकमात्र कोनो देवताक पूजा कै नित्यकर्म क निर्वाह देशान्तरीय पण्डित-प्रकाण्डो करैत छथि ।

एहि कर्मकाण्ड क समाज में यथावत्प्रचुर रूप क प्रचार स्थापनार्थ अदम्य प्रयत्न द्वारा बिहार गवर्नमेण्ट सँ पूर्ण अनुरोध कै धर्मसमाज संस्कृत कालेज मुजफ्फरपुर में श्रौत-स्मार्त्त-आगम-कर्मकाण्डक परीक्षा उपाध्यन्ता स्वर्गवासी मिथिलेश रमेश्वरसिंह बहादुर स्थापित करओल ओ तकर अध्यापनार्थ अनेक सहस्र रुपैया स्वयं देल, जे संस्था मिथिलेश क उपक्रान्त वर्त्तमान समय में चलि रहल अछि ।

एहि पूर्वोक्त कार्य क्रमें मिथिलहि काँ सर्वप्रथम एहि समय में उक्त रूपक कार्मकाण्ड सँ घनिष्ट-सम्बन्ध कहल जा सकैछ । देशान्तर काँ एखनहुँ मिथिलाही क आचरण अनुकरणीय भै रहल छैन्ह, जाहि पें श्री दत्तादि कृत 'आह्निक' पूर्णरूपें प्रचरित अछि। तदनुसार आनो आनो कर्मकाण्डग्रंथ 'नित्यकृत्यार्णव' 'नित्यकृत्य रत्नमाला' आदि बृहल्लघु नित्यकर्म-पद्धति तथा अतिप्राचीन वीरेश्वरादिकृत 'देशकर्म-पद्धति' आदि मिथिलादि क सभ देश में पूर्णमान्य भै रहल अछि ।

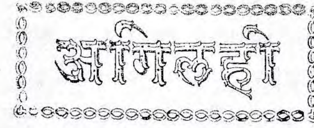
मिथिला में नामतः पूर्व "भट्ट" उपाधि कर्मठ (पूर्वमीमांसक) कैं रहैत भट्टपुरा आदि क ग्राम वर्त्तमान अछि। एकरे अनुकरण अपना नामक आगू 'भट्ट' पद लगाय दक्षिणीय ब्राह्मण अपना कें कर्मठ होएब स्थापित कयलें बुझल जाइत छथि। संप्रति मिथिला क प्रतिदोषदृष्ट्या देखनहार कें रत्नाकर दिशदृकृपात करय चाहैत छैन्ह ।



गीत ।

जय जय मिथिला मङ्गल मूल ।
सुख-सौभाग्य-सरोज-विकासिनि, शसिनि-संकुल-शूल ॥१॥
सुद्धि-विधान-बोध-सम्बोधिनि, संशोधिनि-भ्रम-मूल ॥२॥
उन्नति कल्पलता-परि-पालिनि, जारनि अवनति तूल ॥३॥
'रामचन्द्र' नित मोद-प्रदायिनि पुनि निज जन अनुकूल ॥४॥

प. श्री रामचन्द मिश्र "चन्द्र"
जैत-मधुरा



अगिलही

श्रीमान् कुमार गङ्गानन्द सिंह जी, एम० ए०

[पाश्चात्य साहित्य में जीवन-आख्यान क रूप में लिखित उपन्यास क बड़ आदर अछि। एहि प्रकार क उपन्यास में व्यक्ति विशेषक स्वाभाविक चित्रण स्पष्ट एवं एकमुखी रहैछ। प्रस्तुत लेख एही प्रकारक उपन्यास क एक अंश थिक, जाहि में एक (मैथिल) बालिका क स्वाभाविक चित्रण अछि। आशा अछि कथा-साहित्यक मर्मज्ञ कें ई रुचिकर प्रतीत होएतन्हि । सम्पा०]

एकटा ब्राह्मण छलाह । हुनका एकटा कन्या छलथीन्ह । हुनकर नाँव रहैन्ह चपला । नाँवक अनुरूप गुणो रहैन्ह । बाप--माय जखन आकच्छ भय जाथीन्ह, तखन कहथीन्ह" हय, संच रहह, बड़ि अगिलहि छह"-टोल-पड़ोसक नेना-भुटका हुनका "अगिलही" कहि सम्बोधन करैत रहैन्ह ।

१

एक दिन "अगिलही" भीत लागलि बैसलि छली । लग में बहिन कनेया-पुतरा गढ़ै छलथीन्ह । अपने सोहर गुनगुना क गबैत छलीह। की फुरलैन्ह पैर सँ एक उदुका मारलथीन्ह । हाथक सुइ हुनका बहिनिक आङुर में गड़ि गेलैन्ह। "ओहो हो...." कहैत कनेआ-पुतरा पटकि ओ 'अगिलही' कें मारय दौड़लथीन्ह । "अगिलही" पड़ायल-पड़ायल 'फूलकाकी' क आंगन जा क कोठिक पाछाँ में नुकाय रहलीह । आंगन क टाट लग सँ बहिन फिरि बालु दय दय शोणित बन्द करय लगलीह ।

भोजनक बेर भेलैन्ह। माय पुछारी कयलथीन्ह । बहिन सब हाल कहलथीन्ह । राड़िनि 'फूलकाकी' क आंगन ताकय गेलैन्ह । 'फूलकाकी' कहलथीन्ह—"गै, एम्हर कहाँ आयलि अछि । अबैत तँ देखितियैक नहिं? चल गेल हयतौक ।" माय कें राड़िनि विफल-मनोरथ हयबाक वार्त्ता देलकैन्ह ।

चारू कात खोज होमय लागल । आनसक बस्तु सब तँ पानि भय गेल । कतहु "अगिलही" नहिं भेटलैक । सब कें इहो सन्देह होमय लगलैक जे कतहु कूप अथवा पोखरि में तँ नहिं डूबि गेल! सगरो ताकल गेल । परन्तु कतहु पता नहिं । मुन्हारि सांझ भेलैक । तावत् अगिलही 'फूलकाकी' क आंगन में जे जे होइ छलैक, से सब सुनै छलीह ।

जखन राड़िनि चलि गेलैक, फूलकाकीक आङना क लोक खाय-पीबि लेलकैन्ह, बरतन-बासन माँजि क 'फूलो काकी'क आंगनक राड़िनि अपन आङन गेलि । धिया-पूता दरबाजा पर खेलाय गेलैन्ह, अपनहुँ रामायणक अक्षर ठेकनबैत निद्राभिभूत भेलीह ।

अगिलही पैर मारने-मारने भनसा घर गेलीह । खयबाक किछु नहिं भेटलैन्ह । घोड़ची पर माटिक मटकूड़ सब रहैक; परन्तु ओहू में खैबाक कोनो बस्तु नहिं रहैक। सीक पर दही टांगल त रहैक, परन्तु हुनका पैबाक योग नहिं रहैक। कोनहु तरहें घोड़ची कें घुसकौलैन्ह । मटकूड़ ढनमनाय लगलैक। डर भेलैन्ह जे क्यो आबि क देखि नहिं लेये। हड़बड़ाक चढ़य लगलीह और एक

हाथ सँ दहीक छाँछी खसलैन्ह। परन्तु ओड़ओक पकड़ा टांग टुटलाह छलैक, ओ खसि पड़लैन्ह। सीक पर सँ छाँछियो खसि पड़लैक। अग्रजनमू दही सँ स्नान भय गेलैन्ह। हुनक सौभाग्यवश क्यो उठलैक नहिं। भग्नमनोरथ भय ओ फेर कोठी लग जाय क नुकाय गेलीह। तावत् देह चट चट करय लगलैन्ह। जतबा भेलैन्ह से जीह सँ दही के चटलैन्ह।

सांझ कय जखन राड़िनि आंगन सँ अय-लैन्ह तँ भनसाघरक अवस्था देखि अत्यन्त विस्मित भेलि। ककरो अनुमाने नहिं भेलैक जे के एना कयलक अछि। 'फूलकाकी' आबि क देखलथीन्ह तँ क्रोध तथा चिन्ताक पारावार हुनका किछु नहिं रहलैन्ह। काल्हि ब्राह्मण-भोजन कोना करौतीह, तकर कोनो उपाये नहिं सुझै छलैन्ह। जतबा मोन में अयलैन्ह गरियौलथीन्ह, श्राप देलथीन्ह। जौं जौं 'फूलकाकी'क बजबाक बेग बढ़ल जाइन्ह, तौं तौं 'अगिलही' हतास भेलि जाथि। कोन बाटे पड़ैती, कतय नुकैती, से बुझिये नहिं पड़ैन्ह। कदाचित क्यो कोठी लग नहिं आबे। परन्तु ककरा से फुरतैक।

अगिलहिक अपन आंगन में कन्नारोहट शुरू भेल। बहिन के दस-दस हजार गंजन होमय लगलैन्ह। माय कहलथीन्ह—"बुझले तँ छलहु जे ओ छौंड़ी एहन टोनाहि छौह; तखन किये ओकरा एना कयलह।" बहिन लाख सफाइ देथीन्ह; परन्तु माय के सान्त्वनाक कोनो उपाय नहिं। बापो चिन्तातुर तथा किंकर्तव्य विमूढ़ छलाह। सब भुखले। राड़िनियों मायक संगे नोर बहबय लागलि। ग्लानि सँ गड़ल जाथि बेचारी बहिन।

क्रमशः अन्हार होमय लगलैक। भूखे तँ अगिलहि छटपटाय लगलीह। जखन फूल-काकी भानस करय घर गेलीह, राड़िनि मसाला पीसय में व्यस्त छलैन्ह, आंगन सुन्न रहैक, तखन भीत लागलि लागलि अगिलही चुप्पे-चाप बहिनि लग आबि क पाछू सां सटि गेलीह। बहिन पाछू फिरि क देखलथीन्ह और उत्तेजित भाव सां कहलथीन्ह। "है! कतय छलीह तोहरे ले देखैछी जे की कतेक भय गेल।"

अगिलही कानय लगलीह। माय दौड़ि क अयलथीन्ह, राड़िनि अयलैन्ह, बाप अयलथीन्ह, संग खेलैनिहार नेना-भुटका अयलैन्ह, आंगन तँ भरि गेलैक। हुनक मूड़ी गाड़ि कनबाक स्रोत बन्द नहिं भेलैन्ह। पश्चात् माय फराक लय गेलथीन्ह। कोरा में बैसाय सब बात पुछलथीन्ह। ओ हो गटर-गटर क सब विषय कहलथीन्ह। माय कहलथीन्ह जे "बुझह जेहने कयलह तकरे फल भोगह।" फूलकाकीक आंगन अपना घरक दही पठबा देलथीन्ह। अगिलही के स्नान-भोजन कराय अपना लग सुतौलथीन्हि।

२

अगिलही क मातृक में उपनयन रहैन्ह। गुलाब मामा लेआवन करय अयलथीन्ह। बहिन के कहबे कयलथीन्ह— अगिलहियो के कहलथीन्ह जे हैऽ भायक उपनैन थिकह अबिहऽ। अयबह कि नहिं? अगिलहि ताहि सँ पहिने ककरो उपनयन नहिं देखने छलथीन्ह। पुछलथीन्ह "मामा, उपनयन कोना होइ छैक?

गुलाब मामा—"पहिने उद्योग होइ छैक, मड़बा बनै छैक, बहुत विधि-बाध होइ छैक, भोज-भात होइ छैक, सुपारी बाँटल जाइ छैक, तेल सिन्दुर बिलहल जाइ छैक, बरुआ के सह पड़ै छैक, गुरू जनौ पहिरबै छथीन्ह, गायत्री कान में कहै छथीन्ह, पूजा पाठ होइ छैक, तखन रातिम भयक उपनयन समाप्त होइ छैक।"

अगिलही—उपनयन होइ छैक तँ की होइ छैक?

गु० मा०—लोक ब्राह्मण होइ अछि?

अगिलही—बिन उपनयन भेने लोक की रहैत अछि?

गु० मा०—शूद्र।

अगिलही—जैह मनचनमा अछि?

गु० मा०—हँ।

अ०—'बिनुओं' (अपन भाय दिस सम्बोधन कय क) एखन सैह अछि?

गु० मा०—हँ।

अ०—मनचनमा और बिनू एके बेर ब्राह्मण हयत?

गु० मा०—नै, मनचनमा कोना ब्राह्मण हयत? ओ तँ राड़क बेटा थीक; बिनू के उपनयन हयतैन्ह तखन ब्राह्मण हयताह।

अ०—तँ राड़ ब्राह्मण नहिं होइत अछि।

गु० मा०—नहिं।

अ०—तँ उपनयन सँ पहिने लोक राड़ कोना रहै अछि?

गु० मा०—छूति-छातक विचार उपनयन सँ पहिने नहिं रहै छैक। पछाति भय जाइ छैक।

अ०—से किये?

गु० मा०—ब्राह्मण होइ अछि तें।

अ०—तँ ब्राह्मण मनचनमा क छुइला सां छूअल जायत?

गु० मा०-है, तों बड़ बात के रेघबै छह। नै बुझै छह है! राड़ क छुइल लोक खाइ नहिं अछि पिबै अछि। हँ, खाइतो—अछि सोहारी, अनोन तरकारी, मधुर, दही। भात आदि नहिं, रान्हल वस्तु नहिं।

अ०—से किये?

गु० मा०—से तों नहिं बुझबह, रहह। रे बिकला, ला एक जूम तमाकू दे।

अ०—नै मामा-कहबे करू, सोहारी किये नहिं छुतै छैक, और भात किये?

गु० मा०—है, शास्त्र में सैह लिखने छैक। लोक एहिना करैत अछि।

अ०—मामा, शास्त्र की थिकैक?

गु० मा०—बापरे, ई बड़ी तिलबिखिया छौड़ी अछि। एकर जवाब के दियै-है! वैह जे पंडित पढ़ै अछि।

अ०—पढ़ुआ काका जे गोसाँइ नांव मैं कथिन्ह से शास्त्रे थिकैक।

गु० मा०—हँ?

अ०—और माय जे गोसाँइ नाँव लै अछि।

गु० मा०—हँ?

अ०—तँ माइयो पंडित अछि?

गुलाब मामा क धैर्य्य जाइत रहलैन्ह, कहलथीन्ह। जाह खेलाह ग। बढ़बह तँ अपनहिं सब बुझ-बह। ता बिकला तमाकू चुनाक देलकैन्ह। हाथ में लय क ठोर तीड़लैन जे ओकरा स्थान दी, तावत अगिलही हुनक कोरा पर कूदि क चढ़ि गेलथीन्ह और दाढ़ी पकड़ि क अपना दिस मुँह फिरा देल-थीन्ह। गुलाब मामा अनवधान छलाह। चुट-की क तमाकू नीचां खसि पड़लैन्ह। खिसिया क कहलथिन्ह जे जाह, तों बड़ धूमस करै छह।

आब मारि खयबह !

अगिलही कोरही सँ एक लताड़ मारलथिन्ह और दाढ़ी पकड़िक फेर मुंह घुराक कहलथीन्ह "नै मामा हम नहि जायब।"

गु० मा०—एना करबह तों पिटबौह ।

अ०—गै दाइ, एहन पपियाह चंडाल मामा नै देखने रही। मामा ! अच्छा मारू तँ हाथे काँपय लागत।

गुलाब मामा अपन हँसी नहिं रोकि सकलाह। मुँह लग हाथ बना क 'टीनी नीनी, कहि अगिलही पड़ैलीह—जा क माय क' त गेलीह। माय आदित्य-हृदय पाठ करै छलथीन्ह।

कननमूँह बनाक माय कें कहलथीन्ह—"गै माय देख तँ मामा हमरा मारै छथि।

माय पाठक बीच में छलीह—घूरि क देखल-थीन्ह-परन्तु पाठक क्रम जारिये रहलैन्ह।

माय के उत्तर दैत नहिं देखि देह में सटि क फेरि कहलथीन्ह-देख तँ माय ! मामा कोना कोना करै छथि; मारहून।

माय हाथ सँ ठेलि देलथीन्ह परन्तु पाठक क्रम छुटि गेलैन्ह, आगाँक आखर बिसरि गेलैन्ह।

तमसा क कहलथीन्ह—बड़ घुमसियाहि छह। पाठो नहिं करय देबह ? तों दिक कयने हयबून्ह तँ मारथून्ह नहिं, नीक करै छथून्ह फेर गङ्गाजल लय "नमः श्री सूर्याय" प्रारम्भ कयलैन्ह।

अगिलही फराक जा क मुँह खसा क नोर बहबय लगलीह।

माय कखनहु तुलसीक पीड़ा दिस देखथि, कखनहु सूर्य्य दिस हाथ उठाबथि और कखनहु घुरि क अगिलही दिस—किछु काल में पाठ समाप्त भेलैन्ह। अर्घी सँ सूर्य्य कें जल देलथीन्ह।

उठलीह तँ जिलेबीक एक टुकरी हाथ में नेने अयलीह। अगिलही के देलथीन्ह। अगिलही मुड़ी-गाड़ने ओकरा खोंटय लगलीह।

माय कहलथीन्ह "जाउ मामा कें बजा अनि-औन्ह—पनिपियायि करताह" अगिलही जिलेबी के दांत सँ कतरैत रस चुबबैत दौड़ि क दरबाजा दिसुका असोरा पर जा क जल्दी मँ बाजि, जे—"मामा, चलू माय बजबैत अछि पनिपियायि कर" दरबड़ मारने फेर माय लग चल अयलीह।

गुलाब मामा खड़ाँव खटखटबैत आंगन पहुंच-लाह। बहिन असोराक एक कात पटिया बिछौने रहथीन्ह। दोसर कात पुड़ैनिक पात, पीढ़ी; पानि राखल छलैन्ह। आबि क गुलाब मामा पटिया पर बैसबाक ओरिऔन करै छलाह कि बहिन ई कहि "आउ ने भाइ पिढ़िये पर बैसू। घर चल गेलीह। जा गुलाब मामा पैर धोय पिढ़ी पर बैसथि ता ओ चंगेरा में चूड़ा लेने बहरैलीह। कोंचा लागल अगिलहियो अयलैन्ह। चूड़ा पात में ढारैत अगि-लही के माय कहथीन्ह "जाह—बहिन कें कह ग, जे दही-आम-केरा नेने अबथीन्ह। कनेक ओ सरबा दैह तँ नोन दियैन्ह। कूदि कय अगिलही बिदा भेलीह। पैरक ठेस सरबा में लागि गेलैन्ह। नोन नीचाँ में बहुत खसि पड़लैक। माय 'हां हां' कहितहि रहलथीन्ह। अगिलही दरबड़ मारि पड़ैलीह। ओम्हर माय कहलथीन्ह जे बड़ अपरोजक छह, कोनो काज नहि तोहरा सँ हयतहु।

गुलाब मामा—बिहुसैत कहलथीन्ह "असल अगिलही अछि—कखनहु संच नहि रहैत अछि—

माय उत्तर देलथीन्ह—हं, की कहब भाइ, जँ एहन स्वभाव रहलैह तँ सासुर दाइ कोना बसतीह, से नहि कहि ?

गुलाब मामा—सदै कि एहने रहति ? ज्ञान हयतैक तँ अपनहिं सब चेष्टा भय जयतैक। एखन ऐसे की भेल छैक ? मुदा खिखिया खिखियाक कथा बड़ करैए।

माय—हँ की कहने छलियै कहै छल जे तोहूँ पंडित छैं।

गुलाब मामा—मुस्कुराइत कहलथीन्ह जे—किन्हु जाने नै छोड़ै छलि। पुछै छलि जे कोना उपनयन होइ छैक तँ की होइ छैक। हमरा तँ जबाब दैत दैत प्रलय भय गेल छल। ई जँ पढ़ैत तँ बड़ तीव्र-बुद्धि होइत।

माय—हँ आब तँ लोक सब बेटियो सब कें पढ़बय लागल अछि। फूलक बेटी तँ, जाहि साल बिआह भेलैक ताही साल पढ़ब छोड़लकैक। मुदा लोक बड़ उपहास करै छलै। मनुस ने पढ़ै गुने ? माउगि पढ़ि क की करत ?

गुलाब मामा— नै, कम सँ कम चिठ्ठी पत्नी लिखब तँ माउगियो के जानक चाहियैक।

माय—हँ भाइ, से नहिं जनने बड़ कठिन होइ छैक। जँ फुदुरबाबू नहिं रहितथि तँ हमरा लोकनि कें केहन कठिन होइत ? बौआक हालो चाल, ओना नहिं बुझितँहु।

बहिन ता दही आदि लय क अयलथीन्ह, चूड़ा मिजौंनहि छलाह गुलाबमामा नैवेद्य उत्सर्गि पंच कौर लय भोजन प्रारंभ कयलैन्ह। बाइ काल ओ बजैत नहि रहथि। अगिलही पुनः शनैः शनैः असोरा पर पदार्पण कयलैन्ह। असोरा में पेनी लागल पानि छलैक। ओकरा उठाय खेलाय लगलीह की पानि खसि पड़लैक और टघरि क गुलाब मामा दिस जाय लगलैन्ह। ओ गुँ गुँ कहि गोंगियाय लगलाह। तों माय देखलथीन्ह। झट उठि ओकरा निपबाक प्रयत्न करय लगलीह परन्तु हड़बड़ी में आँचर पात में भीड़ि गेलैन्ह। गुलाब मामा हाथ बारि देलथीन्ह और किछु छराक बाद चूर लय उठि गेलाह। 'माय' अप्रतिभ तथा अवाक् भय गेलीह। कहल-थीन्ह "भाइ दोसर ठाँव कय दैत छी अहाँ तँ भुखले उठल हयब।

गुलाब मामा—नहिं हम तँ उठबे पर रही। परन्तु ई कहि ओ केवल मर्यादैक रक्षा करैत छलाह।

लाख 'माय' आग्रह कयलथीन्ह—गुलाब मामा उठिये गेलाह दोबारा ठाँव पर नहि बैसलाह।

दरबाजा पर आबि जखन गुलाब मामा सुपारी कट कटबैत रहथि तखन अगिलही अय-लीह। कोरा में बैसि पुछलथीन्ह—

"मामा अहाँ बिन खैने उठि किये गेलहुँ"

गुलाब मामा—कहाँ है, खा क तँ उठलहुँ बिन खैने कहाँ उठलहुँ।

अगिलही—नै मामा माय तँ कहै छल जे अहाँक खैक छुति गेल और अहाँ भुखले उठलौं।

गुलाब मामा—किछु नहिं बजलाह।

अगिलही—हँ मामा तँ छुतल कियैक ?

गुलाब मामा—तोहर माय बिन पैर धोऔने छलथून्ह।

अ०—तँ पैर धोऔने नै छुतै छै।

गु० मा०—**नहिं**।

अ०— और की होइ छैक।

गु० मा०—और हयतैक की, किछु नहिं ।

अगिलही खेलाइ लै चल गेलीह–गुलाब मामा गप्प करय लगलाह । माय भानसक ओरिऔन भाइ ले करय लगहीह एनिपियायीक वैह दशा भेल रहैन तकर मोन में क्षोभ छलैन्ह ।

गुलाब मामा मझनी खाय गेलाह । 'माय' खिअनि डोलबै छलथीन्ह 'बहिन' ठाढ़ि छलीह जे जँ कोनो बस्तु घटैन तँ आनथि । 'हाँ हाँ - हाँ हाँ' हुनका लोकनि करितहिं रहलीह अगिलही पैर पर पानि उभिलि आबि क सानल भात सँ हू कौर मुँह में दै गुलाबमामा क कोरा में आबि क बैसि गेलथीन्ह । गुलाब मामा आब की करथु किछु नहिं फुरलैन्ह । मन में कोधो भेलैन्ह परन्तु अगिलहीक सरल भाव देखि हँसियो लगलैन्ह । 'माय' बहिन तँ अगिलही कें गंजन करय लगल-थीन्ह । अगिलही पड़ा गेलीह । गुलाबो मामा उठि गेलाह । मंझनियोंक येह हाल । लाख लोक कहलकैन्ह दोसर बेर खाइले नहिं बैसलाह ।

तेपहरिया में गुलाबमामा जाइले तैयार भेलाह । ताकथि तँ पनहिये नहिं भेटैन । लोक कें पुछलथीन्ह । खवास कें गंजन कयलथीन्ह । ओहो रुष्ट-भाव सँ कहलकैन्ह "एही ठाम सँ छलैक जनैछी जे की भय गेलैक । हम तँ एही ठाम सूतल रही । कुकुर तुकुर अबितैक तँ बुझितियैक नहि ?

एम्हर उम्हर ताकि क हारि बैसल । तावत् ऊदन भाइ कहि उठलथीन्ह, "हाँ हाँ" ई ककर जूता थिकैक- हे अगिलही इनार में जूता दै छुहक । छीः छीः दहक तँ हम बाबू के कहय जाइत छियैन्ह ।" गुलाब मामा क नौकर जा क देखै तँ डोल में जूता क एक पबाइ देने अगिलही ओकरा इनार में देबाक आयोजन कय रहल छथि । ओ पकड़ि क जूता डोल सँ बाहर कय क हुनका आनय लगलैन्ह कि ओ कानय लगलीह । नौकर छोड़ि देलकैन्ह । ओ फूलकाकीक आँगन में जाय नुकैली । दोसर पबाइ पनही इनार में दहाइ छलैल ।

गुलाब मामा पनही ऊपर करबाय खवास के दय बिन पहिरनहिं लेआवन कय क ग्रामक दिस बिदा भेलाह ।

[ई व्यक्ति-चित्र अपूर्ण अछि, मनोरञ्जक प्रतीत भेला पर यथावकास एकर पूर्तिक चेष्टा करब ।—ले०]



मैथिली लिपि

प० श्रीयुत जीवनाथ राय जी, बी० ए०, का० व्या० तीर्थ ।

भारत एक विशाल देश अछि । एहन पैघ देशमें अनेक जाति, भाषा तथा लिपिक अस्तित्व स्वाभाविक थिक । भगवान् बुद्धक समय में चौंसठि लिपिक प्रचार छल । "ललितविस्तर" नामक बौद्ध ग्रन्थ में लिखल अछि ये हुनका चौंसठियो लिपिक शिक्षा देल गेलैन्हि । "वैदेही" लिपि ताहि मध्य एक अछि । पूर्वकालमें मिथिला क नाम "विदेह" छल आओर विदेह क लिपि "वैदेही" कहबैत छल । यखन एहि देशक नाम "मिथिला" प्रसिद्ध भेल तखन ओ लिपि मैथिली आओर यखन "तिरहुत" प्रसिद्ध भेल तखन तिरहुता कहबय लागल ।

एकर वर्ण विन्यासक नियम "कामधेनुतन्त्र" आओर "वर्णोद्धार तन्त्र" में प्रकाशित अछि । अत एव ई लिपि अत्यन्त प्राचीन अछि ताहि में कोनो सन्देह नहिं । एकर प्रचार बङ्गाल आओर आसाम धरि अछि । ओहि दूनू प्रान्तक प्रचलित लिपि मैथिलीहिक बङ्गाली आओर आसामी भेष थिक । इयेह कारण ये वङ्गीय लिपि ओहि प्रान्त में अद्यावधि "तिह्रुता" कहबैत अछि आओर प्राचीन वङ्गाक्षर तथा मिथिलाक्षर मध्य कोनो भेद नहिं उपलब्ध होइत अछि । [देखू रा० ब० श्याम नारायण सिंह एम्० बी० ई०, बी० ए० लिखित अङ्गरेजी ग्रन्थ हिष्ट्री औफ़ तिरहुत, पृ० २०२–३] ।

मैथिली लिपि में लिखित अति प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ मैथिल विद्वान् लोकनिक घर में बहुत अछि । परञ्च कोन कहिया क लिखल थिक एकर निश्चयार्थ अद्यावधि कोनो विशेष प्रयत्न नहिं कयल गेल अछि । कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर अपन मैथि-ली ग्रन्थ वर्णन-रत्नाकर, और "धूर्त समागम" तथा मैथिल कोकिल विद्यापति ठाकुर "श्री मद्भा-गवत" पुस्तक मैथिली लिपि में लिखने छथि । ज्योतिरीश्वर ठाकुर कें भेला ५०० वर्ष सँ अधिक आओर विद्यापतिठाकुर कें ५०० वर्ष थिकैन्हि । विद्यापतिठाकुर—लिखित "श्री मद्भागवत" सम्प्रति दरभङ्गा राज्यक राजनगर-स्थित पुस्तका-लय में सुरक्षित अछि ।

गत अषाढ़ में हमरा राजनगर अयबाक अव-सर भेल । ओतय गेला पर उक्त श्री मद्भागवत देखल और ओकर लिपिक स्वरूप तथा तिथि क विचार कयल* । ओहि में देखल कतेको ठाम एकार चिह्न (े) तथा (ट) वर्तमान बङ्गला सँ कनेको भिन्न नहि । (ङ) नवीन रूपमें अर्थात् सबिन्दु । (व) (ब) में भेद नहिं । व सबिन्दुक आओर अबिन्दुक दूनू प्रकारक । "र" ओ दुइ प्रकारक छिन्नोदर तथा शून्योदर । (ल) दुइ रूपमें । (क्ष) (ष्ट) (ष्ण) क नीचाँ में वकार टकार तथा णकार मात्रा लागल अछि । अकार मध्यकालीन रूप में आओर (श) अति प्राचीन रूप में । (ङ्क) और (ङ्ग) नवीन अशुद्ध

[* वर्ण भेद क स्पष्टीकरण मिथिलाक्षर क टाइप में यथावत् भ सकैत । अत्यन्त खेद अछि जे मैथिली टाइप नहिं उपलब्ध भै सकल । सम्पा०]

रूप में नहि, अर्थात् सानुस्वार नहिं। किन्तु (त्) क स्थान में सर्वत्र वर्तमान रीति क हकार चिह्न सहित हल् अर्थात् अधोरेख व्यञ्जन। (ब) (व) क स्थान में (व्) (व्)। "ॐ" तथा किछु अन्यान्यो अक्षर एवँ ८ क अङ्क किछु विलक्षण। आरम्भ में कैथक स्कन्धक अन्त में लिपिकर्त्ता विद्यापतिक नाम देल परञ्च तिथि नहिं। किन्तु पुस्तकान्त में "शुभमस्तु सर्वर्थगता सन्ध्या ल० सं० ३८९ श्रावण शुदि १५ कुजे रजावनौली ग्रामे श्री विद्यापतेर्लिपिरियमिति" लिखल अछि। ई लेख काल क्रमें मेटा रहल छैक। ई स्थिति देखि प्रायः जखन ई पुस्तक तरौनी ग्राम में छलैक, केओ व्यक्ति अपन मत्यनुसार ओही पन्न में पृथक् कय दुइ ठाम ओतबा लेख अपना हाथें लिखि देने छथिन्ह। परञ्च ओ सर्वर्थगता कें सर्वार्थगता एकठाम लिखने छथि। किन्तु हमरा जनैत ई पद अद्यावधि यथार्थरूपें नहिं पढ़ल गेल अछि, आओर हमहुँ एकर स्वरूपक निश्चय नहिँ कय शकलहुँ। लसं ३८९ के ओ ३०९ पढ़ने छथि। एकरो पढ़बा में अनेक व्यक्ति भ्रम में पड़ल छथि। मैथिल कोकिल विद्यापति नामक ग्रन्थक प्रणेता बाबू व्रजनन्दनसहाय ओकरा ३४९ मानि नेने छथि आओर हुनका अभ्रान्त बूझि 'विद्यापति की पदावली' पुस्तक भूमिका में रामवृक्षशर्मा (बेनीपुरी) सहायजीकें भ्रान्त कहने छथिन्ह। परञ्च ई सभ गोटें भ्रमहिं में पड़ल छथि। लसं ३८९ में ८ क अङ्क मेटा यकाँ गेलैक अछि। तञ केओ ओकरा शून्य मानि नेने छथि। केओ अङ्कलाक ८ यकाँ लिखित रहबाक कारण ओकरा ४ पढ़ने छथि। वास्तव में ओ स्पष्ट ८ थिकैक ई निश्चय मेला पर हम पुस्तकालयाध्यक्ष तथा उपस्थित कतिपय विद्वान् क अनुरोध सँ ओही पुस्तक में एहि बातक संकेत कय देलियैक अछि। यनिका एहि विषयक कुतूहल होइन्ह यथाशीघ्र जाय देखि लेथि। अन्यथा ओ अङ्क आओर अधिक मेटा गेने एहि तथ्य कें स्वीकार करब कठिन भय जयतन्हि।

उक्त लेख में (शुदि) क स्थान में (सुदि) पदक समाधान चिन्तनीय। 'रजावनौली' में रजापद सूचित करैत अछि ये 'उजान' कें उद्यान 'भड़रौनी' कें भङ्गलवनी' तथा 'कोइलख' कें कोकिलाक्ष लिखनिहार अर्वाचीन विद्वान् लोकनि यकाँ विद्यापतिक समयधरि लोक कें अपभ्रंशद्वेष नहि उत्पन्न भेल छलैक।

मैथिली लिपि में देवनागरी लिपि क अपेक्षा अनेक विशेषता छैक। ई अधिक शीघ्रता सँ लिखल जा सकैत अछि। एहि द्वारा प्रायः यावतो ध्वनिक संकेत भय सकैत अछि। इयेह कारण जे एहि प्रान्त में एहि लिपि क एतेक प्रसार भेल। ४०-५० वर्ष पूर्व गाम-घर में देवाक्षर जाननिहार लोक कम भेटैत छल। ये स्थिति सम्प्रति बङ्गाल तथा आसाम में छैक। ओएह ओहि समय में मिथिलहु में रहैक। परञ्च वङ्गाली लोकनि अक्षर क काट कें बदलि कय तथा ओकर काँटा बनबा कय छापा क विचार कय मिथिलाक्षर सँ वङ्गाक्षर कें पृथक् कय लेलैन्हि। मिथिला क लोक मुहँ देखैत बैसल रहल। उचित छलैक जे ओहो मिथिलाक्षर क नवीन रूप वङ्गाक्षर कैं मिथिलाक्षर मानने रहैत अथवा परिवर्तन क विरोधी छल तँ अपना अक्षर क काँटा बनबा कय स्वतन्त्र अस्तित्व रखने रहैत। परञ्च किछु नहिं कयलक। फल ई भेल जे एहि प्रान्तक नवकातुर मुद्रित वस्तु क पढ़बा क प्रेमी भय देवाक्षर क अभ्यास करय लागल। आब तँ मिथिलाक्षर पढ़निहार युवक किछु भेटबो करथि तँ लिखनिहार अकस्माते कतहु।

ई स्थिति देखि लहेरियासराय क मिथिलाक्ष-राङ्कण-प्रबन्धक-समिति मिथिलाक्षर क दुइ प्रकारक काँटा बनबौलक अछि। तथा और एक प्रकार क बनबा कय ओकर अग्रिम भार मैथिली-साहित्य परिषद कें दै देतैक। ओ एकर सुधार तथा प्रचार करिते रहत। यदि आबहुँ मिथिला क लोक अपन संस्कृति क रक्षार्थ प्रयत्नशील होथि तँ मैथिली लिपि कतेको गति सँ बहार भय जा सकैत अछि। अन्यथा ओ मुँह सुनलक तँ सब किछु 'जय गणेश?

※ उक्ति सप्तक ※

(यमक)

प० श्री० श्रीवल्लभ झा व्या० आ० सा० शास्त्री।

१

सुजन मैथिल! मैथिल योग्यता
सुनतके नतके भवने सदा॥
विनय में नयमें छथि एक जे
सुप्रतिभारत भारतवर्ष में॥

२

तनय में नयमें कहु सभ्य हा!
सकृत के कृतके कय सृष्टि में॥
विभव में भव में अछि उच्च तै
अछि विशिष्ट्न शिष्ट्न सर्वथा।

३

भवन में वन में रहितो तथा
भजन जे जन जे करताह ने॥
तनिक की नित की कहियो कहू
हयत जे यत जे छथि देश में॥

४

सुकवि कोकिल कोकिल-काकली
कलित केवल केवल काव्य ने॥
अछि न सम्प्रतियो प्रतियोगिता
करत जे रतजे अछि रूप मैं॥

५

न लखिमा लखि मान करैछ के
उदयने ब्बने छथि की न हा!॥
ककर मण्डन मण्डन सँ मही
अछि विशेष विशेषण संयुता॥

६

प्रवल के वल केवल दीन टा
सहत जे हत जे अछि वस्तु सँ॥
विबुध में बुध में अछि के कहू
हुनि समान समानन सँ कतै॥

७

रुचिर लेखक लेख-कलादि में
कविकलो विकलो नहिं किञ्चितो॥
उचित ई चित ई यय कैं सदा
मम विपक्षक पक्ष करी न हा!॥

———o———

मिथिलाक राजवंश

श्री कुलानन्द दास जी

कोनहु देशक इतिहास बहुत-किछु ओकर राजवंश पर निर्भर रहैछ। इतिहास में सर्वतोऽधिक महत्त्व राजाक—देशशासक क देल गेल अछि। कारण सम्पूर्ण देश क सुव्यवस्था राज्य-शासन पर रहैछ। और ओ शासनसूत्र राजा क हाथ में। अतः राजवंश क उल्लेख सँ मिथिलाक इतिहास क अध्ययन में बहुत किछु सुलभता भेटि सकतैन्हि। किन्तु एकर पूर्व हमरा मिथिला क भौगोलिक एवं ओकर आन्तरिक परिचय देब आवश्यक छल। परन्तु एहि अङ्क में ओहि सभ विषय क उल्लेख तत्तत् शीर्षक में भेल हयत। अतएव दोहराएब उचित नहिं बूझि हम अपना प्रसङ्ग पर अबैत छी।

(१) इक्ष्वाकुवंश—

वैवस्वत मनुक पुत्र इक्ष्वाकु सूर्य्यवंशीय सर्व-प्रथम राजा भेलाह। हुनका १०० पुत्र छलथिन्ह। जाहि में विकुक्षि, निमि एवं दण्ड प्रसिद्ध भेलथिन्ह। विकुक्षिक वंशज रामचन्द्रादि ओ निमिक पुत्र मिथि भेलथिन्ह। तनिका बाद क क्रम निम्नाङ्कित सँ बूझब।

(१) इक्ष्वाकु
(२) निमि
+(३) मिथि (विदेह ओ जनक)
(४) उदावसु
(५) नन्दिवर्द्धन
(६) सुकेतु
(७) देवरात
(८) बृहद्रथ
(९) महावीर्य्य
(१०) सुधृति
(११) धृष्टकेतु
(१२) हर्य्यश्व
(१३) मरु
(१४) प्रसिद्धक
(१५) कृत्तिरथ
(१६) देवमीढ़
(१७) विब्रध वा विबुध
(१८) महाधृति
(१९) कृत्तिरथ
(२०) कृत्तिरोमा
*(२१) स्वर्णरोमा
(२२) ह्रस्वरोमा
(२३) सीरध्वज
(२४) भानुमान
(२५) शतद्युम्न
(२६) शुचि
(२७) उर्जवाहु
(२८) सत्यध्वज
(२९) कुणि
(३०) अञ्जन
(३१) ऋतुजित
(३२) अरिष्टनेमि
(३३) श्रुतायु
(३४) श्रुतायुध
(३५) सुपार्श्व
(३६) सञ्जय
(३७) क्षेमारि
(३८) अनेना
(३९) मीनरथ
(४०) सत्यरथ
(४१) सात्यरथि
(४२) उपगु
(४३) श्रुत
(४४) शाश्वत
(४५) सुधन्वा
(४६) सुभाष
(४७) सुश्रुत
(४८) जय
(४९) विजय
(५०) ऋत
(५१) सुनय
(५२) वीतहव्य
(५३) सञ्जय
(५४) क्षेमाश्व
(५५) धृति
(५६) बहुलाश्व
(५७) कृति

इक्ष्वावंशीय अन्तिम राजा, "कृति" क बाद कोना केमिथिला क राजा भेलाह तकर नीकजँका पता नहि लगैछ।

उपरोक्त ५७ नामावली विष्णुपुराण क (वि० पु० अ० ४–५) थिक। श्री मद्भागवतहु में "कृति" क बाद इक्ष्वाकुवंशीय मिथिला क कोनहु राजा क नाम दृष्टिगोचर नहि होइछ। एहि प्रसंग क एक श्लोक एहि प्रकार क अछि:—

एततेवै मैथिला राजन्नात्मविद्या विशारदाः।
योगेश्वर प्रसादेन द्वन्द्वै र्मुक्ता गृहेष्वपि॥
(भागवत, स्क० ९, अ० १३, श्लोक २७)

महाभारत क समय तक मिथिला क राज इक्ष्वाकुवंशीय राजा क हाथ में छल।

ततः कोषँ समाराय वाहनानि च भूरिशः।
पाण्डुमा मिथिलां गत्वा विदेहाः समरे जिताः॥
(महाभारत—भीष्मपर्व)

अर्थात्—

पाण्डव मिथिला आबि विदेह राज के पराजित कयने छलाह। ओ इहो कथा भेटैछ जे महाभारत में विदेह राज कौरव क तरफ सँ युद्ध कयने छलाह। एहि सँ स्पष्ट अछि जे मिथिला राज्य क समृद्धि महाभारत क समय तक कम नहि भेल छल।

"एक अलर्क" क औरो पतालगैछ। हिनका लोकनिक विवरण मार्कण्डेय पुराण में भेटैछ। एक समय में मिथिला कें पुण्यभूमि मानिई एतय यज्ञ कयने छलाह ताहि में बहुत द्रव्य दान कयने छलाह किन्तु मिथिला क सन्तोषी जनता कयो जखन दान लेब स्वीकार नहिं कैलक तँ दान क सभ द्रव्य कें भूमि में गाड़ि अपने स्वदेश गेलाह।

कैलाश मिश्र कृत "दैवज्ञ-बान्धव" में एक श्लोक एहि प्रकार क अछि—

षष्ठिवर्ष सहस्त्राणि षष्ठि वर्ष शतानिच।
नालर्कादपरो राजा पृथ्वी बुभुजे युवा॥

एहि अर्लक क गाड़ल धन नान्यदेव के प्राप्त भेलैन्हि। किन्तु ई बहुत प्राचीन बात बुझया जाइछ।

(२) नान्यदेव वंश (क्षत्रिय वंश)

नान्यदेव १०८९ में मिथिला-राज्यारूढ़ भेलाह। नेपालतराई क दोस्तिया प्रगन्ना में सिमरांवगढ़ नान्यदेवहिं क कीर्त्ति थिक। उक्त गढ़ में एक शिलालेख एहि प्रकार भेटैछ:—

"नन्देन्दुबिन्दु विधु सम्मित शाकवर्षे
तच्छ्रावणे सितदले मुनिसिद्धितिथ्याम्।
स्वातीशनैश्चरदिने करिवैरिलग्ने।
श्री नान्यदेवनृपतिर्विदधीत वास्तुम्॥"

अर्थात्—१०१९ शाके वा १०९७ ई०, सावोन मास सप्तमी तिथि, स्वाति नक्षत्र शनि दिन सिंह लग्न में एहि गढ़ में वास्तु लेलन्हि। वर्त्तमान कालहु में ओहि गढ़ी क भग्नावशेष अछिये।

× वाल्मीकीय रामायणक बालकाण्डक ७१ सर्गक धारिम श्लोक अछि :—
तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनको मिथि पुत्रकः। प्रथमोजनको राजा जनकादप्युदावसुः॥
अर्थात्—मिथिक पुत्र जनक ओ जनकक पुत्र उदावसु भेलाह।
* ततः सीरध्वजो यज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम्। सीता सीराग्रतोजाता तस्मात्सीरध्वजः स्मृतः॥
(श्री मद्भागवत, स्क० ९ अ० १३ श्लोक १८)
अर्थात् सीरध्वज राजयज्ञक हेतु पृथ्वी जोति रहल छलाह, ताहि सँ सीताक जन्म भेलन्हि। सीरध्वज जाहिठाम पृथ्वी जोतैत छलाह से स्थान एखनहुँ सीतामढ़ी सँ डेढ़ कोस पश्चिम पुनौरा नाम सँ प्रसिद्ध अछि। ओ जाहि ठाम सीताजी राखल गेलिह से स्थान सीतामढ़ी (मढ़ी-कुटी) नाम सँ विख्यात अछि ओ एहिठाम सीताजी क प्राचीन विशाल मन्दिर एखनहुँ विद्यमान अछि।

ई छलन्हि हुनक प्रथम वासस्थान। दोसर निवास-स्थान ओ राजधानी नानपुर * में बनबौलन्हि।

एहि वंशक ६ राजा भेलाह ओ तकरा बाद एहिवंश क लोप भय गेल।

१। नान्यदेव—(१०८९—
+२। गङ्गदेव—(११२५—
३। नरसिंहदेव—(११३९—
४। रामसिंहदेव—(११६१—
×५। शक्रसिंहदेव—(१२८३—
६। हरिसिंहदेव—(१२९५-१३२६)

एहि वंशक राजा केवल २३७ वर्ष तक राज्य कयलन्हि। मुसलमान सूबेदार-द्वारा पराजित भय हरिसिंहदेव अपन राज्य छोड़ि पर्वतवासी भेलाह। एहि प्रसंगमें एक श्लोक एहि प्रकार क भेटैछ।

वस्वब्धि बाहुशशि सम्मित शाक वर्षे।
पौषस्य शुक्ल दशमी क्षिति सूनुवारे॥
त्यक्त्वा सुपट्टनपुरीं हरिसिंह देवो।
दुर्दैव दर्शित पथो गिरिमाविवेश॥

अर्थात्—१२४८ शाके (१३२६ ई०) क पूस सुदि दशमी मंगल दिन हरिसिंह देव ÷ सुपट्टन-पुर † क त्याग कय पर्वतवासी भेलाह।

ओही वर्ष सँ मिथिलापर मुसलमानक अधिकार मानक पड़ल। तिरहुत कें एक सूबाक रूप देल गेल। ओ अहमद खाँ एकर शासनकर्त्ता बनाओल गेलाह।

मुसलमान राज क विश्रृङ्खलता सँ बड़े दुःखी भय सन १३४४ ई० में कामेश्वरझा, ‡ तिरहुत क पट्टा अपना नामे लिखाओल। तैं १३२७ ई० सँ १३४३ ई० तक मुसलमानहिंक हाथ में तिरहुतक शासन भार बुझैक चाही। मुसलमान—एतबा कालाभ्यन्तर राजाश्रय तिरहुत क शासन नहिं कयलन्हि तैं एहि १७ वर्ष क राजा क उल्लेखनहिं कैल।

कामेश्वर झा तिरहुत क राज क पट्टा अपना नामे लिखाय १३४५ ई० में अपना पुत्र भोगेश्वर झा कें देल जे पश्चात् भवसिंह नाम सँ प्रसिद्ध भेलाह।

एहि वंश में निम्नाङ्कित राजा भेलाह।

(३) कामेश्वर झा–वंश—

(१) कामेश्वर झा (१३४४–)
(२) भवसिंह
(३) देवसिंह
(४) १ शिवसिंह
(५) महारानी लखिमा देवी

* नानपुर, सीतामढ़ी सँ ९ कोस पूर्व ओ बी० एन० डब्ल्यू रेलवे क पुपरी स्टेशन सँ १॥ कोस दक्षिण अछि। एहि ठाम नान्यदेव क मन्दिरो छन्हि।

+ दरभंगा में, गंगासागर पोखरि हिनके खुनाओल थिक।

× आनन्दबाग सँ पश्चिम पोखरि जे देखैत छी से हिनके खुनाओल थिक। एकर नाम 'शर्क दीर्घिका' क अपभ्रंश आब सुक्खी दिग्घी' सुनतहिं छी।

÷ अपना देश में "पंजीप्रबन्ध" हिनके बनबाओल थिक।

† सुपट्टनपुर—शाही पटना, समस्तीपुरक प्रान्त में कतहुँ अछि।

‡ कामेश्वर झा—हरिसिंह देवक राजपण्डित मैथिल ब्राह्मण छलाह। कतोक व्यक्ति क कहब छन्हि जे हरिसिंह देव जखन राज त्यागकयलन्हि तखने कामेश्वर झा क नामें राज लिखि देलथिन्ह जे किछु दिनक उपरान्त हुनका दखल में अयलन्हि।



मिथिलेशः सहानुजः

Raj Press Darbhanga

(६) पद्मसिंह

(७) महारानी[2] विश्वाश देवी

(८) दर्प नारायण

(९) धीर नारायण

(१०) हरिनारायण भैरव[3] सिंह

(११) रूपनारायण रामभद्र

(१२) कंशनारायण लक्ष्मीनाथ (—१५४८)

तकरा बाद कंशनारायणक प्रधान कर्म्मचारी मैथिल कायस्थ "मजुमदार" क हाथ में राज्य आयल जे १५४९ सँ १५५० तक राज्य कयलन्हि ।

४—मजुमदार (१५४९-१५५०)

मजुमदारक बाद १ वर्ष मजलीश खाँ क हाथ में राज्य रहल ।

५—मजलीश[4] खाँ (१५५१)

मजलीश खाँ क बाद बिहार क राज्य राजपूत वंश क हाथ में आयल। एहि वंश क निम्नाङ्कित राजा भेलाह ।

(६)—बिहार राजपूत वंश—

(१) वीरबल (१५५२—)

(२) उन्माद सिंह

(३) खड्ग सिंह

(४) कौशेश्वर सिंह

(५) मन्मथ सिंह (—१५५६)

ई लोकनि केवल नाम मात्रैक राजा छलाह । शासनक भार पूर्ण रूपें मुसलमानहिं क हाथ में छल ।

वर्तमान दरभङ्गा—राजवंश

(पूर्वकथा)

सम्राट् अकबरक दरबार में एक बड़े विद्वान मुल्ला[5] छलाह, जनिका संग शास्त्रार्थ में केओ पण्डित उपस्थित नहिं भय सकलाह । वीरबल कें एकर बड़ दुःख भेलन्हि जे हिन्दू में मुसलमान क समता करबाक शक्ति नहिं। एक दिन प्रसङ्गवश

---

१ ई विद्यापति ठाकुर कें बिशफी गाम देने छलथिन्ह । हिनक खुनाओल घोड़दौड़ पोखरि राघोपुर डेउढ़ी सँ पूब तथा उक्त पोखरिक पश्चिम हिनक बनबाओल गढ़ क भग्नावशेष एखनहुँ वर्त्तमान अछि । ई सभ राघोपुर क बाबूसाहेब लोकनिक अधिकार में छन्हि ।

२ हिनक बसाओल "विशौल" गाम पाया कात में वर्त्तमान अछि ।

३ हिनक खुनाओल कतोक पोखरि में पंडौल क जरहटिया पोखरि बड़ पैत्र अछि । एकर पनिस्राव अनुमानतः १००० बीघा कहल जाइछ । एहि पोखरिक यज्ञमें १४०० केवल दार्शनिक निमंत्रित छलाह ओ पक्षधर मिश्र आचार्य्य छलथिन्ह । यज्ञकार्य्य समाप्त भेलापर भैरव सिंह आचार्य्य कें राज्य देमय चाहल; किन्तु विद्याव्यसन एवं हरिचिंतन में बाधक बुझि ओ राज्य ग्रहण नहिं कैल । एहि यज्ञ में, सुनैतछी जे लङ्काधिपति विभीषणो निमंत्रित भय आयल छलाह ओ पोखरि क हेतु पाथर क जाठियो ओ अपना संगहिं अनने छलाह; किन्तु जन साधारण कें जखन ई विषय बुझबा योग्य भय गेलैक जे विभीषण अयलाह अछि से बूझि विभीषण पाथरक जाठि उक्त पोखरि में फेंकि अपने लङ्का प्रस्थान कयलन्हि । एहि कारणें ओहि पोखरि क जाठि अद्यावधि टेढ़े अछि ।

४ ई मैथिल ब्राह्मण छलाह जनिक वंशक एखनहुँ तक खाँ कहबैत छथिन्ह ।

५ मुसलमान लोकनि अपना जातिक पण्डित कें "मुल्ला" कहैत छथि ।

सम्राट् में इतलाय कयलन्हि जे—'गाढ़ा[1] में म० म० श्री महेश ठाकुर नाम के एक मैथिल पण्डित हैं। वे अगर बुलाये जायँ तो इस मुल्ले को परास्त कर सकते हैं।' सम्राट् आज्ञा देल—'बुलाओ, अगर वह मुल्ला को परास्त करेगा तो उसे तिरहुत का राज इनाम दूंगा।' वीरबल बहुत खुशी भेलाह। शीघ्रे हिनका नाम सँ शाही हुक्मनामा लिखल गेल। म० म० महेश ठाकुर शाही हुकुमनामा पाबि रघुनन्दन[2] झा तथा एक खवास क संग दिल्ली प्रस्थान कयल। हिनका दिल्ली पहुँचैत ओ मुल्ला हिनक प्रकाण्ड-पाण्डित्यक भय सँ कतहु नुकाय रहल। किछु दिन बाद ओ कोनो तरहें शास्त्रार्थ क हेतु राजी कराओल गेल। दु दिन क शास्त्रार्थ सँ फ़ैसल नहिं भेल, तेसर दिन मुल्ला निरुत्तर भय गेल। बस, तिरहुतक राज्य प्रदान कयल गेल।

राजवंश

(१) म० म० महेश ठाकुर (१५५७ ई०),६६५फसली
(२) म० म० गोपाल ठाकुर (१५६८)
(३) म० म० हेमाङ्गद ठाकुर (१५७१)
(४) म० म० अच्युत ठाकुर (१५७३)
(५) म० म० परमानन्द ठाकुर (१५७३)
(६) म० म० शुभङ्कर ठाकुर (१५८३)
(७) म० म० पुरुषोत्तम ठाकुर (१६२१)
(८) म० म० नारायण ठाकुर (१६२५)
(९) म० म० सुन्दर ठाकुर (१६४३)
(१०) म० म० महिनाथ ठाकुर (१६७०)
(११) म० म० नरपति ठाकुर (१६९२)
(१२) राजा राघव सिंह बहादुर (१७०३)
(१३) राजा विष्णु सिंह बहादुर (१७३९)
(१४) राजा नरेन्द्र सिंह बहादुर (१७४४)
(१५) राजा प्रताप सिंह बहादुर (१७६०)
(१६) राजा माधव सिंह बहादुर (१७७५)
(१७) महाराज छत्र सिंह बहादुर (१८०८)
(१८) महाराज रुद्र सिंह बहादुर (१८३८)
(१९) महाराज महेश्वर सिंह बहादुर (१८४६)
कोर्ट्स ऑफ वार्ड्स (१८६०)
(२०) महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर (१८८०)
SIR, KT, K. C. I. E., G. C. I. E.,
(२१) महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह बहादुर (१८९८)
SIR, KT, K C. I. E., K. B. E. D. Litt.
(२२) महाराजाधिराज श्री कामेश्वर सिंह बहादुर
K. C. I. E. (१९२९)

संक्षिप्त इतिहास—

१. म. म. महेश ठाकुर (१८५७)

ओलीयवंश प्रवर्त्तक गङ्गौली सं गङ्गाधर झा क वंश में चन्द्रपति ठाकुर भेलाह। हिनक चारि बालक में एक म० म० महेश ठाकुर छलथीन्ह। 'होनहार बिरवान के, होत चीकने पात' क चरितार्थ हिनका बाल्यकालहिं सँ लक्षित होमय लागल। जकर फलस्वरूप ई बड़े प्रकाण्ड विद्वान एवं मिथिलाक राजा भेलाह। दिल्ली सँ जखन ई स्वदेश फिरैत छलाह, दरभङ्गा क समीप अगत्या अँटकय पड़लन्हि जे एखनहुँ 'महेश पट्टी' नाम सँ प्रसिद्ध अछि। ओतय किछु दिन रहि भोर गेलाह। मिथिला निवासी ई शुभ सम्वाद सुनि, जे म० म० महेश ठाकुर शास्त्रार्थ में मिथिलाक राज्य प्राप्त कयने आबि रहल छथि, बड़े आनन्द भेल ओ हिनक स्वागत कय राजा मानल।

ई अपना समय में अपना राज्य में पण्डित परीक्षा आरम्भ कैल, जाहि में परीक्षोत्तीर्ण भेला पर पण्डित लोकनि कें राज सँ धोती देल जाइन्ह। जे लब्ध-धौतवस्त्र रहथि, तनिक सर्वत्र सम्मान होइन्ह। ई परीक्षा एखनहुँ तक दरभङ्गा राज्य में चल अबैत अछि।

हिनका ४ विवाह छलन्हि, जाहि में एक विवाहक सन्तान गोपाल[1] ठाकुर, अच्युत ठाकुर ओ परमानन्द ठाकुर तथा दोसर तेसर विवाह में एक एक कन्या ओ अन्तिम विवाह में शुभङ्कर ठाकुर क जन्म भेलन्हि।

अपने १२ वर्ष समुचित सुप्रबन्धें राज्य चलाय १५६८ ई० में अपन द्वितीय पुत्र गोपाल ठाकुर कें राज्यभार समर्पित कय अपने काशी जाय अन्तिम समय श्री १०८ विश्वनाथ क चरण में बितबय लगलाह। अन्त में 'काशी मरणान्मुक्तिः' प्राप्त कैल।

हिनक बनाओल 'अकबर नामाक प्रतिलिपि सुनल अछि जे दरभंगा राज-लाइब्रेरी में अछि।

२. म० म० गोपाल[2] ठाकुर (१५६८—

ई बड़ धर्मात्मा भेलाह। बहुत थोड़ दिन राज्य कय अपन पुत्र हेमाङ्गद ठाकुर कें राज्यभार दय, हरिगुण गान में समय बितबय लगलाह। कतोक व्यक्ति क ईहो कहब छन्हि जे पिताक जीवितावस्थहिं सँ ई राज्य करैत छलाह। जनता हिनकहिं 'राजा साहेब' कहैत छल।

३. म० म० हेमाङ्गद ठाकुर (१५७१—

ई ज्योतिष शास्त्रमें बड़े प्रकाण्ड विद्वान् छलाह। हिनका समय में शाही कर बहुत दिनुक बाँकी छलैक। शाही हुक्मनामा अयलन्हि जे कुल बाँकी कर शीघ्र आदाय करथि। किन्तु समय पर नहि आदाय होएबाक कारण दिल्ली आनल गेलाह। किंवदन्ती अछि जे कारागारहि में ज्योतिष क एक ग्रन्थ बनबय लगलाह। कारागारक पहरूदार हिनका सदत गणना में मग्न देखि अनुभव कयलक जे ई बताह भय गेलाह। एक दिन अकबर क ओहि ठाम ई समाचार पहुँचाओल गेल। सम्राट् स्वयं आबि देखल ओ प्रश्न कैल—'क्या करता है?

[1] राजकुमारी दुर्गावती क पैतृक राज्य क नाम "गाढ़ा" (बस्तर राज्य) छल ओ दुर्गावती हिनक शिष्या छलथिन्ह। अतएव म० म० महेश ठाकुर किछु दिन पूर्व सँ ओतहि छलाह।

[2] रघुनन्दन झा हुनक एक विश्वासपात्र योग्य शिष्य छलथिन्ह। ताही दिन सँ हिनका "राय" क पद्वी भेटल। हिनक घर भौर—प्रगन्नान्तर्गत रामपुर गाम में छलन्हि। हिनक वंशज अखनहुँ धरि राय कहबैत छथि।

[1] गोपाल ठाकुर सँ ज्येष्ठ एक औरो भाइ छलथिन्ह, जे बाल्यकालहिं में स्वर्गगामी भेलथिन्ह।

[2] जखन दिल्ली क कारागार में रहथि, तखने निश्चय कयलन्हि जे राज्य ग्रहण करबाक ई कुफल थिक तैं स्वदेश जइतहि राज्य क अवश्य त्याग करब अन्यथा सभ दिन राज्य क झंझट में पड़ल रहला सँ ने विद्या व्यवसाय भय सकत, ने परलोक चिन्तन। अतः दिल्ली सँ स्वदेश अयला पर पैतृक--राज्य हेमाङ्गद ठाकुर पुनः पिता कें दय अपने विद्याव्यवसाय में लागि गेलाह।



म० म० हेमाङ्गद ठाकुर उत्तर देल—'ज्योतिष की गणना करता हूँ । जहाँपनाह !'

अगर ज्योतिषी है तो बताओ गहन कब लगेगा ?

हे० ठा०—भादव कृष्ण अमावस में।

अक०-इसे छोड़ दो।

हे० ठा० कारागार सँ मुक्त भेलाह । अकबर कहथिन्ह जे—'अगर उस रोज गहन लगेगा तो सातवर्ष का अटका हुआ ७०००००) रुपैया माफ करदेंगे।' कारागार सँ मुक्त भय हेमाङ्गद ठाकुर यमुना जी में जाय स्नान कयलन्हि, ओ अपन इष्टदेवता क प्रार्थना कयलन्हि जे यदि ओहि दिन ग्रहण लागत तँ स्वदेश गेला पर हम अपना राज्य में चौठचन्द्र[1] क पूजा चलायब ।

ठीक उक्त समय पर ग्रहण लागल । बादशाह बड़े प्रसन्न भय कुल बाँकी कर माफ कय नाना प्रकारक वस्तु बिदाइ दय स्वदेश कँ बिदा कैलथिन्ह । स्वदेश अयला पर अपना राज्य भरिक प्रमुख व्यक्ति कँ बजाय चौठचन्द्रक पूजा करबाक हेतु सबहिं सँ कहल । जनता आनन्दपूर्वक स्वीकार कयलक, जे एखनहुँ मिथिला में घर घर होइतहिं अछि ।

४ म० म० अच्युत ठाकुर (१५७३—

राज्य भारक प्रति पुत्रक अनिच्छा देखि म० म० गोपाल ठाकुर कें बड़े दुःख भेलन्हि । पहिने तँ हेमाङ्गद ठाकुर कें राज्यभार पुनः ग्रहण करबाक हेतु बहुत बुझौलथिन्ह, किन्तु जखन ओ कोनो तरहें राजी नहिं भेलथिन्ह, अपन कनिष्ठ भाइ म० म० अच्युत ठाकुर कें राज्य दय अपने परमार्थ-चिन्तन में लगलाह । म० म० अच्युत ठाकुर किछु दिन राज्य चलाय वर्षाभ्यन्तरहिं महाप्रस्थान कयलन्हि ।

५. म० म० राजर्षि[2] परमानन्द ठाकुर (१५७३-

म० म० परमानन्द ठाकुर अपना ज्येष्ठ भाइ सँ राज्य प्राप्त कैल ओ कथंकथमपि १० वर्ष तक सुचारु रूपें तकर निर्वाहो कैल । अन्ततोगत्वा इहो अपन कनिष्ठ वैमात्रेय शुभङ्कर ठाकुर कैं विवाहे काल राज्य समर्पित कय अपने हरिगुण गान में समय बितबय लगलाह ।

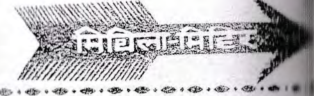
६. म० म० शुभङ्कर ठाकुर (१५८३—

यद्यपि परमानन्द ठाकुर हिनका विवाहहिं काल में मिथिला क राज्य प्रदान कैल किन्तु नावालिग रहबाक कारणें राज्यभार यथार्थतः परमानन्दठाकुरहिंक हाथ में छलन्हि । शुभङ्कर ठाकुर बड़े पराक्रमी, प्रकाण्ड पण्डित तथा दयालु छलाह । हिनक लिखल कतोक पुस्तक में 'तिथि निर्णय' एखनहुं दृष्टिगोचर होइछ । और में अपन दयाद द्वारा किछु अपमानित[3] भय अपन

1 चौठचन्द्र क पूजा म० म० महेश ठाकुर क समय सँ प्रचलित अछि ई दृढ़ जनश्रुति अछि । —सम्पा०]

२ म० म० परमानन्द ठाकुर राजर्षि कहबैत छलाह । पञ्जिकार क पाँजि सँ एहि बातक पता लगैछः—
'महेश सुता रामचन्द्र—गोपाल—अच्युत—राजर्षि परमानन्दाः ।'

३ म० म० महेश ठाकुर चारिम विवाह राजग्राम क रत्नपति झा क कन्या सँ कयने छलाह, जाहि सँ म० म० शुभङ्कर ठाकुर क जन्म भेलन्हि । दायाद लोकनि ई कहि हिनक किछु तिरस्कर करथिन्ह जे पञ्चबारि पारक ब्राह्मण क दौहित्र थिकाह ।



रहबाक स्थान दरभङ्गाक समीपें, सूबेदार सँ आज्ञा लय, 'रत्नोपट्टी' में बनबौलन्हि ओ नाम राखल ओकर "शुभङ्करपुर" जे एखनहुँ ओही नाम सँ प्रसिद्ध अछि। स्वयं बहुत दिन तक मिथिला राज्यक उपभोग कय १६२१ ई० में अपन जेष्ठ बालक म० म० पुरुषोत्तम ठाकुर कें राज्य दय अपने शान्ति प्राप्त कैल ।

७ म० म० पुरुषोत्तम ठाकुर (१६२१—

म० म० पुरुषोत्तम ठाकुर अपना पिता सँ राज्य पाओल । ई अधिक काल भौरहि में रहैत छलाह । दरभंगा सँ पश्चिम हिनक बसाओल एक गाँव अछि जे 'पुरुषोत्तमपुर चतरिया' कहबैछ । ई मिर्जाक संग युद्ध में मारल[1] गेलाह ।

८ म० म० नारायण ठाकुर (१६२५—

म० म० नारायण ठाकुर बड़े शुद्ध प्रकृतिक मनुष्य तथा नाम मात्रेक राजा छलाह । राज्य भार पूर्ण रूपें म० म० सुन्दर ठाकुरहिंक हाथ में छलन्हि । ई म० म० पुरुषोत्तमठाकुरक कनिष्ठ भाइ छलथिन्ह ।

९ म० म० सुन्दर ठाकुर (१६४३—

ई बड़े उदार, योद्धा एवं गुणग्राही छलाह । दरभंगा सँ दक्षिण जे 'सुन्दरपुर' गाँव अछि, हिनके बसाओल थिक । झंझारपुरक समीप अदलपु[illegible] 'सुन्दरसागर' हिनके कीर्त्ति थिक । ई नारा[illegible] ठाकुरक भाई छलथिन्ह ।

१० म० म० महिनाथ ठाकुर (१६७०—

हिनका समय में उल्लेखनीय कोनो [illegible] घटना नहिं भेल ।

११ म० म० नरपति ठाकुर (१६९२—

म० म० महिनाथ ठाकुर कें कोनो [illegible] नहिं रहबाक कारणे म० म० नरपति ठाकुर [illegible] ज्येष्ठ भाई सँ मिथिलाक राज्य पाओल । [illegible] विजयक[2] बाद ई औरङ्गजेब बादशाहक बड़े [illegible] भाजन बनल रहलाह । ई बड़े काव्य-प्रेमी [illegible] राजोपयुक्त सभ गुण सँ सम्पन्न छलाह । [illegible] धर्म्म-पत्नी "उर्वशी देवी"क एक सुचि[illegible] पोखरि रहिका गाँव में खुनाओल छन्हि; [illegible] पश्चिम मोहाड़ पर 'उर्वशी नाथ' महादेवक [illegible] अद्यपर्य्यन्त विद्यमान अछि ।

१२ राजा राघवसिंह बहादुर (१७०३—

पिताक स्वर्गवास भेला पर राजा राघव [illegible] बहादुर मिथिलेश भेलाह । ई बड़े वीर, प्रता[illegible] राजनीति तथा कुशल धर्म्मनिष्ठ व्यक्ति छलाह ।

१ जाहिठाम युद्ध में ई महाप्रयाण कयने छलाह, ठीक ताहीठाम एक भगवती क स्थापना कराओल गेल जे दरभंगा [illegible] "किलाघाटक भगवती" क नामे प्रसिद्ध छथि ।

२ मोरङ्ग क राजा, औरङ्गजेब सँ बगावत कयने छलाह जाहि में म० म० महिनाथ ठाकुरक आदेशें इहो [illegible] छलाह ओ विजयी भेलाह । ताहि दिन सँ ई औरङ्गजेब क कृपा--भाजन बनल रहलाह । हिनका राज्यक उपा[illegible] सेहो प्रदान होयबाक छलन्हि । जाहि में मुर्शिदावाद जाय पड़ितन्हि किन्तु "अङ्ग वङ्ग कलिंगेषु सौरा[illegible] मगधं तथा । तीर्थ यात्रां विना गत्वा पुनः संस्कार मर्हति ॥" एहि वाक्यें मुर्शिदावाद (बंगाल) आयब निषि[illegible] जानि नहिं गेलाह ।

मुर्शिदाबादक नवाब द्वारा राजाक उपाधि[1] एवं सिंहान्त नाम प्राप्त कयलन्हि। ओ एहि शर्त पर 'खुदसर' बनाओल गेलाह जे युद्ध उपस्थित भेला पर ससैन्य बादशाहक सहायता कैल करी। किन्तु नारायणठाकुरक प्रपौत्र एकनाथ ठाकुर हिनका सँ वैर कय नवाब तक ई सम्वाद पठौलन्हि जे जाहि तिरहुत कें एक लाख रुपैया में ठीका लगौने छथि, तकर आमदनी एखन सातगुण बढ़ि गेलैक अछि। से सुनि नवाब खुदसरी[2] लय लेलकन्हि। हिनका समय में राज्यक ठाटबाट में अनेक परिवर्त्तन भेल। मंत्री[3], मुद्राहस्तक, पत्र प्रवेशक ओ कराहारक भिन्न औरो कतोक पद योग्यतानुसार नौकरान कें देल गेलन्हि ओ कार्य्यीक विभाजन कैल गेल। अन्यो अनेको प्रकारें राज्य प्रबन्ध सुसंगठित कैल गेल।

१३ राजा विष्णु सिंह बहादुर (१७३९—

पिता सँ राज्य प्राप्त कय राजा विष्णु सिंह बहादुर बहुत थोड़ दिन राज्य भारक संरक्षण कय अपन सोदर नरेन्द्र सिंह कें राज्य रक्षार्थ राखि स्वयं जनकपुरक यात्रा कयलन्हि किन्तु रास्ता में "कल्याणपुर" नामक गाँव में हिनक मृत्यु भेलन्हि[4]।

१४ राजा नरेन्द्र सिंह बहादुर (१७४४—

ई बड़े पराक्रमी एवं शूरवीर छलाह। अपना समय में ई ४ लड़ाई लड़लाह ओ चारू में विजय प्राप्त कयलन्हि। लड़ाईक नाम निम्नाङ्कित अछि:—

[१] कन्दर्पी घाट
[२] बनौली
[३] बेतिया[5]
[४] काबुल

पुत्राभावें सदत उद्विग्न रहबाक कारणें किछु दिन ई मधुबनी ओ किछु दिन राघवपुर जाय स्थान परिवर्त्तन कयलन्हि; किन्तु सफलता नहिं पाबि पुनः भौड़ा गढ़ी में रहय लगलाह। राँटी में एक पोखरि खुनाओल जाइत छल। राजा साहेब पोखरि देखबाक हेतु गेलाह। सवारी छलन्हि घोड़ा। सुनैत छी जे ओही घोड़ा सँ खसबाक कारणें बड़ चोट लगलन्हि। एहि दर्द सँ किछु कालोपरान्त महाप्रयाण कयलन्हि।

१ वङ्ग क यात्रा नहि कय जगन्नाथ क यात्रा कयलन्हि ओ फिरती काल मुर्शिदाबाद जाय नवाब क भेंट कयलथिन्ह। नवाब बड़े आदरपूर्वक आतिथ्य कयलथिन्ह ओ चलबाकाल कतेक प्रकार क वस्तु विदाइ ओ राजाक उपाधि देलथिन्ह।

२ कतोक व्यक्ति कहैत छथि जे खुदसरी राजा प्रताप सिंह बहादुर क समय में वापस लय लेल गेलन्हि, ताहि सँ पूर्व तक जतेक राजा भेलाह से सभ ओकर उपभोग कयलन्हि.। एहि प्रसंगक ठाम ठाम इहो लेख भेटैछ जे नवाब महब्बतजंग कें जखन एकनाथ ठाकुर संवाद देने छलथिन्ह, ओ हिनका सँ युद्ध कयलक ओ हिनका परास्त कय कैद कयने छल; किन्तु कोनो तरहें कारागार सँ बाहर भय नवाब क पुनः कृपाभाजन बनलाह।

३ मुद्राहस्तक—खजाञ्ची। पत्र प्रवेशक—हुजुर नवीश—पेशकार। कराहार—तहसीलदार।

४ ओही दिन सँ सम्भव थिक जे खड़ौरे-परिवार में जनकपुर जायब अमंगल बुझना जाइछ।

५ एहि में हिनका ठेहुन में भौंक पड़ि गेलन्हि जे मृत्यु पर्य्यन्त रहबे कयलन्हि।

(१५) राजा प्रतापसिंह बहादुर (१७६०)

राजा प्रताप सिंह बहादुर एकनाथ ठाकुर क बालक तथा नरेन्द्र सिंह बहादुरक भातिज (दूरस्थ) छलथिन्ह। नरेन्द्र सिंह कें पुत्र नहिं रहबाक कारणे हिनकहिं राजा बनाओल। ई बड़े सुन्दर[1] प्रतापी तथा दानी में तँ अग्रगण्ये छलाह। हिनका समय में कतोक कें ब्रह्मोत्तर, कतोक कें खबोत्तर ओ कतोक कें पदोत्तर क अलावे औरो अनेको-तरह भूमि दान भेल छल। हिनका सँ ५)-१०) बीघा जमीन वा १०००)-५००) रुपया लय लेब सुलभ व्यापार छल। एहि सभ कारणे राज्य पर उत्तरोत्तर ऋण बढ़ले गेल तथा राज्यक नियमित आमदनीअहुँ बहुत कम भय गेलैन्ह। ई भौड़ा गढ़ी छोड़ि दरभङ्गा में अपन राजप्रासाद बनबौलन्हि।

ताहू प्रसंगक एक कथा अछि जे एक दिन श्रीमान् नवाबक भेंट करय किलाघाट जाइत छलाह। वर्त्तमान दरभङ्गा क अधिकांश भाग ताहि समय में जंगल छल। किला घाटक रास्ता वर्त्तमान 'रामबाग' द छलैक। श्रीमान् जखन 'रामबाग' क समीप पहुँचलाह, ओहिठाम एक सर्प क फणापर खञ्जनि के नचैत (वा सर्प पर मूस कें झपटैत—दू प्रकारक कथा अछि) देखि किछु कालक बाद, सर्प जखन चल गेल, ओहिठाम एक खुट्टा गाड़ि, किला घाट गेलाह। पण्डित लोकनि सँ बुझला पर ओहि स्थान कें शुभ जानि ओतय गोसाँउनिकघर[2] बनबाय ओहिठाम अपनो निवास-स्थान बनबौलन्हि।

नवाब काशिम खाँ हिनका 'सदूई कर' ग्रहण करबाक अधिकार प्रदान कयने छलथिन्ह। १७६२ ई० में अँगरेज गवर्नमेन्ट 'ननकर' गाँव ओ 'दस्तूरत' ओसूल करबाक अधिकार हिनका सँ वापस लय राजा नरेंद्र सिंह क स्त्री क हेतु १० गाँव, माधव सिंहक हेतु २ गाँव तथा हिनक अपन खर्चक हेतु १० हजार टाका मासिक नियुक्त कय देल। कतोक ठाम एहने लेख भेटैछ।

(१६) राजा माधव सिंह बहादुर (१७७५)

ई राजा प्रताप सिंहक वैमात्रेय भाय छलथीन्ह। प्रताप सिंह कें हिनका प्रति क्रुद्धभाव देखि हिनक माय ठकुराईन साहिबा[3] हिनका अपना नैहर 'पाही टोल' लय गेलथिन्ह ओ दुहू माइ-पूत ओतहि रहय लगलीह। जखन प्रताप सिंह मरणापन्न भेलाह, माधव सिंह कें वख्शी द्वारा दरभङ्गा बजाय राजतिलक दय देलथीन्ह। इहो बड़े दानी भेलाह। यदि केयो ब्राह्मण हिनका सँ ५ बीघा जमीन क याचना करथिन्ह तँ ई १० बीघा क सनद हुनका नामे लिखि देथिन्ह। कारण पुछला पर कहथिन्ह जे ब्राह्मण अपने तँ खेती नहिंये करताह, आधा तँ बटैदारे लेतन्हि। लगभग १४००० बीघा जमीन ई दान कयलन्हि जे ब्रह्मोत्तर कहौलक।

१ कतोक व्यक्ति ई कहैत छथि जे हिनक सुन्दरताक प्रशंसा सूनि देखबाक हेतु ओ किलाघाट जाय दर्शन कय कृत्य-कृत्य भेल छलाह।

२ रामबाग में पछबारीकात गोसाउनिक घर अछि से वैह स्थान थिक।

३ ठकुराइन साहेबाक खुनाओल एक पोखरि झंझारपुर में अछि जकरा जनता ठकुराइनिक पोखरि कहैछ।

पूर्वहिं कहि आयल छी जे राजा प्रताप सिंह बहादुरक समय में दस्तूरत ओसूल करबाक अधिकार अंगरेज गवर्नमेन्ट वापस लय लेने छलन्हि। राजा माधव सिंह बहादुर 'दस्तूरत' पुनः प्राप्त करबाक आवेदन ओ ताहि संग ओतबा दिनुक हर्जानाक दावी कैल। ओहि कालक गवर्नर मि० टार्ट पटना क अंगरेजी कोषागार सँ हर्जाना रूपें हिनका १६३०००) रु० देने छलथिन्ह। ताहि सँ अलावे बकिये टाकाक हेतु १०००) मासिक देब स्वीकार कैलथीन्ह ओ तिरहुत हिनकहि संग २६५१८१) रु० में बन्दोवस्त कय देलथीन्ह। २६५१८१) रु० हिनका स्वीकार नहिं भेलन्हि। तखन हिनक जमींदारी गवर्नर जेनरल फयजउद्दीन ओ बरकत खाँ क संग बन्दोवस्त कय देल, किन्तु मालगुजारी नहिं ओसूल होयबाक कारणे उक्त दुहू गोटा जमींदारी वापस कयदेल जे पुनः हिनकहि संग १६८५०६) रु० में बन्दोवस्त कैल गेल।

महाराज क उपाधि माधव सिंह कें देल जाइन्ह, ताहि हेतु ईस्ट इण्डिया कम्पनी क समय में मंजूरीक हेतु पठाओल गेल छलैक, किन्तु ओकर मंजूरी हिनका अपना समय में नहिं आबि सकलन्हि। जखन महाराज छत्र सिंह बहादुर कें राजगद्दी भेलन्हि, तखन ओकर मंजूरी अयलैक तैं छत्र सिंह सँ हम महाराज लिखब।

१७ महाराज छत्रसिंह बहादुर (१८०८—

माधव सिंहक बाद महाराज छत्र सिंह बहादुर राजा भेलाह। ई बड़े धर्मनिष्ठ, राजनीति-कुशल ओ विद्वान् छलाह।

एहि राजवंश में हिनकहिं सर्व प्रथम 'महराज बहादुर'[1]क उपाधि प्रदान कैल गेलन्हि।

हिनक कतोक कीर्ति में काशीक नीलकण्ठक मन्दिर, अहिल्या-स्थान में सुविशाल राम-मन्दिर, दरभङ्गाक राम-मन्दिर[2] ओ माधवेश्वर इत्यादि अखनहुँ दृष्टिगोचर होइछ। हिनक निवास-स्थान "छत्रभवन" दरभङ्गा में देखितहिं छी। अपना राज-हाताक चारूकात गढ़खै खुनाओल जे एखनो विद्यमाने अछि।

राज्यक आमदनी एवं कोष ई बहुत बढ़ौलन्हि। हिनका २ स्त्री में पहिने कनिष्ठा स्त्री में रूद्र सिंह क जन्म तथा पश्चात् ज्येष्ठा में वासुदेव सिंह क जन्म भेलन्हि।

१८ महाराज रुद्रसिंह बहादुर (१८३८—

ई बड़े धर्म्मात्मा सुशील एवं उदार छलाह।

हिनका राजत्व-कालक एक उल्लेखनीय घटना ई अछि जे पिताक मृत्युक बाद वासुदेव सिंह महाराज छत्र सिंह बहादुर ज्येष्ठा स्त्रीक सन्तान होयबाक कारणें राज्य में आधा हिस्सा पयबाक हेतु महाराज रुद्रसिंह बहादुर सँ लड़ाई ठानल। दुहू पक्षक टाका पानी जकाँ बहय लागल।

[1] सन १८१४ ई० में अंगरेजी सरकार कें नेपाल सँ लड़ाई में ई बड़ सहायता कयने छलथिन्ह तकरे फलस्वरूप पुवं पिता द्वारा प्राप्त कयल "महाराज बहादुर" क उपाधि सँ विभूषित भेलाह।

[2] एकरा पूर्ण नहिं कय सकलाह। बाद हिनक ओकरा म० रू० सिंह बहादुर पूर्ण कयलन्हि।

कलकत्ता हाईकोर्ट सँ महाराज रुद्र सिंह बहादुर हिक पक्ष में फैसला भेल। अग्रशोची महाराज-छत्र सिंह बहादुर अपना जीवितावस्थहिं में रुद्र सिंह कें अपन उत्तराधिकारी बनाय गेल छलथिन्ह। ई हो अपना पितहिं जकाँ राज्यक आमदनी बढ़ाओल। बछौर तथा हवेली प्रगन्ना हिनके खरीद कैल थिक। दरभङ्गा में 'लक्ष्मीसागर' पोखरि हिनके सुकीर्ति थिक। कतोक ठाम शिव-मन्दिर बनवाओल। महादेवक ई परम भक्त छलाह। सुनैत छी जे दरभङ्गा में जखन ई स्वर्गारोहण कयलन्हि; ताहि समय में वैद्यनाथक मन्दिरक सभ केवाड़ अपनहिं सँ लागि गेल छल ओ पुनः किछु कालक बाद अपनहिं खुलि गेल।

१९—महाराज महेश्वर सिंह बहादुर (१८४९—

पिता, महाराज रुद्र सिंह बहादुर कें शिव-सायुज्य पौलापर ई गद्दीनशीन भेलाह। हिनका समय में सिपाही विद्रोहक समय छल ताहि में ई अंगरेज सरकार क बड़ सहायता कयने छलथिन्ह। १० वर्ष सुचारु रूपें राज्य कय १८५९ ई० में स्वर्गारोहण कयलन्हि।

ई अधिक काल झंझारपुरहिं में रहैत छलाह। अन्तिमो काल में झंझारपुरहिं में छलाह। अन्त-काल समीप बुझि गङ्गाक यात्रा कयलन्हि किन्तु ओतय पहुँच नहिं सकलाह। लहेरियासरायक समीप मृत्यु भेलन्हि।

कोर्ट औफ वार्डस् (१८६०—१८८०)

पिता क मृत्यु भेला पर म० लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर २ वर्षक तथा तनिक कनिष्ठ भाइ म० रमेश्वर सिंह बहादुर ६ मासक छलाह। तैं दरभङ्गा राज कोर्ट औफ वार्ड्स क अधीन कैल गेल। कोर्ट औफ वार्ड्स क समय में राज्यक अनेको समुचित प्रबन्ध कैल गेल। हिनका दुहू भाइ क शिक्षादिक समुचित प्रबन्ध कय देल गेलन्हि। राज में जहाँ तहाँ सड़क, अस्पताल तथा प्रजाक हितार्थ ओरो अनेक कार्य्य भेल। पूर्वक जे राज्य पर ऋण छल से सब एहि कालमें सधाय राजकोष में सम्भवतः ६० लाख रुपैया जमा कैल गेल।

२० महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर (१८८०—

Sir, Kt., K. C. I. E., G. C. I. E.

बालिग भेलापर फसली साल १२८७ तदनुसार सन १८८० ई० क २५ सेप्टेम्बर मास में म० लक्ष्मीश्वर सिंह राज्याधिकार प्राप्त कयलन्हि।

ई राजकाज चलयबा में अत्यन्त निपुण छलाह। अंगरेजी भाषाक एक यशस्वी लेखक छलाह। वृटिस गवर्नमेन्ट हिनका सँ राजकाज क विषय में बराबरि परामर्श लैत छल। 'टिनेन्सी ऐक्ट' जखन बिल रूप में छल, तखन कतेक वाद-विवाद कय ई ओकर कतोक अंश में संशोधन करौलन्हि। कौंसिल क आजीवन मेम्बर छलाह। एक बेरि बंगाल क गवर्नर सर स्टुअर्ट बेली पटना में कोर्ट औफ वार्ड्स क सभा में हिनक भूरि भूरि प्रशंसा कयने छलथिन्ह। जाहि समय में गोवध अधिक होमय लागल छल, ई कतोक प्रतिष्ठित व्यक्ति कें बजाय एक "गोशाला सोसाइटी"क स्थापना कैलन्हि। जकर हेडऑफिस दरभङ्गा रहल। गुणी, गवैया, पहलवान, आदिक हिनका समय में कतोक कें जीविका प्रदान कैल गेल। बाँकी मालगुजारीक माफी, अकाल में

प्रचुर सहायतादि कार्य्य सँ प्रजा हिनका सँ बड़े प्रसन्न रहैत छल।

दरभङ्गा में 'बोटेनिकलगार्डेन तथा ज्योलौजिकल गार्डेन' बनवौलन्हि, जाहि में क्रमशः उत्तमोत्तम जड़ी-बूटी एवं अद्भुत जन्तु क अपूर्व संग्रह छल।

शिकारहुँक हिनका बड़े शौक छलन्हि। दरभङ्गाक राजक अस्तबल भारत-विख्यात छल अनेकानेक शिक्षित हाथी घोड़ा क संग्रह छल।

सार्वजनिक शिक्षा दिशि सेहो हिनक अधिक मनोयोग छलन्हि। दरभंगा में एक हाइस्कूल खोलबाओल, जाहि में विद्यार्थी लोकनि कें निःशुल्क विद्यादान भेटैत छलन्हि। संस्कृत क जतय ततय पाठशाला खोलबाओल गेल छल। लार्ड लिटन क समय में कलकत्ता में ई 'टाउन हॉल' बनबौने छलाह। कतोक सार्वजनिक संस्था कें गुप्तदान दैत छलथिन्ह।

हिनक बनबाओल 'आनन्दबाग' राजभवन एक दर्शनीय महल अछि। प्रत्येक सोम[1] कें पण्डित क सभा करबैत छलाह, जाहि में विजयी पण्डित लोकनि कें योग्यतानुसार पुरस्कार भेटैत छलन्हि।

हिनका ३ विवाह छलन्हि। प्रथमा महारानी अल्पायु भेलथिन्ह। द्वितीय महारानी श्री लक्ष्मीवती साहेबा सम्प्रति काशीवास कय रहलि छथि। काशीक जनता हिनक धर्म्माचरण एवं विपुल दानादि कर्म देखि हिनक भूरि भूरि प्रसंशा करैछ। अपना जीवन में ई अनेकानेक कीर्ति कयलन्हि अछि। तृतीय महारानी लक्ष्मीश्वरी साहेबा आनन्दपुर में बास करैत छलीह। हुनको बनबाओल अनेकानेक मन्दिर जलाशय इत्यादि अछि।

नाना प्रकारक सत्कार्य्य कय महाराज साहेब सन् १३०६ साल अग्रहण शुक्ल ४ में स्वर्गवासी भेलाह।

२१ महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह बहादुर (१८९८

Sir, Kt., G. C. I. E., K. B. E. D. Litt.

धर्म्मरत्नाकर, अभिनव भगीरथ इत्यादि

वैकुण्ठवासी महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुरक बाद महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह बहादुर राज्यासनारूढ़ भेलाह। हिनका में राजा एवं योगिराजदुहूक गुण लक्षित होइत छल। एक दिशि अंगरेज सरकार हिनक परामर्श लैत छल तँ दोसर दिशि दिग्गज विद्वान् लोकनि धार्मिक विचार ग्रहण करैत छलाह। एकदिशि कौंसिल-सभा में सम्मानित होइत छलाह तँ दोसर दिशि धार्मिक सभाक सभापति। एक दिशि राज्यक सुसंगठित प्रबन्धक आयोजन होइत छल तँ दोसर दिशि धर्म्मानुष्ठानक समुचित प्रबन्ध।

भारतधर्म-महामण्डलक जन्मदाता यैह छलाह। जाहि सँ अखिल भारत-वर्षीय धार्मिक उत्थान होइत छल। जातीय सभाक स्थापना (मैथिल महासभा) क जन्मदाता यैह छलाह जे एखनहुँ अछिये। कतोक फैक्टरी खोलि लाखो मनुष्यक जीविकाक सुप्रबन्ध एवं देशक आर्थिक उन्नतिक संगहिसंग व्यापारिक अवस्थाक उन्नति में ई बड़े मनोयोग देल।

ई कतोक तीर्थस्थानक उद्धार कयलन्हि। देवमन्दिरोद्धार एवं नवीन मन्दिरक निर्माण तँ हिनक एक सर्व प्रधान कार्य्य छल। धर्म्मानुष्ठानक विषय में जतबा कहल जाय थोड़े हैत। कामाख्या भो वैद्यनाथ में अनवरत अनुष्ठानक संग राजनगर भो दरभङ्गा में अनुष्ठान होइत छल जाहि सँ धार्मिक उत्थानक संग अनेकानेक ब्राह्मणक प्रतिपालन होइत छल।

हिन्दू विश्वविद्यालयक आदि आयोजक यैह छलाह। अपनहुँ प्रचुर धन-दान दय—दिआय एकरा संसार में उच्च कोटिक विद्यालय बनाय देल। राज्यक आय तथा कोष ई अपन प्रबन्ध-कुशलता सँ बढ़ाओल। इत्यादि—

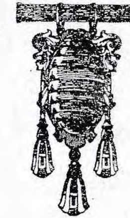
वंश परम्परागत 'महाराजधिराज'क उपाधि लाभ कैल।

२२ महाराजाधिराज श्री ५ मान् कामेश्वर सिंह बहादुर (१९२९—

K. C. I. E.

पिताक स्वर्गारोहणक बाद १९२९ में ई राज्य सिंहासनारूढ़ भेलाह।

ई बड़े उदार एवं राजनीति-कुशल, युवक महाराज, मैथिल जनताक बड़े उपकारी छथि। ई उदार विचारक एवं भारत प्रेमक हेतु आदर्श स्वरूप छथि। राउण्ड टेबुल कान्फ्रेन्स में सम्मिलित भय राज्यशासन में अनेक सुधार कय ई प्रथित भेल छथि। आधुनिक दरभङ्गा निर्माण हिनक उल्लेखनीय कार्य अछि। हिनक आधिपत्य में मिथिलाक बहुत किछु उन्नतिक आशा अछि।



[1] एकर रचा हिनक ज्येष्ठा पत्नी महारानी लक्ष्मीवती द्वारा वर्त्तमान कालहु में भय रहल अछि। प्रत्येक सोम कें पेशी होइत अछि, जाहि में ई स्वयं सभक अर्जी सुनि यथायोग्य दान दैत छथिन्ह।

मिथिला और स्वास्थ्य-रक्षा

कैप्टेन डा० श्रीयुत भवनाथ झा जी,

सम्पादक महोदयक आज्ञा भेल जे मिहिर क विशेषांकक हेतु लेख किछु लिखय पड़त। हमरा लेख लिखबाक अभ्यास नहि। बहुत साधारण व्यक्ति भयकें ओहिना जीवन व्यतीत करैत छलहुं। परन्तु मिथिलाक केन्द्र में आवि-मिथिलामिहिर क सम्पादक क आज्ञाक उल्लंघन करब हमरा सामर्थ्य सँ बहार अछि। तखन केवल डाक्टरी विद्या हम पढ़लहुँ—आओर कोनो शास्त्र हमरा अधीत नहिं। अतः एहि विषय मध्य पन्द्रह वर्ष सँ बेसीक अनुभवें जे किछु स्वास्थ्यरक्षाक विषय में ज्ञात भेल से जनता क समक्ष निवेदन करैत छी।

कोनहु देश कें आर्थिक-सामाजिक-साहित्यिक-जीवन क हेतु प्रधान पूंजी थिक स्वास्थ्य। जाहि देशक जनसाधारण क स्वास्थ्य उत्तम नहिं, ओ कोनहु प्रकार क उन्नति नहिं कय सकैछ। इञ्जिन बिगड़ने गाड़ी क चलब कठिन। कहय पड़ैछ जे एहि दृष्टि सँ मिथिला में जनसाधारण क स्वास्थ्य बड़ दुर्बल भय रहल छैक। गाम गाम मैलेरिया, हैजा, संग्रहणी आदिक अड्डा बनल अछि। आश्चर्य नहिं, जँ एहि तरह क स्वास्थ्य क अधः पात भेल जाएत तँ देश उजाड़ भय जाएत।

एहि सभ क निरोध तखनहिं भय सकैछ, जखन सर्वसाधारण में स्वास्थ्यरक्षा क महत्त्व एवं ओकर रक्षाक उपाय ज्ञात रहतैक। हम 'मिथिलाङ्क' द्वारा सभक ध्यान एहि गम्भीर प्रश्न दिशि आकृष्ट करै छिऐन्हि।

स्वास्थ्यक रक्षार्थ कतेको विषयक थोड़-थोड़ ज्ञान होएब आवश्यक छैक। सभ सँ प्रथम हमर शरीर की थीक? वा भिन्न भिन्न अंग क की प्रयोजन? तकर बोध होएब उचित होएत।

सुलभ रूपें एतबा बुझब आवश्यक जे शरीर, प्राण वा आत्माक हेतु एकटा घर थिक। दूहू आँखि घर मध्य प्रदीप थिक, जे प्रकाश पहुँचेबाक कार्य करैछ। नाँक घर में स्वच्छ वायु क आवाहन करैत अछि। कोनो घर बनेबाक पहिने जेहिना ई देखब आवश्यक होइत छैक जे घर में प्रकाश अबैत अछि की नहि? इच्छा रहैछ जे हवादार खूब भेल ताकें। तहिना शरीर रूपी घरमें प्राण वा आत्माक रक्षणार्थ आँखि तथा नाक क रास्ता खूब साफ राखब आवश्यक। खिड़की ओ दुआरि सभ गोटे नित्य मार्जनी सँ जलक संयोग दय स्वच्छ रखैत छी। तहिना नित्य स्नानक काल दुहू नेत्र वा नाककें जल सँ धोएब उचित थिक। प्रति दिन आँखि में वा नाक में कतेक गर्दा वा मैल जमैत अछि। तकरा साफ नहिं कैला सँ अनेक प्रकारक रोगक सम्भावना छैक।

आब (प्राणक रक्षार्थ) एहि शरीर रूपी घर में पाकाशय (भनसाघर) तकर बाद अँतरी (भोजन करबाक घर) एवं गुह्यमार्ग (मोरी वा नर्दमा) ई सभ अपन-अपन भिन्न-भिन्न कार्य कय रहल अछि। ई तँ सभ गोटय जनैत छी जे भनसाघर में पाक करबाक किछु काल नियत

अछि। जतबा काल में सभ वस्तु नीक जकाँ सुसिद्ध रूपें पक्क भय सकैत अछि वा खेबाक योग वस्तु बनैत अछि। तेहिना पाकाशयो में पाचन करबाक सामर्थ्य बान्हल छैक वा कालो नियमित रूपे छैक। तखन थोड़, सुस्वादु वा नियमित समय पर भोजन कैने जेना नीक जकाँ पाचन होयेत से अधिक वस्तु वा अगरम बगरम एवं जैखन-तैखन खेने भोजन असिद्ध वा कुपच रहि जायत, तखन खैबाक घर (अँतरी) में आबि प्राण वा आत्मा क स्वादिष्ट वा लाभकारक नहिं होयतैक। एहन अन्न खेला सँ जे अवगुण होइत छैक से सभ कें ज्ञाते अछि। बाँकी रहल मोरी वा नर्दमा, तेकर साफ राखब केहन उपकारक होइत छैक से सभ जनितहिं छी। कोनो घर में ई सभ साफ नहिं रहला सँ घर दुर्गन्धमय भय जाइत छैक। तथा ओहि घर में रहनिहार व्यक्ति सदा रोगी रहैत छैक। तेहिना जाहि मनुष्य काँ कब्ज वा बेरि पर शौचक हेतु जैबाक अभ्यास नहिं रहैत छैन्हि से कथमपि नीरोग नहिं रहि सकैत छथि।

शरीरक विषय में एतबा ज्ञान जनिका छैन्हि से बहुत रोग सँ मुक्त रहि सकैत छथि। ओना तँ बहुत विषय एहि बात पर डाक्टरीक मतें वा बैद्यक मतें कहल जा सकैत छैक, परन्तु सर्वसाधारण लय एतबा बहुत थिक।

सारांश हमरा कहबाक ई अछि जे जहिना मैल वा गन्दा घर में रहने क्यो सुखी वा नीरोग नहिं रहि सकैत अछि तहिना शरीर रूपी घर कें मलिन वा गन्दा रखने चित्त प्रफुल्ल वा बुद्धि तीव्र होयेब असम्भव। आशा अछि मिथिला वासी क ध्यान स्वास्थ्य रक्षा क प्रश्न पर आकर्षित होएतन्हि।

"गङ्गातीरावधिरधिगता, यद्भुवो भृङ्ग ! भुक्ति-
र्नाम्ना सैव त्रिभुवनतले विश्रुता तीरभुक्तिः ।
भूमिं भित्त्वा समजनि सखे ! सीरकेतोस्तपस्या-
वल्ली यस्याममृतफलदा जानकी कैतवेन ॥"

मिथिले !

श्री वैद्यनाथ मिश्र शास्त्री
[वैदेह]

मुनिक शान्तिमय–पर्णकुटी में,
तापसी कअचपल भृकुटी में,
साम-श्रवणरत-श्रुतिक पुटी में,

छल अहांक आवास ।
बिसरि गेल छी से हम,
किन्तु न झाँपल अछि इतिहास ॥

× × ×

यज्ञधूम–सङ्कुचित–नयन में,
कामधेनु-खुर-खनित-अयनमें,
मुनिकन्या क प्रसून–चयन में,

छल अहाँक आमोद ।
स्मरणो जकर करै अछि छन,
भरि सभ शोक क अपनोद ॥

× × ×

गौतम-अनुमिति 'न्याय' क अथमें,
याज्ञवल्क्य–दर्शित–नय पथ में,
ज्ञानी जनक क जीवन–रथ में,

अङ्कित तवपद-पद्म ।
अछि मैथिलिक मौलि मुकुला–
वलि लाजित जे छविसद्म ॥

× × ×

शारदा–यति–जयालाप में,
विद्यापति-कविता-कलाप में,
नान्यदेव नृपतिक प्रताप में,

देखिय तोर महत्त्व ।
जहि सौं आनो कहइछ जे,
अछि मिथिला में किछु तत्त्व ॥

× × ×

कीर दम्पतिक तत्त्व–वाद में
लखिमा कृत कविताक स्वाद में,
विजयि उदयन क जयोन्माद मे

अछि से अद्भुत शक्ति ।
जहि सौं हैछ अधर्मिहु कें
तव पद-पङ्कज में भक्ति॥

× × ×

धीर अयाचिक साग-पात में
पद्यबद्ध शङ्करक बात में,
पक्षधर क प्रतिभा-प्रभात में

छल अहाँक उत्कर्ष ।
औखन धरि जे झाँपि रहल अछि
हमर सभक अपकर्ष ॥

× × ×

लक्ष्मीनाथक योगध्यान में
कविचन्द्रक कविताक गानमें
नृप रमेश्वरक उच्च ज्ञान में ॥

आभा अमल अहाँक ।
विद्यावल विभवक गौरव में
अहँ छी थोर कहाँक ॥

× × ×

कीर्त्ति लता

प० श्री गणेश्वर झा न्यायाचार्य्य

हमरा लोकनिक साधारण धारणाक अनुसार म० म० मैथिल कविकोकिल "विद्यापति ठाकुर" "मिथिला–भाषा"क एक विशिष्ट कविक श्रेणी में अबैत छथि। परन्तु से नहिं, हुनक समस्त रचनापुस्तकक समालोचना कयला सँ वास्तविक विषयक पता लगैत अछि जे विद्यापति ठाकुर केवल कविए नहिं छलाह, किन्तु ओ एक ऐतिहासिक ग्रन्थ-लेखक, धर्म-प्रचारक, राजनीति-कुशल उच्चकोटिक राजकर्मचारिओ छलाह । हुनका समयक मिथिला-मही-महेन्द्र लोकनि अल्पायु होयबाक कारणें अपन राजत्व काल में अपन वास्तविक कर्त्तव्यक पालन नहिँ कय सकैत छलाह ।

परन्तु विद्यापति ठाकुर दीर्घायु होयबाक हेतु पहिले पहिल महाराज "कीर्त्ति सिंह," तदनन्तर 'देव-सिंह' ओकर बाद 'शिव सिंह' तत्पश्चात् 'पद्म सिंह' तदुत्तर "हरि सिंह" तदुपरान्त "नरसिंह" तदनन्तर "धीरसिंह"क आधिपत्य में निरन्तर कार्य्य कयलन्हि । विद्यापति ठाकुर एहि-सभ राजाक राजसभाक प्रधान सदस्य ओ द्वार पण्डित छलाह । आओर हिनका लोकनिक समयक अपूर्ण कार्य्य सभकें विद्यापति ठाकुरे सम्पूर्ण कयलन्हि । अतएव सात महाराजक राजत्व काल में योगसूत्रवत् भ क मिथिला-राज्यकें सुसंगठित रक्षा में सफल-प्रयत्न भय सकलाह ।

मुसलमान विध्वस्त हिन्दू-समाजक पुनः संगठन ओ वर्ण व्यवस्थाक संग हिन्दू-धर्महुक प्रचार विद्यापति ठाकुर द्वारा भेल । परन्तु हुनक ख्याति मधुर स्वर्गीय गीतक हेतु अछि । हुनक पदावली कल्प-द्रुमक सुफल रसास्वादन सँ केवल मिथिला वा वंग देशैक नहिँ समस्त भारतक लोक मुग्ध भेल । स्मृति–शास्त्र में हुनक प्रकाण्ड–पाण्डित्य "शैव-सर्वस्व" 'गंगा-वाक्यावली' "षोड़श दान" "तुला-पुरुष-दान" "दानवाक्यावली" "वर्षक्रिया" तथा 'विभाग-सागर' आदि में एवं पौराणिक भूगोल–विज्ञता 'भूपरिक्रमा' नामक ग्रन्थ में बलरामक तीर्थ-भ्रमण- वृत्तान्त में प्रकट अछि ।

मुसलमानक रोमाञ्चकारी आक्रमणक प्रबल स्रोत में हिन्दूक धर्म-कर्मक एक प्रकार सँ लोपे भय रहल छल, एहि हेतु मैथिल पण्डित लोकनि नाना प्रकारक ग्रन्थ रचना कय हिन्दू समाज कें पुनर्गठित करबाक पूर्ण चेष्टा कयलन्हि । एहि सभ में विद्यापतिक नाम सर्व–प्रथम छल । ई अपन नैसर्गिक ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभा, हिन्दू समाज कें पुनः संगठन सूत्र में निबद्ध करबालय नियोजित कयलन्हि । एकर परिचय हुनक पाण्डित्यपूर्ण संस्कृत पुस्तक सभ सँ भेटैत अछि ।

विद्यापति ठाकुर कें हम तीन मूर्ति में देखैत छी । (१) मूर्त्ति में ओ पण्डित, संस्कृत साहित्य मे व्युत्पन्न, तिरहुतक एक प्रधान सभासद, ओ हिन्दू-समाजक पुनर्गठन मे देखल जाइत छथि । (२) मूर्त्ति में ओ एक नैसर्गिक सरस कवि छथि। (३) मूर्त्ति में ओ इतिहासक रचयिता छथि,

हुनक ऐतिहासिक कविताकलाप हुनक "कीर्त्तिलता" तथा "कीर्त्तिपताका" नामक ग्रन्थ द्वय में सन्निबद्ध अछि। हम सम्प्रति हुनक ऐतिहासिक दृष्टिएँ महत्त्व-पूर्ण तात्कालिक सामाजिक स्थितिक पूर्ण परिचायक 'कीर्त्तिलता'क संक्षिप्त विषय पाठकक मनोरञ्जनार्थ उद्धृत करैत छी। विद्यापति "कीर्त्तिलता" अपभ्रंश भाषा में (जे तत्काल 'अवहट्ट' नाम सँ ज्ञात छल) लिखलन्हि अछि। एहि प्रसङ्ग हुनक उक्ति अछि।

"सक्कयवाणी बुहअन भावइ, पाउअ रसको मर्म न पावइ। देसिल वअना सबजन मिट्ठा, तें तैसन जम्पओ अवहट्टा॥"

कीर्त्तिलताक विषय एक सत्य घटना थिक। एहि में युद्धक विशद वर्णन तथा राजनीतिक उपयुक्त प्रसङ्ग अछि। एहि में बहुतो अरबी, फारसी, तुर्की भाषाक शब्द पाओल जाइत अछि। एहि में जौनपुरक अति मनोहर वर्णन अछि।

हमरा देश में राति कें एक प्रकारक खिस्सा कहबाक प्रथा बहुत दिन सँ प्रसिद्ध अछि, एहि श्रेणीक कथा में प्रायः एक विधि ओ एक विधात्री कोनो वृक्ष पर बैसि कें परस्पर गपसप करैत रहैत छथि। वृक्षक नीचाँ जे जे व्यक्ति ओहि समय में उपस्थित रहैत छथि, ओ लोकनि ओहि कथोपकथन कें सुनि अपना सम्बन्ध में तथा अपन आत्मीय व्यक्तिक सम्बन्ध में उपयोगी वस्तु जानि लैत छथि। जाहि सँ ओ लोकनि अपन भाग्य परिवर्त्तनक चेष्टा करबा में समर्थ होइत छथि। विद्यापति ठाकुरक "कीर्त्तिलता" एही ढंगक अछि। एहि में एहन लिखल गेल अछि जे एक भृङ्गी अपना पति भृङ्ग सँ पुछैत अछि—पुरुष ककरा कही? पुरुषक लक्षण की थिक? भृङ्ग उत्तर दैत अछि—

[१]

"पुरि सत्तरोन पुरिसओ जन्म मतेन; जल-दानेन हुजलओ बहुजलओ पुंजिओ धूमो सो पुरिसो जसुमानो सो पुरिसो जस्स अज्जने सत्ति। इअरो पुरिसा आरो पुच्छ-विहीनो पसु होइ। पुरुख कहानी हजो जसु पत्थावे पुण। सुख्खु सुभोज्जन सुभ-वअन देवेहा जाइ सुपुन्न।
पुरुस हुअउँ बलिराए जासुकरे कन्ने पसारिअ।
पुरुस हुअउँ रघुतनअ जेन्ने बल रावण मारिअ॥
पुरुस भगीरथ हुअउ जेन्ने निअ कुल उद्धरिअ।
परसुराम अरु पुरुस जेन्ने खत्तिअ खअ करिअउ।
अरु पुरुस पसंसजो राय गुरु,
कित्तिसिंह गएणेस सुअ।
जो सत्तु समरसम्मदि कहु वप्पवैरि उद्धरिअ धुअ।"

अर्थात्-पुरुषत्व सँ मनुष्य पुरुष होइत अछि। जन्म मात्र सँ पुरुष नहिं होइछ, जलदान हेतुक मेघ जलद कहबैत अछि; किन्तु पुंजीभूतधूम जलद नहिं कहा सकैत अछि। वैह पुरुष थिक जनिका अभिमान छन्हि। वैह पुरुष थिकाह, जनिका उपार्जनक शक्ति छन्हि। एहि सँ इतर जे पुरुष छथि, ओ पुरुषक आकार विशिष्ट छथि। ओ पुच्छ विहीन पशु थिकाह। ओहि पुरुषक कथे कथा थिक जनिक प्रस्ताव सँ पुण्य होइत अछि। सुख लाभ होइत अछि। उत्तम भोजन भेटैत अछि; मधुर वचन सुनबा में अबैत अछि। ओ पुण्य-युक्त भय देव-लोक (स्वर्गादि) कें प्राप्त करैत अछि, राजा बलि पुरुष भेलाह, जनिक दानक कथा सुनबा निमित्त-'कान' पसारल जाइछ। रामचन्द्र पुरुष छलाह, अपना बल सँ रावण कें मारल। पुरुष भेल छलाह भगीरथ, जे निज कुलक उद्धार कयलन्हि। ओ परशुराम पुरुष छलाह, जे क्षत्रिय समुदायक क्षय कयलन्हि। आओर प्रशंसा करैत छी, एक पुरुष-जे गणेशक पुत्र राजगुरु कीर्त्ति सिंह छलाह, समर में शत्रुक मर्दन कय पितृ-वैर (वप्पावैरी) बदला चुकौने छलाह। भृंगी राजाक परिचय निम्न श्लोक में पुछैत अछि—

राय-चरित रसाल एहु खाहन राखहि गोए।
कवन वंसको राअसो कीर्त्ति सिंह को होए॥

उत्तर में भृंग कहल—तर्क मे निपुण तथा श्रुति-अध्ययन में नियुक्त, दान में दारिद्र्य नाशकारी, ब्रह्म ओ परमार्थ-चिन्तन में नियत, धन-दानक द्वारा सुयश लाभ कयनिहार, संग्राम में विजयशील बहुत प्रसिद्ध बीनीवंश में "कीर्त्तिसिंह" क जन्म भेल। भुजवीर्य्य तथा द्विजत्वक एकत्र अवस्थान जनिका में जेना पाओल जाइत छल, ओहन अन्यत्र कतहु नहिं।

ओहि वंश मे "कामेश्वर" नामक एक राजा छलाह। हुनक पुत्र भोगीशराय छलाह, ओ इन्द्र जकाँ पृथ्वीक उपभोग कयने छलाह। ओ कुसुमायुधक सदृश रूपवान रहथि तथा याचक कें प्रचुर धन दैत छलाह। "सुलतान" फिरोज शाह हुनका प्रिय सखाक समान मानैत छलथिन्ह। ओ अपन गुण, दान, आओर दोसराक प्रति सम्मान सँ सभ कें अपना वश में कयने छलाह। कुन्द-कुसुम सदृश हुनक यश पृथ्वी कें आच्छन्न कयने छल। हुनक पुत्र "राय गणेश" नीतिशास्त्र में शुक्र सदृश निपुण छलाह। तथा अपन चारू कीर्त्ति सँ दशोदिश आवृत कयने छलाह। ओ दान, मान ओ सत्य सभ में गुरु छलाह। ओ लावण्य में मदन तुल्य, आओर शत्रुक संहारी छलाह।

हुनक युवराज पुत्र "महाराज वीरसिंह देव" छलाह, जनिके छोट भाय गुण-गरिष्ठ "कीर्त्तिसिंह" भूपाल अपन भुजबल सँ पृथ्वीक शासन कय रहल छथि। ओ चिरञ्जीव रहथु, ओ धर्मक पालन करथु, अतुल पराक्रमक कारणें हुनक तुलना विक्रमादित्य सँ भय सकैत अछि। ओ साहसक संग बादशाह क समीप जाय हुनक आराधना कय दुष्ट क दर्प चूर्ण ओ बाप क वैर सधौलन्हि।

(२)

भृंगी पुनः प्रश्न कयल—शत्रुता कोन तरहें उत्पन्न भेल छल? कोन तरहें ओ पितृशत्रुक संहार कयल? हे प्रियतम! अहाँ हमरा ओ कथा मन लगा कें कहू, हम आनन्द सँ सुनब। भृंग कहल-लक्ष्मण सेन राजाक २५२ वर्ष में मधुमासक पहिले पक्षक पञ्चमी तिथि कें राज्य-लुब्ध "असलान" राजा "गणेश"क बुद्धि ओ विक्रम-बल सँ परास्त भय गेल, किन्तु ओ दुष्ट परम विश्वासी राजा "गणेश"क समीप बैसि क हुनका मारि देलक। वसुन्धरा हाहाकार सँ भरि गेलीहि, स्वर्गक अप्सरा गणक वामा आँखि फरकि उठल। ठाकुर लोकनि ठक भय गेलाह। चोर सब प्रबल भय गेल, धर्म डूबि गेल, खल समूह सज्जनक अनादर करय लागल। देश में विचारक नहिँ रहल, असवर्ण विवाह होमै लागल। उत्तम जनकें अधम जन थर थरा देल। पैघलोक भिखारि भय गेल। मिथिलाक सकल कला कौशल, नष्ट-प्राय भय गेल।

तुर्क 'असलान' देखल जे बहुत अधलाह कार्य्य कयल अछि। तखन ओ शोचल जे 'कीर्त्तिसिंह' कें राज-सम्मान कय राज्य वापस कय देब, किन्तु सिंह-पराक्रमी, अभिमानी, कीर्त्तिसिंह बाप वैरीक बदला लेबाक अचल संकल्प कयने छलाह। ओ शत्रु समर्पित राज्य लेब स्वीकार नहिं कयल। लोक सभ हुनका बुझाबय लागल, माय आग्रह करय लगलथिन्ह, मन्त्री तथा मित्र। मण्डल अनुमति देल जे राज्य जनु छाड़ी।

कीर्त्तिसिंह कहल जे मान कें विसर्जन दय शत्रुक शरणागत भय जीवन धारण करब ठीक नहिं। अपमान सँ जे दुःख बोध नहिं करैत छथि, हुनका चित्त नहिं छन्हि, व्यक्तित्व नहिं छन्हि। हम शत्रुक ध्वंश कय राज्यक ग्रहण करब। हम साहसक संग युद्ध करब। शत्रु-शरणागत भय मुक्त नहिं होयब। कहियो नीचक संग प्रीति नहिं करब। राज्य रहे अथवा चल जाय। ई भीष्म-प्रतिज्ञा कय दुहू भाञि घर सँ बहार भय गेलाह, तथा पैरहिचलय लगलाह। मार्ग में सब हुनक यथोचित सम्मान कयल, अन्त में दुहू वीर-युवा "जौनपुर" पहुंचलाह। ओतय देखल जे जौनपुर बड़ पैघ शहर अछि, मानू लक्ष्मीक दोसर विश्राम-स्थाने—

'पल्लविअ कुसुमिअ फलिय उपवन चूय चम्पक सोहिआ॥
मअरंद-पाण विमुद्ध महुअर सद्द मानस मोहिआ॥

शहर मध्य मत्त मातङ्ग गामिनी शतशत कामिनी चौबटी पर सार्थवाह लोकनि कें देखि रहलि अछि॥ कर्पूर, कुंकुम, गन्ध, चामर, सुरमा, इत्यादि बिका रहल अछि। सभलोक सम्मान, दान, विवाह, उत्सव, गीत, नाटक, काव्य, आतिथ्य, विवेक, विनय ओ कौतुक में समय व्यतीत कय रहल अछि। राज-पुत्र नाना स्थानक विचित्र वस्तु तथा क्रीड़ा देखल, दुहू राजकुमार घुमैत फिरैत धनहट्टा, सोनहट्टा, पनहट्टा, पकान्नहट्टा, मछहट्टा, इत्यादि कतेको स्थान देखय लगलाह। कोलाहल सँ भरिगेल, सुख में रहबाक हेतु सबकियो बादशाह "इबराहीम" शाहक प्रशंसा कय रहल छल। कवि तुर्कक लक्षण एहि तरहें कहि रहल छथि—

ततोहे कुमारो पइट्ठे बजारो, जहि लक्ख घोरा मअंगा हजारो।
कहूं कोटि गन्दा कहीं बाँदि बन्दा, कहीं दूरि रिक्का विए हिन्दु गंदा।
तहीँ तत्थ कूजा नवेह्ला पसारा, कहीं तीर कम्मान दोकानदारा।
सराफे सराफे भरे बेवि बाजू, तौलति फेरा लसूला तराजू (पेआजू)।
खरीदे खरीदे बहूतो गुलामो, तुरके तुरके अनेको सलामो।
वेसाहन्ति खीसा मइज्जल मोजा, भमे मीर बल्लीअ सइल्लार खोजा।
अवेवे भनन्ता सरापा पिवन्ता, कलीमा कहन्ता कलामे जीअन्ता।
कसीदा कढन्ता मसीदा भरन्ता, कित्तब्बा पढ़न्ता तुरक्का अनन्ता।

एहि छन्द के पढ़ि कें "पृथ्वीराज रासो" क स्मरण भय जाइत अछि। अस्तु, हिन्दू मुसलमानक व्यवहारक विलक्षण विवरण कवि एहि तरहें कयने छथि—

हिन्दू तुरके मिलल वास; एकक धम्मे अओरक उपहास।
कतहु बाग कतहु वेद; कहुँ विसिमिलि कदहु छेद॥
कतहु ओझा कतहु खोजा; कतहु नकत कतहु रोजा।
कतहु तम्बारु कतहु कूजा; कतहु निमाज कतहु पूजा॥
कतहु तुरुक बरकर; बाट जइते बेगारधर।
धरिआनय बाभन बरुआ; मथा चढ़ाबय गाइक चुडआ॥
फोट चाट जनउ तोड़; उपर चढ़ाबय चाह घोड़।
धोआ उरिधाने मदिरा साध; देउर भाँगि मसिद बाँध॥
रट्ठहि हट्ठ भयन्त ओ; दुओ राअ कुमार।
दिहि कुतुहल कजरस तोपहट्ठदरबार॥

एहि सभ स्थान में भ्रमण करैत दुहू भाञि भ्रन्तः पुरक समाचार बुझल, तदन्तर नगरक मध्यस्थल में एक ब्राह्मणक घरमें डेरादेल।

[३]

भृङ्गी पुनः पुछल—हेकान्त! अहाँक कथा हमरा कर्ण-कुहर में मानू अमृत रस बरिसबैत अछि। एकर बाद की भेलैक? भृंग कहैत अछि- दोसर दिन प्रातः कृत्यादि समाप्त कय दुहू भाञि मन्त्रीक घर पहुँचलाह। हुनका अपन विषय सुनाय कहल जे प्रभु यदि हमरा पर प्रसन्न छथि तँ हम अपन राज्य पाबि सकैत छी। मन्त्री बादशाहक समक्ष प्रस्ताव उपस्थित कयल। 'बादशाह' कहल जे शुभमुहूर्त्त में हुनका हमरा समीप लाउ। कुमारद्वय एक घोरा तथा बहु-मूल्य एक वस्त्र-विशेष उपहार दय बादशाह कें प्रसन्न कयल। बारम्बार सलाम कय 'कीर्त्तिसिंह' अपन वृत्तान्त कहय लगलाह—

अज्ज उच्छव, अज्ज कल्लाण, अज्जसुदिन अज्ज सुमुहुत्त। अज्जमान्ने मुज्झपुत्त जाइअ, अज्ज पुण पुरिसत्थ याति पाति शाह पापो स पाइअ। अकुशल वेविहि एक्क पेर अवर तुम्भा परताप भरुलो अन्तर गर्ग्गउ गअन राव मज्झुवाय, फर-मान भेल, कओण चाहि। तिरहुति लेल जन्हि ताहि, उरे कहिनी कहए आन; जहाँ तो हैं तहां असलान।

ई सुनितहि बादशाह क भृकुटी चढ़ि गेल। भौंठ फरकय लागल, आँखि लाल भयगेल। तुरन्त 'उमराव' कें आज्ञा देल—अहां लोकनि एखनहि तिरहुत-प्रति युद्धयात्राक उद्योक प्रारम्भ करू। तखन सँ युद्ध-यात्रा क घोर तर उद्योग होमै लागल। एहि मँ दुहू सहोदर मनहिमन आनन्दित भेलाह। "सुलतान" चललाह, पहार हटय लागल पृथ्वी हिलय लगलीहि, नागक मन काँपय लागल। सूर्य्य रथक मार्ग धूरा सँ भरिगेल। शत शत तबला बाजय लागल, प्रबल-मेघ गर्जन सन घोर तर होमै लागल जखन सैनिक समूह चलय लागल, तखन शत्रुक घरहु में भय पहुँचल। हुनक निद्रा भङ्ग भयगेल।

'खगलइ गव्वकइ तुलुकयवें बुज्झई;
अपिसगर सुर नअर संकपल मुज्झई।'

बादशाह मार्ग में लोक सभ सँ कर लेम लगलाह। बहुतरास लोक बन्दी भेल, सभकेयो युद्धक हेतु उत्साह देखबय लागल, दुहू राजकुमारक फल मूल मात्र भोजन छल। दुहू गोटे असीम क्लेश उठाओल, केवल उत्साहक संगचलैत छलाह, एहि समय में दुहूभाञि सोचय लगलाह—"की हमर माय एखन धरि जीवित छथि?" ओहि ठाम माइक लग हुनक संन्धि-विग्रहक "आनन्द" ओ मित्र "श्री हँसराय" छलाह। ओ सब किछु छाड़िकें राज-कार्य्य में लागल छलाह, राजकुमारक भाय रायसिंह मन्त्री गोविन्ददत्त, शिव भक्त तथा हर-दत्तो हुनक संग छलथिन्ह। "यदि ई सब "माता" कें प्रबोधथि तँ ओ शोक नहि करतीहि" ई दुहू भाञि साहसक संग युद्धक हेतु कटिबद्ध छथि। दुहू गोटय अग्निकशिखा हाथ में लेल अछि, ओ सापक फणा पकड़ल अछि। हुनका सभक दुःख वार्त्ता मन्त्री "सुलतान"क कर्णगोचर कयल। एहि तरहें कष्ट सहैत तिरहुत तक पहुँचलाह।

[४]

भृङ्गी कहैत अछि--

" कइ कइ कन्ता सव्व भनन्ता किमिपरि सेना संचरिया ।
किमु तिरहुत्ती हाह उपविति अरुअसलान किङ्करिया ।

भृङ्ग कहैत अछि—

कित्तिसिंह गुण कहओ पेष्पसि अनहि कान ।
विनु जने विनु धने धन्धे विनु जँ चालिअ "सुरतान।"

दुहू कुमार बहुत वीर छथि, असलानो बहुत पैघ योद्धा अछि, कुमार क कारणहिं तिरहुत मध्य " सुलतान " क आगमन भेल । " सुलतान " क अनुमति सँ लाख सँ अधिक पदातिक आयल अछि, नाना प्रकारक रणवाद्यबाजय लागल। हाथी, घोड़ा, तथा पदातिकक यमघट लागि गेल । संग संग चारूदिशि कोलाहल मचि गेल। शीघ्रे चतुरङ्ग सेना तिरहुत पहुँचि गेल । (एकर बाद हाथी, घोड़ा पदातिक आदिक सजावटक क संग लूटि पाटिक विशद वर्णन अछि) तुरक क पाँछा हिन्दूक दल आवय लागल। कतेक राजा अयलाह, कतेक गोआर (लठि धर) आयल तकर ठेकान नहिं। एहि आडम्बर सँ " सुलतान " तिरहुत पहुँचि कें सिंहासन पर बैसलाह, ओही समय में " सुलतान " कुमार-द्वय कें बजबाय कहल जे— " असलान बहुत समर्थ छथि । कीर्ति सिंह उत्तर देल—शत्रुकें समय देबाक नहिं चाही, हम शीघ्रे जाय ओकरा पकड़ि लायब । यदि इन्द्रो ओकर सहायक होइथिन्ह, तथापि ओकरा अवश्य पकड़ब । असलान कें मारब, ओकर रुधिर लय कें अपना पैर पर लगायब । आइ हम पितृ--शत्रुक संहार करब । कीर्त्तिसिंह ससैन्य गण्डकी नदीक पार " असलान " क डेरा (छावनी) पर जा कँ डटलाह, किछु समय तक घोर संग्राम भेल, कीर्तिसिंह ओ वीरसिंहक संग युद्ध में " असलान " समर्थ नहि भेल ।

तव चिन्तइ मालिक असलान ।

सव्वसेन मह पलइ पतिसाहे को हान आइअ ।
अनअ महातरु फलिअ दुट्ट दैव मइु निअर आइअ ॥
तोपल जीवन पलटि कहुँ थीर निर्म्मल जस लओ ।
कीर्त्तिसिंह सओसिंह सओ घट भेलि एक देओ ॥

आब कीर्त्ति सिंह ओ असलानमें द्वन्द्व युद्ध प्रारंभ भेल, तरुआरि क घात प्रति-घात सँ बिजली चमकि उठलि, तोपक गर्जन सँ मेघक गर्जन मातु भयगेल । दुहूक शरीर सँ शोणितक धार बहय लागल, " असलान " पीठ देखाओल, ओहि समय " कीर्त्ति सिंह " गर्व सँ स्फीत भय कहय लगलथिन्ह—अरे रे असलान प्राण कातर। अवज्ञान-मान ! समर-परित्याग-साहस ! जीवन मात्र-रसिक ! धिक ! तों शत्रुता कय अपयश मात्र लाभ कय जा रहल छैं, जखन तों रणमें पीठ देलें तखन तों कायर छैं, जो नीचक अनुगमन कर। कीर्त्ति सिंह हँसि हँसि ई बात सभ कहल, तखन रण-जय कय राजा घुरि अयलाह । शंखध्वनि भेल, बाजा बाजय लागल, चारू वेद झंकृत भेल, शुभ मुहूर्त्त में राजा कें अभिषेक भेल, बान्धव वर्ग क उत्साह सम्पन्न भेल । तिरहुत अपन पूर्व रूप धारण कयल । बादशाह हुनक माथ पर तिलक कयल । " कीर्त्ति सिंह " राजा भेलाह। एहितरहैं युद्ध क्षेत्र क मथन कय "महाराज कीर्त्ति सिंह " जाहि लक्ष्मीक लाभ कयने छलाह; ओ विजयलक्ष्मी जाधरि चन्द्र दिवाकर रहताह, ताधरि परिपुष्टि होइति रहथु, अओर माधुर्य्यक प्रस्रवस्थल यशो विस्तारक शिक्षा-सखीसदृश " विद्यापति " क कविता समस्त विश्व में व्याप्त होइति रहथु ॥

१ ई ग्रन्थ सन १८९८ ई० नेपाल दरबार क पुस्तकालय सँ म० म० हरप्रसाद शास्त्री प्रतिलिपि कय लयलाह। प्रतिलिपि कयनिहार छलाह दैवज्ञ नारायण सिंह । मैथिलीलिपि सँ नेपालीलिपि में उतारल गेल, अतएव अशुद्धि संख्या बेशी भय गेलैक, तखन १९२२ ई० में शास्त्री जी श्री३मान् समशेरजंग बहादुर क अनुग्रह सँ पुस्तके प्राप्त भ गेलैन्ह, सन १९२४ ईस्वीमें कीर्त्तिलता बंगाक्षरमें प्रकाशित भेल । कीर्तिलता क ई संक्षिप्त कथा क भाग अछि । काव्य शास्त्र क दृष्टि सँ ई उच्चकोटि क ग्रन्थ नहि हो ; किन्तु एहि में तात्कालिक समाज क चित्र मुसलमानी दरबारी रिवाज, नगर-बाजार क जे स्वाभाविक चित्रण अछि, से प्राचीन इतिवृत्त क प्रेमी क हेतु सुन्दर सङ्कलन अछि । एहि में सन्देह नहिं जे विद्यापति क ई ग्रन्थ उपादेय बनल अछि । भाषा-विकाश क दृष्टिएँ से हो एकर कम महत्त्व नहिं छैक । —सम्पा०

वन्दना

जयति विदेह नगरमनुरूपम् ।
दिशि दिशि राजमान-चामीकर,-रचित-विविध-मणियूपम् ॥
रुचिर लता—तरु—पुष्पवाटिका, वापी—कूप—तड़ागम् ।
वप्र—वलय—परिखावृतमभिनव— चित्रमुदयदनुरागम् ॥
शेष—भयंकर—वेष—नृपति—दुर्धर्ष—महेश—पिनाकम् ।
मणिमय—सौध—सहस्रमुदग्रमरुच्चल—विशद—पताकम् ॥
तोरण-निकर-किरण-संचार-विनिन्दित-सुरपति चापम् ।
आहुति-गन्ध-सहित मख—धूम, विधूत सकल जन पापम् ॥
गज रथ तुरग पदाति विघट्टित, शृङ्खल शब्दमुदारम् ।
शारद विधु संकाश विकाश, कनक कलशाश्रित-तारम् ॥
पण्डित-सुमति-सुशील-सुधर्म्म-सुकर्म्म मनुज परिवारम् ।
पति-पद-पद्म निहित-निज-चित्त चतुर सुन्दर पुरदारम् ॥
सुखद—वितानमनेक—तपोधन—भूषितमतिशयलोभम् ।
पङ्कज—योनि—विनिर्मितमिव कृत—सन्ततमानसलोभम् ॥
श्रीजयदेवकवेरुदितं मिथिलापुरगीतमशोकम् ।
मंगलमोहभरेणकरोतु सदा मुदितं जन लोकम् ॥
—राम गीतगोविन्द ।

मैथिली में नाटक

श्री हरिनन्दन ठाकुर 'सरोज'

मैथिली एक प्राचीन तथा स्वतन्त्र भाषा थिक। मैथिली में स्वतन्त्र लिपि अछि। व्याकरण, साहित्य प्रभृति विविध लक्ष्य-लक्षण ग्रन्थ सँ अलंकृत अछि। कहबाक आवश्यकता नहिं एकर प्राचीन साहित्य बड़ समुन्नत ओ पूर्ण छल। जाहि समय में आन आन सामयिक भाषा वाक्यक नियमादिक कोनहु सिद्धान्त पर नहिं पहुँचल छल, ओहि समय मैथिली में काव्य नाटक आदिक चमत्कारी रचना भेल अछि।

हम एहि निबन्ध में मैथिली में नाटकक सम्बन्ध मे किछु चर्चा करबा सँ पूर्व नाटकक पर्यालोचन करब।

नाटक दृश्य-काव्य थिक। संस्कृत में एकर नामान्तर रूपक से हो अछि।

नाटक भारत में बहुत प्राचीन काल सँ प्रचलित अछि। ऋग्वेद में सरमा, पणिस, यम, और यमी, उर्वशी और पुरुरवा आदिक नाट्यक अनुरूप कथोपकथन अछि। नाटकक तीन टा मूल छैक। गीति काव्य, आख्यान और कथोपकथन। संसार क परम प्राचीन ऋग्वेद ग्रन्थ में से सर्वत्र देखल आइछ।

एक समय-वैवस्वत मनुके दोसर युग में लोक कोनहुँ नवीन मनोरञ्जनक अभाव सँ बहुत दुःखी छल। सुरेन्द्र सुरवृन्दक संग ब्रह्माक निकट जाय हुनका सँ प्रार्थना कैलन्हि जे मनोरञ्जनक हेतु कोनो एहन साधन उत्पन्न कै दियऽ, जाहि सँ शूद्र पर्यन्तक चित्त प्रसन्न होइक। ब्रह्मा चारू वेद कें बजाय ओहि चारू गोटेंक सहायता सँ नाट्य-शास्त्र-रूपी पाँचम वेदक रचना कैलन्हि। एहि नवीन पाँचम वेदक हेतु ब्रह्मा ऋग्वेद सँ संवाद, सामवेद सँ गान, यजुर्वेद सँ नाट्य और अथर्ववेद सँ रस लेलन्हि। वेदहिक सहायता सँ नाटकक निर्माण कैलन्हि।

एहि विषय में मैथिली—कोकिल विद्यापति अपन पुरुष—परीक्षा नामक ग्रन्थ में लिखलन्हि अछि जे—

इहानुश्रूयते ब्रह्मा शक्रेणाभ्यर्थितः पुरा।
साकाराकृष्य वेदेभ्यो, नाट्यवेदस्तु पञ्चमम्॥
ऋग्भ्यः पाठमभूद्गीतं, सामभ्यः समपद्यत।
यजुर्भ्योऽभिनया जाता, रसाश्चाथर्वणः स्मृताः॥

नाटक क भेद।

मुख्यतः नाटक दू प्रकारक होइछ। प्रथम वियोगान्त (दुःखान्त), दोसर सुखान्त (संयोगान्त)। नाटकक प्रधान अंग थिक संगीत, नृत्य, भावभङ्गी और भेष-भूषा।

नाटकक तत्व ६ प्रकारक अछि, यथा—वस्तु, पात्र, कथोपकथन, देशकाल, शैली और उद्देश्य। कतिपय नाट्याचार्य मुख्यतः तीनिएँ तत्त्व मानैत छथि-वस्तु, नायक और रस।

पाश्चात्य विद्वान् मैक्समूलर, पिशल, रिजवे, लेवी, मैकडाँनल, कीथ, सिद्धान्त कैलन्हि अछि जे नाटकक उत्पत्ति भारतवर्षहि सँ भेल अछि।

वस्तुतः भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन कालक ग्रन्थ में नाटक खेलबाक उल्लेख भेटैत अछि।

पाणिनि और पतञ्जलिक समय में नाट्यकला सन गूढ़ और गहन विषयक पूर्ण विकाश छल। पतञ्जलि अपन महाभाष्य में पाणिनिक सूत्रक व्याख्या करैत लिखलन्हि अछि जे पुण्यभूमि भारतक रंगशाला में अभिनय होइत छल। अधिक संख्या मे दर्शक अभिनय देखैत छलाह। वस्तुतः ओहि समय में अधिकठाम कंसवध, बालिवध, क अभिनय होइत छल।

भारतवर्षक नाटकक प्रधान आचार्य्य महात्मा मुनि मण्डलियें मानल जाइ छथि। भगवान् श्री कृष्णक काल में नाटकक बहुत प्रचार छल।

हरिवंश पुराण में ई लिखल अछि जे वज्र-नामक नगर में 'रंभाभिसार' नामक अभिनय होइत छल। ओहि नाट्यशाला में कैलाश पर्वतक मनोहर दृश्य देखाओल गेल छल। ओहि अभिनय में मनोवती रम्भाक, प्रद्युम्न नल कूबरक, शूर रावणक, शाम्ब विदूषक, और गद पारिपार्श्वकक रूप धारण कै अभिनय केने छलाह। यादव परिवार अभिनय में पूर्ण दक्ष छलाह।

दू सै वर्ष पूर्व भद्रबाहु स्वामी अपन कल्पसूत्र विवेचन में जड़बुद्धि नामक साधुक उल्लेख करैत "नाटक" पर किछु प्रकाश देने छथि।

नाटकेक अनुकरण में कठपुतरीक प्रचार भेल, जकर उत्पत्ति आदि मनोरञ्जक अछि अतः विषय-ग्राह्य वस्तुक उल्लेखक लोभ करैत छी।

कठपुतरी—

प्राचीन काल में "कठपुतरीक" नाचक अधिक प्रचार छल। संस्कृत में कठपुतरी कें पुत्तली और पुत्तलिका कहल जाइछ, लैटिन भाषा में एकरा "प्यूपा" अथवा "प्यूपुल" और मैथिली में एकरा कठपुतरी कहल जाइछ। एकरे अनुकरण कै धिया-पूता सब "कनिया पुतरा" खेलाइत जाइत छथि।

पार्वती कें "कनिया पुतरा" खेलैबाक बहुत आवेश रहैन्ह। कपड़ा, काठ, इत्यादिक ठीक मनुष्यक आकृति बना क खेलाइति छलीह। किन्तु ओहि कनिया पुतरा कें महादेवक दृष्टि सँ बचा क मलय पर्वत पर रखैत छलीह। संयोगवश महादेव एक दिन ओहि कनिया पुतरा कें देखि परम प्रसन्न भेलाह। तत्क्षण ओहि निर्जीव कें सजीव कै देलन्हि। जीवन शक्तिक संचार होइतहि कनियाँ पुतरा सब परस्पर नाचै गाबै लागल। महादेव ई दृश्य देखि हर्ष सँ उद्वेलित होइत "लोटपोट" भै अपनहुं नाचै लगलाह। पार्वती इरोत सँ ई कौतुक कें देखि हँसै लगलीह। यैह थिक कठपुतरीक इतिहास। इहो दृश्य काव्येक एक अनुकरण थीक।

आबहुं तक मैथिल समाजक बालिका लोकनि कनिया पुतरा खेलाइत जाइ छथि। विशेषतः मैथिल समाज में ज्येष्ठमास में वटसावित्रीक शुभ अवसर पर वरक ओहिठाम सँ वधूक ओहिठाम जे भार पठाओल जाइछ, ताहि में कनिया पुतरा पठैबाक व्यवहार आवश्यक कोटि में मानल जाइत अछि।

महाभारतहुं में कनियाँ पुतराक उल्लेख अछि। जाहि काल में कौरव सँ युद्ध करबाक हेतु अर्जुन बिदा भेलाह ओहि काल में उत्तरा अर्जुन कें कहलथिन्ह जे हमरा हेतु नीक नीक कनिया पुतरा लै सब कपड़ा नेने आयब।

कथा सरित्सागर नामक ग्रन्थ में एकर उल्लेख अछि जे मय नामक असुरक कन्या सोमप्रभा तरह-तरह क कनियापुतरा अपन शिल्पी पिता सँ बनवबैति छलि। ओकरा किछु दिन राखि अपन प्रिय पाल कें दै, पुनः पिता सँ नवीन तरहक बना देबाक हेतु आग्रह करैत छलि।

दशम शताब्दीक आरम्भ में [कवि राजशेखर बालरामायण नाटक लिखने छ्लाह। ओहि नाटकक ५ म अंक में कठपुतरीक उल्लेख केने छथि। मय दानवक प्रधान शिष्य विशारदक निर्मित कठपुतरी में बजबोक शक्ति रहैत छलैक। एहि तरहें बालकक खेलो में एहि विद्याक प्रसार छल।

आदि शक्ति महामाया पार्वतीक सम्मुख महादेव नटराज नाम धारण कै, मनोरञ्जनार्थ डमरूक त्रिगुणात्मक ताल में ताल मिलबैत, थेइ थेइ करैत ताण्डव नृत्य केने छलाह।

नटनागर नन्दकिशोर मुरलीक मधुर रवक सुधावर्षण करैत ब्रज-युवती-यूथ कें उन्मत्त एवं हृदय हरण करैत, कालिन्दीक पुण्य कूल पर चन्द्रिका-चर्चित शरद-निशीथमें उन्मादिनी प्रोद्भिन्न ब्रजाङ्गनाक संग झूमि झूमि कै रास लीलाक सुखद नृत्य केने छथि।

जनक नन्दिनी-नन्दन युगल कुमार लव और कुश, वाल्मिकिक शिक्षा सँ रामायणक अभिनय केने छथि। मिथिला में नाटकक प्रथा पूर्वकालहि सँ प्रचलित अछि।

समाजक केन्द्रित कुरीतिक सुधार जतबा और जेहन अनायास पूर्वक नाट्यकला द्वारा होइछ, ओहेन व्याख्यान प्रभृतिक द्वारा नहिं होइछ। रंगमंचक चतुर खेलाड़ी मनोरञ्जक सुन्दर अभिनय द्वारा दर्शक कें मनोरंजक दृश्य देखबैत कुरीतिक विषाक्त परिणामक दिग्दर्शन करबैत, अन्त में उचित मार्गक अनुसरण करा दैछ।

पात्र यदि युधिष्ठिरक अभिनय करथि तँ हुनका रंगमंच पर ई ज्ञान राखब परम आवश्यक छैन्हि जे हम अमुक व्यक्ति नहिं प्रत्युत युधिष्ठिर थिकहुँ। कारण अभिनय और अभिनेता दुहू कैं एकात्म भाव आवश्यक।

मिथिला में पूर्व में ठीक एही प्रकारक अभिनय होइत छल। मैथिल कोकिल विद्यापति पुरुष परीक्षा में "नृत्य-विद्याकथा" में लिखलन्हि अछि जे गौड़ देशक राजा लक्ष्मण—सेनक दरबार में एक नर्तक पहुँचलाह। उमापति नामक राज मन्त्री हुनका व्यङ्ग कैलकैन्ह जे "अपने नटं को नटः?" नर्तक उत्तर देलथिन्ह जे 'नटः!' राजा कहलथिन्ह से सिद्ध करु। तखन नर्तक ओहिठाम नाटक कैलन्हि। रामक रुप धै रंगमंच पर अभिनय करैत राम में तन्मय भै गेलाह जे राम हमहिं छी; ओ राम में एतेक लीन भै गेलाह जे ओहिठाम हुनक शरीर त्याग भै मुक्ति प्राप्त कैलन्हि। कविवर विद्यापतिए क शब्द में सुनल जाय—

सारण्यानी सवटविटपा हन्त सैव स्थलीयं
सीता सैव स्पृशति हृदयं सोऽहमेवास्मि रामः।
एवं कान्ता विरह विलपन्रामतादात्म्य-दिग्धो
नृत्यावेशान्मुनिरिव नटो विष्णु-सायुज्यमाप॥

चन्द्र कवि एकर अनुवाद में लिखै छथि जे—

सैह विपिन वट वृक्ष से, स्थल भल सैह विशाल।
सैह राम हम जानकी, सैह थिकथि एहि काल॥
सैह थिकथि एहि काल हृदय करइत छथि स्पर्शन।
सैह मनोहर देश वेश होइत अछि दर्शन॥
कान्ता विरह विलाप कैल नट नचइत जैह।
रामचन्द्र तादात्म्य मुक्ति कौं पाओल सैह॥

समस्त उन्नत भाषा में नाटकक विपुलता अछि। अंगरेजी साहित्य शेक्सपियरक नाटकावली सँ अलंकृत अछि, तँ संस्कृत कालिदास-भवभूतिक रचना सँ प्रसिद्ध अछि। मैथिलीयो में रंग मंच पर अभिनय करबाक योग्य नाटकक अभाव नहि अछि। यथा—

नाटक नाम—	लेखक नाम—
१ पारिजात-हरण	उमापति उपाध्याय
२ उषाहरण	हर्षनाथ झा
३ नल चरित्र	गोविन्द मिश्र
४ प्रभावती हरण	भानुनाथ
५ सीता स्वयंवर	कान्हर दास
६ सावित्री नाटक	लाल दास
७ सुदर्शन नाटक	
८ साम्बवती पुनर्जन्म	जीवन झा
९ सुन्दर संयोग	जीवन झा
१० रुक्मिणी स्वयंवर	रमापति
११ मिथिला नाटक	मु० रघुनन्दन दास
१२ दूताङ्गद व्यायोग	मु० रघुनन्दन दास
१३ बन्धु विग्रह	श्री हरिनन्दन ठाकुर सरोज

(ई सूची पूर्ण नहिं अछि। हम किछु औरो अनुल्लिखित नाटकक उल्लेख करैत छी।—

उषाहरण (प्राचीन)	(देवानन्द)
माधवानन्द	(हर्षनाथ)
गौरी परिणय	(कन्हाराम दास)
जानकी परिणय	(प० तेजनारायणझा)
रुक्माङ्गद	(जयानन्द)
आनन्द विजय	(राम दास)
कलिधर्म प्रकाशिका	(शशिनाथ)
श्रीकृष्ण केलि माला	(नन्दीपति)
महाभारत	....
मान चरित	(गोकुलानन्द)
विद्याविलाप	....
माधवानल कामकन्दला	....

नेपाल में मैथिलीक कतोक नाटक अछि, जाहि में किछु 'नाटक' बंगीयसाहित्य परिषद' (कलकत्ता) प्रकाशित करौने अछि। एकर अतिरिक्त जर्मन में जर्मन भाषा में अनुवादित "हरिश्चन्द्र नृत्यम्" नामक नाटक प्रकाशित अछि जे मैथिली नाटक थिक। —सम्पादक]

मिथिला में प्राचीन काल सँ नाटकक प्रचार अछि। आजहुँ तक मिथिला में नटुआ सब रासलीला कदम्बलीला करैत अछि। मिथिला में नाटकक प्रचारक प्राचीनता विषय में अनेक प्रमाण उपलब्ध होइछ।

हम उपर्युक्त नाटक क किछु क अंश उद्धृत करैत छी। उषाहरण नाटक क रचयिता हर्षनाथ कवि छलाह। ई नाटक मैथिली-संस्कृत मिश्रित अछि। एक दूटा पद्य अपने लोकनिक सम्मुख उपस्थित करैत छी।

यथा—

उसरल जगभरि शिशिर पसार
बसल सरस ऋतु पति बनजार।
पसरल सौदा मधुरस फूल
अभिनव सौरभ प्रेम अमूल।
तौलल दखिन पवन विचारि
भमि-भमि माँगल भ्रमर भिखारि।

पिक-कुल करत दलालक काज

गाहक तरुणी तरुण समाज।

साहित बचन लोचन दै दाम

किनत सिनेह रतन सनकाम।

रसमय हर्षनाथ कवि भान

नृप लक्ष्मीश्वर सिंह रसजान।

एहि पद्य में कवि वसन्तक वैभव कें बाजारक रूप दै वर्णन कैलन्हि अछि। एहि में "भमि भमि माँगत भ्रमर भिखारि" और गाहक तरुणी तरुण समाज" अत्यन्त भाव व्यञ्जक अछि।

पुनः—

"उपचित हृदय अनङ्ग, सखि रमनि सखि सङ्ग।
मन्द मन्द उपचार, जनि आलस कुचभार।
अलस नयन चितचोर, जनि मद भरल चकोर।
बोल बचन हँसि मन्द, अमिय बरिस जनि चन्द।
हर्षनाथ कविभान, मिथिलापति रस जान।"

उषाक स्वप्न वर्णन में कवि कोन रूप कैलन्हि अछि, से सुनल जाय।

सपन देखल एक नागर धीर, तनि मोर धर्षित कैल शरीर।
कुजल चिकुर फोयल मोर चीर, अभरण एक रहल नहि थीर।
आनन मलिन घाम भरि गेल, कोन पुरुष मोहि सङ्गम देल।
भल छल मरण होयत बरु आज, के की कहत तकर होय लाज।
रस मय हर्षनाथ कविभान, नृप लक्ष्मीश्वर सिंह रस जान।

पुनः उषाक विरहावस्थाक वर्णन कवि केने छथि—

सखि हे करह एकर उपचारे।
रहत विकल मन दहत सतत तन चान किरण दुरवारे।
कुमुद-बन्धु छिर-सिन्धु तनूभव कुन्द कुसुम सब धामे।
एहन चान तन दहत सतत छन अलित हृदय परिनामे।

आब उमापति उपाध्यायक पारिजात हरण नाटकक एक कविता सुनल जाय जे केहन उत्कृष्ट भावक अछि।

पानवङ्खा नवमानस थापल
मानव सुखद भुजंग घरा।
अमिय सार हरि अविरल हो मन
हँसल कमल सुर असुर नरा।
अवगुन परिहरि हरखि हेरु धनि
मानक अवधि विहाने।
हिम गिरि कुम्मरि चरण हृदय धरि
सुमति उमापति भाने।

रुक्मिणी-परिणय नाटक नितान्त सरल एवं रोचक अछि।

यथाः—

जगत जलधि-तट तरि नहि होय
शिवक भजन बिनु आओर न कोय।

अर्थात् संसार सागर सँ पार पैबाक हेतु शिवक भजन छोड़ि अन्य कोनो उपाय नहि।

विद्या विलाप नामक नाटक में नान्दीक मंगला चरण अछि—

जय जय शंकर देव नटेश्वर, बह शिर सुरसरि धार।
चन्द्र ललाट शोभित अच्छ, निरमल उरपर फणि-पति हार॥
गौरि कलित तनु अपने दिगम्बर, तीनि नयन सुविराजे।
असन धुथुर फल बसन बघम्बर, पूरथि सुरगण काजे॥
भसम लेपित अङ्ग हर करुणामय, शूल डमरु कर ईश।
शंख तुहिन तुल देह वरणातुम, गल रह कालिन्द बीश॥
रघुकुल कुलमणि भूपतीन्द्र नृप, वरणित एहन अनूपे।
चारि पदारथ दायक ईश्वर, मुनिगण भाषित रूपे॥

पुनः नायिकाक जलक्रीड़ाक वर्णन की विलक्षणता सँ कवि कैलन्हि अछि—

सजनी सरोवर खेलायब रंगे।
मत्त मराल विहार कैल जल, देखैत भेल उलास।
चारु चकइ चकवा दुहुँ तीरहिं, करै सुललितविलास॥
जाहि जूही फूल सित रुचि विकसित, तोड़ब सब मिलि आज॥

महाभारत नाटक ठेठ मैथिली में अछि। नाटकक भाव और भाषा दून उत्तम अछि। द्रौपदीक उक्ति कतेक सुनल जाय—

पहु मोर प्राण आधार।
अपुरुब सुन्दर प्रेमक सागर, प्रियतम काम समान।
नारि अलपमति कोन गति वर्णब, तोहे प्रभु गुणक निधान॥
पुनमत पुनमति नारि नागर दुहु बीहि मिलाओल आनि।
भुवन विदित नृप सुरपति तुलरुप भूपतीन्द्र इहो बानि।

पं० जीवन झा क रचित साम्बवती-पुनर्जन्म, और दोसर सुन्दरसंयोग नामक सुखान्त नाटक अछि।

साम्बवती पुनर्जन्म क विषय हरिवंश सँ लेल गेल अछि। एहि मे-दू मित्र पढ़ि-गुनि कै अर्थ संग्रहक हेतु एक संग देशान्तर प्रस्थान कैलन्हि। एक क्यो राजा कें नियम छलैन्ह जे गौरीशङ्कर क भावना कै दम्पतिक पूजा करथि। ई दून् गोटे एक पुरुष, दोसर स्त्री क रूप धारण कै दान ग्रहण कैलन्हि। दान-ग्रहण करितहिं स्त्रीरूप धारी पुरुष वास्तव में स्त्रीये भै गेलाह। तथा—

पहिले पहिल भेलहुँ एकट्ठा।
लगले राधल हँसी ठट्ठा॥

सुन्दर संयोग नाटक क नायक देवनगर निवासी सुन्दर झा वैद्यनाथ वास करैत छलाह। शिवरात्रिक अवसर पर सुन्दर झा क स्त्री, सासु, सब वैद्यनाथ गेलीह। सुन्दरझा विवाहक यात्रा छोड़ि दोसर बेर सासुर नहिं गेल छलाह। सरस्वती, अभिरामी, कुसमी, सरोजनी, हरदत्त पंडाक ओहि ठाम डेरा कैलन्हि, संयोगवश शिवरात्रि दिन अधिक मेलाक कारणे सुन्दर झाक स्त्री सरला मूर्छिता भै गेलि। सुन्दरझा चिन्हारै—पड़िचै तावत नहि कैलन्हि। किन्तु सरला कें मूर्छिता-वस्था में देखि सुन्दर झाक हृदय मूकवेदना सँ व्याकुल भैगेल।

सुन्दरझा जखन सरलाक जिज्ञासा करै डेरा पर गेलाह तखन सरलाक माय सरस्वती सरला सँ कहैछ—

दाइ चेत करू, हिनका चिन्हिओन तँ कै खिकाह थैह पण्डित बाबू प्राण बचौलन्हि अछि।

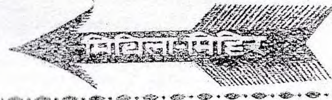
सरला स्वाभाविक लज्जाक कारणे स्थिर नहिं रहि सकल। आवेग और आवेश और प्रेमाधिक्यक कारणे उठि गेलि छलि, किन्तु ओहि रहस्य के गुप्त रखबाक हेतु व्याज सँ बाजलि 'माँ गे, पानि पीब"।

एहि नाटकक चरित्र-चित्रण सम्पूर्णतः स्वाभाविक अछि।

मिथिला नाटक-सामाजिक नाटक थिक। एकर लेखक थिकाह सिद्धहस्त मु० श्रीरघुनन्दन दास। ई नाटक विद्यापति जयन्तीक अवसर पर अभिनीतो भेल अछि। नाटक अत्यन्त मनोरञ्जक अछि।

एहि में मिथिलाक गौरवक पूर्ण चित्रण अछि। कुम्हारक पाण्डित्य देखि एक बंगाली कैं नत-मस्तक भै कहै पड़लैन्ह—जे 'धन्यास्ति मिथिला यत्र कुम्भकारोऽपि पण्डितः'

काशीक एक विद्वान् जे मिथिला में परीक्षक भै पदार्पण कैने छलाह हुनका मिथिलाक लकड़ि-



हारा और घसियाराक विद्रत्ता देखि उनटे वैरे प्रत्यागत होवै पड़लैन्ह । कलिक क्रोध एवं हुनक दरबारीक उद्योग तथा धर्म,सन्तोष सुमतिप्रभृति क वर्णन विलक्षण अछि ।

मिथिलाक वेदना-विद्ध-विलाप मर्मान्तिक अछि । विकौआ क प्रसङ्ग में—

बबुअन—औ भाइ—

"जेजन कैल जमाय विकौआ,
तनिक मान धन नाश ।
दुरवचनहिं आदर हो तनिका,
सब खन चित मे त्रास ।

ज्ञान—हौ ई कोनो बूड़िक बनाओल थिक —

'जे जन कैल जमाय बिकौआ,
सैह यशी धनवान ।
हरि सिंह देवक नीति निवाहक,
हुनकहि अछि किछु ज्ञान ।

बबु०-औ भाई, देखैत छी लाले धोती की फेरि कतहु ?

ज्ञान—हे हौ, एह शुद्ध में एक गोट भाबी छलैक से मै गलैक । इत्यादि ।

वास्तव में ई शिक्षाप्रद नाटक थिक ।

बन्धु-विग्रह ई प्रहसन थिक । एहि नाटक में समाजक कुरीति तथा बन्धु-विग्रहक विषाक्त परिणामक दिग्दर्शन कराओल गेल अछि । मंगलाचरणक बाद नटी और सूत्रधार नाटकक परामर्श करैछ । तदनन्तर सामाजिक घटनाक वर्णन अछि यथा—

ब०-कहू औ बुचन भाइ, रतुका भोजक हाल ।

बु०-(व्यंग करैत) हौ की कहियौ, भात दालिक भोकारा घीवक फुहारा, दहीक पोचारा, दूधक पनारा, गप्प सप्पक सहारा सँ पेट अफरल अछि । वैद्क ओहिठाम पाचक लै जाइछी । येह तँ बालकृष्ण बाबू अबै छथि हिनका सँ बुझि लैह ।

रतुका भोज केहन भेल बालकृष्ण बाबू (मुहटेढ़कै)

बा०-ई-ह शुल्फा सन सन भात, डिठिवरनक दालि कंठ कैँ चाँछि देलक और की कहियऽ भोजे कतहुँ भोज हो ।' ई हास्य रस-प्रधान थिक ।

स्थानाभाव सँ प्रत्येक नाटक क परिचय और उदाहरण आदि नहिं दय सकलहुँ । मैथिली में नाटक क संख्या कम नहिं अछि । यदि प्राचीन ग्रन्थ क खोज हो तँ सम्भव थिक बस्ता में बान्हल, दीवार लागल कतेको पेटारी सँ मैथिल क ग्रन्थ-रत्न उपलब्ध कयल जा सकैछ । किन्तु एम्हर खोज क अभाव ओम्हर पोथि क पुस्तकालय कैं शोभा बढ़ैवा सँ अधिक कीट चर्वण करैवा क अनुरागी विलक्षण व्यक्ति क मनोभाव सभ विपरीते अछि । की मैथिली नाटकावली क खोज सङ्कलन-प्रकाशन आदि क हेतु सहृदय मैथिली साहित्यानुरागी कटिबद्ध होएताह ?

मैथिली में प्राचीन नाटक अछे । कतेको नवीन लेखक क ध्यान एहि दिशि आकृष्ट भए रहल छन्हि । किन्तु मैथिली क रङ्ग मञ्च क कोनहु प्रबन्ध नहिं रहला सँ एहि दिशा में गति अवरुद्ध अछि । कोनहु पर्व एवं सभा सम्मेलन क अवसर पर यद्यपि शिक्षित नवीन मण्डली क उत्साह एहि दिशि देखल जाइ छन्हि, किन्तु सर्वत्र नहि, अधिक समय में नहिं । वस्तुतः केवल (Ameture) नाट्य परिषद् सँ एहि कला क प्रसार नहिं भय सकैछ ।

किछु व्यावसायिक नाटक कम्पनी अछि, किन्तु ओ सभ व्यावसायिक लाभ क विचार सँ मैथिली नाटक क अभिनय में प्रवृत्त नहिं देखल जाइछ । तखन मैथिली नाटक क प्रोत्साहन कोना होएत, ई एक विचारणीय प्रश्न थीक ।—सम्पा०



पुष्पवाटिकामें श्रीसीताराम

GITA PRESS, GORAKHPUR.

जानकी-जन्मोत्सव

श्री धनुषधारी दास 'मैथिली वाचस्पति'

प्राचीन गौरव-सम्पन्न कोनो समुन्नत देश यदि पतन-पङ्क में पतित भै जाय तौं ओकर उद्धारार्थ पुनः उन्नतिक शिखर पर आसीन करबाक प्रधान साधन थिक ओहि देशक गौरव-पूर्ण आदर्श कें सर्वसाधारण क सम्मुख उपस्थित करब ।

उत्तम चरित्रक स्मरण सँ, महापुरुषक जीवन क चिन्तन सँ एवं दिव्य विभूतिक प्रति श्रद्धा सँ—समाजक सुप्त भावना जाग्रत् होइछ । वास्तव में प्राचीन गौरवक स्मृति दुर्बल जातिक हेतु एक शक्तिदायिनी " टानिक " थिक ।

यद्यपि मिथिला क भूमि एखनहुँ सुजला सुफला तथा सस्य-श्यामला अछि, किन्तु एकर वास्तविक विशिष्टता लुप्तप्राय देखना जाइछ, जे एक मात्र समस्त मिथिला निवासी लोकनिक अकर्मण्यताक विषाक्त परिणाम थिक । यद्यपि हमरा लोकनिक पवित्र प्राचीन समय गौरवपूर्ण अवश्य अछि, एक नहिं अनेक अनुपम आदर्श सँ मिथिला क प्राचीन इतिहास प्रावृट्-सरिता क समान पूर्ण तथा सरस अछि ।

किन्तु वर्तमान कालक दुष्काल में ओहि स्मृति-सलिल सँ समस्तदेश में सरसता आनबाक थिक । जाहि देश क राजसिंहासन कें राजर्षि योगिराज महाराज जनक पवित्र कैने होथि, जे देश जग-जननी श्री जानकी क पवित्र जन्मभूमि होयबाक अक्षय-गौरव प्राप्त कैने हो, जे देश दर्शन शास्त्रक जन्मदाता एवं अनेक धुरन्धर शास्त्रकार क साधनाभूमि होयबाक सौभाग्य प्राप्त कैने हो, जे भूमि जगद्विजयी स्वामी श्री शङ्कराचार्य क शास्त्रार्थ में परास्त कैनिहारि भगवती भारती सदृश विदुषी लोकनिक क्रीड़ा स्थली-रूप सँ गौरवान्वित हो, ओहि देशक प्राचीन आदर्श महत्ताक सम्बन्ध में और अन्य प्रमाणे की देल जा सकैत अछि ?

किन्तु अत्यन्त शोक एवं लज्जा क विषय थिक जे आइ हमरा सबहिं एहि प्राचीन पवित्र स्मृति सब कें स्वप्न-समान बूझि एहि सब सँ अज्ञात भेल जाइत छी । जाहि सँ हमरा सबहिक उन्नति-पथ में एक प्रकारक महान् बाधा उपस्थित भै रहल अछि ।

मिथिला सर्वदा धर्म-प्राण देश रहैत आयल अछि, एवँ आबहुँ एहु शोचनीय दुरवस्था में धर्मक रक्षा करब मैथिल (मिथिला में बसनिहार) हिन्दू मात्र अपन प्रधान कर्तव्य बुझैत छथि । अखनहुँ एतय धार्मिक उत्सव सब अधिक स्थान में विराट् समारोह-पूर्वक कैल जाइत अछि कृष्णा - ष्टमी, दुर्गा-पूजा, श्यामा-पूजा, एवं रामनवमी इत्यादि, अनेक धार्मिक महोत्सव प्रचारित अछि ।

किन्तु वचनातीत परितापक विषय थिक जे " जानकी जन्मोत्सव " विशेष समारोह-पूर्वक मिथिलाक प्रत्येक घरमें होयबाक कथे कोन,कतहु एकर चर्चा सुनबाक सौभाग्य प्राप्त नहि होइछ । एतबा दूर धरि जे महाराज जनकक पवित्र राज-धानी, जगज्जननी श्रीजानकीजीक नैहर जनकपुरहु में जाहि प्रकाण्ड समारोह पूर्वक विवाह-पञ्चमी

तथा रामनवमी मनाओल जाइछ, तकर प्रायः शतांशो " जानकी-जन्मोत्सव " क व्यवस्था नहिं कैल जाइछ।

एहि सम्बन्ध में पूर्ण अनुसन्धान कै लेलाक अनन्तर हम एहि परिणाम पर पहुँचलहुँ अछि जे मिथिलान्तर्गत अन्य जिला क कथे कोन, मिथिलाक प्रधान केन्द्र दरभङ्गा-जिला-निवासिओ लोकनि में प्रतिशत दशो व्यक्ति प्रायः एहन नहिं भेटताह जनिका लोकनि कैँ श्री जानकी जीक जन्म-मास एवं जन्म-तिथि क पूर्ण ज्ञान होइन्ह।

आब एहि स्थान पर ई विचार करब परमावश्यक प्रतीत होइछ जे जाहि जगज्जननी श्री जानकी जीक जन्म-ग्रहण करबहिक कारणे मिथिला स्वर्ग विनिन्दक श्रेष्ठता प्राप्त कैलक अछि ताही धर्म-प्राण मिथिला में " श्री जानकी-जन्मोत्सव " क चर्चो मात्र नहिं होयब, समस्त मिथिला-निवासी क हेतु बड़ पैघ कलङ्क थिक।

जनिक जन्म-ग्रहण करबाक प्रसादात् समस्त-मही-मण्डल में मिथिला क पवित्र कीर्ति-पताका अबाधितरूपेण फहरा रहल अछि, ताही जगज्जननी श्री जानकीजीक जन्म कहिया भेलन्हि तकरो यथार्थ ज्ञान नहि रखैत यदि हमरा लोकनि मिथिला-निवासी होयबाक गर्व करी तौँ एहि सँ अधिक धृष्टता एवं घृणा क विषय और की भै सकैत अछि ?

हमरा तौँ एहि बात सँ अत्यन्त आश्चर्य होइत अछि जे " श्री जानकी-जन्मोत्सव " क सम्बन्ध में समस्त मिथिला-निवासी क एहन चिन्तनीय उदासीनता कियैक ? एहिपर सम्पूर्ण संसार उपहास करैत कहि सकैछ जे—मैथिल अपन गौरव-पूर्ण प्राचीन स्मृतिमालक रत्नाकरबाक एवं ओहि सँ प्रचुर लाभ उठैबाक लेशमात्रो योग्यता नहिं रखैत छथि।

आन कोनो प्रान्त-निवासी हमरा लोकनि सँ ई प्रश्न करथि जे " अहाँ लोकनि मैथिल भै व्यापक रूपेण घर-घर "श्री जानकी—जन्मोत्सव" विशेष समारोह पूर्वक कियैक नहिं करैत छी ? तखन लज्जा सँ माथ झुकायब छाड़ि अन्य उत्तर नहिँ दय सकब ?

किछु दिन पूर्व " मिथिला-मित्र " क एक विशेषाङ्क " जानकी-जन्माङ्क " क नामसौं प्रकाशित कयल गेल। ओहि में " जानकी जन्मोत्सव " क देशव्यापी आवश्यकता क सम्बन्ध में पूर्ण प्रकाश राखल गेल छल जकरा कार्य-रूप में परिणत अद्यापि नहिं कयल गेल अछि।

अतएव आब निखिल मिथिला-निवासी-जनता सँ तथा अपना देशक श्रीमान् तथा यावतो विद्वान्, नेपाल-सरकार एवं जनकपुरक श्री जानकी-मन्दिरक व्यवस्थापक तथा महन्थ महोदयगण खूब समारोह पूर्वक " श्री जानकी--जन्मोत्सव " अवश्य प्रारम्भ कय देथि।

यदि आवश्यक एवं उचित प्रतीत हो तँ एक समितिक स्थापना कय एहि सम्बन्ध में उच्च आन्दोलन उठाबथि।

मिथिला में स्त्रीशिक्षा

प० श्री विद्यानन्द ठाकुर एम० ए० बी० एल

शिक्षित होयब जाहितरहें पुरुष कें आवश्यक ताहि तरहें स्त्रीगणहुँ कें शिक्षिता होएब नितान्त उचित,—यैह शास्त्रकार क मत छैन्हि। कारण ई अछि जे संसार-यात्रा में पुरुष सँ बेशी स्त्रीगण क हाथ रहैत छैन्हि। घर कें सम्हारब, गर्भ काल सँ ज्ञान प्राप्त क अवस्था धरि बच्चा क पालन, सब सँ उचित व्यवहार राखब, स्त्रीगणैक कार्य थिक। पुरुष विशेष अपना इच्छा सँ अन्यत्र जाइत छथि, वा कोनो व्यावहारिक कार्य करैत छथि। किन्तु स्त्रीगण कें अपना इच्छा क प्रतिकूल, अपरिचित देश में अपरिचित मनुष्य कें अपनाय रहय पड़ैत छैन्ह। एही समक उद्देश्य सँ प्राचीन शास्त्रकार स्त्री कें सुशिक्षित बनायब लिखने छथि। ई स्त्री-शिक्षा आदि युग में प्रथमतः मिथिलहिं सँ प्रारम्भ भेल। साधारण शिक्षा सर्व साधारण कें प्राप्त होइत छन्हि। प्राचीन काल में विशेष विशेष कलायुक्त शिक्षा, विभिन्न देशीय शिक्षा स्त्रीगण प्राप्त करैत छलीह। शास्त्र-पुराणक अतिरिक्त दर्शन शास्त्रहु क ज्ञाता स्त्रीगण होइत छलीह। जकर प्रमाण में मैत्रेयी-गार्गी आदि छथि।

प्राचीन शास्त्रकार क तँ ई निर्देश छैन्हि जेः—

पुत्रं पुत्रीं प्रयत्नेन पाठयित्वा प्रयत्नतः।
यथोक्तविधिनासार्द्धमरण्यं निवसेद्गृही॥ [..]

स्वयं यत्नपूर्वक बेटा-बेटी कें परिश्रम सँ पढ़न करनाय गृहस्थ नियमपूर्वक जंगलवास करथि। वानप्रस्थ आश्रम में जाथि।

शास्त्रक तँ एतेक प्रतिबन्ध अछि जेः—

"योऽल्प धीर्मूर्खकन्यायाः पाणिगृह्णाति मोहतः।
.... रौरवं स व्रजत्यधः।

अर्थात् जे अज्ञानी मनुष्य मोहवश मूर्खा कन्या सँ विवाह करैत छथिओ अवश्य दुःख क भागी भै रौरव नरक में वास करैत छथि। तँ वर्त्तमानो समय में स्त्री शिक्षा एक महत्त्व क विषय अछि।

भारत वर्षक और और प्रान्त में स्त्री शिक्षा क जतेक प्रचार भेल अछि अथवा भय रहल अछि ताहि, हिसाब सँ मिथिला बहुत पछुआएल अछि। किन्तु एतबा धरि अवश्य जे मिथिला क स्त्री-समाज में निरक्षरता बहुत कम भय रहल अछि। उच्च श्रेणीक समाज में सैकड़ा प्रायः एक आध स्त्रीगण निरक्षर भेटथि। एकर अतिरिक्त प्राइमरी मिडिल पास स्त्रीगण लोकनिक संख्या से हो क्रमहिं नहिं रहल अछि, और कतहु कतहु अंग्रेजी शिक्षाक गन्ध से हो बुझि पड़ैत अछि। यद्यपि एखन धरि स्कूली शिक्षाक प्रचार पूर्ण रूपें मिथिला में नहिं भेल अछि। किन्तु क्रमशः समाज ओहि दिशि, उन्मुख भय रहल अछि।

वर्तमान समयक शिक्षित नवयुवक मण्डली जे स्वयं पाश्चात्य-शिक्षा तथा सभ्यताक पक्षपाती अछि, से तँ ओहि तरहक शिक्षाक समर्थन करत, जाहि शिक्षाक रंग में ओ अपने रंगल अछि।

किन्तु ई बात निर्विवाद अछि जे पाश्चात्य शिक्षाक प्रभाव मँ सभकैं स्वतंत्रता क ज्ञान होमै

लगैत छैक। स्वतंत्रता क ज्ञान होयब खराब वस्तु नहिं थीक। किन्तु समाजक हितार्थ अपन संस्कृति क अनुकूल स्त्रीगण लोकनि कैं कतेक स्वतंत्रता होयबाक चाही, तकर विचार कर्त्तव्य। अस्तु, आब देखबाक थीक जे शास्त्रकार लोकनि एहि विषय में की कहैत छथि।

"अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम्,
विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे॥
सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः॥
स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च।
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति॥"

(मनु अ० ९)

उपर्युक्त श्लोक क भाव स्पष्ट अछि। स्त्रीक स्वच्छन्दता क हेतु स्मृतिकार पूर्ण रूपें सावधान कय रहल छथि।

सम्प्रति नवीन रोसनीक येव्यक्ति छथि तनिका लोकनिक ई वक्तव्य छैन्हि जे बहुत दिन पूर्व अर्थात् वैदिक काल तथा ओकर बाद पुराण क समय तक मिथिला में तथा भारतवर्ष क अन्यान्य प्रान्त सब में स्त्रीगण लोकनि कैं पूर्ण स्वतंत्रता छलैन्हि, तखन आइ काल्हि ओहि तरह क स्वतंत्रता हुनका कियेक नहिं रहतैन्हि।' एहि पूर्व पक्षक पूर्वार्द्ध कैं हम स्वीकार करैत छी; किंतु उत्तरार्द्ध कैं स्वीकार करबाक में हमरा वक्तव्य ई जे ओहि समय देश क तथा सामाजिक संस्था तथा वर्तमान समय क सामाजिक स्थिति में आकाश पातालक अन्तर अछि। सुतरां ओहि समयक अनुकरण करबा योग्य हमरा लोकनि सम्प्रति कोनो तरहें नहिं छी। जाहि जाहि तरहें सामाजिक संस्था में सुधार क आवश्यकता भेलैक, ताहि ताहि तरहें शास्त्रो में परिवर्तन होइत गेलैक-अर्थात् श्रुति (वेद) क पश्चात् स्मृतिक प्रादुर्भाव भेलैक। अथच सम्प्रति हमरा लोकनि आचार विचार में पहिने स्मृति कैं मानैत छी। तें ओहू दृष्टि सँ एहि सब विषय कैं देखब हमरा लोकनिक कर्त्तव्य थीक।

और दोसर बात ई जे सम्प्रति जाहि पाश्चात्य देश में स्त्रीगण लोकनि कैं पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त अछि, ताहू देश सब में ओहि स्वतंत्रता सँ अनर्थ कैं देखि तत्तद्देशवासी लोकनि ओकर निराकरण करबाक निमित्त पूर्ण चेष्टा कय रहलाह अछि। कहबाक तात्पर्य जे ओहि सब अनर्थ कैं देखिओ कय नवयुवक लोकनि स्त्रीगण लोकनिक स्वतंत्रताक निमित्तें उत्सुकता देखा रहल छथि। ई बड़े आश्चर्य क विषय थीक। हुनका लोकनि तँ स्वयं पाश्चात्य शिक्षाक चकचौन्ही में अन्ध भय रहल छथि। सुतरां हुनका लोकनि एहि विषय में यदि मार्ग प्रदर्शक होथि तँ "अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः" सैह होयत। पाश्चात्य सभ्यताक दृष्टि-कोण सँ एहना एहना स्थान में कार्य नहिं चलि सकैत अछि। स्वयं अपना लोकनिक जे शास्त्र अछि तकर मथन करू, तखन यथार्थ तत्त्व बुझबा में आयत।

ई बात अवश्य जे वैदिक समय क पश्चातो अपना देश में स्त्रीशिक्षाक प्रचार छल। परन्तु ओ सब शिक्षा अपना घरे पर पिता अथवा भ्राता

इत्यादिक द्वारा प्रदान कयल जाइत छल। एहिठाम 'शिक्षा' शब्द दू अर्थ में व्यवहार कैल जा रहल अछि। 'शिक्षा'क एक अर्थ-घर आश्रम चलैब, शिशुक लालन-पालन इत्यादि, दोसर अर्थ शास्त्र में पाण्डित्य। हमर कहबाक अभिप्राय जे एहि दूनू तरहक शिक्षा स्त्री गण लोकनि कैं अपना घरे पर भेटैत छलैन्हि। एहि निमित्त कतहु अन्यत्र जयबाक प्रयोजन नहिं पड़ैत छलैन्हि। परन्तु आइ काल्हि से बात नहिं अछि। जे महाशय लोकनि शिक्षित छथि, तनिका लोकनि कैं अपनै सँ फुरसति नहिं। और जे लोकनि अशिक्षित छथि तनिक कथे नहिं।

उपर्युक्त दूनूतरहक स्त्रीशिक्षा में आपत्ति नहिं, किन्तु ई स्त्रीशिक्षा कोन रूपक कतय तथा ककरा द्वारा हो, ई प्रश्न महत्त्वक अछि, जाहि पर सभा कैं विचार कर्तव्य। हमरा जनैत पाश्चात्य देश क उच्चशिक्षा हमरा लोकनिक ओहिठामक स्त्री-वर्गक हेतु कखनहुँ हितप्रद नहिं। हँ, अपना देशक पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त कयला पर तुलनात्मक विद्याभ्यासक निमित्त यदि कोनो स्त्रीगण कें अन्य देशीय शास्त्र पढ़बाक इच्छा होइन्ह तँ सहर्ष पढ़ि सकैत छथि। परन्तु एहि तरहक दृष्टान्त हजार में एक भेटै वा नहिं। हमरा लोकनिक सकल साधारण स्त्री गण लोकनि कें कोन तरहक शिक्षा देल जाइन्ह एहि बातक विचार पहिने करब आवश्यक।

स्त्रीगण लोकनि कें जाहि तरहक शिक्षा देल जाइन्ह, से हमरा जनैत मनुस्मृतिक निम्नलिखित श्लोक में साधारणतया भेटैत अछि। यथा—

'अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत्।
शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्यवेक्षणे॥

अर्थात् रुपैया-कैञ्चा राखब और खर्च करब, आय-व्ययक हिसाब-किताब राखब स्त्रीवर्ग कें परमावश्यक छन्हि। अगिला चरण में मनु महाराज पहिने कहैत छथि जे शरीर तथा द्रव्यादि उपयोगी वस्तु-जात सभ कें साफ रखबा में स्त्रीगण लोकनि कैं नियुक्त करबाक चाही। अतएव स्वास्थ्य रक्षाक ज्ञान राखब आवश्यक। पुनः भानस करब कर्तव्य कहल गेल अछि। यथार्थ में बूझी तँ शुद्ध सात्विक तथा पवित्र भोजन करबाक जनिका इच्छा होइन्ह से स्त्री वर्ग कें एहि शास्त्र में पूर्ण रूप सँ शिक्षित करथि। एहि सँ निश्चित भेल जे गृहस्थाश्रमक समस्त ज्ञान राखब आवश्यक छन्हि।

हमरा जनैत साधारण तथा एहि सँ वेशी शिक्षाक स्त्रीगण लोकनि कें आवश्यकता नहिं. यदि एतबैक शिक्षाक प्रबन्ध स्त्री-वर्गक निमित्त कैल जाय, तँ हुनका लोकनिक अवस्था में बहुत सुधार भय जयतैन्ह तथा समाज और देशक असीम उपकार होयत। एतेक शिक्षा तँ घरो पर निर्बाधरूपें भय सकैछ। यदि गृहपति एहि दिस किछुओ ध्यान देथि।

विश्वविद्यालयक डिगरी प्राप्तकय इतस्ततः फिरब स्त्री लोकनिक शिक्षाक उद्देश्य नहिं होयबाक चाही। पूर्वकाल में लखिमा ठाकुराइन तथा प्रसिद्ध मण्डन मिश्रक धर्मपत्नी भारती परम विदुषी छलीह। परन्तु ई कतहु नहिं भेटैत अछि जे ई लोकनि कोनो विद्यालय वा स्कूल आदि में शिक्षा प्राप्त कयने होथि।

आशा अछि जे मिथिला अपन सभ्यताक अनुरूप स्त्री शिक्षाक दिस अग्रसर होयत।

—※※—

मिथिला क मिहिर सँ

प्रो० श्रीयुत हरिमोहन झा जी एम० ए०

१

हे मिहिर ! फोड आग्नेय नेत्र
बरसाउ तेज वैभव विशाल ।
सूतलि सितहलि सिहरलि मिथिला
पर तानू स्वर्णिय रश्मि-जाल ॥

२

संसार कतय सँ कतय गेल
नव नव परिवर्तन बहुत भेल ।
हे मिहिर ! अहाँ युग सँ किऐक
उदयाचल में छी अटकि गेल ?

३

सताश्व एहन अड़ियल किऐक,
टकसै अछि रथ नहिं एक बीत ।
छी वर्तमान बनबैत अहाँ
जकरा, से ससरल चिर अतीत ॥

४

क्षितिज क महफा में बन्द अहाँ
नीहार क अछि लागल ओहार ।
नववधू जकाँ होइछ अहूँक
कौखन बरु भाँपल कर उघार ॥

५

सन्हियाएल छी आँचर उपाक,
धैने हुनकर गोटा किनार ।
ता कोषमध्य "तिरहुत" क अर्थ,
अछि भेल 'निविड़तम अन्धकार' ॥

६

अहिबात क पातिलमध्य बंद,
सरवा सँ भाँपल दीप जकाँ ।
भितरे चमकै छी मुनल अहाँ
हो जेना टेम पर टीप जकाँ ॥

७

छारल कुहेस ओ अन्धकार,
लधने चहुँदिसि भपसी विकाल ।
चादुर, उल्लूक, फड़फड़ करैत,
भोलफल में जानक अछि जबाल ॥

८

जागू दिनेश ! फाड़ू कुहेश,
सभ दूर करु बदरी विकाल
असि तीक्ष्ण रश्मि सँ छिन्नभिन्न,
कय काटि हटाऊ तिमिर जाल ॥

९

द्वादशो कला प्रकटाउ आब,
आलोकित हो सभ लोकवेद ।
भै मुदित बढ़थि वंशावतंस,
हो ज्ञान-कमल विकसित अखेद ॥

१०

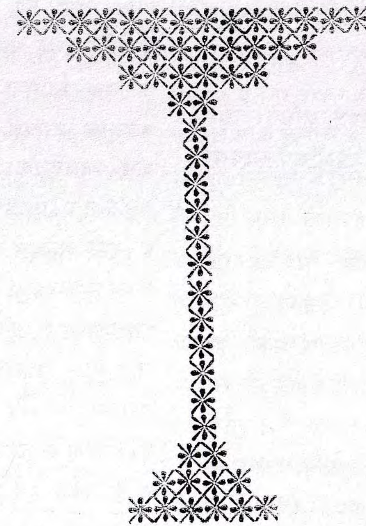
लागय किरण क ओ तीव्रशूक,
भागल पड़ाय दूषक उल्लूक,
बहुव्याप्त अन्धविश्वास तिमिर
कैं करै रश्मि-शर टूक टूक !

११

मिथिलाक सरोवर मध्य आइ,
दारिद्र्य, अविद्या, अनाचार ।
कौचर्य, कलह, ऋण, रोग, बन्ध,
आदिक पसरल सभतरि सेमार ॥

१२

चाही न आब शिशिर क प्रभात,
आनू ग्रीष्म क मध्याह्न काल ।
सभटा सेमार जरि होय छार,
धधकाऊ तादृश तीव्र ज्वाल ॥



मैथिलीक विषय में दूइ शब्द

डा० श्रीयुत सुधाकर झा जी एम० ए० पी० एच० डी०

जगज्जननी जानकीक जन्म-स्थली, उदयन-मण्डनक ज्ञानभूमि, मिथिला प्राचीन समयक एक विशिष्ट जनपद थीक, ताही मिथिला देशक भाषा मैथिली नाम सँ विख्यात अछि।

प्राचीन विद्वान लोकनि यद्यपि संस्कृतक विशेषतः अनुरागी होइत छलाह एवं अपन रचना संस्कृते में करैत छलाह। तथापि कतिपय विद्वान् संस्कृतक संग-संग मातृ-भाषहुक सेवा सँ विमुख नहि छलाह। उपलब्ध सामग्री द्वारा बूझना जाइछ जे एहि श्रेणीक विद्वान् में कविशेखर ज्योतिरीश्वराचार्य, विद्यापति एवं गोविन्द दास आदि नामक प्रधानतया उल्लेख भै सकैत अछि।

हमरा लोकनिक हेतु ई परम गौरवक विषय थीक जे मैथिल कोकिल विद्यापति कें अपनैवाक हेतु तीनि भाषा भाषी उद्यत रहैत छथि। भाषा-साम्यक कारण ई जे उत्तरीय भारतक सभ आधुनिक भाषा भिन्न-भिन्न प्राकृत सँ उत्पन्न भेल अछि, अन्ततोगत्वा सभ प्राकृतक संस्कृत बूझल जाइछ। भिन्न-भिन्न भाषाक व्याकरण एवं विकाशक शैली भिन्न-भिन्न छैक। हिन्दीक उत्पत्ति शौरसेनी-प्राकृत सँ तथा मैथिली, बंगला, उड़िया आदिक उत्पत्ति मागधी-प्राकृत सँ अछि। अतएव मैथिल एवं बंगालक व्याकरण तथा विकाशक शैली में विशेष समता छैक। किन्तु हिन्दीक सँ दूर रहबाक कारणें विशेष भेद छैक।

एहि प्रसंग में ई कहि देब अयुक्त नहिं जे हिन्दी तथा मैथिली भिन्न-भिन्न भाषा थीक। हिन्दी भाषाभाषी लोकनिक ई धारणा भ्रम मूलक छैन्ह जे मैथिली हिन्दीक उपशाखा थीक। एहि धारणाक कारण केवल भाषा विज्ञानक अनभिज्ञता कहबाक चाही।

हिन्दी एवं मैथिलीक भिन्नताक विषय में एकाध लक्षणक उल्लेख अप्रासङ्गिक नहि हैत।

(१) मागधी प्राकृत सँ उत्पन्न मैथिली एवं बंगला आदि के भूतकालिक क्रिया में 'अल्ल' तथा 'इल्ल' प्रत्यय लगाओल जाइछ—यथा, संस्कृत गत-प्राकृत-गद्-गअ+इल्ल=गइल्ल, गइल, गेल इत्यादि। हिन्दी में एहन कोनो प्रत्यय भूतकाल सूचनार्थ नहिं लगाओल जाइछ, यथा प्राकृत गद्-गअ, हिन्दी-गया। इत्यादि

(२) मागधी प्राकृतक शब्द रूपक विधान में कर्त्ताक एक वचनक रूप एकान्त होइत छल। यथा-चले, जे, से इत्यादि—तदनुसार आधुनिक मैथिली एवं बङ्गला आदि भाषा में सर्वनामक रूप एकारान्ते अछि। यथा-जे, से, के, इत्यादि। शौरसेनी प्राकृत में कर्त्ताक एकवचनक रूप ओकारान्तो होइत छल-यथा-रामो, जो, सो-तदनुसार आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी में सर्वनामक रूप ओकारान्ते अछि। यथा-जो, सो, को इत्यादि।

एहि तरहें कतेको लक्षण तथा विशेषता भेटत जाहिसँ हिन्दी एवं मैथिली क भिन्न भिन्न भाषा हैब सिद्ध अछि। एहि विषय में सविस्तर लेख जनता क समक्ष हम पश्चात् राखब।

अन्त में विद्वन्मण्डली क प्रति हमर निवेदन अछि जे संस्कृतक सङ्ग सङ्ग मातृ-भाषा क ऊपर सेहो ध्यान रखबाक चाही, तेखन मैथिलीक उत्थान क सम्भावना। कारण जे मातृ-भाषा क उन्नति, सभ उन्नतिक मूल अछि।

'यत्रैते जनकात्मजा हि जगतामाधारभूता स्वयम्
सीता-राम-परायणाविरभवत् पुण्ये वरास्ये धरा।
धन्या सा मिथिला सदा विजयते माङ्गल्यमातन्वती
तद्वाणी सुरवाग्भवात्मजवरा धन्या तथा मैथिली॥'

मिथिलेश लोकनिक मैथिली कविता

श्रीयुत नरेन्द्रनाथ दास

मिथिला देश में एक सँ एक विद्वान् भए गेलाह अछि, जनिक विद्वत्ता-देश विदित अछि। परन्तु एहि उत्कर्षक बहुत किछु श्रेय मिथिला क राजा लोकनि कें छन्हि। ओ लोकनि एक सँ एकें प्रकाण्ड पण्डित एवं साहित्यमर्मज्ञ भय गेल छथि। हम प्रस्तुत लेख में किछु मिथिलाक राजा-महाराजक मैथिली कविता उद्धृत करब। आशा अछि 'मिथिलाङ्क' क वाचक कें ई रुचिकर प्रतीत होएतन्हि। सुप्रसिद्ध ओइनवार बंशीय राजागण में किछु राजा स्वयं कवियो छलाह। ओहि वंश में महाराज शिवसिंह एक परम प्रतापी राजा भए गेलाह अछि। विद्यापति हुनके दरबारी कवि छलाह। शिवसिंह "सिंह-भूपति" एवं "नृपसिंह" उपनाम सँ कविता करैत छलाह। एहिठाम हुनक गीत उद्धृत करैत छी, यथा।

मासें पखें उगय कलानिधि लइये सकल निज साज।
तुअ मुख सम नहिं देखिय तें खिन मने गुनि लाज॥
कहदहुकओन पुरुष धनि, जाहि करि रह अनुराग।
के अछि एहि महीतल, जे अरजल हेन भाग॥
सामर चामर निन्दय, कोमल केश कलाप।
भौंह मनोहर का कहब, काम तेजल शरचाप॥
पवन चलित नवपल्लव, कुचकोर क तरें काँप।
धक धाओल नहिं पाओल, आशा लुबुधल लोभ।
एहन रमनि नृप सिंह कह, हरहिं निकट पयसोभ॥

"सिंह भूपति" वा "नृप सिंह" क कविता के श्रीयुत नगेन्द्र नाथ गुप्त विद्यापति क कविता बुझि अपन "विद्यापति पदावली" में स्थान देलन्हि। विद्यापति एवं गोविन्द दास जकाँ सिंह भूपतिहुक अनेक कविता बंगलाक पद्संग्रह ग्रन्थ में प्राप्त होइछ। बंगाली समालोचक गण "सिंह भूपति" कें बंगाली कवि मानैत छथि। परन्तु राग तरङ्गिणी ग्रन्थ, जे १७ म शताब्दि में लिखल गेलछल ताहि सँ उक्त दुइ कविता उद्धृत अछि। उक्त ग्रन्थ में "सिंह भूपतिक" कविता संग्रह रहला सँ ई आब निर्विवाद प्रमाणित होइत अछि जे "सिंह भूपति" मैथिल छलाह।

महाराज शिवसिंहहिंक वंशधर राजा लक्ष्मीनारायण छलाह, जनिक प्रसिद्ध नाम राजा कंस नारायण छल। ओ वंशक अन्तिम राजा छलाह। राजा लक्ष्मीनारायण स्वयं कवि छलाह, एवं कवि कें आश्रय प्रदान करैत छलाह। हिन के राज दरबारक भूषण गोविन्ददास छलाह। एहिठाम राजा लक्ष्मीनारायण उपनाम कंस नारायणक दूई कविता उद्धृत अछि। यथाः—

"कुन्दन कनक कन्हाई, हमहुँ कसौटी तूल।
निज हिय कसल बालम गुन, बूझल बहु मूल॥
एसखि सुपहु समागम, सुख कहई न जाय।
मनकर मनाओ न छाड़िय, राखिय हिय लाय॥
पछब गौरि हमें पूजली, पूने परिणत नेह।
जीब एक कय मानल, की जओ दुई देह॥
लक्ष्मी नारायण नृप कह, तोहें गुणमति नारि।
जासों नेह बढ़ावह, सेहे देब मुरारि॥"

पुनः----

"साय साय पिया के कह विनती॥
ईहओ बसन्त ऋतु ओतहि गमाबथु
एत एक मल नहिं बीती॥
घन मलयज रस परस लाग विस
दुसह सुनिय पिक नादे।
अनल बरिस शशि निन्दओन होअ निशि
एतए अओर परमादे॥
जे सबे विपरीत से सबे कहब कत
के पतियायत आने।
जखने आओब हरि, हमहि निवेदब
जओ राखत पचबाने॥
सुमुखि समाद समादरें समादल
नसिरा शाह सुर ताने।
नसिरा भूपति सोरम देइ पति,
कंस नारायण भाने॥"

कंस नारायणक पश्चात् कर्णकायस्थ कुल-भूषण केशब मजुमदारक ९ वर्ष बाद्–वर्तमान खण्डबलाकुल वंशक शासन में मिथिला देश आयल। एहि कुलक परम प्रतापी पुरुष महामहोपाध्याय महाराज महेश ठकुर छलाह जे अपना विद्या बलें मिथिला राज्य उपार्जन कयलन्हि। ई कथा सर्वविदिते अछि। संस्कृत में न्यायादि शास्त्रपर अमूल्य ग्रन्थक रचना करितहुँ ओ अपन मातृभाषा मैथिलीक प्रेमी छलाह। हुनक मैथिली में रचित गान मिथिला में अत्यन्त प्रसिद्ध अछि। पाठक क मनोरञ्जनार्थ दुई गान उद्धृत करैत छी।

"जय जय जय भव भञ्जिनि भगवति
आदि शक्ति तुअ माया।
[illegible]नि नव सजल जलद तुअ तन रुचि
पद रुचि पंकज छाया॥
मुण्डमाल बघछाल छुरित छवि
लम्बित उदर उदारा।
असि कुवलय कर, काँती खप्पर
खर्व रूप अवतारा॥
विकट जटा तट, चान तिलक लस
भूषण भीषण नागे।
खल खल हास अकाश निवासिनि
मुद्रा मण्डित भाँगे॥
तरुण अरुण सम त्रिपम विलोचन
पीन पयोधर भारे।
रकत रकत रसना लह लह कर,
रदन वदन विकराले॥
भनथि महेश कलेश-निवारणि
त्रिभुवन-तारिणि माता।
शव-वाहिनि दाहिनि देवि जँ रहु
कि करत कोपि विधाता॥

पुनः —

"गंगे, अयलहुँ तोहर समाज।
गंगे, आब की करत यमराज॥
गंगे, दुर सों देखल गाँव।
गंगे, पाप न रहलै आँग॥
गंगे, तिल, कुश, जल लेल हाथ।
गंगे, तेहि खन यम धुनु माथ॥
गंगे, भनथि महेश सुजान।
गंगे, कलियुग गति नहि आन॥"

महाराज महेश ठकुरहि क वंशधर महाराज महिनाथ ठाकुर एक समय प्रतिकूल राजनैतिक परिस्थिति सँ विह्वल भय पद बनौलन्हि—

वदन भयान कान शव कुण्डल
विकट दशन घन पाँती।
फूजल केश वेश तुअ के कह,
जनि नव जलधर काँती॥
काटल माथ हाथ अति शोभित
तीक्ष्ण खर्ग कर लाई।
भय निर्भय वर दहिन हाथ लय
रहिय दिगम्बरि माई॥
पीन पयोधर ऊपर राजित
लिधुर श्रवित मुण्डहारा।
कटि किङ्किणि सब कर कह मण्डित
स्रुक बहु शोणित धारा॥
बसिय मसान ध्यान शव ऊपर
योगिनि गण रहु साथे।
नरपति पति राखिय जगदीश्वरि
करु महिनाथ सनाथे॥

स्व० महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह कतेक पैघ तन्त्र विद्याविशारद छलाह एवं संस्कृत साहित्य में कतेक व्युत्पन्न छलाह, सभ जनैत अछि। श्री१०८ भगवतीक अनन्य उपासक छलाह। शास्त्र क वचनानुकूल स्वरचित स्तोत्र गीतादि श्री १०८ भगवती कें सुनबैत छलथीन्ह। यद्यपि महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह संस्कृतहि क अनन्य प्रेमी छलाह, तथापि मातृभाषा मैथिली कें ओ एकदम बिसरि नहिं गेलाह। ओहो मैथिली में कविता करैत छलाह।

एतद्दरिक्त जे राजा महाराजा क कविता उपलब्ध होइत अछि ओ यद्यपि ओइनवार वंशीय एवं खण्डबलाकुल वंशीय मिथिलेश नहिं छलाह। परन्तु, ई सत्य जे प्राचीन समय में मिथिलाहि क कोनो प्रान्त क राजा छलाह। "लोचनकवि" अपन "रागतरंगिणी" ग्रन्थ में मैथिली गीत उद्धृत करबाक काल सर्वप्रथम नेपाली बड़ाड़ी छन्दक उदाहरण में ई गीत उद्धृत कयलन्हि अछि। यथा:—

"उपमिय आनन नीरज पंकज, सतअर दिवस मलीने।
भौंह अनूपम, अधर सोहाओन, नवपल्लव रुचि जीने॥
सुन पेअसि की मोर पड़ल गरुअ अपराधे॥
बह मलयानिल जार कलेवर, न कर मनोरथ बाधे॥"

गीत-उद्धृत कय, अन्त में टिप्पणी करैत छथि, "इत्यादि राज्ञः श्रीनिवास मल्लस्य"। जाहि सँ स्पष्ट अछि जे श्रीनिवास मल्ल राजाक रचित ओ गीत थिक। ई राजा के छलाह, कतय क राजा छलाह, से पता नहि।

मिथिला क कोनो भाग में लखनचन्द्र एक प्रसिद्ध राजा भय गेलाह अछि। प्रसिद्ध अछि जे हुनक बसाओल 'लखनपुर' गाम अछि। ओहि लखन चन्द्र राजाक एक दूई कविता रागतरङ्गिणी ग्रन्थ में लोचनकवि उद्धृत कयलन्हि अछि, एक गीत निम्नाङ्कित अछि। यथा—

कमल आनन गण्ड मण्डल
चन्द्र दिनकर श्रवण कुण्डल

हृदय शोभित तारगण
जट हार मलिन वरे।
दहिन बामे प्रहन्ति कर असि
चक्र फनि तिस्सुल कुल ससि
चाम धनुष परेत सारथि
महिष चिकुर वरे ॥
चण्ड मधुकैटभ विनाशिनि
मुण्ड महिषासुर गरासिनि।
धूम्रलोचन खण्डि रणभर
मण्डि मुण्ड वरा ॥
विकट कट कट दशन भीषण
रक्तवीज घटाङ्करी रन।
निभर खप्पर सघट घट घट
रुधिर पान करा ॥
परम तहु पर योग योगिनि
सकल रससंभोग भोगिनि।
चण्डि पद राजीव केसर
प्रनवि विनय भरम····
लखनचन्द्र नरेन्द्र के असि
दैह भगवति अभय वर हँसि

\+ + +

एतदतिरिक्त एक पोथी में हमरा एक प्राचीन गीत भेटल अछि जे मकमानीक राजा हिन्दूपतिक रचना थीक। यथाः—

दखिन पवन तुअ जाहे
जहाँरे बसति मोर नाहे।
नैन ढरकि खसु नीरे
भिजु अरु चीरे॥
पिया विनु दगध शरीरे।
जाइत देखल पथ काने
मदन सजल पचवाने
आरे अनुमाने ॥
कलजोरि करि विनती
वर नहि तजथि पिरीती।
राजा हिन्दूपति मखमानी
जनि देलनि पहुमानी ॥

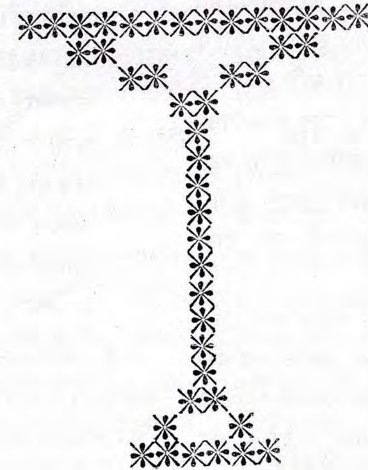
सौरियाक राज्य-शासन किछु वर्ष धरि विजय गोविन्द सिंहक हाथमें छल, ओहो एक परम साहित्यिक राजा छलाह। हुनक बनाओल एक "राज तरंगिणी" ग्रन्थ संस्कृत में अछि। जकर एक प्रति सुनैतछी श्रीयुत नेनमणि झा ओत्रियक घरमें छन्हि। ओहि ग्रन्थ में मिथिलहुँक राजाक वर्णन अछि। विजय गोविन्द सिंह अपन उपनाम "गोविन्द" राखि मैथिली में कविता करैत छलाह। खेदक संग कहक पड़ैत अछि जे हुनक गीत उपलब्ध नहिं।

वर्तमान मिथिलेशक राज्यकुल में दूई तीन और महापुरुष कवि भय गेल छथि। यथा स्व० बा० कुमार गोपीश्वर सिंह बा० दुर्गादत्तसिंह, बा० ललितेश्वरसिंह, बा० तन्त्रेश्वर सिंह, आदि। जनिक कविता उद्धृत कयला सँ लेखक काय बहुत अधिक बढ़ि जायत। अतः कविताक उद्धृत करबा सँ असमर्थ छी।

श्रीनगरक राज्यक भूषण साहित्यसरोज स्व० कमलानन्द सिंहक काव्य-रसिकता तँ प्रसिद्धे अछि। ओ केहन कवि छलाह, कवि मण्डलीक केहन आश्रय-दाता छलाह, सर्वविदित अछि। ओ हो मैथिली भाषा में सफल कविता करैत छलाह। हुनक मैथिलीक कविताक एक सुवृहत् संग्रह छलैन्ह, परन्तु सखेद लिखय पड़ैछ जे गत श्रीनगर

अग्निकाण्ड में स्वाहा भै गेल अछि। मैथिलीक अनेक अनमोल साहित्यिक रत्न एखनहुँ पर्यन्त मैथिलक घरमें गुदरियहिं में सड़ि रहल अछि, परन्तु जतबाक सामग्री उपलब्ध भय सकल, तकर अध्ययन सँ एतेक मिथिलेश कविताक पता लागल अछि। हमरा ई अनुमान अछि जे, यदि मिथिला में पुरातत्वान्वेषण समुचित रूपें कयल जाय तों अनेकानेक राजा महाराज एवं अन्यान्य कविक कविता उपलब्ध भय सकैत अछि कारण एहि मिथिलाक महाराजालोकनिक एक ई विशेषता रहल अछि जे, ओ स्वयं विद्वान होइतछलाह, कवि होइत छलाह, एवं विद्वान ओ कविक आदर करत छलाह। ओलोकनि भोग विलास मात्रकें अपन जीवनक लक्ष्य नहिं मानैत छलाह। साहित्यक अध्ययन करैत छलाह। साहित्यक समुत्थान में योग-दान दैत छलाह। यैह एकमात्र कारण थिक, जाहि सौं हुनका लोकनिक नाम, यश, अमर भय रहल अछि।

वर्तमान मिथिलेशहुं कें अपन मातृभाषा मैथिली सँ प्रेम छन्हि। साहित्यिक अभिरुचि छन्हि। विद्यापतिक पद-संगीत पर ओ मंत्रमुग्ध छथि। विद्यापतिक स्वर्गीय संगीतक प्रसंग वार्तालाप में ओ अपन हृदयोद्गगार प्रकट कयने छलाह जे " विद्यापति तेहन अभिनव मधुर काव्यक रचना कयलन्हि जे हुनक गीत सुनलहुँ पर यदि पुनः ओ गीत कखनहुँ गायल जाइत अछि तँ पुनः अभिनवे बुझि पड़ैत अछि।' एहि कथन सँ महाराजाधिराज मिथिलेशक विद्यापतिक प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा अभिव्यक्ति होइत छन्हि। हम आशा करैत छी जे जाहि रूपें नवयुवक मिथिलेश मैथिलीक समाजिक क्षेत्र में एक नवक्रांन्ति अनबामें कृतकार्य्य भेलाह अछि, ताहि रूपें मैथिली साहित्य क्षेत्रमें एक नवीन उत्क्रान्ति सृष्टि करबा में अवश्य कृतकार्य्य होयताह।



कवि कोकिल विद्यापति क एक पद

श्रीयुत प्रियनाथ मित्र एम० ए० बी० एल (एडवोकेट)

उच्च श्रेणीक कविमात्र प्राकृत ओ अप्राकृत व स्तुक लोकोत्तर वर्णन करैत छथि। प्राकृतिक सौन्दर्य क स्वरूप ग्रहण करबाक तथा ओकर मधुर शब्दें जनसमाज केँ उपहार देबाक शक्ति कवि गणहि काँ छैन्हि। कहबाक रीति ओ भाषा-सौष्ठव कें एहन व्यवहार करैत छथि जाहि सँ प्रकृति-संसार क पार कय अतीन्द्रिय विषयहुँ क अनुभव होइछ।

कविवर विद्यापति पूर्णतया अपन पदावली में मर्त्यलोक क घटना क अवलम्बन कय प्रेममय प्रभुक दुर्लभ प्रेम-कथा कहने छथि, जे विश्व ओ विश्वातीतक सन्धिमूलक आनन्द प्रदान करैछ।

व्यावहारिक जगत में हमरा सभक ई विचार अछि जे प्राकृत पूर्ण और अप्राकृत अपूर्ण। अर्थात् प्राकृत वस्तु ओ विषय सत्य ओ अतिप्राकृत झूठ होइछ, परन्तु जतेक पैघ कवि भेलाह, सभहिंक रचना प्राकृत ओ अप्राकृत सँ ऊपर अछि।

विश्व में बहुतो नारी छथि परन्तु शेक्सपियर 'डेसिमिसोना' कयटा छथि? सृष्टि में पुरुषो बहुत छथि परन्तु वंकिमचन्द्रक 'प्रताप' कयटा छथि? ई दुहू गोटाक चरित्राङ्कण प्रकृति सँ बहुत उच्च भेल अछि।

संगीतक विषय में ईहो कहल जाय सकैत अछि जे मनुष्यक कंठ स्वर प्राकृत ओ यन्त्र संगीत ओकर नकल थिक। तथापि यन्त्र-संगीतक एतेक आदर कियैक? मानव कण्ठ-क सुर छोड़ि वंशी, सितार ओ सारंगी सुनबाक व्यग्रताक की कारण? एहि सभक स्वर तँ मनुष्य कंठ-स्वरक अनुकरण थिक।

एहि सभक स्वर अनुकरण थिक सत्य. परन्तु मनुष्य-कण्ठ में जे सुर-प्रकाशक शक्ति छैक ताहि सँ अधिक प्रकाशक शक्ति एहि सभक छैक। प्राकृत स्वरक अतिक्रम कय अति प्राकृतक सम्पर्क ओकरा मधुर बना दैछ। एही कारण वाद्य-यन्त्र सुनबाक व्यग्रता।

कविश्रेष्ठक रचना एहि प्रकारें लोकोत्तर भय आध्यात्मिक राज्य में जाइत अछि। विद्यापतिक पदावली में एहि विषयक उदाहरण-स्वरूप एक पद अहाँ लोकनिक समक्ष उपस्थित करब:—

" जब हरि आयब गोकुलपूर
घरे घरे नगर बाजाब जरतूर
अरिपन देयब मोतिम हार
माने कलश करब कुच भार
सहकार पल्लव चूलक भेल
मरमक दुख सब दूर गेल।
धूप दीप नैवेद्य धरब पिया आगे।
लोचन नीर करब अभिषेके
भनत विद्यापति सुन वरनारि।
सुजनक दुःख दिन दुई चारि।

ई प्रोषितभर्त्तृकाक पद थिक। कृष्ण मथुरा सँ व्रज अयबालय छथि। दीर्घ विरह क शेष, कृष्णक स्वागत कोन प्रकारे श्रीराधा करतीह, तकर वर्णन कतेक मार्मिक अछि।

विरह विधुरा राधा श्रीकृष्णक अयबाक संवाद पाबि परम आनन्द में डूबि एवं शेष में आत्मज्ञान करैत भेलीह। श्री राधाक ई आत्मविस्मृति, वैष्णव शास्त्र कथित परिणामक अवस्था थिक।

अपन नायकक आगमन वार्ता सँ घर घर नगर-नगर में 'जरतुर' बजबैबाक अभिलाषिणी भैगेलीह। परम लज्जा-हीन अवस्था प्राप्त भै गेलैन्ह।

ई कविता में 'नारीक' नश्वर देह क साज रजोगुणमय। परन्तु असल भाव आध्यात्मिक छैक। देहरूपी गेह सुशोभित करबाक कल्पना अपूर्ण ओ अभूत अछि।

'जे मोतिक हार' कृष्ण विरह सँ 'भार भयगेल' छल, ओहि हार कें पुनः हृदय में लगयबाक इच्छा भेल। हार नायक क आसन बनत, पवित्र धूपक सुरभि, दीपक दीप्ति, सात्त्विक पदार्थक नैवेद्य। एकरो अतिरिक्त प्रियतमक अभिषेकक हेतु झर-झर प्रवाहित नोर। ई सभ वस्तु भगवानक पूजा ओ अर्चनाक हेतु हमरा लोकनिक दैहिक कार्य में अबैछ।

नायकक रहबाक स्थान छैन्हि नायिका क निज निवेदित शरीर। वस्तुतः परम पुरुषक निवास स्थल ई देह रूपी पुर थिक।

" पुरुषः पूर्णमानेन सर्वमिति, पुरे शयाद्वा पुरुषः"

जकरा सँ जगतक सकल वस्तु ओ प्राणी पूर्ण छैक, अथवा जे पुर मध्ये शयन कयल सैह पुरुष।

विद्यापति कविक प्रतिभा अतिप्राकृत ओ प्राकृतक सन्धि-स्थान थिक जे अलक्षित स्वर्ग में पहुँचल अछि। अही प्रकार क प्रतिभा असाधारण थिक, ओ एहि में विद्यापतिक विशिष्टता लोकोत्तर अछि।

—**—

देश

यजन-अवनी ई मिथिला देश।
शुक शिक्षक योगी बड़ ज्ञानी जतय विदेह नरेश।
सीता सुता, राम जामाता जनिक प्रकृति-परमेश॥
विद्यापति तपशालि कवीश्वर सुविदित देश-विदेश।
जनिक प्रेम-वस उगना नामे टहलू बनल महेश॥
उदयन मण्डन वाचस्पति-मण्डित छल जनिकर वेश।
निराभरण हतगौरव भय से भोगि रहल छथि क्लेश॥

श्री युत महावीर चौधरी

मैथिली लिपि ओ ओझा जी

श्रीयुत पुलकित लाल दास जी 'मधुर'

विश्व विख्यात पुरातत्त्व-वेत्ता महामहोपाध्याय रायबहादुर प० श्री गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा निज रचित सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ "भारतीय प्राचीन लिपि माला" में मैथिली लिपिक सम्बन्ध में लिखै छथिः—

"मैथिल लिपि—मिथिला (तिरहुत) देश के ब्राह्मणों की लिपि, जिस में संस्कृत ग्रन्थ लिखे जाते हैं, मैथिली कहलाती है । यह लिपि वस्तुतः बँगला का किंचित् परिवर्त्तित रूप ही है और इसका बँगला के साथ वैसाही सम्बन्ध है जैसा कि कैथी का नागरी से है। मिथिला-प्रदेश के अन्य लोग नागरी या कैथी लिखते हैं।—पृष्ठ १३१'

बंगाल-लिपिक सम्बन्ध में लिखैत छथिः—

प्राचीन बँगला लिपि प्राचीन पूर्वी नागरी से निकली है और उसी में परिवर्त्तन होते-होते वर्त्तमान लिपि बनी।"—पृ० १३१

उक्त अवतरण सों पूर्व उक्त लिपि मालाक ४३ म पृष्ठ में ओझा जी बँगला लिपिक उत्पत्तिक सम्बन्ध में विशेषरूपें उल्लेख करैत लिखै छथिः—

"बँगला—यह लिपि नागरी की पूर्व शाखा से ई० सं० की १० वीं शताब्दी के आसपास में निकली है। वदाल के स्तम्भ पर खुदे हुए नारायणपाल के समय के लेख में जो ई० सं० की १० वीं शताब्दी का है, बँगला का झुकाव दिखाई देता है। इसी से नेपाल की ११ वीं शताब्दी के बाद की लिपि, तथा वर्तमान बँगला, मैथिली और उड़िया लिपियाँ निकली हैं।"

परन्तु एम्हर मैथिल विद्वान् लोकनिक ई कथन अछि जे मैथिलीये लिपिक परिवर्त्तित रूप बँगला लिपि थिक। कविवर मुन्शी श्री रघुनन्दन दास जी "मैथिली" में एक महत्त्व-पूर्ण निबन्ध लिखि अनेक तन्त्र-ग्रन्थ में मैथिली-लिपिक अस्तित्व सिद्ध कय, ओकर स्पष्ट उदाहरण दय एहि लिपिक प्राचीनता देखौने छथि। तथा डा० श्री उमेश मिश्र जी एम्० ए० काव्य तीर्थ "मिथिला-मोद," में तथा मैथिली-साहित्य-परिषद्क द्वितीय वार्षिक सम्मेलनक सभापतिक भाषण में ब्राह्मी लिपि सों मैथिली लिपिक उत्पत्ति सिद्ध कैने छथि। उक्त डाक्टर साहेब अपन उक्त भाषण में लिखने छथिः—

"मैथिलीक स्वतन्त्र लिपिक अस्तित्त्व—भाषा सर्वाङ्ग पूर्ण तखनहि होइछ यदि ओहि भाषाक स्वतन्त्र लिपि रहैक। से सौभाग्य मैथिलीअहु काँ छन्हि। ई लिपि ब्राह्मी लिपि सँ बहार भेल अछि। एकर पूर्ण रूप १०म शताब्दी सों बहुत दिन पूर्व भए चुकल छल। अन्वेषण कयने ११म वा १०म शताब्दीक मैथिली अक्षर में लिखल ग्रन्थ अवश्य भेटत। वर्णनरत्नाकर ताड़पत्र मैथिली में तेरहम श० क लिखल तँ देखितहि छी। एहु सँ पूर्वक लेख विद्यमान अछि। किछु दिन पूर्व एकर प्राचीनताक सम्बन्ध में अनेक प्रमाण दय चुकल छी, किन्तु ओहू सँ बहुत दिन पूर्व क मैथिली लिपिक अस्तित्वक प्रमाण भेटल अछि। लिपिक स्वरूप जतेक मैथिलीक शुद्ध अछि ततेक

आनक नहिं ई शास्त्र वेत्ता लोकनि जनैत छथि। "इत्यादि"

ब्राह्मीलिपि विश्व भरिक आदि लिपि थिक। एकरा उक्त माननीय ओझा जी से हो सिद्ध कैने छथि। अतः यदि यथार्थतः ब्राह्मी लिपि सों मैथिलीक उद्भव अछि, तँ ई कहबाक प्रयोजन नहिं जे ने केवल भारतीये; प्रत्युत संसार भरिक आधुनिक लिपि सों मैथिली लिपि प्राचीन अछि। ज्ञात होइछ जे माननीय ओझा जी मैथिली लिपिक उत्पत्ति ओ विकासक सम्बन्ध में विशेष अनुसन्धान ओ गवेषणा नहिं कय, एवं बँगला-साहित्यक सर्वतोमुखी उत्तरोत्तर उत्कर्ष देखि, तथा बँगला ओ मैथिली लिपिक परस्पर बहुलांश में सादृश्य अवलोकन कय, बँगलहि सों मैथिलिक उत्पत्ति लिखि देने छथि।

अस्तु, अपन-अपन लिपि ओ भाषाक प्राचीनताक गौरव प्रत्येक भाषा भाषी अनुभव करैछ। उक्त माननीय ओझा जी विख्यात पुरातत्त्व वेत्ता छथि। हुनक ऐतिहासिक लेख अधिकाधिक प्रामाणिक बूझल जाइछ। उक्त ओझा जी प्रणीत उक्त "भारतीय प्राचीन लिपि माला" सेहो विशेष महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ बूझल जाइछ। भारतीय लिपि सभक उत्पत्ति ओ क्रम विकास पर दोसर ग्रन्थ नहिं अछि। महान् ग्रन्थ में प्रायः भारतीय समस्त लिपिक उत्पत्तिक सम्बन्ध में किछु ने किछु थोड़-बहुत चर्चा कैल गेल अछि। नागरी आदि कतेको लिपि तँ आदि काल सों अद्यावधिक अनेकानेक परिवर्त्तित रूप सेहो, शिलालेख ओ ताम्रपत्र इत्यादि सँ प्रचुरतर परिपुष्ट ऐतिहासिक प्रमाण-सहित देखाओल गेल अछि। अतः उक्त ग्रन्थ भारतीय लिपिक इतिवृत्तिक सम्बन्ध में पूर्ण प्रामाणिक मानल जाइछ। और तँ उक्त ग्रन्थ में उपर्युक्त बात लिखित रहला सों लोक कें अवश्य ई दृढ़ विश्वास हेतन्हि जे मैथिली लिपि बँगलैक परिवर्त्तित रूप थिक और अत्यन्त आधुनिक थिक। अतः आइ हम एहि निबन्ध द्वारा मैथिली-साहित्य परिषद् और मैथिल विद्वज्जन लोकनिक ध्यान एहि दिशि आकर्षित कय अनुरोध करै छी जे, हठात् ओ दुराग्रह पूर्वक नहिं प्रत्युत यथोचित गवेषणा सों यदि वास्तव में ब्राह्मी लिपि सों मैथिलीक उद्भव क पता लगैत हो, यदि वास्तव में तन्त्रग्रन्थ सभ में मैथिली अक्षर सभक अस्तित्व सिद्ध होइत हो और यदि वास्तव में १० म ११ म श० वा तहु सों पूर्वक मैथिली लिपि में लिखित ग्रन्थक पता लगैत हो, तँ प्रथमतः परिपुष्ट प्रमाण ओ अधिकारी विद्वज्जन द्वारा निराकरण होएबाक चाही।

प्राचीन लिपि माला" में मैथिली लिपिक रूप सेहो देल गेल अछि, किन्तु हमरा विचारें ओहो किछु भ्रान्तपूर्ण अछि। अतः हमर ई हो पूर्ण अनुरोध जे जनिक मैथिली अक्षर उत्तम ओ सुस्पष्ट होइत छैन्ह, हुनका सों लत्ती वा परक कलम सों मोट मोट मैथिलीक मात्रायुक्त समस्त अक्षर ओ समस्त संयुक्ताक्षर लिखा कय सेहो ओझा जी कें पठा देल जाइन्ह। तथा ओझा जीक लेखक जे किछु खण्डन हो, तथा ओझा जी सों जे किछु पत्राचार हो, "मिथिला-मिहिर" में अवश्य प्रकाशित हो।

केहेन उत्तम हो, यदि मैथिली साहित्य-परिषद पूज्य चरण म० म० डा० झा एवं माननीय डा० मिश्र

जी आदि कोनो अधिकारी विद्वान् द्वारा समुचित गवेषणा सों मैथिली लिपिक उत्पत्ति तथा क्रम विकाश पर एक महत्त्व-पूर्ण पुस्तक (जाहि में भारतीय ओ अन्यान्य देशीय विभिन्न भाषा भाषी विद्वज्जन लोकनिक द्वारा मैथिली भाषा, साहित्य ओ लिपिक सम्बन्ध में जतै जे किछु चर्चा कैल गेल हो, तकर उल्लेख सहित रचना कय प्रकाशित करबाक चेष्टा करै।

शिशिर समीर

पण्डित श्री वेदानन्द झा

उठि उठि यत्ने मूनल गेह
तदपि वसन हरि छूबथि देह ।
सटथि अङ्ग तौं तनु नहिं थीर
सखि ! प्रियतम, नहिं, शिशिर समीर ॥१॥

छपकल आवथि खिड़की बाट
ससरि चढ़थि पुनि हमरहिं खाट ।
स्पर्श करथि तौं होइ अधीर
सखि ! प्रियतम, नहिं, शिशिर समीर ॥२॥

आगम जनितहिं पुलकय अङ्ग
सहि न सकी हम निर्भय सङ्ग ।
तदपि निहारथि हमर कुटीर
सखि ! प्रियतम, नहिं, शिशिर समीर ॥३॥

यद्यपि उठबथि नहु नहु वेग,
तदपि बढ़ाबथि मन्मथ वेग ।
स्मरणहिं थर थर काँप शरीर
सखि ! प्रियतम, नहिं, शिशिर समीर ॥४॥

चपल सुचतुर चरण युग छूबथि
वसन उठाबथि अपनहिं हाथ ।
मन्द मन्द मानस तक पहुँचथि
हमरा सँ किछु करथि ने लाथ ।
अपन व्यग्रतैं घुरि घुरि आबथि
सत्य कहैछी खीचि लकीर ।
काज साधि पुनि लगले सटकथि
सखि ! प्रियतम, नहिं, शिशिर समीर ॥५॥

सन सन करथि मगन मन निशि निशि
कनकन कर छूबथि सब गात ।
रोम रोम जनु उत्कण्ठित कय
खट खट बजबथि हमरे दाँत ।
मुकुलित मुग्ध गुलाब कली सौं
सौरभ आनि करथि ततवीर ।
छन छन रसन वसन लखि हरषथि
सखि ! प्रियतम, नहिं, शिशिर समीर ॥६॥

शीतल अन्तर तदपि भयङ्कर
यद्यपि परिचित बारम्बार ।
सबकें परसथि तदपि न तरसथि
हमरहिं दरसथि सहज उदार ।
प्रकृतिक चञ्चल छुबइत अञ्चल
नित अपना कें भनबथि वीर ।
प्राण कहाय तथापि सुखद नहिं
सखि ! प्रियतम, नहिं, शिशिर समीर ॥७॥

कलबल चलल महल दिशि आबथि
देखिचन्द्रिका चकमक राति ।
हलचल कय अलकावलि चूमथि
चतुर चलाक चपल वर जाति ।
तनु तनतनबथि वचन न जनबथि
केवल करनी करथि अधीर ।
बाल बाल सौं स्वागत पाबथि
सखि ! प्रियतम, नहिं, शिशिर समीर ॥८॥

मिथिला क भाषा

प० श्री गोकुल लाल झा चक्रवर्त्ती बी० ए० पुराण रत्न,
श्रीयुत पण्डित जयनन्दन शास्त्री व्या० आ० का० ती०,

मिथिलाक भाषा मैथिली नाम सँ जनसमाज में परिचित अछि। मैथिली क उत्पत्ति पर विचार कयला सँ ई ज्ञात होइछ जे भारतवर्षक प्राचीन-साहित्यक भाषा कें दुई अंश में भाग कयल जाइत अछि। यथा (१) वैदिक भाषा और (२) लौकिक संस्कृत भाषा। अति प्राचीन काल में केवल वैदिक भाषा प्रचलित छल। एहि भाषा कें भित्ति कए अपरापर भाषा गोष्ठी समुत्पन्न भेल अछि। वैदिक काल में ऋषिगणक एक कथित भाषा छल ओ 'अपभ्रंश' अथवा 'आर्षप्राकृत' नाम सँ विदित छल। ककरहुँ मत ई छैक जे एहि प्राकृत सँ संस्कृत क उद्भव भेल पुनः कतेक गोटे ई कहैत छथि जे संस्कृतहिं सँ प्राकृतभाषा क उत्पत्ति अछि। जगतक परिवर्त्तन क संग भाषा कपरिवर्त्तन भेल अछि ।

प्राकृत शब्दक ई अर्थ अछि जेः "प्रकृत्या स्वभावेन सिद्धमिति प्राकृतम्"। प्राकृत भाषा क वैशिष्ट्य में कवि वाक्पति अष्टम शताब्दी में लिखैत छथि जेः—

सयलाओ इमं वाया विसन्ति एत्तो य णेन्ति वायाओ
एन्ति समुद्दंच्चिय णेन्ति सायराओच्चिय जलाइं ॥

संस्कृत छाया—

सकला इमं वाचो विशन्ति इतश्च निर्यन्ति वाचः ।
आगच्छन्ति समुद्रमिव निर्गच्छन्ति सागरादिव जलानि

पहिने प्राकृत भाषा सरल एवं मधुर तथा संस्कृत भाषा जटिल एवं आडम्बर बुझल जाइत छल। आधुनिक भाषा सभक उत्पत्ति विषय में प्राच्य भाषावित् पं होरनाले कहैत छथि जे "आभीरी सँ सिन्धी एवं मारवाड़ी; आवन्ती सँ पूर्व राजपुतानी........., मागधी वा प्राच्य सँ पूर्वी ? हिन्दी अर्थात् मैथिली इत्यादि इत्यादि उत्पन्न भेल।

चत्वारि शृङ्गा स्त्रयोऽस्य पादा द्वे
शीर्षे सप्त हस्तासोऽस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो
देवो मर्त्यमाविवेश ॥

एवं प्रकारे जे काव्यपुमान्क वर्णन भेटैत अछि ताहि में राजशेखर ई कहैत छथि जे—"संस्कृतं मुखं प्राकृतं बाहुः" अर्थात् काव्य पुरुषक मुख संस्कृत एवं बाहु प्राकृत अछि।

वैदिक भाषा आधुनिक भाषा सबहक जननी थिक, भाषा सभक वंश पीठिका निम्नलिखित अछि ।

आर्यभाषा गोष्ठी

आदि-भारतीय-आर्य (वैदिक)
|
वैदिक पर युगक पाणिनिकृत संस्कृत
|
प्राकृत
|

आदि इरानीय आर्य
आवेस्तिक
अर्थात् प्राचीन-पारसीक
|
मध्य इरानीय आर्य
|
नव्य इरानीय आर्य
यथा फारसी बलोची इत्यादि।

नव्य भारतीय-आर्य भाषा यथा बंगला-आसामी ओड़िया, मगही-मैथिली-भोजपुरी, पूर्वीहिन्दी (अवधी इत्यादि), ब्रजभाषा, हिन्दुस्थानी (पश्चिमी हिन्दी) पंजाबी, सिन्धी, पहाडी, राजस्थानी गुजराती, सिंहली इत्यादि।

बुद्धदेवक पूर्वहिं प्राकृत समुद्भूत भेल प्राय: खी: पू० ८०० वर्षमें। प्राकृत एवं आधुनिक भाषा समष्टिक मध्यमावस्थाकें अपभ्रंश अवस्था कहल जाइत अछि। ककरहु मतें अपभ्रंश सँ आधुनिक भाषा सभक उत्पत्ति भेल।

× ×
× ×

'लघुत्रिमुनि कल्पतरु'क प्रमाण सँ बुझि परैछ जे पाणिनिक समय [ईस्वी सँ ३।४ सौ वर्ष पूर्व] तक राष्ट्रभाषा संस्कृते छल। बाद ओकर व्याकरणादि संस्कृत विद्याक जाहिक्रमें जतय जतेक ह्रास होइत गेलैक, आहि क्रमें ततय ततेक संस्कृतक विकृतरूप भाषान्तर बनैत गेलैक, एकरे नाम 'प्राकृत भाषा' थिक। 'प्राकृत भाषा 'प्रकृतेः संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृतिर्मता,

अनन्तर उत्तरोत्तर ह्रास बढ़बाक कारणे प्राकृतहुक स्वरूप भेद होइत गेल, ओकरा बाद स्वतन्त्रभाषा-भेद होइत प्रत्येक देशक भिन्न-भिन्न भाषा बनि गेल। संकृतक शब्दसाम्य विदेशी भाषा हुँ में भेटैछ। दिग्दर्शन रूपें ३।४ विदेशी भाषा में संस्कृतक आभास देखबैत छी—

संस्कृत	झेन्द	ग्रीक	लैटीक	अर्थ
पितृ	पातर्	पातर	पोतर्	पिता
मातृ	मातर्	मेर्	मेतर्	माता
जामातृ	जामातर	जम्बोस	जेनर	जमाय
अक्षि	अशि	आकोस	ओक्युलस	आँखि
दन्त	दतन	ओदोन्त	देन्तम्	दाँत
अस्थि	अस्ति	ओस्तिओन	ओस	हाड़
द्वि (द्वौ)	दू	दुओ	दुओ	दुइ
त्रि(त्रय)	त्रयो	त्रीस	त्रेस	तीन
सप्तन्	हाप्तन	हेप्त	सेप्तम्	सात

एही तरहें फारसीअहु भाषा में संस्कृतक किञ्चित् आभास देखि पड़ैछ—

संस्कृत	झेन्द्र	फारसी	अर्थ
अङ्गुष्ठ	अङ्गुष्ट	अङ्गुश्त	अङ्गुठा
अन्तर	अन्तरे	अन्द्र	भीतर
अश्रु	अश्रु	अर्स्	नोर
उष्ट्र	उस्त्र	उस्तर	ऊँट
कच्छप	कश्यप	कशफ	काछु
कृमि	करेम	किर्म	कीड़ा
कार्य	कार	कार	काज
चक्षुः	चश्मन्	चश्म	आँखि
जिह्वा	हिजवा	जबान	जीभ
तृष्णा	तर्ष्ण	तिश्नज्	तृष्णा
दूर	दूर	दूर	दूर

इत्यादि।

सौभाग्यक बात थीक जे पूर्वोक्त कारणें भाषाक रूपान्तर होइतहु गेला पर वेदाद्यागमप्रशंसित मिथिला' देशक भाषा जकाँ सर्वथा असनोरम रूपान्तर काँ नहिं धारण कयलक।

प्राकृत दुइ प्रकारक अछि (१) शुद्ध प्राकृत यथा 'सद्द' सँ शब्द इत्यादि। (२) संस्कृत सम अर्थात् प्राकृतिक जे रूप ओही स्वरूपें संस्कृतहु में पाओल जाइछ यथा सरल, साहस, राग, रम्भोरु, संरम्भ, विरस, विरह, आदि। ओहि में कतेको संस्कृत प्राकृत तत्सम रूपे मैथिली भाषा में व्यवहृत अछि। यथा-उपर्युक्त साहस, विरस, विरह, आदि। किन्तु, संस्कृतक विकृत रूप शुद्ध प्राकृत जे कि किञ्चित रूप भेदें और कतहु ओही रूपें मैथिली में व्यवहृत होइत आयल अछि। तादृश शब्दक दिक् प्रदर्शन मात्र करबैतछी।

संस्कृत	प्राकृत	मिथिला
अगाध	अगाह	अगाह-अथाह
अत्र	एथ्थ	एतय-एहिठाक
अद्य	अज्ज	आजु-आइ
अष्ट	अट्ठ	आठ
आकुल	आउल	ओउल
आश्विन	आसिण	आसिन-मास
एकादश	एआरह	एगारह-११
कुम्भकार	कुंभार	कुम्हार
कैवर्त	केवट्ट	केओट-क्योट
कार्य	कज्ज	काज
क्षीर	खीर	खीर-तस्मै
गोधूम	गहूम	गहूम
गृध्र	गिद्ध	गिद्ध
घर्म	घम्म	घाम
गृह	घर	घर
गृहिणी	घरिणी	घरनी
चतुर्मुख	चउमुह	चरिमुहाँ
चक्र	चक्क	चक्का (गाड़ीक चक्का)
जिह्वा	जिहा	जीहा
त्रिशत	तीसा	तीस ३०
दंष्ट्रा	दाढ़ा	दाढ़
पीत	पीअर	पीअर
पंक्ति	पंति	पांती
पुष्कर	पुक्खर	पोखरि
वधिर	वहिर	वहिर
मत्स्य	मच्छ	माँछ
मध्य	मज्झ	माँझ
मस्तक	मथ्थअ	माथ
मित्र	मित्त	मीत
मूल्य	मोल्ल	मोल
रश्मि	रस्सी	रस्सी-रस्सा
सप्तति	सत्तरी	सत्तरि ७०
संध्या	संझा	सांझ (संझा)

उल्लिखित शब्द सूची सँ जिज्ञासु पाठक महानुभाव काँ विदित भय गेल हयतन्हि जे मैथिली काँ संस्कृत ओ प्राकृत सँ कतेक निकट सम्बन्ध छैक एवं मूलान्वेषण कयलासँ प्रायः सभ काँ बहुतो शब्दक प्राकृत-संस्कृत शब्द भेटि सकैछ। ‡

‡ 'मैथिली शब्द सागर' और 'मैथिली-विश्वकोष' नाम सँ दुइ कोष ग्रन्थक संकल पं० श्री जयनन्दन शास्त्री कय रहल छथि। —सम्पा०

सुरपुर-समाद

श्रीयुत रघुनन्दन दास जी

श्रीमिथिलेश विनय सुनु मन दै हम सुरपुर सों ऐलहुँ
स्वर्गी मैथिल जन-समाज सों किछु समाद हम लैलहुँ
गौतम याज्ञवल्क्य आदिक मिलि सभा स्वर्ग में कैलन्हि
निज देशक की दशा एखन अछि से बूझब चित धैलन्हि
मिथिलाधीश सबहिँ सोँ बूझब भार जनक कैँ देले
धर्म्म कर्म्म नृप नीति रीतिहुँक भेद बुझब चित धैले
मणिपुर में मिथिलेश रमेश्वर नव आगत नृप छला तहाँ
अति आदर सोँ आनि सुहृद भै पूछल कहु कहु बात अहाँ
कहल भूप निज देश-दशा सभ सुनलहुँ सब मन दै ततकाल
प्रजा सुखद रह, ताहि हेतु हम कैलहुँ यत्न उचित सभ काल
कहल जनक चन्द्रा मुरलीधर सोँ हम सुनलहु अछि ई बात
दुष्ट कुबुद्धि करै अछि सभखन मिथिलाभाषा पर आघात
सुनि श्रुति भूप कहल हम तकरो करब प्रबन्धहु में चित देल
भेल न पूर्ति मर्त्यमण्डल में हमर रहब काले बिति गेल
सोचहि हाहाकार हि सभ कह थीक उचित रक्षा प्रतिकार
निज भाषा उन्नति एहि पर अछि निर्भर सभ उन्नति संसार
पूर्वक मिथिला नृप सभ पालल भाषा अपन सरस जग जान
ताहि नाश सोँ मिथिला मैथिल गौरव नाश होइछ अनुमान
यावत मिथिला तावत मैथिलि-भाषा रहब उचित मनमानि
विद्यापति गोविन्द उमापति सभ अनुमोदल अवसर जानि
भेल थीर सम्प्रति मिथिलापति काँ दिअ वार्त्ता दूत पठाय
करथु यत्न जे एकर उचित हो तन मन धन सों होथु सहाय
धर्म्मधीर एक कहल सुनिअ सभ वर्त्तमान मिथिलेश सुजान
थिनु कहनहि निज भाषा प्रेमहि सम्प्रति कै देल लाख क दान
सुनि प्रसन्न सभ आशिष देलन्हि पूरओ सकल हुनक मनकाम
तै ओ निक थिक दूत पठाबिअ बूझथि की रुचि स्वर्गक धाम
जन्मदिवस मिथिलेश जानि कैं 'मिहर-अङ्क' में दूत पठाय
उपगत भै कविमुख वाणी पथ दै छी स्वर्ग समाद सुनाय
ई समाद पालन में अपने सभ विधि दत्त-चित्त भै जाउ
भूमण्डल सों देव-धाम धरि सम्प्रति उत्तम यश कें पाउ

मिथिला क संगठन कोना हो ?

श्रीयुत गोपी कान्त चौधरी 'कान्त'

ई युग विश्वक्रान्तिक थीक, संसारक रङ्ग-मञ्च पर नव नव अभिनय भय रहल अछि। यदि आई काल्हुक समय कें एक सै वर्ष पूर्व समय सँ तुलना कैल जाए त बहुत अन्तर बूझि पड़त। ई युग थीक रेल तार डाकक। हवाई जहाजक समक्ष बैल गाड़ी कहां तक अपन कार्य्य कय सकैछ, रेडियो और टौकीक समक्ष डंफा-खजुड़ीक कोन मूल्य ?

आइ मिथिलाक स्थान भारतवर्ष में की अछि और पहिने की छल ? ई पाठक लोकनि सँ अविदित नहिं। सम्प्रति ई प्रत्यक्ष अछि जे हमरा लोकनि उन्नतिक बदला दिनों दिन अवनति दिशि जाय रहल छी। अखनहुं संस्कृतक विद्वान घर घर मिथिला में भेटताह। अंगरेजी विद्वानोक कमी नहिं। परन्तु हमरा लोकनि में सब सँ पैघ कमी अछि सङ्गठनक। हमरा लोकनि विशृङ्खल भय रहल छी। एहि युग में विना सङ्गठनक किछु कार्य्य चलब अत्यन्त कठिन। कोनो राष्ट्र वा जाति तावत् तक नहिं उठि सकैछ, जावत् तक ओकर सामाजिक राजनैतिक व्यापारिक (आर्थिक) और साहित्यिक सङ्गठन नहिं सुचारु रूप सँ ठीक भय जाइछ। आई मिथिलाक शिथिला भय जेबाक सब सँ बड़का कारण यैह अछि। तैं हमर क्षुद्र विचार जे हमरा लोकनि एहि प्रकारें सङ्गठन करी।

१ समाजिक
२ राजनैतिक
३ व्यापारिक वा आर्थिक
४ साहित्यिक

(१) सामाजिक संगठन एहि प्रकारें कैल-जायः— समाज में अविद्या क अन्धकार दूर हो, स्त्री शिक्षा खूब जोर-शोर सँ प्रारम्भ कैल जाय। हम जनैत छी जे स्त्री-शिक्षाक विरोधी क संख्या एखनहुँ बहुत अछि, परञ्च आब हमरा संख्या नहिं देखक चाही। स्त्री जाति, जे मनुष्य जातिक अर्ध संख्या में अछि, तकरा मूर्ख राखब कहाँक न्याय थीक ? अपने त ग्रेजुएट वा आचार्य और पत्नी मूर्खा, कहाँ तक साम्य हो ? मिथिला स्त्री-शिक्षा में अत्यन्त पाँछा अछि, ई बड़ लज्जा क विषय थीक। तदुत्तर समाज में वृद्ध विवाह अनमेल विवाह आदि बन्द कैल जाय, विवाह में नीच ऊँच क हेतु टाकाक लेब-देब क प्रथा क अवरोध हो।

हमरा लोकनि में सब सँ वेसी त्रुटि अछि एकताक। जातिगत वैषम्य सँ अपना कें उच्च और दोसरा कें नीच बूझब अत्यन्त घातक। यदि अपने पैघ छी तँ अपने कैं और नम्र तथा मृदुभाषी हएबाक चाही।

युवक लोकनिक कोनो संगठित संस्था नहिं अछि जाहि सँ समाजक सेवा कय सकथि। यद्यपि एक सुदृढ़ संस्था मैथिल महासभा श्री मान् ५ मिथिलेशक छत्रच्छाया में अछि, परन्तु ओकर कार्य्य कैं आगाँ बढ़ाएब आवश्यक।

(२) राजनैतिक संगठन सँ पाठक लोकनि भद्र अवज्ञा आन्दोलन। नहि बुझथि परञ्च हमर

राजनैतिक संगठन क अर्थ अछि प्रत्येक व्यक्ति कें राजनीति (Politics सँ विज्ञ कराएब। हमरा समाज में राजनीति सँ अभिरुचि रखनिहार बड़ कम लोक छथि। ई, देश क हेतु अनिष्टकर थीक। विना राजनीति क ज्ञान सँ कोनो जाति क उन्नति नहिं भय सकैछ। कोन देशक राज्य सञ्चालन क प्रथा की छैक आदि जानब आवश्यक। आब भारतवर्ष में समय आबि गेल अछि, जखन राज्य-संचालन चुनावे द्वारा होएत। चुनाव कें यद्यपि हमरा लोकनि एखन तक हास्य रूपें बुझैत छियैक, परन्तु आब नव-शासन सुधार में राजनैतिक कार्य क्षेत्र में अग्रसर होएब, कहाँ तक उपकारक से विचरबाक थिक।

(३) व्यापार तँ एक एहन शब्द अछि जे प्रायः हमरा लोकनिक कोषो में तकला सँ नहिं भेटत। ओना त भारतवर्षे अन्य पश्चिमी देश क प्रति बड़ पाछाँ, परन्तु अन्य प्रान्त आब किछु-किछु वाणिज्य दिस लागल अछि। केवल अहमदाबाद शहर में एक सै सँ बेसी कपड़ा क मिल अछि, जकर स्वामी गुजराती छथि। माड़बाड़ी सिन्धी क त कोनो कथे नहिं। दिल्ली, यू० पी०, मद्रास आदिक बासी लोकनि व्यापार दिसि लागि रहल छथि। परन्तु आब लज्जाक संग कहय पड़ैछ जे कै टा मैथिल व्यापार दिस अग्रसर छथि ? एकर उत्तर 'नहिं छोड़ि हँ नहिं भेटत। ई समय थीक वाणिज्य, कला, कौशलक, आउ हमरो लोकनि लिमिटेड कम्पनी कौपरेटिव स्टोर्स आदि खोली, अपना देश में नव नव सामान तैयार करी, ओकर प्रचार करी।

वस्तुतः जावत् मिथिला में व्यापार वा शिल्प आदिक द्वारा आर्थिक उन्नति नहिं होयत, तावत् ई सुखी नहिं भय सकैछ।

(४) साहित्यिक संगठन क प्रश्न कोनो राष्ट्र वा जातिक हेतु बड़ महत्वपूर्ण होइछ। कोनो राष्ट्र अपन उन्नति नहिं कय सकैछ यदि ओ अपन संस्कृति, भाषा एवं लिपिक रक्षा नहिं करय। हमरा लोकनि तँ अपन लिपि छोड़िए देल, भेष छोड़ि रहल छी। केवल घर में बजैत छी, ने ओकर कोनो पुस्तक पढ़ैत छी वा ने कोनो लेखादि लिखैत छी। कोनों भाषा कें नष्ट करब ओहि जाति कें नष्ट करब थीक। मैथिली सन प्राचीन सुन्दर ललित भाषाक अनादर अपन जननीक अनादर करब थीक।

मिथिला में पुस्तक क बड़ कमी अछि। विद्वान् लोकनि मैथिली में लिखथि, जाहि सँ मातृभाषाक भंडार पूर्ण हो। प्राचीन हस्त लिखित (Manuscript) पुस्तक मुद्रित कैल जाय। घर घर सँ मिथिला-पुस्तकक संग्रह कय छपेबाक प्रवन्ध हो। 'साहित्य परिषद' 'कवि सम्मेलन' क प्रत्येक स्थान में वार्षिक अधिवेशन हो। ई युग पत्र पत्रिकाक थीक। मैथिली के प्रचारक हेतु एक नहिं अनेक साप्ताहिक तथा मासिक पत्रक प्रकाशन कर्तव्य। जखन १९११ क सेन्सरक अनुसार मैथिल बजनिहार क संख्या १ कोटि ७ लाख ३६ हजार अछि। (आब और वृद्धि क सम्भावना) एतेक पैघ संख्या में पत्र-पत्रिका क चलब कठिन नहिं।

किन्तु विचारणीय ई रहल जे ई सङ्गठन करै के ? विश्वक इतिहासक पृष्ठ युवक आन्दोलनक साक्षी अछि। आइ जे कोनो देश उन्नतिक पथ पर देखि पड़ैछ, ओकरा ई स्थान प्रदान केनिहार युवके छथि। हमरा मिथिला में आवश्यकता अछि कर्मठ साहसिक युवक वर्गक। देखबाक थीक; के एहि दिशा में अग्रसर होइ छथि ?

—※※—

वेद-ब्राह्मण में मिथिला

प० श्रीयुत महेन्द्रनाथ झा सामवेदी

मिथिलाक विद्वन्मण्डलीक बाहुल्य यज्ञ परायणताक प्रसंग महाभारतआदि इतिहासक कोन कथा वेदब्राह्मणहु में स्पष्टतया उपगीत अछि। हम ओहि में दू-चारि प्रसंगक उल्लेख करब।

एक समय में कुरुपाञ्चालदेशस्थ-ऋषि महर्षि लोकनि राजर्षि महाराज वैदेह जनकक-दीर्घसत्र में अबैत गेलाह। समागत महर्षि लोकनिक समक्ष महाराज वैदेह जनक एक सहस्र-गाय शास्त्र-विधिक अनुसार ५-५-तोला प्रत्येकक शृंग में स्वर्ण दय तथा रौप्यखुरआदि विशेषण विशिष्टकय बन्हबाय देलथिन्ह। ओ समागत महर्षि लोकनिक समक्ष घोषणा कयलन्हि-जे क्यो अति ब्रह्मनिष्ठ छी से-ई गाय सभटा लय जाउ। ओ महर्षि लोकनि क्यो किछु नहिं बजलाह, ने गाय लेलन्हि। तखन मैथिल महर्षि योगी याज्ञवल्क्य अपन शिष्य सामश्रवा कें आश्रम में सभ गाय लय जयबा हेतु आज्ञा देल। सामश्रवा कें गाय लय जाइत देखि अन्यान्य ब्रह्मर्षि लोकनि क्रुद्ध भेलाह। ओ आश्वल नामक होता याज्ञवल्क्य सँ ब्रह्मविज्ञान में प्रश्नोत्तर करय लगलाह। ई बृहदारण्यक में एहि रूपक कथा अछि। यथा—

"जनकोह वैदेहो बहुदक्षिणेन यज्ञेनेजे-तत्र ह कुरुपाञ्चालानां ब्राह्मणा अभि समेता बभूवुस्तस्य जनकस्य वैदेहस्य विजिज्ञासा बभूव कः स्विदेतेषां ब्राह्मणानामनूचानतम इति। स ह गवां सहस्रमव रुरोध दश दश पादा एकैकस्याः शृङ्गयोराबद्धा बभूवुः। तान्होवाच-ब्राह्मणा भगवन्तो यो वो ब्रह्मिष्ठः स एता गा उदजतामिति ते ह ब्राह्मणानद् धृषुरथ ह याज्ञवल्क्यः स्वमेव ब्रह्मचारिणमुवाचैताः सौम्योदज सामश्रवाऽ इति--ताहोदाचकार तेह ब्राह्मणाश्चुक्रुधुः कथं नो ब्रह्मिष्ठोऽब्रवीतेत्यथह जनकस्य वैदेहस्यहोताश्वलो बभूव-सहैनंपप्रच्छ-त्वंनु खलु नो याज्ञवल्क्य ब्रह्मिष्ठोसी३इति-सहोवाच-नमो वयं ब्रह्मिष्ठाय कुर्मो गोकामा एव वयꣳस्मइति तꣳह ततएव प्रष्टुं दध्रे—होताऽश्वलः, इत्यादि-सहोवाच—जनको वैदेहोऽभयं त्वागच्छताद्याज्ञ-वल्क्य--येनोभगवन्नभयं वेदयसे-नमस्तेऽस्त्विमे--विदेहा अयमस्मि।"

एहि ग्रन्थ सँ स्पष्ट प्रतीत अछि जे-जनक महाराज विदेहराज्य-(मिथिला) तथा अपना कें-ब्रह्म विज्ञान कहबा हेतु-समर्पण कयलन्हि। विदेह शब्द सँ मिथिला कहबैछ एहि मिथिला-विदेहक नाम प्रसंग में पौराणिक निमिक उपाख्यान सर्वविदित अछि।

शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिन संहिताक-शतपथ ब्राह्मण में-ई परम पवित्र मिथिलाक उल्लेख अछि जे ई पूर्व काल में अनूप जलप्राय देश छल तथा वन-प्रधान

छथा-एहिदेश कें हिमालय तथा विन्ध्य क मध्यवर्त्ती यज्ञकेन्द्र देश बूझि देवता-लोकनि ब्रह्मा सँ लयकें-मनुष्य महर्षि राजर्षि लोकनि ततेक यज्ञ कयलन्हि-जकर परिणाम-स्वरूप ई भूमि शुष्क भय गेल।

एहि सँ ई अनुमान होइत अछि जे-प्रायः एक तिल मात्रो ई भूमि एहन नहिं अछि-जाहि ठाम कुण्ड वेदी द्वारा अग्नि भगवान् सुतर्पित नहिं भेल छथि। तें अत्यधिक धर्म्म प्रधानत्वात्-वेद ब्राह्मणहुं में उपगीतभय पृथ्वीक ललामभूत अछि। कारण जे-एहेन धर्म विप्लवक समय उपस्थित भेलहु पर एहि पवित्र भूमिक नैसर्गिक निवासीक हृदय क्षेत्र सँ धर्मभाव क कनेको परिवर्त्तन नहिं होइ छैक। तें सर्वर्त्तु-कुसुमाकरत्व देशान्तरापेक्षया एकर सिद्ध अछि।

मिथिला क संग बंगाल क सम्बन्ध

श्रीयुत शारदा चरण सेन कविराज

आठ सौ वर्ष सँ किछु पूर्व गौड़ देशाधिपति सेन राजगण क सुवर्ण युग में जानकीजन्मपूता पण्डित-मण्डिता मिथिला क संग विबुध-जननी वङ्गभूमिक जे पवित्रसम्बन्ध छल, ओहि गौरवमय इतिहास क किञ्चिन्मात्र आलोचना करैत छी।

खृष्टीय ७५० ई० में गोपाल नामक राजा बङ्गाल क सिंहासन पर आरूढ़ छलाह। ओही वंशक राजन्य वर्ग किछु कालान्तर आसाम ओ कलिङ्गादि देश जीति कय राज्यक सीमा विस्तार कयलन्हि। पालवंशीय भूपालगण बौद्ध छलाह, एही कारणें वैदिक सनातन धर्म विलुप्त नहिं भेनहु हीन-प्रभ भ गेल छल।

वैदिक धर्मक पुनः प्रतिष्ठाक हेतु शूरवंशीय विख्यात भूपाल आदिशूर कान्यकुब्ज देश सँ पाँच टा साग्निक ब्राह्मण मँगौलन्हि। केओ कहैत छथि जे राज प्रासाद पर गीध बैसल छलैन्हि, तकर अमङ्गलक शान्ति-हेतु वेदविद् ब्राह्मण आयल छलाह। किनकहु मतें पुत्रेष्टि यज्ञ निष्पत्तिक हेतु छान्दड़, वेदगर्भ ओ भट्टनारायण प्रभृति द्विजगण बङ्गाल आयल छलाह। एहि में सँ काव्य-कला-कोविद भट्टनारायण वीर-रस-प्रधान "वेणी-संहार" नामक नाटक बनौलन्हि।

आदिशूरक बाद सामंतसेन विजयसेन आदिक शासन-काल में देश सर्वतोभावे सुखी छल। वल्लालसेन मिथिला जय कयने छलाह। गङ्गाम्बु-विधौत नवद्वीप नगर हुनक राजधानी छलैन्हि। ओ स्वयं दानसागर नामक ग्रन्थ रचना करैत भेलाह। वल्लालसेनक पुत्र लक्ष्मण सेन सुपण्डित ओ वीर पुरुष छलाह। हुनक दिग्विजयक कथा क आश्रय कय मेघदूतक अनुकरण में धोयी कवि पवनदूत नामक एकटा काव्य बनौलन्हि। गुणग्राही महाराज लक्ष्मण सेन धोयी क गुण सँ खुशी भय हुनका दन्तीव्यूह नामक राज्यखण्ड, कनक-वलय ओ छत्र-चामरादि दान कय अभिनन्दित कयने छलथिन्ह।

मैथिल एवं बङ्गाली पण्डित गणक चेष्टा सँ

अनेक शास्त्र विरचित भेल छल। नवद्वीप नव्य न्याय जन्य अधिक प्रसिद्धि लाभ कयलक। प्राचीन न्याय क प्रणेता महर्षि गौतम एही मिथिलाक छलाह। बाद ओहि मिथिलाक वासी गण नवद्वीप जा कय न्याय शास्त्रक अध्ययन कय प्रतिष्ठा लाभ कयलन्हि। एवं बङ्गाली छात्रगण मैथिल पण्डित मँ न्याय शास्त्र क अध्ययन करैत छलाह।

मिथिलाक वाचस्पति मिश्र ओ पक्षधर मिश्र प्रमुख महामहोपाध्याय पण्डित गण तथा बङ्गालक रघुनाथ शिरोमणि ओ गदाधर भट्टाचार्य्य प्रभृति नव्य-न्याय क बहुत ग्रन्थ बनौलन्हि। नास्तिकचूड़ामणि चार्वाकमत कें निरस्त कय ईश्वरक स्थापना क हेतु न्याय शास्त्रक प्रयोजन भेल छल। महाराज लक्ष्मणसेनक छत्रच्छाया में रहि कय पण्डित प्रवर हलायुध "ब्राह्मण सर्वस्व" नामक ग्रन्थ बनौलन्हि। केओ केओ कहैत छथि ई मैथिल छलाह।

विजय सेन के शासन काल सँ लक्ष्मण सेनक शासन काल तक बङ्गला ओ मिथिला देश में साहित्य, अलङ्कार ओ नव्य न्याय क अनेक ग्रन्थ रचित भेल छल।

प्राचीन कालक ब्राह्मण पण्डितगण अतिशय परिश्रमी सदाचारपरायण ओ सरलप्रकृतिक छलाह। विलासिता हुनका कखनहुँ स्पर्शो टा नहिं करैत छलैन्हि। हुनका एहन धारणा छलैन्हि जे उत्तम रूपें संस्कृत अध्ययन अध्यापन कयने धर्मार्जन होइत छैक। अतः हुनक समस्त उत्साह उद्यम संस्कृत ग्रन्थ में नियोजित होइत छल।

पिता सहित पुत्र क जे सम्बन्ध तहिना गुरुक संग शिष्यक सम्बन्ध अछि। से हेतु मैथिल ओ बङ्गाली विद्वान कें परस्पर यथोचित गुरु शिष्यक सम्बन्ध अछि। दूनू देश में पण्डित सभ कें सतीर्थ सम्बन्ध चलैत अछि। गुरुक स्नेह, शिष्यक भक्ति, सतीर्थक प्रेम मैथिल और बङ्गाली क अच्छेद्य बन्धन में आबद्ध कयने अछि।

मिथिलाक्षर ओ बङ्गीय वर्णमाला सदृश अछि। मिथिलाक आचार, व्यवहार, उपासना पद्धति प्रायः एक रूप। एहि दूनू देश में शाक्त ओ शैव छथि एवं मांस मत्स्य खाइत छथि। मिथिला भाषा क संग बंग-भाषाक बहुत किछु सादृश्य अछि।

आचार्य्य गोवर्द्धन महाराजाधिराज प्रवर सेन क पण्डित छलाह। काल प्रभाव सँ संस्कृत विद्याक पीठस्थान मिथिला और नवद्वीप कें से गौरव नहि अछि। ओहि सारस्वत मन्दिर क रत्नप्रदीप एखन निर्वाणोन्मुख!

वाग्देवता लोकललामभूता वीतादरा शोकशतैः प्रतप्ता।
क्लिष्टा तुषारैर्नलिनीव नूनं मुंचत्यजस्रं बत शोकजास्रम्॥

मिथिला क वर्तमान राजवंश सदाचार परायण ओ विद्योत्साही होइत आयल अछि। म० म० महेश ठाकुर, स्व० म० रमेश्वर सिंह उदाहरण स्वरूप छथि। सर्व शक्तिमान् परमेश्वर हमर महाराजाधिराज कें चिरञ्जीव करथु। अन्त में हमर हार्दिक कामना जे मैथिल क संग बङ्गाली क सौहार्द ओ प्रीति-बन्धन चिरदिन अक्षुण्ण रहओ!



अवनति क मूल और उन्नति क उपाय

प० श्रीयुत भूपनारायण झा जी व्या० न्या० मी० आचार्य
प० श्रीयुत बदरीनाथ झा आयुर्वेदाचार्य।

[१]

मिथिला क उन्नति सर्वदैव आध्यात्मिक अध्यवसाय प्रयुक्त सुनना जाइछ। मिथिला क उन्नति क पराकाष्ठा तहिया छल जहिया जनक सन जीवन्मुक्त मिथिलेश क आध्यात्मिक शासन सँ पशु-पत्ति-पर्यन्त आत्मज्ञानामृत प्रवाह बहैत छल; जनिक आध्यात्मिक प्रभाववश मिथिलाधरणी क गर्भ सँ साक्षात् जगज्जननी क जन्म भेल छलैन्हि। रामचन्द्र स्वरूप परमेश्वर कें एहि मिथिले क सन्तान सँ सशक्ति कहयबाक सौभाग्य भेटलैन्हि। तदुत्तरो त्तत्रिये क शासन वश मिथिला क आध्यात्मिक उन्नति क नैरन्तर्य्य बहुतो दिन तक छल।

फलतः बुझना जाइछ जे ओहि समय प्रायः जीवन निर्वाह ब्राह्मण लोकनिक फलमूलादिये सँ होइत छलैन्हि अतः राजा सँ आर्थिक अपेक्षा नहिं रहैत छलैन्हि। भवनाथ मिश्र (अयाची) क अयाचितावृत जकर हेतु अपूर्णपञ्चमवर्षक पुत्र शङ्कर मिश्र क स्वप्रखरप्रतिभा पारितोषिक स्वीकारहु सँ—

> अधीतमध्यापितमर्जितं यशो न शोचनीयं किमपीह भूतले।
> अतः परं श्री भवनाथशर्मणो मनो मनोहारिणि जाह्नवीतटे॥

एहि तरहें असन्तोष प्रकाश कयने छलाह। षड्-दर्शनटीकाकार वाचस्पति मिश्र क शास्त्रीय अध्य-वसाय एहेन छलैन्हि जाहि सँ सन्तानोत्पादन क अवसर नहि पावि अपन धर्मपत्नी भामती क नाम सँ ब्रह्मसूत्र शाङ्कर भाष्य क टीका हुनक स्मारक रूपे बनौलन्हि।

परन्तु तदुत्तर उत्तरोत्तर कालप्रभाववश विद्वज्जनोक जीवन क कार्य कारण भाव अशेक संग बढ़य लगलैन्हि। तथापि ताहि समय क मिथिलेश तथा पूना क श्रीमन्त प्रभृति अन्य नरेश सँ लब्धजीविक भय मैथिलवृन्द आध्यात्मिक उन्नतिक शिखर पर चढ़ल रहैत छलाह।

किन्तु समय बदलल, संगहि प्राणिमात्रक स्वभाव में परिवर्तन भय गेल, आर्थिक अभाव सभक अन्तःकरण कें दूषित बना देलक। मैथिल विद्वान् लोकनि जीविका क व्यग्रता सँ केओ तीर्थ पास कय किछु अङ्गरेजी क किताब पढ़ि हाई स्कूल क सेवन करै लगलाह। कतेक मध्यमे परीक्षा पासकय लोकलबोर्डक आश्रित भेलाह। तखन शेखर, मनोरमा, शून्यवाद, दृष्टिसृष्टिवाद तक के पहुंचैत अछि?

यैह कारण थीक जे सम्प्रति संस्कृत भाषा मृत भाषा बुझल जा रहल अछि। एकर उन्नति कोना हो, वा ई संस्कृत भाषा कोना उच्चस्थ रहै, ई सद्भावना क उत्थान करब प्रत्येक विवेकशील क कर्त्तव्य थिक। आब एहिठाम प्रश्न ई उठैछ जे एकर उन्नति पुनः कोना हो? तथा एकर अवनति क कारण की?

ई तँ हम कहिये आयल छी जे आधुनिक विद्वान् लोकनिक आर्थिक संकट तथा एहि सभ कारणें शास्त्र क अनुशीलन में मनक केन्द्रीभाव क अभाव उन्नति में कुठाराघात कय रहल अछि। दूइये

मार्ग अछि एक तँ अयाची क समान अनिग्रही होथि अथवा हरिसिंह देव, भोज, विक्रम सदृश विद्याव्यसनी क आश्रय हो। तखनहिं निस्संदेह संस्कृत विद्या एकबेर उन्नति क शिखर पर आरूढ भय जायत। तथा पुनः अपना देश में प्राचीन रीत्या दर्शनादि क विकास होमय लागत।

[२]

जे लोकनि पार्थिव भोग विलासकें उपेक्षाक दृष्टि सों देखि अपार्थिव सत्य ज्ञानमय आनन्द में निमग्न रहै छलाह, मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा, जनिक स्वभाव सिद्धपदार्थ छलैन्हि, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, प्रभृति विषयक जनिका असाधारण अभ्यास छलैन्हि; हुनके लोकनि क हमरा लोकनि सन्तान छी।

हमरा लोकनि अपन गन्तव्य पथकें छाड़ि पिता पितामह क प्रदर्शित मार्गक विस्मरण कय कहां जा रहल छी?

एम्हर नवीन युग शिक्षा दै अछि जे—संसार में यदि जीवित रहबाक हो तँ अर्थबल सों बलवान् होयबाक चेष्टा करू। अर्थहीन व्यक्ति कोनो विषय में सफलता प्राप्त नहिं कय सकैछ। अतएव जेना तेना जहाँ तहाँ कोनो प्रकारें अर्थ संग्रह पर-मावश्यक थिक।

एम्हर हमरा लोकनिक प्राचीन वृद्ध महर्षि लोकनिक आदेश छैन्हि जे अर्थे अनर्थक मूल थीक। संसार में अमर होमै यदि चाही तँ निर्लोभ बनूँ "नश्वर पदार्थ मात्रक परित्याग कय अनश्वर पदार्थक चिन्तन करू।"

एहना परिस्थितिमें जीवन गम्यपथक संधि स्थलपर एकर विचार करबाक प्रयोजन अछि जे मिथिला-सन्तानक हेतु कोन मार्ग उपयुक्त कोन अनुपयुक्त? नवीन शिक्षक क प्रदर्शित प्रवृत्तिमार्ग अथवा प्राचीन महर्षि लोकनिक निवृत्तिमार्ग?

मिथिला में स्वेच्छया दारिद्र्यव्रतधारी हजारों व्यक्ति गाम-गाम घर-घरमें छलाह। आबहुँ निर्लोभ मैथिल पण्डित ब्राह्मणक संख्या पूर्वक अपेक्षया कम भेलहुँ एखनपर्यन्त विलुप्त नहिं भेल अछि। जे लोकनि कहै छथि जे मैथिल जाति निवृत्तमंत्रक साधना कय आत्मविनाश कयगेल, तनिका सर्वथा भ्रम थिकैन्हि।

वस्तुतः हमरा लोकनि यदि निवृत्ति मार्ग क अवलम्बन नहिं कयने रहितहु तँ एहि संसार सों मिथिला क नामो-निशान विलुप्त भयगेल रहैत। किछु त्रुटि भेल, तकर कारण ओकरहि परित्याग। पुनः विना देश काल पात्रोपयोगी आचार व्यवहार पालन कयने हमरा लोकनि क नष्ट स्वास्थ्य और सौमनस्य प्रत्यावर्तित नहिं होयत।।

मिथिला-सन्तान! संसार में जीवित रहबाक यदि अभिलाषा रखैछी तों अपन प्राचीन ऋषि लोकनिक प्रदर्शित मार्गक अनुसरण करू अन्यथा संसार में अमरत्वलाभ करबाक दोसर मार्ग निश्चय नहिं भेटत।

अहाँ लोकनि अमृतक अधिकारी भै कोन मोह जाल में पड़ि, ककर प्रदर्शित मार्ग में दौड़ल जा रहल छी। ई तँ हमरा लोकनिक गन्तव्य पथ नहिं थीक। हमरा लोकनि क हेतु तँ मनु भगवान् स्पष्ट कहिए गेल छथि जे—

> येनास्य पितरो जाता येन जाता पितामहाः।
> तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन्नरिष्यति॥

—*◇*—

मैथिली; भाषा क रूप सँ

श्रीयुत भोलालाल दास जी, बी० ए०, एल० एल० बी०,

मिथिला देशक प्राचीनता अगस्य अतीतक गह्वर में विलीन अछि। क्यो नहिं कहि सकैछ जे कै हजार वर्ष सँ मिथिला देशक अस्तित्व अछि, पुराणेतिहास, वेद, ब्राह्मण, सूत्र, स्मृति-सबहु ग्रंथ में एकर उल्लेख अछि, किन्तु मिथिलाभाषा वा मैथिलीक से स्थिति नहिं, (भाषाक अर्थ में 'मैथिली' क व्यवहारो एही वर्तमान युग में चलल अछि, पूर्व एकर अर्थ छल जनकनन्दिनी मैथिली) साहित्यिक भाषा संस्कृतादि सँ भिन्न सब दिन लोकभाषा अवश्य छल, परन्तु ओ मिथिलाभाषा आजुक मैथिली नहिं, क्रमशः प्राकृत, अपभ्रंशादि छल। देश ठामहि अछि वा रहत किन्तु भाषाक परिवर्त्तन, काल और पात्रक भेदें सर्वदा होइत आएल अछि। ई परिवर्त्तन कोनो एक व्यक्तिक बाल्य वार्धक्य आदि जकाँ नहिं, प्रत्युत कोनो वंशक बीजी पुरुष सँ लय भिन्न भिन्न पीढ़ी ओ शाखा प्रशाखा जकाँ भेल अछि।

यद्यपि बहुतो प्राचीन विद्वान्क सम्मति में वैदिक भाषा जे संसारक आदि भाषा थिक, तकरहु सङ्ग सर्वदा सँ एक लौकिक भाषा भिन्न रहैत आयल अछि। एवं मैथिली चिरकाल सँ अपन रूपमें वर्तमान अछि। किन्तु आधुनिक भाषा विज्ञान, स्वरविज्ञान आदिक क्रम सँ एवं प्राचीन ग्रंथ सभक खोज तथा ओकर भाषाक अवलोकन सँ ई मत चिन्त्य बुझना जाइछ। एहि मत माननिहारक अनन्य भाषाक सत्कार करितहुँ सत्यानुरोधें एहि धारणा कैं भ्रान्त कहै पड़ैछ !

भाषा-विकास क्रम।

भाषाक उत्पत्ति वा विकास कोना होइछ ? लिखित ओ कथित भाषा में सर्वदा भेद रहैछ, तकर की कारण ? देश काल आदिक भेदें एकै शब्द वा स्वरक उच्चारण स्वभावतः भिन्न-भिन्न भए जाइछ, से प्रायः किनकहु अस्वीकार नहिं होएतैन्हि। लोक जे भाषा बजै अछि, से विद्वान् लोकनिक कृपा सँ क्रमात् साहित्यिक रूप धारण कैलक, ओकरा शुद्ध रखबाक हेतु ओहि में कोष, व्याकरण, छन्दादिक नियमोपनियम बनल। किन्तु सब लोक तँ सब काल में विद्वान् नहिं होइछ जे सभ केयो ओकरा ताही शुद्ध रूप में बाजै, अतः साधारण लोक में ओकर रूप किछु विकृत होमय लगैछ। ई विकार समय ओ प्रान्तक क्रमें बढ़ल जाइछ। क्रमशः ई भेद ततेक बढ़ैछ जे मूल साहित्यिक भाषा सँ भिन्ने भिन्ने भाषाक विकास भए जाइछ।

आब लेखकगण कैं प्राचीन साहित्यिक भाषा भिन्ने बूझि पड़ैछैन्हि, अतः ओ तकरा छोड़ि अपना समयक चलित भाषा कैं ग्रहण करै छथि। हुनका लोकनिक उद्योगें पुनः थैह साहित्यिक भाषा बनैछ। एहू में व्याकरणादिक नियमोपनियम स्थिर होइछ; किन्तु जहिना थोड़ेक जल कैं जलाशय वा ह्रद में आबद्ध कैने कोनो महानदीक स्वाभाविक गति नहिं रोकल जा सकैछ, तहिना कोनो लोकभाषा कैं काव्यादि में लेखबद्ध कैने ओकरा स्वाभाविक प्रवाह सँ पराङ्मुख नहिं कैल जा सकैछ। अतः किछु काल में एहू साहित्यिक रूपक परिवर्त्तन होमय लगैछ। एही क्रमें लिखित भाषा सँ कथित ओ कथित भाषा सँ लिखित भाषा बनैत रहैछ।

जहिना कोनो वंशक लोक में कोनो व्यक्ति वा पीढ़ीक अधिक उन्नति ओ प्राबल्य होइछ वा कोनो शाखाक एकदम लोप वा शाखा शाखा में प्रतिस्पर्द्धा आदि होइछ, तहिना भिन्न भिन्न भाषाक उन्नति ओ अवनति, जीवन ओ मरण होइछ। भेद एतबे अछि जे व्यक्तिक जीवन मरणादि द्रुतगतियें किन्तु भाषाक उत्पत्ति ओ विकास, उन्नति वा अवनति दीर्घ कालें होइछ। जखन कोनो भाषाक बजनिहार नहिं रहैछ, तखन ओ मृत्यु कैं प्राप्त करैछ, यदि ओकर कोनो साहित्य रहलैक तँ ओहि में तकर प्रतिमामात्र रहि जाइछ। किन्तु जौं साहित्यो नहिं रहलैक तँ ओकर मरण सर्वथैव बुझबाक चाही।

कतोक एहनो भाषा अछि जकर ने केयो बजनिहार अछि और ने कोनो साहित्य अछि; किन्तु ओ दोसरा भाषाक जन्म दै देने अछि, जकर प्रचार वा साहित्य छैक। एहना स्थिति में, जेना पुत्रक जीवन में मृत पिताक शक्ति विद्यमान रहैछ, तहिना ओहि मृतभाषा कैं अपना नवीन रूप में जीवित बुझबाक चाही। जीवित भाषा में एहि प्रकारक परिवर्त्तन सदत होइत रहैछ; किन्तु मृतभाषा में तकर सम्भावना नहिं। मैथिली एक जीवित भाषा थीक अतः ओकर परिवर्त्तन, परिवर्द्धन आवश्यक।

की मैथिली हिन्दीक प्रभेद वा बोली थीक ?

एहि ठाम एक विषयक उल्लेख करब और आवश्यक अछि। कतिपय हिन्दीक प्रेमी कैं मैथिली-साहित्यक गुण गरिमा स्वीकार रहितहुं एकरा 'भाषा' मानबा में संकोच होइ छैन्हि। एतबे नहिं, ओ एकरा हिन्दीक एक प्रभेद वा बोली बुझै छथि ! 'हिन्दी भाषा विज्ञान' क रचयिता बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० तथा 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' क रचयिता श्रीयुत जयचन्द्र विद्यालङ्कार महोदयादि मैथिली कैं हिन्दीक प्रभेद ओ मिथिला कैं हिन्दीक क्षेत्र मानने छथि। आब तँ सरकारी मनुष्य-गणना रिपोर्टहु में मैथिली भाषी कैं हिन्दीभाषी लिखल जाय लागल अछि। विद्यापति पदावलीक संकलयिता बाबू रामवृक्ष शर्म्मा ओ गोविन्द गीतावलीक संकलयिता बाबू मथुरा प्रसाद दीक्षितो महाशय मैथिली कैं हिन्दी सँ स्वतन्त्र नहिं मानै छथि।

हमरा बुझने एहि सँ भारी भ्रम दोसर कोनो नहिं भय सकैछ। पहिने तँ भाषा ओ विभाषा (बोली) में कोनो तात्त्विक भेदे नहिं अछि। पहाड़ ओ पहाड़ी में जतबा भेद अछि, ततबे। किन्तु नाम मात्रहि सँ कोनो पहाड़ी ने छोट होइछ और ने पहाड़ पैघ होइछ। 'दार्जिलिंग' पहाड़ी कहबितहु 'स्नोडन' पहाड़ सँ कतोक हजार फीट ऊँच अछि, तहिना जौं कोनो महाशय कैं मैथिली कैं बोलिये कहबाक अधिक आतुरता होइन्ह तँ एकरा बोली कहि लेथु; किन्तु ई अनेकानेक भारतीय भाषा सँ सर्वदा पैघ रहबे करत। एकर नैसर्गिक महत्त्व के घटा सकत ?

सौभाग्यवश डा० ग्रियर्सन, डा० सुनीति कुमार चटर्जी, प० श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि शतशः बड़े बड़े भाषा विज्ञानी एकरा भाषा कहि कय स्वीकार कयने छथि। अतः किछु पक्षपातपूर्ण व्यक्तिक आलोचना पर हमरा सबहुँ कैं चिन्ता नहिं करक चाही।

भाषा तथा बोलीक वैज्ञानिक सम्बन्ध पर ध्यान देला सँ ई बात और स्पष्ट होएत। भाषा विज्ञानी गणक मतें दुहू में पारिवारिक सम्बन्ध अछि। कोनो व्यक्तिक जहिना कतोक पुत्र और ताहू सँ कतोक पौत्र प्रपौत्रादि रहैछ तहिना भाषा सँ अनेकानेक प्रान्तीय बोली वा विभाषा उत्पन्न होइछ। ऊपर भाषा विकासक जे क्रम कहि आएल छी, तकरे दोसरा शब्दें ई कहि सकै छी जे भाषा सँ बोली और बोली सँ भाषा बनैछ। जखन भिन्न-भिन्न बोली में अपना मातृभाषा सँ (स्मरण रहय जे एहि ठाम मातृभाषा सँ ओ भाषा विवक्षित अछि जे कोनो भाषाक जन्मदात्री हो) अधिक समता और अत्यल्प भेद रहैछ, तखन ओ तकर बोली कहबैछ। किन्तु जखन भेदक मात्रा समता सँ अत्यधिक भय जाइछ तखन ओ स्वतन्त्र भाषा कहबैछ। उदाहरण द्वारा देखल जाओ। बंगला एक भाषा भेल जे समस्त बंगालक लोक परस्पर बजै छथि; किन्तु प्रान्त भेदें एकर कै गोट प्रभेद अछि। कहल जाइछ जे मेदिनीपुर जिलावाली यदि चटगामक लोक सँ अपना बोली में बाजथि तँ ओ भिन्ने बूझि पड़ैछ। जैं हेतु परस्पर भाव विनिमयार्थ समस्त बंगालक लोक साहित्यिक बंगलाक प्रयोग करै छथि। किन्तु अपना प्रान्त में अपना बोलियहिक प्रयोग करै छथि। ई सब अवश्ये बंगला भाषाक बोली थिक; कारण एहि सब कैं बंगला सँ पूर्ण साम्य छैक, ने एकरा सबहक कोनो पृथक कोष अछि, ने व्याकरण अछि। बंगलहि शब्दक स्थान भेदें किछु भिन्न उच्चारण ओ क्रियापद में नाम मात्रक रूपान्तर—अन्यथा ओहि सब बोली ओ शुद्ध साहित्यिक बंगला में कोनो अन्तर नहिं। जाहि दिन कोनो बोली बंगला सँ एतेक पृथक भै जाएत जे ओकर व्याकरण, कोष, उच्चारणादि ओकरा हेतु अकार्य्यक वा अल्प कार्य्यक भए जाएत ताहि दिन ओ पृथक्के भाषा कहाओत।

अधिक दूर जयबाक प्रयोजन की? मिथिले भाषाक एके दू प्रभेद वा बोली नहिं, डा० ग्रियर्सन अपना भाषा क्षेत्र नामक ग्रंथ में जकरा दक्षिण भागलपुरक 'छिकाछिकी' चम्पारणक 'मधेसी' तथा निम्न जातिक 'जोलहा' बोली आदिक उल्लेख कयने छथि, से सब मैथिलियहिक प्रभेद थीक। कहबाक अभिप्राय ई जे शुद्ध साहित्यिके भाषा कैं प्रान्त भेदें जे थोड़ थोड़ अन्तर सँ भिन्न भिन्न रूपें बाजल जाइछ, सैह तकर बोली थीक।

आब विचारबाक विषय अछि जे मैथिली की कोनहु रूपें हिन्दीक प्रभेद कहल जा सकैछ? यदि ई महाशय लोकनि दुहू भाषाक व्याकरण, कोष, उच्चारण, लोकोक्ति, छन्द, अभ्यास (idioms) आदि पर विचार करथि तँ अनायासे ई भ्रम दूर भए जयतन्हि। पूर्वापर इतिहास पर दृष्टिपात कैने और शंकाक समाधान होएतन्हि, कारण जे मैथिलीक उत्पत्ति हिन्दीक संगहि भेल अछि, कोनहु रूपें दुहू में माता पुत्रीक सम्बन्ध नहिं।

बिहार में मैथिलीक स्थान।

म० म० डा० श्रीगङ्गानाथ झा गत 'मैथिली साहित्य परिषद्' क सभापतिक आसन सँ उचिते कहने छथि जे बिहारक प्रत्येक स्वीकृत भाषा सँ मैथिली बजनिहारक संख्या अत्यधिक अछि। अंगरेजी तँ राजभाषा ओ हिन्दी राष्ट्रभाषा थिक तैं ओकर चर्चा नहिं हो, किन्तु फ्रेंच, लैटिन, ग्रीक आदि विदेशी भाषाक बजनिहार बिहार में नामो मात्र नहिं। उर्दूक बजनिहार यदि कुल मुसलमान होथि तँ १४ प्रतिशत छथि, बंगला, नेपाली आदिक दुइयो चारि प्रतिशत होएतैह वा नहिं ताहू में सन्देह। मुण्डा संथाली आदि अनार्य्य भाषाक बजनिहार सेहो बड़ थोड़! किन्तु ई सब भाषा प्रान्तीय विश्वविद्यालयक पाठ्यक्रम में स्वीकृत अछि। संथालीक स्वीकृतिक प्रश्न मैथिलियहिक संग उपस्थित अछि और ताहि हेतु भूतपूर्व वाइस चान्सलर खास जस्टिस मैकफर्सन साहेबक विशेष सिपारस छन्हि, बहुत सम्भव जे ओकर स्वीकृति हैबे करय; किन्तु मैथिलीक हेतु सैह लोकोक्ति चरितार्थ भए रहल अछि जे 'बाहर वाले खा गये घर के गावें गीत।' अस्तु,

ई तँ पटना विश्वविद्यालयक अधिकारी वर्गक विचार पर निर्भर अछि किन्तु एतबा स्पष्ट कय देब आवश्यक अछि जे बिहारक तीनू मुख्य भाषा में (मैथिली, मगही, भोजपुरी) में मैथिलिये सब प्रकारें श्रेष्ठ सम्पन्न ओ साहित्यिक भाषा अछि। यदि भाषाक दृष्टियें बिहार कोनो एक प्रान्त थिक तँ कहय पड़त जे मैथिलिये एकर एक मात्र साहित्यिक भाषा (Standared language) थीक ओ अन्यान्य कुल भाषा एकर बोली थीक! किन्तु ई बात बहुत गोटा कैं अप्रिय बूझि पड़तन्हि, तनिका हेतु हमर एतबे आग्रह जे हुनका मतें हिन्दीक प्रभेदो भए केवल मैथिलिये साहित्य विहारक अपन साहित्यक सामग्रीक नामे एकर मुख उज्वल बना रहल अछि, ओ कोनो ठुकरावय वाला वस्तु नहिं—आदर ओ मनन करबाक वस्तु थीक। जाहि साहित्यक प्रभावें केवल विहारक कोन कथा, समस्त उत्तर पूर्वी भारतक संस्कृति (culture) परिष्कृत भेल—तकरा हेय बुझब केवल दुराग्रह ओ अज्ञानता थिक। मैथिलीक तिरस्कारें विहारक कथमपि कल्याण नहिं भए सकैछ।

मैथिलीक महत्त्वक कारण?

मैथिलीक एहि महत्त्वक कारण की? सब गोटय स्वीकार करताह जे जाहि दिन भारतवर्षक अनेकानेक प्रान्तक नामो नहिं छल, ताही दिन सँ प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्यापीठ छलि। पश्चात् काल राजनैतिक दृष्टियें मगध ओ मगध साम्राज्यक अपूर्व प्रताप चमकल, जकर धाख केवल भारतवर्षक कोन कथा समस्त संसारे मानय लागल। भारतवर्षक इतिहास में मगधक गौरव सर्वापेक्षा अधिक अछि। किन्तु जखनहु एकर प्रबल प्रताप सूर्य्य समस्त भारत कैं परिपालित ओ संसार कैं प्रकाशित कय रहल छल, तखनहु मिथिला अपना संस्कृति ओ विद्या कैं सुरक्षित रखने रहलि। वैशालीक गणतंत्र में सम्मिलित भए प्राय: एकर आन्तरिक स्वतन्त्रतो सुरक्षिते रहलैक। दुर्भाग्यवशात् जखन मगधक साम्राज्य ओ प्रधानता नष्ट भय गेलैक तँ विहारक

सुखोज्ज्वल केनिहार एक मात्र मिथिले रहलि ।

बौद्ध धर्मक प्रचार काल में न्याय मीमांसा आदि शास्त्रक एहि ठाम चरम अध्ययन भेल ओ धर्मशास्त्र, कर्मकाण्ड आदि अनेकानेक विषय पर सहस्रशः पुस्तक लिखल गेल। यदि मिथिलाक विशाल संस्कृत-साहित्य पर ध्यान देल जाय तँ एकर महत्त्व प्रत्यक्ष भै जाएत। किन्तु एखने धरि विहार ओरिसा रिसर्च सोसाइटी कैं तकर सूचियो मात्र तैयार करब पार नहिं लगलैन्ह अछि। ताही सँ अनुमान कैल जाओ जे मिथिलाक साहित्य कतेक विशाल अछि एक शब्दमें येह कहबाक चाही जे सभ्यता ओ संस्कृतिक जतेक अङ्ग उपाङ्ग होइछ, ताहि सभ में मिथिला अपन स्वतंत्र स्थान बना लेलक। एहि विशेष संस्कृति क स्थान भारतीय सभ्यता में बड़ विशिष्ट अछि। जहिना मगध क राजनैतिक दाय सँ समस्त भारत एक साम्राज्य में संगठित भेल, तहिना मिथिला क विद्या ओ संस्कृति सँ समस्त उत्तरी विशेषतः उत्तरपूर्वी भारत अनुशासित भेल।

मिथिला ओ मगधक ई महती संस्कृतिक बरोबरि संस्कृत पालि ओ प्राकृत साहित्यक द्वारा प्रवाहित होइत रहल, पश्चात् मागधी-मैथिली अपभ्रंश में एकत्र भेल। मुसलमान विजेता लोकनि मगध पर अधिकार कए ओकर विश्व प्रसिद्ध नालंदा महाविद्यालय कैँ नष्ट कय देलन्हि ओ बौद्ध भिक्षुगण ततेक सताओल गेलाह जे ओकर संस्कृतिये नष्ट भए गेल। मगध ओ मागधी क नाममात्र शेष रहल। किन्तु सौभाग्य-वश मिथिला ताहि सत्यानाश सँ बचलि रहलि। तें हेतु मुसलमानी शासन सँ अद्यपर्य्यन्त यदि विहारक किछु संस्कृति बचल अछि तँ केवल मिथिलाहिक द्वारा। यदि ई कथा सत्य, तँ मिथिला क ओ संस्कृति की कतहु कपूर जकाँ उड़ि गेल? अन्वेषक सब कैं सहजहि पता लागि जयतन्हि जे ओ आब मैथिलिये साहित्य में सुर-रक्षित अछि, तस्मात् मैथिली क महत्त्व ओ प्रधानता निर्विवाद अछि।

—:***:—

अनुरोध

१

रञ्जित-वसना उषा-सुन्दरी
गाँथि नखत-नव माल।
छथि उद्यत स्वागत हित सम्प्रति
लय कर कनक क थाल॥

२

जागु पथिक, वेला गत कत-कत
तिमिर परायल लोल।
आलस लूटि रहल अछि पलपल
स्वर्ण समय अनमोल॥

श्री राघवेन्द्र झा (वैद्य)

आचार ओ विचार

पण्डित श्रीयुत त्रिलोचन झा जी

धर्मक व्यावहारिक दुइ स्वरूप होइछ। एक विचार दोसर आचार। दुहूक अन्योन्याश्रय सम्बन्ध अछि जेहन विचार कैल जाइछ क्रमशः आचारहु तद्रूपे भै जाइछ। एवं आचारक पूर्ण प्रभाव विचार पर पड़ैछ।

हिन्दूधर्म में विचार स्वातन्त्र्य स्वीकृत अछि, किन्तु आचारक विषय में भारी बन्धन अनेक प्रकारे निर्दिष्ट अछि। हेतु जे आचारक सम्पर्क तँ संग समाज सँ पड़ैछ। एक क दुराचारी भेने बहुत काँ हानि अनिवार्य। विचारक तेहन स्थूल प्रभाव जाहि सँ अनका शारीरिक वा आर्थिक हानि नहिं। कुविचारक प्रभावे कुप्रवृत्ति मन में होए, किन्तु जँ ओ कार्य्य में परिणत नहिं हो तँ ताहि सँ आनक की बगदि सकैछ? हँ, बिचारहुक प्रभाव अवश्य परत, जकरो परिहार उचित।

विचार स्वातन्त्र्य तँ हमरा धर्म में एतेक दूर धरि अछि जे सांख्याचार्य्य कपिल मुनि—जे ईश्वर क स्थितिहु में सन्दिग्धता प्रकट कैने छथि, भगवानक २४ अवतार में गनल छथि। तथा कपिल, आसुरि, वोढु, पञ्चशिख—एहि चारू सांख्याचार्य क सभ दिन तर्पण कैल जाइछ। परन्तु पूर्ण ईश्वर भक्तहु जँ सामाजिक आचार सँ पतित होथि तँ धर्मशास्त्रानुसार त्याज्य मानल जाइ छथि। एतबे नहिं वेदहु कैं अप्रामाणिक माननिहार भगवान् बुद्ध तँ दशावतार में नवम थिकथि; सम्प्रति हुनके नाम सङ्कल्प पर्य्यन्त में लेल जाइछ। किन्तु वौद्ध लोकनि जमिक आचारहु विपरीत छन्हि से हिन्दू जाति सँ बहिष्कृत छथि; हुनका लोकनि सँ कोनहु सामाजिक सम्पर्क नहिं कैल जाइछ।

अपन प्रान्त (मिथिला) प्रधानतः स्मार्त—स्मृतिपथानुयायी अछि। एहि ठाम मनुक अतिरिक्त विशेषतः याज्ञवल्क्य-जे मैथिल छलाह, तनिक निर्दिष्ट आचार क विशेष प्रचार अछि। आचार एतेक विशाल वृक्ष अछि जकर अन्य घरतु शाखा प्रशाखा-आदि में अन्तर्भुक्त होइछ। एकर परिगणन कय सकब असम्भव। ई एखन हुँ वृद्ध लोकनिक दैनिक आचरण और मिथिला क मातृ-वर्ग में प्रतिष्ठित अछि। वस्तुतः बूझी तँ संस्कृत-जे जाति विशेष क प्रधान कारण कहल गेल अछि, तकर पूर्ण आभास आचारहि में भेटत।

आचार क संग धर्म क जाहि तरह क सम्बन्ध छैक आरोग्य शास्त्र सँ कम नहिं। कतेको विद्वान त विज्ञान क दृष्टिकोण सँ हिन्दूधर्म में प्रचलित आचार-व्यवहार क परीक्षा कय ई सिद्धान्त प्रकट कैने छथि जे प्रातः कृत्यादि सँ शयन पर्यन्त, व्रत आदि सँ लय साधारण आचमन, अग्नि स्पर्शादितक सभ वैज्ञानिक तत्त्व सँ भरल अछि, जकर उल्लेख एहि लघु लेख में असम्भव।

किन्तु सम्प्रति मैथिल समाज में एहि आचार क विषय में बड़ शिथिलता आबि गेल अछि। दुराचारियो केवल अपन मौखिक सामाजिक नियम स्वीकार करथु, समाज में गृहीते नहिं मान्यो भय जाइ छथि।

किन्तु आचार केहनो शुद्ध रहौन, ईश्वर-वेदक कोन कथा, ईहो कहथि जे—'जँ अपना जातीय नियमक उल्लङ्घन नहिं कै विलायत जायब किये पाप' तँ लगले हुनक बहिष्कारक हेतु विद्वानो सभ बद्धपरिकर भै जाइ छथि। एहिना आनो आन अप्रचलित क्रियाक विषय में ज्ञातव्य। एहि सँ होइछ एतबे जे विचार-कुण्ठित आचार सेहो दूषित होइछ।

किन्तु हम हिन्दू-जे ईश्वर कैं सर्वव्यापी सर्व-मान्य मानैत छी, जतै समक हेतु अपने धर्म्मक पालन श्रेयस्कर मानल अछि, सङ्गहिं 'यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः' द्वारा विचार स्वातन्त्र्य देल गेल अछि, तखन विचार कैं बद्ध कै जकड़ने धर्म्मक महत्त्वहिक नाश करब थिक। अन्यथा हिन्दू धर्महुँ धर्म नहिं रहत मजहब हैत, जतय केवल अपन मजहब चलेनिहारक अविचारित अनु-गमने धर्म थिक। स्मरण राखबाक थिक जे मजहब ओर धर्म में महान् अन्तर अछि। मजहब बाह्य सँ अधिक ओर धर्म कैं आन्तर सँ विशेष सम्बन्ध छैक।

जँ ई स्थिति रहल तँ शुद्ध सनातन धर्मक ह्रास दुर्निवार अछि। सम्प्रति औषधक नामें समाज कैं विष पियाओल जाइछ! किन्तु आशा एतबे जे सनातन पुरुष-जे 'शाश्वत धर्म गोप्ता' छथि, ओ जेना अनेक बेरि ओकर डुबैत नावक उद्धार कैने छथि सैह पुनः रक्षा करताह!

आश्रम

नहिं अछि छद्म न माया
जतय श्रमिक जन श्रम हरबा लय
सुन्दर तरुवर छाया
अतिथि-गणक सत्कार हेतु मुनि
तत्पर रहथि सजाया।
उञ्छ वृत्ति निर्वाह
केवल ज्ञानक चाह ॥१॥

जहाँ सबहि सज्ञान
कीर-युगल अनुपम स्वर में नित
करइछ सामक गान
सीखि नियम मुनिगण सौं जहँ
जड़ वृन्द लगावै ध्यान।
सभ अछि एक स्वरूप
रंक रहौ बा भूप ॥२॥

ज्ञान क दीप बरैछ
जहि में लोभ मोह ईर्ष्यादिक
कीट पतंग जरैछ
यज्ञ धूम सुरभित आश्रम जहँ
महँ-महँ सतत करैछ।
शीतल सुरभि समीर
श्रान्ति हरय में धीर ॥३॥

श्री वीरभद्र झा शा० शास्त्री


(डॉ० गंगानाथ झा के सुपुत्र)
डॉ० श्रीयुत भवनाथ झा जी
(कैप्टेन)


(मैथिली-साहित्य-परिषद के मंत्री)
बाबू भोलालाल दास जी
बी० ए० बी० एल०

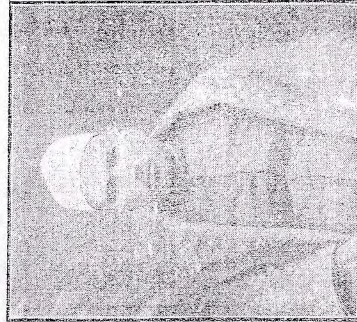

डॉ० श्रीयुत सुधाकर झा एम०
ए० पी० एच० डी०
(पटना-विश्वविद्यालय)



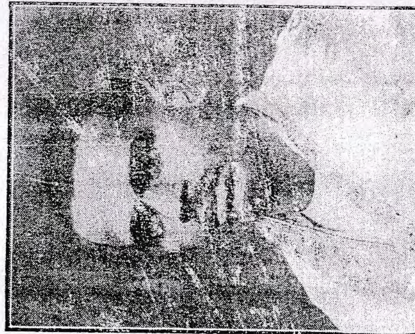
श्री गोपीकान्त चौधरी 'कान्त'



श्री जयकिशोर नारायण सिंह साहित्याचार्य



श्री विश्वेश्वरी प्रसाद सिंह बी० ए० बी० एल०



श्री नरेन्द्रनाथ दास विद्यालङ्कार

अनुरोध

प० श्रीयुत कुशेश्वर कुमर जी ज्यो० का० तीर्थ

—

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य आदि जे मिथिला देश-निवासी
राजा, रंक, धनी ओ निर्धन सन्त-महन्त उदासी।
की पण्डित की मूर्ख सब हि 'मैथिल' मिथिला-सन्तान
मिथिला माता हेतु नारि-नर सब छथि एक समान॥
किन्तु हमर मिथिलावासी जन एहि दिशि मन नहिं देथि
भेदभाव दरसाय अनेको केवल अपयश लेथि॥
जाहि हेतु संकुचित रूप धै मिथिला शिथिला भेली
सब टा साधन रहनहु दिन-दिन हीन दशा में गेली॥
नहिं उपदेश-समिति मिथिला में नहिं संस्था-सम्मान
पत्र-पत्रिका नामहु लै नहिं नहिं विशेष विज्ञान॥
सकल उन्नति क हेतु प्रथम अछि भाषोन्नति ई जानू
मिथिला-भाषा-साहित्यक रस, सबहि हृदय में आनू॥

× × × ×

धन्य धन्य मिथिलेश महाप्रभु पूर्ण दया दरसाय।
'मिहिर' क 'मिथिला-अङ्क' नाम कहि सब कैं देल जगाय॥
उचित थीक मन सौं एहि पत्र क कै स्वागत-सम्मान।
घर-घर करी प्रचार देश में सब हि धनी विद्वान॥

मिथिला क गङ्गा सँ

श्री उपेन्द्र ठाकुर 'मोहन' सा० शास्त्री

—

तजल पुरन्दरपुरी, न-सुन्दर लागल नगपति हिमवत कोर।
घुमइत जनक क आङन ऐलहुँ गङ्गे! मिथिला-प्रणय-विभोर
उषा काल में स्वर्ण-किरण-मणि चढ़बथि नियमनिरत कलकेश
ज्योत्स्नास्नात मनोरम सन्ध्या समय सुधा लय कर कुमुदेश॥
अयिविलुलितमिथिलासहचरि! किछुअमरगीतश्रवणकअछिसाध।
पूरब कृपया सुरधुनि! मातः अनुनय हमर आजु निर्बाध॥

मिथिला

प० श्रीयुत सहदेव झा जी विद्यालङ्कार व्या० का० तीर्थ

—

गोतम न्यायक सूत्र रचथि जनिकर कुटीर में।
विद्यापति कविता क गान सरिता क तीर में॥
अङ्क बैसि गङ्गेश करथि चिन्तामणि-चर्चा।
उदयन भरि कुसुमाञ्जलि विरचल जनिकर अर्चा॥
स्वयं जगज्जननी बनथि वैदेही उपजा जकर।
मातृभूमि मिथिला हमर, के कय सक समता तकर?

प्रोत्साहन

श्रीयुत लक्ष्मीपति सिंह जी बी० ए०

—

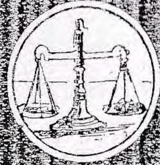
नव जीवन जानकी शीघ्र मिथिला में लाबथु।
सभ मिलि प्रमुदित आजु मातृभाषा जय गाबथु॥
बल-उत्साह क स्रोत जाति-सरिता उमड़ाबथु।
उन्नति-गिरि चढ़ि विजय-वैजयन्ती फहराबथु॥
भरथु मातृ-भण्डार सभ साहित्यक नव रत्न सँ।
देश-जाति-भाषा क हित साधथु समुदित यत्न सँ॥

कामना

प० श्रीयुत जीवनाथ झा व्या० आ० का० तीर्थ

—

कमल मैथिली गलल, पड़ल अपमान क पाला!
उजड़ल उपवन, शुष्क सरस साहित्य क माला!
कनक-किरण नहिं देखि सकथि जनता दुख पाबथि।
जड़ता-बाधित शक्ति व्यक्ति आलस ने त्यागथि॥
उन्मुख 'मिहिर' क उदय हो मधुमय मिथिला-अङ्क में।
स्फूर्ति जागरण शक्ति हो पुनि नायक ओ रङ्क में॥



विचार-विन्दु



निवेदन

अत्यन्त हड़बड़ी में एक नवसिखुआक हाथें प्रस्तुत एहि 'मिथिलाङ्क'क पंक्ति-पंक्ति में त्रुटि अछि! किन्तु आशा एतबेक जे जननी मिथिला और मैथिलीक पूजा क भावना सँ प्रस्तुत बूझि सहृदय 'मिहिर' क अनुरागी एकरा सदय दृष्टिएँ क्षमा पूर्वक अपनयबाक कृपा करताह। मिथिला सदृश महत्त्वमयी भूमिक परिचय एक अङ्क में अँटि सकब-घैल में समुद्रक समान असम्भव थीक। तथापि एहि क्षुद्र प्रयत्न सँ मिथिलाक प्रति जे लोकक शिथिल भावना छैक, तकरा जागृत करबा में किछुओ प्रेरणा भय सकत, तँ ई सफल होएत।

मिथिलाङ्कक सर्वश्रेय वर्तमान महाराजाधिराज श्रीमान् युवक मिथिलेश कें छन्हि, जनिक उदाराशयताक फलस्वरूप 'मिथिला-मिहिर' अपन सर्व प्रथम विशेषाङ्क 'मिथिलाङ्क' क रूप में मिथिला जननीक सेवा में चढ़ौलक। आशे नहिं विश्वास अछि जे श्री ५ मानक उदार छत्रच्छाया में जहिना दरभङ्गा नगर नवीन रूप धारण कयलक 'मिहिरो' अपन नवीन कलेवरें नूतन प्राण और जीवित स्फूर्ति लय सेवा-पथ में अग्रसर होएत।

हम एहि अवसर में माननीय लेखक, उदार शुभचिन्तक-सबहिंक ओलय नतमस्तकें कृतज्ञता प्रकट करैत अपन दोषराशिक हेतु क्षमाप्रार्थी छी।

मिथिलाक ऐतिहासिक स्थानक रक्षा

वर्तमान क महल भूत काल क भूमि पर ठाढ़ कयल जाइछ। इतिहास एवं ऐतिहासिक सामग्री भावी सन्तान क हेतु मार्ग प्रदर्शक होइछ। संसार क समस्त उन्नत जाति एही भावना सँ प्राचीनता क अनुसन्धान में प्रवृत्त अछि।

मिथिला अत्यन्त प्राचीन देश थीक। अनेक राजर्षि, महर्षि, दार्शनिक सिद्ध एवं प्रतिभाशाली कवि भय गेल छथि, जनिक नाम एवं कृति सँ संसार नीक जकाँ परिचित अछि।

यदि आन कोनहु जाति में ई विभूति सभ जन्म नेने रहितथि तँ हुनक स्मृति में अनेक संस्था अनेक मन्दिर आदि निर्माण होइत, हुनक स्थान कैं तत्त्वतः अन्वेषण कय ओहि ठाम स्मृति-स्तम्भ ठाढ़ कयल जाइत। किन्तु अत्यन्त खेद क विषय जे आधुनिक मिथिला एहि दिश एक दम आँखि मूनि नेने अछि। गौतमसदृश दार्शनिक, जनिक न्यायदर्शन क सिद्धान्त सँ विश्व चकित अछि, तनिक स्थान में एक कुण्ड क अतिरिक्त किछु नहिं। योगी याज्ञवल्क्य क तपोभूमि 'जगवन' एक दम उजाड़े बनल अछि। दार्शनिक शिरोमणि उदयनाचार्यक डीह हर सँ जोतल जारहल अछि!

महाकवि विद्यापति ठाकुर जनिक कविताकाकली सँ साहित्य क उद्यान गुञ्जित अछि, तनिक आवास-स्थान विसपी में हुनक कोनहुँ स्मृतिचिह्न नहिं! समाधि-स्थल में हुनक एकटा नामाङ्कित शिला-लेख नहिं!

हरिसिंह देव जे जातीय व्यवस्था क निर्मापक छलाह, जनिक पञ्जीपद्धति मिथिलाक जातीय जीवन कैं एक सूत्र में ग्रथित कैने अछि, तनिक गढ़क खण्डहरो कैं जोति जोति माँटि में मिला देल गेल। नान्यदेव, राजा शिवसिंह, आदि अनेक नरेन्द्र भय गेल छथि, जनिक स्थानक पूर्ण अन्वेषण कय ओहि ठाम कम सँ कम हुनक स्मृति-रक्षार्थ, अपन गर्व स्मरणार्थ शिलालेखो तक स्थापित नहिं कयल गेल।

एखनहुँ मिथिला में अनेक गढ़ अछि, अनेक चिह्न अछि जकर भग्नांशक रक्षा करब समस्त मिथिलाक जनताक हेतु परम कर्त्तव्य थीक। यदि हमरा

लोकनि भविष्य कैं मेटायब नहिं चाहैत छी और अपन भविष्य कैं भूतकालक प्राण सँ अनुप्राणित करै चाहैत छी तँ एहि दिसि ध्यान देबहि पड़त!

एक आवश्यक प्रस्ताव

मैथिल। साहित्य तावत् पर्यन्त शोचनीये बनल रहत यावत् काल मिथिला क कोटि-कण्ठ क ई संगीत नहिं बनत। एकर प्राचीन कोष में नवीन ग्रंथराशि क संग्रह नहिं होएत। एवं भाषासंघर्ष में त्रुटि सकबाक सामर्थ्य एहि में नहिं भय सकत। विश्वविद्यालय क पाठ्यक्रम में स्वीकृत नहिं भेने मैथिली क गति बहुत किछु रुद्ध अछि अवश्य, किन्तु की यदि ओ अपन अनुचित हठ पर डटल रहै तँ ई निराश्रय भय वन क फूले बनल रहत! मिथिला क समस्त सन्तान जाहि वाणी क द्वारा अपन कण्ठस्वर फोललक, की ओ एकरा एही तरहें बिसरने रहत! विद्यापति और उमापति क भाषा की हरवाह-चरवाह क 'बोली' कहबैत रहत!

आजु क युग कैं प्रेसक युग कहल जाइछ। कारण, सभक आधार एखन प्रेस (मुद्रण-प्रकाशन) भय रहल अछि। मिथिलाभाषा क वस्तुतः अवरोध एकर हि अभावें अछि। ई केवल लज्जा ओ घृणा क विषय थीक जे ओकर एकटा स्वतन्त्र पत्र पत्रिका नहिं। प्राचीन ग्रंथक उद्धार कैनिहार नवीनक पीठ ठोकनिहार कोनहु प्रकाशन संस्था नहिं। हो कोना? प्रकाशन में पूंजी ककरा बल पर फूकल जाओ? पहिरनिहार नहिं तखन माला गाँथल हो ककरा निमित्त? पत्र नहिं चलैत अछि-स्थायी ग्राहक क अभावें, पोथी कीटक आहार बनैछ खरीदनिहारक नामें, मैथिलीक इष्टअनिष्टक चिन्ता नहिं होइछ, संगठित संस्थाक अभावें, तखन किछु आशा करब आकाश में फुलवाड़ी लगाएब होएत?

एहि गम्भीर समस्या कै सोझरायब विज्ञ लोकनिक शक्य छन्हि। हम अपन क्षुद्रमतिएँ अत्यन्त नम्रता सँ एक विचार उपस्थित करैत छी—

मिथिला भरि में—मैथिली क क्षेत्र भरि में-पांच सै छोट छोट पुस्तकालय स्थापित कयल जाय, जे मैथिली साहित्य क उन्नति क उद्देश्य रखैत मिथिला भाषा क प्रकाशित भेल ओ क्रमशः भेनिहार पुस्तक सभ कैं खरीदय एवं मैथिली में जे पत्र-पत्रिका प्रकाशित हो तकरा आश्रय दियै। एहि तरहें प्रकाशन क्षेत्र कैं उर्वर बनबैत मैथिलीक-पोषण करै।

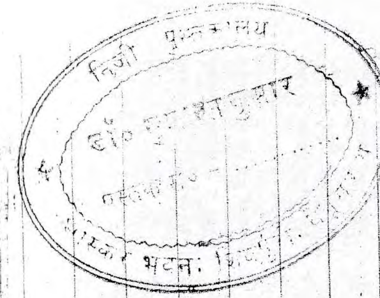
एहि छोट पुस्तकालय सभक हेतु हजार पाँचसै पूँजीक आवश्यकता नहिं, केवल २५-५० टाका क वार्षिक आय पर चलाओल जा सकैछ। एखन मैथिली में प्रकाशित पुस्तक क संख्ये कतेक? पत्र-पत्रिके कोन? यदि गाम बीच २०-२५ उत्साही सदस्य किछुओ उत्साह देखाबथि तँ अनायास ई महत्त्वपूर्ण आयोजन सफल भय सकैछ। उदाहरणार्थ यदि ५०) टाकाक आय में १ साप्ताहिक ३) १ पाक्षिक ३) १ मासिक (नीक) ५) और पुस्तक में ४०-४१ टाका नियमित रूपें व्यय हो तँ विश्वास पूर्वक कहय पड़त जे एहिप्रकारक पाँच सै मैथिली पुस्तकालय सँ बहुत थोड़ दिन में मैथिलीक सुप्त दशा में प्राणपूरक क्रान्ति उपस्थित भय जाएत, कतेको पत्र ओ पुस्तकक उदय होएत।

किन्तु प्रश्न उठैछ जे एहि कार्य कैं करत के? करत ओ जकरा हृदय में मैथिली क ई दुर्दशा देखि आगि धधकि रहल छैक; जे अपना कें मिथिलावासी बुझैत मैथिली कें मातृभाषा कहैत अछि।

हम अपन हृदय क समस्त शक्ति सँ मिथिलाभाषी प्रत्येक युवक-वृद्ध-बालक पुरुष-स्त्री व्यक्ति मात्र सँ मातृभाषाक नामपर, विद्यापति और गोविन्ददास क कविता क नाम पर, चन्दा और मुरलीधर क सेवाक नाम पर, अपील करैछी जे यदि एहि में किछुओ सार देखथि, एहि योजना सँ मिथिला भाषा क उन्नति में लेशो भरि सहायता देखथि, तँ एहि दिशि कृपया मन सँ सर्वात्मना ध्यान देथु ओ अपन सम्मति एहि विषय में 'मिहिर'क द्वारा प्रकट करथु। पुनः विश्वास अछि जे हुनका संकेत पर नाँचि उठनिहार क कमी नहिं रहत।

"क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ! नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥"





प्रोत्साहन पत्र सँ किछु अंश—

विद्वद्वर श्रीयुत रामभद्र झा जी एम० ए० (रि० चिफ जस्टिश अलवर स्टेट):—

'मिथिलाङ्क' क प्रकाशन सँ 'मिथिला मिहिर' नवीन प्रकाश देखाओत। हमर शुभकामना प्रेषित पद्यमें अछि।

पण्डितप्रवर श्रीयुत बालकृष्ण मिश्र जी, (हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी):—

"मिथिलाङ्क" द्वारा 'मिथिला मिहिर' मैं नवीन जीवन आनबाक हेतु धन्यवादक भाजन छी।

श्रीयुत डा० उमेश मिश्र जी, एम० ए०, डि० लिट् (प्रयाग-विश्वविद्यालय):—

मिथिलाक पूर्ण परिचय केवल एक विशेषाङ्क में नहिं आबि सकैछ। अर्थापि मिथिलाङ्क एकर विषय-प्रवेश होएत। हम एकर सफलता हृदय सं चाहै छी। एकर आयोजनक हेतु यथेष्ट समयक आवश्यकता छल।

श्रीयुत सम्पादक जी,

मिथिलाक उन्नति केवल मैथिल ब्राह्मण ओ कर्णकायस्थ हि धरि सीमित नहिं प्रत्युत जे सभ मिथिलाक भूमि पर निवास करैछ, मिथिलाक अन्न-पानि खाइ-पिबैछ, तनिका सबहिक धर्म थिकन्हि जे ओ अपना कें मैथिल बूझि मिथिलाक उन्नति में सामूहिक सहयोग देथि। प्रत्यक्ष अनुभव कहैछ जे मिथिलास्थ राजपूत, भूमिहार, श्रीवास्तव प्रभृति कायस्थ, वैश्य-आदि अपना कें मैथिल कहबा में संकोच करैछथि मैथिली कें अपन भाषा नहिं बुझै छथि। ई मिथिला जननीक प्रति घोर अपमान थिक। हमर ई अभिप्राय नहिं जे ओ राष्ट्रिय उन्नति में हिन्दीक प्रचार में भाग नहिं लेथु किन्तु कोनो कारण नहिं जे ओ मिथिला-मैथिली आन बूझथि। यदि सबहि मिथिलावासी मिथिल कें मातृभूमि, मैथिली कें मातृभाषा मानथि तँ शी एकर सामूहिक उन्नति भय जायत। की ई संभ थीक ?

भवदीय—

श्री कालीकुमार दास (मैथिली-वाचस्पति

श्रीयुत सम्पादक जी,

"मैथिली-साहित्यिक वर्त्तमान आन्दोलन बहुत गोटे मैथिली-पुस्तक क नाम-पताक पुछा करै छथि। अतः हमर अनुरोध जे मैथिली साहित्य परिषद अन्वेषण कय समस्त प्रकाशित मैथिल पुस्तकक नाम, विषय, लेखकक नाम, प्राप्ति-स्था ओ मूल्य आदिक एक पूर्ण सूची प्रकाशित करै केहेन उत्तम हो यदि मैथिलीक समस्त प्रकाशि पुस्तक एकहि स्थान सों किनबा में ग्राहक-गण सुविधा होइन्ह। अस्तु।

एहि संग संग ईहो हमर पूर्ण अनुरोध "मिथिला-मिहिर" में "मैथिली-साहित्यक प्रगति शीर्षक स्तम्भ सँ प्रकाशित मैथिली पुस्तक विशद आलोचना एवं अमुद्रित वा जे लिखल जाइ हो तकर सूचनादि प्रकाशित करबाक अवश प्रबन्ध हो। हम आशा करै छी जे मै० सा परिषद्क मंत्री महोदय तथा मिथिला मिहिर सम्पादक जी एहि पर विचार करबाक कृप करताह"।

भवदीय—

श्री पुलकित लाल दास 'मधुर